प्रस्तावना.

इस ग्रंथकी दिगंबरी बनारसीदासने शुद्ध हिंदुस्थानी भाषामें पद्यात्मक रचना करी है. ए ग्रंथकर्त्ता महापंडित तथा कवीश्वर होनेसे विविध प्रकारकी छंद रचना करिके आपकी श्रेष्ठ कृति दिखाय दिई है. पदलालित्यता तथा अर्थ गौरवतादिक जे काव्यके उत्तम गुण है, ते सब इस ग्रंथमें दीखनेमें आवे है. अलंकारसे कविता अच्छि भूषित करी है. यह ग्रंथ आध्यात्मिक (शुद्ध आत्मतत्त्वके) विषयका है ताते इसीमें शांत रसही मुख्यपणे है तोभि प्रसंगानुसारे बाकीके (८) रसपण दीखनेमें आवे है. ऐसा यह ग्रंथ सबके उपयोगी है सो जान, इस कविता ऊपर हमने हिंदी वचनिका लिखके मुंबईमें 'निर्णयसागर' यंत्रालयमें छपायके प्रसिद्ध करी है. मेरी मातृभाषा महाराष्ट्रीय है तातैं इसिमें कुछ भूल होनेका संभव है सो ज्ञानी जनोंने हंसस्वभाव लेयके मुजकूं लिख भेजना तिसकूं पुनरावृत्तिमें दुरुस्त करेंगे.

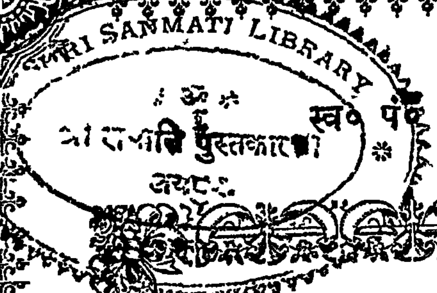
इस ग्रंथकी श्लोकसंख्या अंदाज सात ७ हजार है. सब काम चालीस ४० फार्ममें पूरा हुवा है.

☞ किंमत अढाई (२॥.) रुपये, अलग डाक खर्च लगेगा. पुस्तक मिलनेका पता—

श्रीवीरनिर्वाणसंवत् २४४०
सन १९१४. शके १८३६.
ज्येष्ठ शुद्ध ५ भौमवार.



नाना रामचंद्र नाग.
मु० कुंभोज.
जि० कोल्हापूर.



स्व० पं० वनारसीदासविरचित हिंदी कवित्ताका.

॥ अथ समयसारनाटक प्रारंभ ॥

जैन ब्रा० नाना रामचंद्र नागकृत हिंदी वचनिके सहीत.

उपोद्घात.

॥ कवि त्रय नाम सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम यह ग्रंथ श्रेष्ठ गणाया सर्वमान्य दिगंबरी जैन आचार्यने रचा है.

प्रथम श्रीकुंदकुंदाचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥
ताहींके परंपरा अमृतचंद्र भये तिन्हे, संसकृत कलसा समारि सुख लयो है ॥
प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोया है ॥
शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादियों अनादिहीको भयो है ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीकुंदकुंदआचार्यने ? विक्रम संवत् ४९ में गाथा बद्ध करके, तिसका नाम समयसार नाटक रखा है। तिन्हके परंपरा श्रीअमृतचंद्रमुनी भये, तिन्होने वि० सं० ९६२ में गाथा उपर संस्कृत टीका अनुष्टुप् छंदमें करके सुख लियो है। [फेर पं० राजमल्ल श्रावक समयसारनाटकके जानकार भये, तिन्होने ? वि० सं० १६०५ में संस्कृत उपर बालबोध सुगम हिंदी वचनिका विस्तृत करी है.] फेर सिरीमाल बनारसी गृहस्थ भये, तिन्होने वि० सं० १६९३ में हिंदी वचनिका उपर हिंदी भाषामें कविता करके हृदयमें आत्मबोधरूप बीज बोया है । शब्द अनादिका है अर तिस शब्दमें अर्थहूं अनादिका है, जीव अनादिका है अर तिस जीवका ऐसा नाटकभी अनादिका भया है. मैने नवीन कछु कीया नहीं, ऐसे कवी [बनारसीदास] आपनी लघुता दिखावे है ॥ १ ॥

१ श्रीकुंदकुंदआचार्यने विदेहक्षेत्रमें साक्षात् जिनेश्वरकी दिव्यध्वनी सुनी के ग्रंथ रचे है ताते इनके ग्रंथ सर्वमान्य हुये है.

॥ अब समयसार नाटक ग्रंथकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मोक्ष चलिवे शकोन करमको करे बौन, जाको रस भौन बुध लोण ज्यों घुलत है ॥
गुणको गरंथ निरगुणको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥
याहीके जे पक्षी ते उडत ज्ञान गगनमें, याहीके विपक्षी जग जालमें रुलत है ॥
हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हीय फाटक खुलत है ॥ २ ॥

अर्थ—कैसा है समयसार परमागम ? जैसे उत्तम शकुनते कार्य सिद्धि होय है तैसे इस ग्रंथका अभ्यास है सो मोक्षमार्ग चलनेवालेकूं कार्य सिद्धि करदेनेवाला है अर कर्मरूप कफकी जाल काढनेकूं वमन करानेवाला औषध है, इस ग्रंथके रस (रहस्य) रूप पाणीमें पंडित लोक लवणके समान घुलत (गर्क होजाय) है। यह ग्रंथ गुण (सम्यग्दर्शन, ज्ञान अर चारित्र) का कोष है अर निर्गुण (कषाय रहित) जो मोक्ष तिसका सुगम मार्ग है, इस ग्रंथकी महिमा कहनेकूं इंद्रभी समर्थ नहीं है। इस ग्रंथके जे पक्षी (श्रद्धानी) है ते मनुष्य पक्षीके समान ज्ञानरूप आकाशमें उडे है, अर इस ग्रंथके जे विपक्षी (अश्रद्धानी) है ते मनुष्य पांख रहित पक्षीके समान जगतरूप पारधीके जालमें फसे है। जैसे सब धातुमें सुवर्ण शुद्ध है तैसे यह ग्रंथ शुद्ध है तथा इसिके अर्थका विस्तार श्रीविष्णुकुमारके[1] विराटरूपवत् अपार है, यह ग्रंथ सुनतेही हृदयका कपाट खुले (आत्मानुभव होय) है ऐसा यह परमागम है ॥ २ ॥

---

१ श्रीविष्णुकुमारके विराटरूपकी कथा श्रावण शुद्ध पौर्णिमेकूं सुनना योग्य है.

अनुक्रमणिका. ३१ सा ॥—

जीव निरजीव करता करम पाप पुन्य, आश्रव संवर निरजरा बंध मोक्ष है ॥
सरव विशुद्धि स्यादवाद साध्य साधक, दुवादस दुवार धरे समैसार कोप है ॥
दरवानुयोग दरवानुयोग दूर करे, निगमको नाटक परम रंस पोष है ॥
ऐसा परमागम बनारसी वखाने यामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारितकी चोख है ॥ ३ ॥

अर्थ—मंगलाचरण, पीठिका, षट्द्रव्य, नवतत्त्व, नामावली, पृष्ठ १ ते पृष्ठ ९ पर्यंत है. अर

ऐसे द्वादश द्वार हैं सो समय (आत्मा) के सारका कोष है । यह द्रव्यानुयोग ग्रंथ है इसिमें षट् द्रव्यका स्वरूप दिखायके पुद्गलादि पर द्रव्यका ममत्व दूर करनेका अर स्वद्रव्य (आत्मतत्त्व) का विचार करनेका उपदेश है, तथा निगम (शुद्ध आत्मा) का नाटक है सो परम शांत रसकूं पुष्ट करनेवाला है । ऐसे परम सिद्धांतकों बनारसीदास भाषा छंदमें व्याख्यान करे है, इसिमें ज्ञानका निदान (मूल स्वरूप) अर शुद्ध चारित्रकी चोखी रीत बताय दिई है ॥ ३ ॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ अथश्रीसमयसार नाटक भाषाबंध प्रारंभ ॥

अथ श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति ॥ झंझराकी चाल ॥ सवैया ॥ ३१ ॥

करम भरमजग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग सिवमग दरसि ॥
निरखत नयन भविकजल वरषत, हरषत अमित भविकजन सरसि ॥
मदन कदन जित परम धरमहित, सुमरत भगत भगतसब डरसि ॥
सजल जलदतन मुकुटसपत फन, कमठदलनजिन नमतबनरसि ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीपार्श्वनाथस्वामी कैसे हैं ? कर्म जो मिथ्यादर्शन सोही जगतमें अंधकार ताके हरनेको खग कहिए सूर्य है अर जिन्हके पगमें उरग कहिए सर्पका लक्षण (चिन्ह) है अर शिवमार्ग जो मोक्षमार्ग ताके दिखावनेवाले है। अर जिन्हको नयननिकरि अवलोकन करतें भव्यजीवनिके आनंदके अश्रुपात वरषत है, प्रमाणरहित भव्यजनरूप सरोवर हरपत कहिए उझले है। कामके गर्वकूं जीतनहारे है, परमधर्मकरि जगतका हितरूप है, जाकों स्मरणकरतें भक्त जननिका समस्त सप्तभय भागत है। जलभऱ्या जलद जो मेघ तद्वत् नील जिन्हका तन कहिए शरीर है अर छद्मस्थपणामें धरणेंद्रने सप्तफणकी मस्तक ऊपर छाया करी है अर कमठ नामा असुरके मनकूं नष्टकरनेवारे है ऐसे पार्श्वजिनेंद्रकू बनारसीदास नमस्कार करे है ॥ १ ॥

॥ अब समस्तलघु एकस्वर चित्रकाव्य ॥ छप्पयछंद ॥ पुनः श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति ॥—

अर्थ—समस्त एक जातिके लघुस्वरकरि छप्पैछंदते फेरिहू पार्श्वजिनेंद्रका स्तवन कहे है ॥

सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग ॥ धवल परम पद रमन,
जगतजन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजलघन समतन समकर ॥
परअघ रजहर जलद, सकलजन नत भवभयहर ॥ यमदलन नरकपद क्षयकरन, अगम
अतट भवजलतरन ॥ वर सवल मदन वन हर दहन, जयजय परम अभयकरन ॥ २ ॥

अर्थ—समस्त कर्मरूप दुष्टके दलनहारे है अर कमठ सठरूप पवनकरि नहीचलायमान होनेतैं मेरुसमान है। अर निर्मलपद जो सिद्धपद तिसमें रमनेवाले है अर जगतके जनरूप निर्मलकमल तिनकूं प्रफुल्लित करनेकूं खग कहिए सूर्य है। एकांतवादरूप जे परमत सोही मेघ ताकूं विध्वंस करनेकूं पवन है, सजलघन जो जलकाभऱ्यामेघसमान तन कहिए शरीर है उपशमभावके करनेवाले है। पर कहिए शत्रुरूप जो अघ कहिए पापसोही रज ताकूं मेघसमान है, समस्त जनकरि नमित है, भव जो संसार ताके भय हरनहारे है। यमकूं दलनहारे है नरकपदके क्षयकरनेवाले है, अगम कहिए अथाह अर अतट कहिए अपार ऐसे भवसमुद्रके तरनहारे है। वर कहिए समस्तदोषनिमें प्रधान अर सवल कहिए बलवान ऐसा मदन कहिए काम सोही जो वन ताके दग्ध करनेकूं हरदहन कहिए रुद्रकी अग्नि है, ऐसे उत्कृष्ट अभय कहिए निर्भय ताके करनहारे पार्श्वजिनेंद्र जयवंत रहो ॥ २ ॥ पुनः सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके वचन उर धारत युगल नाग, भये धरनिंद पदमावती पलकमें ॥
जाके नाममहिमासौ कुधातु कनककरै, पारसपाखान नामी भयोहै खलकमें ॥

जिन्हकी जनमपुरी नामकेप्रभाव हम, आपनौं स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें ॥
तेई प्रभुपारस महारसके दाता अब, दीजे मोहिसाता दृगलीलाकी ललकमें ॥ ३ ॥

अर्थ—जाके वचन हृदयमें धारणकरि सर्पका युगल एक पलमें धरणेंद्रपद्मावती भए । जाके नामकी महिमातैंही पार्श्वनाम पाषाण है सो कुधातु कहिए लोहकूं सुवर्ण करै है यातै जगतमें पार्श्वपाषाण नामी कहिए विख्यात भया है । जिन्हकी जन्मपुरी जो बणारसी ताके नामके प्रभावतैं हम अपनास्वरूप अवलोकन कीया, जैसे अपनी भलक जो प्रभा तामें सूर्य लखिए है तेही प्रभुपार्श्वजिनेंद्र आत्मानुभवरूप रसकेदाता अब मोहि नेत्रनिके टिमकारनेकी लीलामात्रमें साता जो आत्मीक स्वाधीन सुखकूं देहु ॥ ३ ॥ अब श्रीसिद्धकी स्तुति ॥ छंदअडिल्ल ॥—

अविनासी अविकार परमरस धाम है ॥ समाधान सरवंग सहज अभिराम है ॥
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है ॥ जगत सिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत है ॥४॥

अर्थ—अविनाशी अर विकार रहित जो आत्मीक सर्वोत्कृष्ट रसताके धाम है । अर समस्त अंगविषैं सहज कहिए स्वाभाविक जो समाधान कहिए अनंतसुख ताकरि मनोहर है । शुद्ध कहिए समस्त दोषरहित अर बुद्ध कहिए सर्वज्ञ अर अविरुद्ध कहिए विरोधरहित अनादि अनंत है । ते जगतके ऊपरि सिरोमणि समान् सिद्धभगवान् सदाकाल जयवंत होहु ॥ ४ ॥

अब श्रीसाधुकी स्तुति ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ग्यानको उजागर सहज सुखसागर, सुगुन रतनागर विरागरस भऱ्यो है ॥
सरनकी रीत हरै मरनको भै न करै, करनसों पीठदे चरण अनुसऱ्यो है ॥

धरमको मंडन भरमको विहंडनजु, परम नरम व्हैकैं करमसो लऱ्यो है ॥
ऐसोमुनिराज भुवलोकमें विराजमान, निरखि बनारसी नमसकार कऱ्यो है ॥ ५ ॥

अर्थ—कैसे है मुनिराज ? ज्ञानके उद्योत करनहारे है, आत्मीक सुखका समुद्र है, सम्यक्गुण रत्ननिकी खानी है, वीतरागरूप रसका भऱ्या है। परीसहादिकनिमें किसीका सरन ग्रहण नहि करे है, अपना अविनासी स्वरूप जानि मरनका भय नहीं करे है, इंद्रियनिके विषयनिसूं अपूठा होइ चारित्रकूं आचरन कीया है। धर्मकूं भूषित करनेकौं मंडन है, भरम जो मिथ्याज्ञान ताके विनाशने वारे है, परम दयावंत होईकै कर्मनिसू लरे है। ऐसे गुणनिके धारक मुनिराज इस पृथ्वीलोकमें विराजमान है तिनकौं अवलोकनकरि बनारसीदास नमस्कार करे है ॥ ५ ॥ अब सम्यग्दृष्टीकी स्तुति ॥ सवैया २३ सा ॥—

भेदविज्ञान जग्यो जिन्हकेघट, सीतल चित्त भयो जिमचंदन ॥
केलिकरे सिव मारगमें, जगमाहि जिनेश्वरके लघुनंदन ॥
सत्यस्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन ॥
शांतदशा तिनकी पहिचानि, करे करजोरि बनारसी वंदन ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसके जड अर चेतनका भेदज्ञान घटमें जाग्रत भया, तिसका चित्त समस्त संसारका ताप रहित चंदनवत् शीतल भया है। अर जिसकै भेदविज्ञान प्रगटभया सो पुरुष मोक्षके मार्गमें केलि जो क्रीडा ताहि करे है, सो भेदविज्ञानी पुरुष इस जगतमें जिनेश्वरके

लघुपुत्र है ज़ातैं अति अलपकालमैं जिनेश्वर होनेयोग्य है। अर भेदविज्ञानीहाक मिथ्यात्वका नाश करनेवाला अर अवदात कहिए निर्मल ऐसा निजपरका सत्यार्थस्वरूप प्रगट भया है। ऐसी तिनकी शुद्धदशा पहिचानि बनारसीदास हस्तजोरि वंदना करे है ॥ ६ ॥ पुनः ॥—

स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त, सांचे सांचे वैन कहे सांचे जैनमती है ॥
काहूके विरुद्धीनांही परजाय बुद्धीनांही, आतमगवेषी न गृहस्थहै न यती है ॥
रिद्धिसिद्धि वृद्धीदीसै घटमें प्रगटसदा, अंतरकी लछिसौं अजाची लक्षपती है ॥
दास भगवंतके उदास रहै जगतसौं, सुखिया सदैव ऐसेजीव समकीती है ॥ ७ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टीपुरुष कैसे है ? स्वार्थ कहिए आत्मपदार्थमें जिन्हके सांचीप्रीति है अर परमार्थ कहिए मोक्षपदार्थमें सांचीप्रीति है अर चित्त जिन्हका सांचा है अर सांचे वचनके कहनहारे है अर जिनेंद्रमतमें सांची अचल जाकै प्रतीति है। समस्त नयनिके ज्ञाता है तातैं किसीहीका विरोधी नहीहै अर जिन्हके पर्यायमें आत्मबुद्धी नहीहै अर आत्माका अवलोकन करनेतैं शरीरादिक परवस्तुमें मोह रहितहै, ग्रहस्थपनामेंहू जाकै आपा नहीहै अर यतीपना-मेंहू आपा नहीहै। समस्त आत्मकल्याणकी सिद्धि तथा आत्माकी अनंत शक्तिरूप ऋद्धि अर आत्माके अनंत गुणनिकी वृद्धि जिन्हकूं सदाकाल अपनें घटमेंही प्रगट दीखैहै, अंतरा-त्मापनेकी लक्ष्मीतैं याचना रहित लक्षपती है। भगवान् वीतरागकेदास है, जगतसूं उदासीन रहे है, समस्त परपदार्थमें रागद्वेष रहित है तासौंही उदासीनता है अर सदाकाल आत्मीक सुखयुक्त महासुखी है, ऐसे गुणनिके धारकजीव सम्यग्दृष्टी है ॥ ७ ॥ पुनः ॥ ३१ ॥—

जाके घटप्रगट विवेक गणधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहको हरतु है ॥
सांचासुखमानें निजमहिमा अडोलजानें, आपुहीमें आपनो स्वभावले धरतु है ॥
जैसे जलकर्दम कुतकफल भिन्नकरे, तैसे जीवअजीव विलछन करतु है ॥
आतम सगतिसाधे ग्यानको उदोआराधे, सोई समकिती भवसागर तरतुहै ॥८॥

अर्थ—जाके घटविषे गणधरकासा विवेक प्रगट भया है अर हृदयमें जो आत्मानुभवते उपज्याहर्ष तिसकरी पर्यायमें राचनेरूप मोहकूं हरे है। अर जो सत्यार्थ आत्मीक स्वाधीनसुखकूं सुख माने है, आपने ज्ञानादिक गुणनिकी महिमाकूं अडोल अचल जाने है, अपना स्वभाव जो सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र ताहि पाई आपहीमें धारत है। जैसे मिलेहुए जलकर्दमकूं कतकफल भिन्नकरे तैसे जीवद्रव्य अर अजीवद्रव्य अनादिके मिलेहुए है तिनकूं भिन्नकरे है। आत्मीक शक्तीकी वृद्धिहोय तैसा साधन करे है अर जैसे ज्ञानका उदय होय तैसे आराधना करे है, सोही सम्यक्दृष्टीजीव संसार समुद्रकूं तिरे है ॥ ८ ॥
अब मिथ्यादृष्टीका लक्षण कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौरठौर ठानत लराई पक्षपातकी ॥
भूल्यो अभिमानमें न पावधरे धरनीमें, हिरदेमें करनी विचारे उतपातकी ॥
फिरे डांबाडोलसो करमके कलोलनिमें, व्हैरही अवस्थाज्यूं बभूल्याकैसे पातकी ॥
जाकीछाती ताती कारी कुटिल कुवातीभारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥९॥

अर्थ—धरम जो वस्तुका स्वभाव ताकूं नहीजानत है अर भरमरूप जो मिथ्यात्वयुक्त वचन कहेहैं अर ठौरठौर अपनें एकांत स्थापनकी पक्षपातके अर्थि लराई करेहै। अर अभिमानमें अपना निजरूप भूलि पृथ्वीमें पग नहीं धारत है आपहीकूं तत्वज्ञानी जाने है अर हृदयमें ऐसाकुछ करना विचारे जाते उत्पात प्रगट होय, जिसमें उपद्रव प्रगट होजाय। कर्मरूप कल्लोलनितें चतुर्गतिरूप संसार समुद्रमें कहां स्थिरता नहीपावता डामाडोल फिरे है, ऐसी अवस्था हों रहींहै जैसे पवनके बभूलेमें सूकापत्र आकाशमें उडता कहूं ठिकाणा नहीपावे। जाकी छाती जो हृदय सो रागद्वेषते वा क्रोधमानते तो तप्त है अर लोभके आधिक्यताते मलीन है अर मायाचारते कुटिल है अर एकांत कहनेकूं वाती है अर पापाचारते भारी है ऐसा ब्रह्म जो आत्मा ताका घात करनेवाला मिथ्यात्वीजीव महापातकी है ॥ ९ ॥ दोहा ॥

वंदो सिवअवगाहना, अर वंदो सिवपंथ। जासुप्रसाद भाषाकरो, नाटकनाम गरंथ ॥ १० ॥

अर्थ—शिव जो मुक्ति तिसमें जिन्हकी अवगाहना है तिनकूं वंदना करूंहू, शिवका मार्ग जो रत्नत्रय तिसकूं वंदना करूंहूं। जिन्हके प्रसादते नाटकनाम ग्रंथकी भाषा करूं ॥ १० ॥

अब कवीवर्नन सवैया ॥ २३ सा ॥—

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदापद मेरो ॥
मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महा तम घेरो ॥
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहूं गुणनाटक आगम केरो ॥
जासु प्रसाद सधे सिवमारग, वेगि मिटे घटवास वसेरो ॥ ११ ॥

अर्थ—चेतनारूप अनूपम अमूर्ति ऐसा सिद्धसमान सदाकाल मेरा पद है। पण मोहरूप महाअंधकारने आत्माके अंग कहिए समस्त प्रदेशमें संसर्ग करि महाअंधकारसे घेर रख्या हैं ताते नहीलख्या गया। अब मेरे कोई ज्ञानकी कला कहिए अंश उपजा है ताते नाटक समयसार नाम परमागमके गुण कहूंहूं। जिसके प्रसादते मेरेकूं मोक्षमार्ग सिद्ध होय अर शरीरमें वसिवो वेगिकरि मिटिजाय ॥ ११ ॥ अब कवि लघुता वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोऊ मूरख महासमुद्र तरिवेको; भुजानिसो उद्यूतभयोहै तजि नावरो ॥
जैसे गिरि ऊपरि विरखफल तोरिवेको, वामन पुरुष कोऊ उमगे उतावरो ॥
जैसे जल कुंडमें निरखि ससि प्रतिबिंब, ताके गहिवेको करनीचोकरे टावरो ॥
तैसे मैं अलपबुद्धि नाटक आरंभकीनो, गुनीमोही हसेंगे कहेंगे कोऊ बावरो ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे कोई मूर्खमनुष्य महासमुद्र तिरनेको नावकूं छांडि भुजानिसूं उद्यमी भयोहै अथवा जैसे कोई वामन पुरुष पर्वत ऊपरिके वृक्षके फल तोरनेकूं उतावलो होइ उछले है। अथवा जैसे कोई बालक जलके कुंडमें चंद्रमाका प्रतिबिंबके ग्रहण करनेकूं अपना हस्तकूं नीचाकरे पकड्या चाहै। तैसे मैं अल्पबुद्धी नाटककी भाषा करनेका आरंभकीया है सो मंदबुद्धिके धारकको ऐसा वडाकार्यका आरंभ देखि गुणवंत पुरुष हास्यकरि कहैंगे कोऊ वावरा है या सयाना होता तो ऐसे कार्य कैसे आरंभ करता ॥ १२ ॥ पुनः ॥ ३१ सा ॥—

जैसे काहू रतनसौं वींध्यो है रतन कोऊ, तामें सूत रेसमकी डोरी पोइगइ है ॥
तैसे बुद्धटीकाकरी नाटक सुगमकीनो, तापरि अलपबुद्धि सूधी परनई है ॥

जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भाषाकहै, तैसी तिनहूके बालकनि सीखलई है ॥
तैसे ज्यौं गरंथको अरथ कह्यो गुरु त्यौंहि, मारी मति कहिवेकौं सावधान भईहै ॥ १३ ॥

अर्थ—जैसे काहू हीराकी कनीसे कोऊ कठिन रत्न वींध राख्या होय तो पाछे उस रत्नमें सूतकी रेशमकी डोरि पोई जाय है, जो हीरेकी कनीसूं छिद्रनहीकीया होय तो उस डोरीका प्रवेश नही होयसकै। तैसे बुद्ध कहिए ज्ञानी जे श्रीअमृतचंद्रस्वामी है ते टीकाकरि नाटककूं सुगमकर दीया है तातैं इस टीकाके अर्थ मेरी अलपबुद्धि हू सूधी परनमि गई है। अथवा जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भाषाकहै तैसी तिन्हहूके बालकनि सीखलई है। तैसे ज्यौं इस ग्रंथका अर्थ गुरु (पितादि) मोकूं कह्या तैसे हमारी बुद्धि कहिवेकूं सावधान भई है ॥ १३ ॥

अब कवि अपने बुद्धिके सामर्थ्यको कारण भगवंतकी भक्ति है सो कहे है ॥ २१ सा ॥—

कबहू सुमतिव्है कुमतिको विनाश करै, कबहू विमलज्योति अंतर जगतिहै ॥
कबहू दयाल व्है चित्तकरत दयारूप, कबहू सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥
कबहू कि आरतीव्है प्रभुसनमुख आवै, कबहू सुभारतीव्है बाहरि वगति है ॥
धरेदशा जैसी तब करैरीति तैसी ऐसी, हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है ॥ १४ ॥

अर्थ—कवि अपनें सामर्थ्यताका कारण कहेहै, हमारे हृदयमें भगवंतकी भक्ती (श्रद्धा) है सो कबहू तो सुबुद्धिरूप होय कुबुद्धिको विनाश करे है अर कबहू या भगवंतकी भक्तिही निर्मल ज्योतिरूप होयके अंतरंगविषे जाग्रत करेहै। अर कबहू या भक्ती दयालरूप होयके चित्तकूं दयारूप करे है अर कबहू या भक्ति परमात्माके अनुभवमें लालसारूप होय ठहरनेतैं

लोचन थिर हो जाय है। अर कवहू या भक्ति आरतीरूप होय प्रभुके सनमुख आवे है अर कवहू या भगवंतकी भक्ती सुंदरवाणीरूप होय वाहिर स्तुतिके शब्दरूप उच्चारकरि रहे है। जैसीजैसी दशाधरे तव तैसीतैसी रीती करनहार ऐसी हमारे हृदयमें भगवंतकी भक्ति है तातैं नाटक ग्रंथकी रचनारूप कार्यमें एक भगवंतकी भक्तिही मेरे साह्यकारी है, या भक्ति समस्तकार्य कराय देगी ॥ १४ ॥ अव नाटक महिमा वरणन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मोक्ष चलिवे शकोन करमको करेवोन, जाके रस भौन वुध लोनज्यों घुलतहै ॥
गुणको गरंथ निरगुणको सुगमपंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥
याहीके जु पक्षीते उडत ज्ञानगगनमें, याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है ॥
हाटकसो विसल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हीये फाटक खुलत है ॥ १५॥

अर्थ—जैसे भले शकूनतै कार्यकी सिद्धि होयहै तैसे मोक्ष चलनेकूं यो नाटक भला शकुन है अर कर्मरूप कफके निकासनेंको वमन करानेवाला है अर इस ग्रंथका रसरूप भुवन कहिए जलविषे वुध जे ज्ञानीजन ते लवणकी नाईं घुलिजाय है, जैसें जलविषैं लवण एक होजाय है तैसें भेदविज्ञानी इस नाटकके रसमें तन्मय हो जाय है। गुण जे सम्यक्दर्शन, ज्ञान अर चारित्रका गट्ठाहै, निर्गुण जो मोक्ष ताका सुगम मार्ग है, इस ग्रंथके जस कहतें इंद्रहू आकुल होयहै, याका अप्रमाण यशके कहनेकूं इंद्रभी समर्थ नहीहै। इस ग्रंथरूप पक्ष कहिए पांख जिन्हके है ते पुरुष ज्ञानरूप आकाशमें उडत है (इसग्रंथकी अनेकांतरूप पक्ष सहित है तेही समस्त ज्ञानमें प्रवर्ते है) अर इस ग्रंथरूप पांख जिन्हकै नही ते जगतरूप जालमें

फसैं है। शुद्धसुवर्ण समान नाटकग्रंथ निर्मल है, कृष्णके विराटरूपवत् याका अप्रमाण विस्तार है नाटकग्रंथ श्रवण करनेंतें हृदयके कपाट खुलत है ॥१५॥ अव अनुभव प्रकर्ण कथन ॥ दोहा ॥—

कहूं शुद्ध निश्चयकथा, कहूं शुद्ध व्यवहार। मुकति पंथ कारन कहूं, अनुभौको अधिकार॥१६॥

अर्थ—शुद्ध निश्चय नयकी कथनी कहूंहूं अर शुद्ध व्यवहार नय ही कहूंहूं। मुक्तिके मार्गका कारणजो आत्मनुभव ताका प्रकर्ण कहूंहूं ॥ १६ ॥ अब अनुभव स्वरूप कथन ॥ दोहा ॥—

वस्तु विचारत ध्यावतैं, मनपावै विश्राम। रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याको नाम॥१७॥

अर्थ—वस्तुका विचारकरते अर चिंतवन करते मनविश्रामकूं पावे है। अनुभव याका नाम है, जैसें कोऊ वस्तुका जैसा रसका स्वाद होय तैसें ही उस वस्तुके खानेमें रसके आस्वादका सुख उपजे है ॥ १७ ॥ अब अनुभव महिमा कथन ॥ दोहा ॥—

अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रस कूप। अनुभौ मारग मोक्षको, अनुभौ मोक्ष स्वरूप॥१८॥

अर्थ—अनुभव है सो चिंतामणि रत्न है, अनुभव है सो रस कूप है, अनुभव है सो मोक्षका मार्ग है अर अनुभव है सो मोक्ष स्वरूप है ॥ १८ ॥ पुनः ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अनुभौके रसकौं रसायण कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहु तीरथकी ठौर है ॥
अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसासु, अनुभौअधोरसासु ऊरधकी दौर है ॥
अनुभौकी केलिइह कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वादपंच अमृतको कौर है ॥
अनुभौ करमतोरे परमसो प्रीतिजोरे, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥ १९ ॥

अर्थ—जगतके निवासी ज्ञानीजन अनुभवके रसको रसकूप कहते है, अनुभवका अभ्यास

है सो तीर्थभूमिका है जातैं जाकैं आत्मानुभवका अभ्यास भया सोही परमतीर्थस्थान ग्रहण कीया। अनुभवकी जो रसा कहिए पृथ्वी सोही जगतमें पोरसा कहावै है (समस्त वांछित आत्मानुभवतैं सिद्ध होय है) अनुभव है सो अधोरसा कहिए अधोलोकतै निकासि ऊर्द्ध लोककूं शीघ्र ले जानेवाला है। अनुभवमें रमना है सोही कामधेनु चित्रावेलि है, अनुभवका स्वाद है सो पंचअमृतका ग्रास है। अनुभवही कर्मनिकूं तोरे है अर अनुभवही परमात्मरूपसे प्रीतिकूं जोडे है तातै अनुभव समान और कोऊ धर्म नही है ॥ १९ ॥ इति अनुभव वर्णन ॥

॥ अथ अनुभवके अर्थि छहद्रव्य कहैहै ॥ अब जीवद्रव्य स्वरूप कथन ॥ १ ॥ दोहा ॥—

चेतनवंत अनंतगुण, पर्यय शक्ति अनंत। अलख अखंडित सर्वगत, जीवद्रव्य विरतंत ॥२०॥

अर्थ—चेतनवान् है, अनंतगुणमय है, पर्यायनिकी शक्तितैहूं अनंत है, इंद्रियनिका विषय नाही, अखंडित है, सर्वलोकमें भऱ्या है, ऐसा जीवद्रव्यका स्वरूप है ॥ २० ॥ अब पुद्गलद्रव्य कथन ॥ २ ॥ दोहा ॥—

फरस वर्ण रस गंधमय, नरदपास संठान। अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य स्पर्श, वर्ण, रस अर गंधमय है, चोपडीके पासाका आकार है, अणुरूप है, परमाणुरूप है अर आकाशके प्रदेशप्रमाण है ॥२१॥ अब धर्मद्रव्य कथन ॥३॥ दोहा ॥—

जैसें सलिल समूहमें, करै मीनगति कर्म। तैसें पुदगल जीवकौं, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसें जलका समूह, मच्छकूं गतिरूप क्रियाको सहकारी है तैसें पुद्गलद्रव्यको अर जीवद्रव्यको चलनेमें सहकारी धर्मद्रव्य है ॥ २२ ॥ अब अधर्मद्रव्य कथन ॥ ४ ॥ दोहा ॥—

ज्यौं पंथी ग्रीषम समै, बैठे छाया मांहि । त्यौं अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहरांहि ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसें पथिक ग्रीषमकी आतापका अवसरमें छायाका निमित्त पाय बैठत है । तैसें अधर्मद्रव्यकी अवगाहनके निमित्ततैं जड जो पुद्गल अर चेतन जो जीव ये दोऊ स्थितिरूप होय ठहराहि है ॥ २३ ॥ अब आकाशद्रव्य कथन ॥ ५ ॥ दोहा ॥—

संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास । जो भाजन सब जगतको, सोइ द्रव्य आकाश ॥२४॥

अर्थ—निरंतर जाके उदरमें समस्त पदार्थनिका निवास है अर जो समस्त जगतकूं आधारभूत भाजन समान है सोई आकाशद्रव्य है ॥२४॥ अब कालद्रव्य ॥ ६ ॥ दोहा ॥—

जो नवकरि जीरनकरै, सकल वस्तुथिति ठांनि । परावर्त वर्तन धरै, कालद्रव्य सो जांनि ॥२५॥

अर्थ—जो नवीनकरि जीर्णकरै अर समस्त वस्तुकी पर्यायरूप स्थिति करिकैं निरंतर परावर्तनरूप वर्तनाकूं धारै सो कालद्रव्य जानहु ॥ २५ ॥ इति षटद्रव्य वर्णन ॥

॥ अथ अनुभवके अर्थि नवतत्त्व वरणन करै है ॥ अब जीवतत्त्व कथन ॥ १ ॥ दोहा ॥—

समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास । वेदकता चैतन्यता, ये सब जीवविलास ॥२६॥

अर्थ—समभावतामें रमता कहिए भोक्ता, ऊर्ध्व गमन स्वभावता, ज्ञायकता, सुखस्वभावता, सुखदुःखका वेदकपणा अर चैतन्यपणा ये समस्त जीवका विलास है ॥ २६ ॥

अब अजीवतत्त्व कथन ॥ २ ॥ दोहा ॥—

तनता मनता वचनता, जडता जडसंमेल । लघुता गरुता मगनता, ये अजीवके खेल ॥२७॥

अर्थ—तनपणों, मनपणों, वचनपणों, जडपणों, जडसे मिलनपणों, लघुपणों, गुरुपणों,

अर मगनपणों ये समस्त अजीवका खेल है ॥ २७ ॥ अव पुण्यतत्त्व कथन ॥ ३ ॥ दोहा ॥—

जो विशुद्धभावनि वंधै, अरु ऊरधमुख होइ। जो सुखदायक जगतमें, पुन्यपदारथ सोइ॥२८॥

अर्थ—जाका विशुद्धभावनितैं बंध होय अर ऊर्धगतिकै सन्मुख करानेवाला होय अर जगतमें सुखका देनेवाला सो पुन्यपदार्थ है ॥ २८ ॥ अव पापतत्त्व कथन ॥ ४ ॥ दोहा ॥—

संक्लेश भावनि वंधै, सहज अधोमुख होइ । दुखदायक संसारमें, पापपदारथ सोइ ॥ २९ ॥

अर्थ—संक्लेश परिणामनिकरितो जाका वंध होय अर सहजही अधोगतिकै सन्मुख होय अर संसारमें दुःखका देनेवाला सो पापपदार्थ है ॥ २९ ॥ अव आश्रवतत्त्व ॥ ५ ॥ दोहा ॥—

जोई कर्म उदोतधरि, होइ क्रियारस रत्त । करषै नूतन कर्मकौं, सोई आश्रव तत्व ॥ ३० ॥

अर्थ—जो कर्म उदयरूप होय तामें सक्तकरे अर शुभअशुभ क्रियाको अर नूतन कर्मकों खैचें (करावे) सो आश्रव तत्व है ॥ ३० ॥ अव संवरतत्व कथन ॥ ६ ॥ दोहा ॥—

जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतैं जोग विरत्त । रोकै आवत करमकौं, सो है संवर तत्व ॥३१॥

अर्थ—जो अपनें ज्ञान दर्शन उपयोगकूं धरे अर मनवचन कायकी क्रियातैं विरक्त होय आवते कर्मकूं रोके सो संवरतत्व है ॥ ३१ ॥ अव निर्जरातत्व कथन ॥ ७ ॥ दोहा ॥—

जो पूरव सत्ताकर्म, करि थिति पूरण आउ । खिरवेकौं उद्दित भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥३२॥

अर्थ—जो पूर्वकालमें बंधकीया तातै सत्तामैं तिष्टताकर्म अपनी स्थितिकूं पूर्ण करिकै खिरनेंकूं उद्यमी भया सो निर्जरातत्व है ॥ ३२ ॥ अव वंधतत्व कथन ॥ ८ ॥ दोहा ॥—

जो नवकर्म पुरानसौं, मिलैं गंठिदिढ होइ । शक्ति बढावै वंशकी, वंधपदारथ सोइ ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो नवीन कर्म पुरानेंकर्मसो मिलिकरि दृढगाठ होय अर आगेकूं कर्मके वंशकी शक्ति बढावे सो बंधपदार्थ है ॥ ३३ ॥ अब मोक्षतत्व कथन ॥ ९ ॥ दोहा ॥—

थितिपूरन करि जो कर्म, खिरै बंधपद भान। हंसअंस उज्जल करै, मोक्षतत्व सो जान ॥३४॥

अर्थ—जो कर्म अपनी स्थिति पूर्णकरि अर अपना बंधपद क्षयकरि अर हंस जो परमात्मस्वरूप आत्मा ताके अंशकूं उज्जल करे सो मोक्षतत्त्व जानना ॥ ३४ ॥ इति नवतत्व कथन ॥

॥ अथ नाममाला सूचनिका मात्र लिख्यते ॥ अब समुच्चय वस्तुके नाम ॥ दोहा ॥—

भाव पदार्थ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व। द्रविण अर्थ इत्यादि वहू, वस्तु नाम ये सर्व ॥३५॥

अर्थ—भाव, पदार्थ, समय, धन, तत्व, वित्त, वसु, द्रव्य, द्रविण, अर्थ, इत्यादि, वहु, ये सर्व वस्तुके नाम है ॥ ३५ ॥ अब शुद्ध जीवद्रव्यके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

परमपुरुष परमेसर परमज्योति, परब्रह्म पूरण परम परधान है ॥
अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज, निरदुंद मुकत मुकंद अमलान है ॥
निरावाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसारसिरोमणि सुजान है ॥
सरवदरसी सरवज्ञ सिद्धस्वामी शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

अर्थ—परमपुरुप, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्ण, परम, प्रधान, अनादि, अनंत, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्द्वंद्व, मुक्त, मुकुंद, अमलान, निरावाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, संसारशिरोमणि, सुज्ञान, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान्, ॥ ३६ ॥ अब संसारी जीवद्रव्यके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है ॥
चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत, प्राणवंत प्राणी जंतु भूत भव भोगी है ॥
गुणधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी, अंगधारी संगधारी योगधारी जोगी है ॥
चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम, करमको करतार परम वियोगी है ॥ ३७ ॥

अर्थ—चिदानंत, चेतन, अलक्ष, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी, चिद्रूप, स्वयंभू, चिन्मूर्ति, धर्मवंत, प्राणवंत, प्राणी, जंतु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखंड, हंस, अक्षर, आत्माराम, कर्मकर्ता, परमवियोगी, ॥ ३७ ॥ अब आकाशके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

खं विहाय अंवर गगन, अंतरिक्ष जगधाम। व्योम वियत नभ मेघपथ, ये आकाशके नाम ॥३८॥

अर्थ—खं, विहाय, अंवर, गगन, अंतरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत, नभ, मेघपथ, ये आकाशके नाम है ॥ ३८ ॥ अब कालके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

यम कृतांत अंतक त्रिदश, आवर्ती मृतथान। प्राणहरण आदिततनय, कालनाम परवान ॥३९॥

अर्थ—यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्ती, मृत्युस्थान, प्राणहरण, आदित्यतनय, ये कालके नाम प्रमाण है ॥ ३९ ॥ अब पुन्यके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

पुन्य सुकृत ऊर्ध्ववदन, अकररोग शुभकर्म। सुखदायक संसारफल, भाग वहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥

अर्थ—पुण्य, सुकृत, ऊर्ध्ववदन, अकररोग, शुभकर्म, सुखदायक, संसारफल, भाग्य, वहिर्मुख, धर्म ॥ ४० ॥ अब पापके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

पाप अधोमुख येन अघ, कंपरोग दुखधाम । कलिल कलुष किल्विष दुरित, अशुभ कर्मके नाम

अर्थ—पाप, अधोमुख, येन, अघ, कंपरोग, दुखधाम, कलिल, कलुष, किल्विष, दुरित, ये अशुभ कर्मके नाम जानने ॥ ४१ ॥ मोक्षके नाम ॥ दोहा ॥—

सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिव मुक्त अविचलथान। मोक्ष मुक्ति वैकुंठ सिव, पंचम गति निरवान

अर्थ—सिद्धक्षेत्र, त्रिभुवन मुकुट, शिव, मुक्त, अविचल स्थान, मोक्ष, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचम गति, निर्वाण, ॥ ४२ ॥ बुद्धीके नाम ॥ दोहा ॥—

प्रज्ञा धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि । सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थ—प्रज्ञा, धिषणा, सेमुषी, धी, मेधा, मति, बुद्धि, सुरति, मनीषा, चेतना, आशय, अंश, विशुद्धि ॥ ४३ ॥ विचक्षण पुरुषके नाम ॥ दोहा ॥—

निपुण विचक्षण विबुध बुध, विद्याधर विद्वान् । पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान् ४४

अर्थ—निपुण, विचक्षण, विबुध, बुद्ध, विद्याधर, विद्वान्, पटु, प्रवीण, पंडित, चतुर, सुधी, सुजन, मतिमान्, ॥ ४४ ॥ दोहा ॥—

कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत । ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणी जन संत ॥ ४५ ॥

अर्थ—कलावंत, कोविद, कुशल, सुमन, दक्ष, धीमंत, ज्ञाता, सज्जन, ब्रह्मवित्, तज्ञ, गुणी जन, संत, ॥ ४५ ॥ मुनीश्वरके नाम ॥ दोहा ॥—

मुनी महंत तापस तपी, भिक्षुक चारित धाम । जती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिष नाम ॥४६॥

अर्थ—मुनी, महंत, तापस, तपी, भिक्षुक, चारित्र धाम, यती, तपोधन, संयमी, व्रती, साधु, ऋषि, ॥ ४६ ॥ ॥ दर्शनके नाम ॥ दोहा ॥—

दरस विलोकन देखनों, अवलोकन द्रिगचाल। लखन द्रिष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल।

अर्थ—दर्शन, विलोकन, देखना, अवलोकन, दृगचाल, लखन, दृष्टि, निरीक्षण, जोवना, चिंतवन, चाहन, भाल, ॥ ४७ ॥ ज्ञान अर चारित्रके नाम ॥ दोहा ॥—

ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान। संयम चारित आचरन, चरन वृत्ति थिरवान ४८

अर्थ—ज्ञान, बोध, अवगम, मनन, जगत्भानु, जगतज्ञान; ये ज्ञानके नाम हे. संयम, चारित्र, आचरण, चरण, वृत्त, थिरवान्; ये चारित्रके नाम हे ॥४८॥ सांचके नाम ॥ दोहा ॥—

सम्यक सत्य अमोघ सत, निसंदेह निरधार। ठीक यथातथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ४९

अर्थ—सम्यक्, सत्य, अमोघ, सत्, निसंदेह, निरधार, ठीक, यथातथ्य, उचित, तथ्य, इनि शब्दनीके आदिमें अकार ओर लगाय देतो झूटके नाम होय हे ॥ ४९ ॥ झूटके नाम ॥ दोहा ॥—

अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक। मुधा मोघ निःफल वितथ, अनुचित असत अठीक

अर्थ—अयथार्थ, मिथ्या, मृषा, वृथा, असत्य, अलीक, मुधा, मोघ, निःफल, वितथ, अनुचित, असत्य, अठीक, ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीसमयसारनाटकमध्ये नाममाला सूचनिका संपूर्णा ॥

॥ अथ समयसार नाटक मूलग्रंथ प्रारंभः ॥

॥ चिदानंद भगवान्की स्तुति ॥ मंगलाचरण ॥ दोहा ॥—

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान्। सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥१॥

अर्थ—कैसा है चिदानंद भगवान् ? चित् (स्व स्वभावकाही) है आनंद जाको ताको चिदानंद कहना अथवा भगवान् कहना। सो चिदानंद जो आत्मा तो सर्व पदार्थमें सार है मुख्य है. अर सर्व पदार्थको जाननहारा ऐसा चिदानंद अनंतज्ञानवान् है तथा स्वअनुभवयुक्त महा शोभिवंत है ॥१॥

॥ अव आत्माको वर्णन करि सिद्ध भगवान्को नमस्कार ॥ सवैया २३ सा ॥—

जो अपनी द्युति आप विराजित, है परधान पदारथ नामी ॥
चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरको विसरामी ॥
जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुण ज्ञायक अंतरजामी ॥
सो सिवरूप वसे सिवनायक, ताहि विलोकी नमै सिवगामी ॥ २ ॥

अर्थ—कैसे है सिद्ध भगवान्? जो अपने आत्मज्ञान ज्योतिमें आप प्रकाशमान् हो रहा है, त्रैलोक्यके सर्व पदार्थमें प्रधान है, चेतना जाका लक्षण है, सदा शाश्वत है, अष्टकर्म रहित निःकलंक है, महा सुखसमुद्रमें विश्रामरूप तिष्ठे है। जगतमें जेते जीव अर अजीव पदार्थ है तिन सबके गुण जाननहारा है अर जैसे सबके देहमें आत्मा वैसे है वैसाही आत्मा है परंतु जन्ममरण रहित सिद्धरूप होय जगतके ऊपर जो मोक्षस्थान है तिसमें स्थिर वसे है, ऐसा सिद्धभगवान् है, तिनको ज्ञानदृष्टीतें देखि, शिवगामी (शिवमार्गमें गमन करनेवाला) भव्यजीव नमस्कार करे है ॥ २ ॥

॥ अब जिनवाणीका वर्णन ॥ सवैया २३ सा ॥—

जोगधरी रहे जोगसु भिन्न, अनंत गुणातम केवलज्ञानी ॥
तासु ह्रदे द्रहसो निकसि, सरिता समव्हे श्रुत सिंधु समानी ॥
याते अनंत नयातम लक्षण, सत्य सरूप सिद्धांत वखानी ॥
वुद्ध लखे दुरवुद्ध लखेनहि, सदा जगमाहि जगे जिनवाणी ॥ ३ ॥

अर्थ—कैसी है जिनवाणी ? केवलज्ञानी जिनभगवान्, मन वचन अर शरीरके योगते सहित है तथापि योगद्वारे ज्ञानका अनुभव लेय नही है, इस कारण ते योगसे पृथक् है, ऐसे अनंत गुणस्वरूपी केवलज्ञानी जिनभगवान् है । तिनके हृदयरूप सरोवरते नदी समान निकसी शास्त्ररूप समुद्र समान हो रही है, ऐसी इह जिनवाणी है । इसिको अनंत नयरूप लक्षणकूं धर सत्यस्वरूप सिद्धांतमें व्याख्यान कीया है । या वाणीकूं वुद्धिवंत तत्वदर्शीही देखे है जाने है; दुर्बुद्धि मिथ्यात्वी देखे नही अर जानेहि नही है, ऐसी या जिनवाणी है, सो जगतमें सदाकाल जाग्रत दीपकरूप हो रही है. जो इसिका आराधना (अभ्यास) करेगा ताको सत्य अर असत्यका ज्ञान होयगा ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथम जीवद्वार प्रारंभ ॥ १ ॥ कवि व्यवस्था कथन ॥ छप्पैछंद ॥

हूं निश्चय तिहु काल, शुद्ध चेतनमय मूरति । पर परणति संयोग, भई
जडता विस्फूरति । मोहकर्म पर हेतु पाइ, चेतन पर रच्चय । ज्यौ धतुर रस
पान करत, नर वहुविध नच्चय । अव समयसार वर्णन करत, परम शुद्धता
होहु मुझ । अनयास बनारसीदास कही, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ४ ॥

अर्थ—निश्चय नयते भूत, भविष्य अर वर्तमानमें मैं शुद्ध चेतनमय मूर्ति हीं। परंतु पर कहिये कर्मादिक परणतिके (उदयके) संयोगते मेरेकूं जडपणाका फैलाव भया है सो मोहकर्मका जोर है। इस मोहकर्मके कारणकूं पाय, यो मेरा चेतन स्व स्वरूपको छांडि देहादिक परवस्तुमें राचि रह्या है। जैसे धतूरके रसपान करि मनुष्य बहुत प्रकारे नाचे है। सो अब समयसार वरणन करते मेरे परम शुद्धता होऊं मोहकर्म दूरहोऊं। अर अनायास कहिए बहुत ग्रंथ पढनेका प्रयास विनाही, मेरा भ्रम जो आत्माके संग अनादिकी लगी मिथ्यात्वमें मग्नता सो मिटि जावो, ऐसे बनारसीदास कहें है ॥ ४ ॥

॥ अव आगम (शास्त्र) महात्म्य कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निहचेमें एकरूप व्यवहारमें अनेक, याही नै विरोधनें जगत भरमायो है॥
जगके विवाद नाशिवेको जिनआगम है, ज्यामें स्यादवादनाम लक्षण सुहायो है॥
दरसनमोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रमाण ताके हिरदेमें आयो है॥
अनयसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरण तूरत तिन पायो है ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्त वस्तु निश्चयनयतें एकरूप दीखे है अर व्यवहारनयते अनेक रूप दीखे है, इस दोय नयके विरोधने जगतके जीवकूं भ्रमरूप कीया है, इस भ्रमसे जगतमें वादविवाद उपजे है। इस वाद वा भ्रमकूं नाश करनेको जिनेंद्रका सिद्धांतशास्त्र समर्थ है, इसिमें स्याद्वादनाम उत्तम लक्षण है सो सर्व वस्तुके सत्यार्थ स्वरूप दिखावे है। परंतु जिसके दर्शनावरणीमोहकर्मका उपशम, क्षय, तथा क्षयोपशम भया होय ताके हृदयमें सहजही यह प्रमाणीक जिनआगम प्रवेश करे है। मिथ्यात्वीके हृदयमें प्रवेश करे नही। अब स्याद्वाद जिनशास्त्र जाननहारेको कैसा फल मिले है सो कहें है—जो

अनादि कालका है अर अनादिकाल रहेगा, जिसका नाश नही ऐसा अनंत तेजरूप पूर्णपद (मोक्षफल) सहज तुरत प्राप्त होय है ॥ ५ ॥

॥ अब निश्चय नय अर व्यवहार नय स्वरूप कथन ॥ सवैया २३ सा—

ज्यौं नर कोऊ गिरे गिरिसो तिहि, होइ हितू जु गहै दृढबाही ॥
त्यौं बुधको विवहार भलो, तबलौं जबलौं सिव प्रापति नाही ॥
यद्यपि यो परमाण तथापि, सधै परमारथ चेतन माही ॥
जीव अव्यापक है परसो, विवहारसु तो परकी परछाही ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे कोऊ मनुष्य पर्वतपरसे नीचे पडता होय, ताके बाहूकूं जो दूसरा मनुष्य धरे अर स्थीर करे ते तो उनका हीत करणार हे। तैसे ज्ञानीजनके जबतक मोक्षकी प्राप्ती नही है, तबतक व्यवहारनयही भलो है। चौथे गुणस्थानसे चौदवे गुणस्थान पर्यंत व्यवहार नयका ही अवलंबन श्रेष्ठ है। यद्यपि ये व्यवहारका अवलंबन प्रमाण है, तथापि परमार्थ (सम्यक्‌दर्शन ज्ञान अर चारित्र) का शुद्धपना आत्मामें ही सधेगा, बाहिर नाही सधेगा। निश्चयसे जीवद्रव्य है सो परद्रव्यमें व्यापक नही स्वगुणमें व्यापक है अर व्यवहारसे जीवद्रव्य है सो कर्मादिक परद्रव्यके आश्रयते रहे है, परके आश्रयविना व्यवहार होयनही तातै व्यवहारनयते निश्चयनय शुद्ध है, शुद्धका साधक निश्चय नय है ॥६

॥ अब सम्यक्‌दर्शन स्वरूप व्यवस्था ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शुद्धनय निहचै अकेला आप चिदानंद, आपनेही गुण परजायको गहत है ॥
पूरण विज्ञानघन सो है व्यवहार माहि, नव तत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहत है ॥

पंचद्रव्य नवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखे, सम्यक दरस यह और न गहत है ॥
सम्यक दरस जोई आतम सरूप सोइ, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहत है ॥ ७ ॥

अर्थ—शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षाते एकलो आप चिदानंदमई आत्मा आपनेही गुणको अर पर्यायको (गुणके परिणमनको) ग्रहण करेहै । ऐसा यो परिपूर्ण विज्ञानघन आत्मा है, सो व्यवहारते नव तत्वमें अर पंच द्रव्यमें एकसा हो रह्या है । पंच द्रव्य अर नव तत्व ये न्यारे है अर जीव (आत्मा) न्यारा है ऐसा जो श्रद्धान करना सो सम्यक्दर्शन है और कोऊ उपाय सम्यक्दर्शन ग्रहण करनेको नही है । अर जो सम्यक्दर्शन है सो आत्मस्वरूप है, सोही आत्मस्वरूप मेरे घटमें (हृदयमें) प्रगट भया है ऐसे बनारसीदास कहत है ॥ ७ ॥

॥ अब जीवद्रव्य व्यवस्था अग्निदृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा—

जैसे तृण काष्ट वास आरने इत्यादि और, इंधन अनेक विधि पावकमें दहिये ॥
आकृति विलोकत कहावे आगि नानारूप, दीसे एक दाहक स्वभाव जब गहिये ॥
तैसे नव तत्त्वमें भया है वहु भेषी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये ॥
जाहीक्षण चेतना सकतिको विचार कीजे, ताहीक्षण अलख अभेदरूप लहिये ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे तृण, काष्ट, बास, आरने कहिये बनका दूसरा कचरा और अनेक प्रकारके पदार्थ अग्निसे दग्ध होय है । तब जो वस्तुके आकृतिसे देखिये तदि तो अग्नि नानारूप दीखे हैं, नानारूप कहावे है अर जब दाहक स्वभावकूं ग्रहण करिये तब एक अग्निरूप भासे है । तैसे नव तत्वमें नाना भेषरूप जीव भया है अर जीवका शुद्धरूप है सो पर पदार्थसे मिलिनेकरि अशुद्धरूप कहनेमें

आवे है ताका नाम व्यवहारनय है। अर जिस क्षणमें एक चेतना शक्तिका विचार करिये तब नव तत्वमें मिल्याहुवा ये जीव अलख अभेदरूप दीखे है वा कहनेमें आवे है ताका नाम शुद्धनिश्चयनय है ॥८॥

॥ पुनः जीवद्रव्य व्यवस्था वनवारी दृष्टांत ॥ ३१ ॥ सा—

जैसे बनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम, नानाभांति भयो पै तथापि एक नाम है ॥
कसीके कसोटी लीक निरखे सराफ ताहि, वानके प्रमाणकरि लेतु देतु दाम है ॥
तैसेही अनादि पुदगलसौं संजोगी जीव, नव तत्वरूपमें अरूपी महा धाम है ॥
दीसे अनुमानसौं उद्योतवान ठौरठौर, दूसरो न और एक आतमाही राम है ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण कुधातुके मिलापते अग्नीके तावरूप वानेमें नानाप्रकार होय है तोहूं नाम एक सुवर्ण ही है। अर कसोटी ऊपर कसिकरि सराफ लीककूं देखे तब जैसा अग्निमें वान लागिकरि शुद्ध भया होय तिस प्रमाणकरि दाम देवे अथवा लेवे है। तैसेही अनादि कालका पुद्गलके संयोगते जीव नव तत्वमें मिला है परंतु अरूपी महा तेजवंत है। अनुमान प्रमाणसो देखिये तो पुद्गल, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप, इत्यादि समस्तमें ठोर ठोर ज्ञानरूप उद्योतवान एक आत्माराम ही है और दुसरा द्रव्य उद्योतवान अर चेतनवान नही है ॥ ९ ॥

॥ अब अनुभव व्यवस्था सूर्यदृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे रवि मंडलके उदै महि मंडलमें, आतम अटल तम पटल विलातु है ॥
तैसे परमातमको अनुभौ रहत जोलो, तोलो कहुं दुविधान कहुं पक्षपात है ॥
नयको न लेस परमाणको न परवेस, निक्षेपके वंसको विध्वंस होत जातु है ॥
जेजे वस्तु साधक है तेऊ तहां बाधक है, बाकी रागद्वेषकी दशाकी कोन बातु है ॥ १० ॥

अर्थ—जैसे सूर्यका उदय होते पृथ्वीमें धूप तो अचल फैलत है अर अंधकारका पटल दूर होय है। तैसे जबतक परमात्माका अनुभव रहे है तबतक कोऊ प्रकारकी द्विविधा नही अर पक्षपात हूं नही है। याहीते जहां शुद्धात्माका अनुभव होय है तहां नयका लेशहूं नही है, नयतो वस्तुका येक गुण साधनेकूं है, अर अनुभवतो सिद्धवस्तुको होय है तातै अनुभवमें नयका लेश नही, अर अनुभवमें प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रमाणका पण प्रवेश नही है, प्रमाण तो असिद्ध वस्तू साधने कूं है, पण सिद्धवस्तूकूं क्या साधे, अर अनुभव सिद्ध होय तहां निक्षेपका वंशही क्षय होय है, निक्षेपतो वस्तु जिसजिसरूप तिष्टे है तिसकूं तिसतिसरूप समझावनेकूं है, अर जहां अपना शुद्ध आत्मवस्तुका एकाकार अनुभव (समझ) भया है तहां निक्षेपका प्रयोजन नहीं है। अनुभव होनेके पूर्वअवस्थामें जेजे नय, प्रमाण, निक्षेप, शुद्धात्माके सिद्धिके अर्थी साधक थे, तेही नयनिक्षेपादिक शुद्धात्मस्वरूपका अनुभवमें लीनभयां ताको बाधक होय है. जबतक नय, प्रमाण, अर निक्षेपके परिवार है तबतक अनुभव न होय, बाकी रागद्वेषरूपदशा बाधक होय ताकी तो बातही कहा है? ये तो बाधक प्रगटही है रागद्वेष है तहां नयादिक कहना योग्य है ॥ १० ॥

॥ अब जीव व्यवस्था वचनद्वार कथन ॥ अडिल्ल ॥—

आदिअंत पूरण स्वभाव संयुक्त है। पर सरूप पर जोग कलपना मुक्त है ॥
सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें। शुद्ध नयातम वस्तु विराजे बैनमें ॥ ११ ॥

अर्थ—आदिमें निगोदअवस्था अर अंतमें सिद्धअवस्था, बीचमें अनेक अनेक अवस्था इन सब अवस्थामें आत्मा आपना अनंत गुणात्मक परिपूर्ण स्वभाव संयुक्त रहे है। अर इस आत्मामें पर जे

जडस्वरूपकी अर पुद्गलका संयोगकी कल्पना ही नही है। आदिअंततक् समस्त कालमें एक चैतन्य गुणकरि युक्त रहे है, ऐसा शुद्ध नयके अवलंबन (अपेक्षा) से जिनेंद्रके वचनमें प्रगट कह्याहै। अर जैसा कह्या है तैसाही वचन व्यवहारमें (शास्त्रमें) पण विराजमान है ॥ ११ ॥

॥ अव हितोपदेश कथन ॥ कवित्त ॥—

सतगुरु कहे भव्यजीवनसो, तोरहु तुरत मोहकी जेल ॥
समकितरूप गहो आपनोगुण, करहु शुद्ध अनुभवको खेल ॥
पुद्गलपिंड भावरागादिक, इनसो नहि तिहारो मेल ॥
ये जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

अर्थ—साचो गुरु भव्यजीवसूं कहे है–अहो भव्यलोक हो ? सचेत होऊ, मोहके बंधको शीघ्र तोडो। आपना सम्यक्गुणकूं ग्रहण करो अर ते समकितगुण लेके आपके शुद्ध अनुभवमें खेल खेलो। फेर गुरुकहे–ये देखनेमें जो शरीर आवे है सो पुद्गलपिंड है अर ज्ञानावर्णादिक आठ द्रव्यकर्म है सोही पुद्गलपिंड है तथा रागद्वेषादिक भाव है ते तो इस पुद्गलपिंडका स्वभाव है ताते इन वस्तुके साथ तुमारा मेल (मिलाप) नहीहै। कैसे के ? ये शरादिक अचेतन (जड) है अर प्रगट रूपी है अर तुम चेतन हो तथा गुप्त (अरूपी) हो ताते पुद्गलपिंडकी अर तुमारी भिन्नता ठहरी जैसे पाणी अर तेल भिन्न है तैसे आत्मा अर पुद्गल भिन्न जानना ॥ १२ ॥

॥ अव ज्ञाता विलास कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखे शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टीसो विचार वस्तु वास तो ॥

अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखे बंधमें विलास तो ॥
बंधको विदारि महा मोहको स्वभाव डारि, आतमको ध्यानकरे देखे परगास तो ॥
करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप, अचल अवाधित विलोके देव सासतो ॥ १३ ॥

अर्थ—सम्यक्तीकी क्रीडा कहे है–कोऊ बुद्धिवंत सम्यक्दृष्टी होय सो शरीररूप घरको देखे अर भेदज्ञान दृष्टीसे (जड अर चेतन भिन्न जानना सो भेदज्ञान है) वस्तु स्वभावको विचार करे। तदि अतीत, अनागत, वर्तमान, इस तीन कालमें मोह रसते भीज्या अर कर्मबंधमें विलास करतो चिदानंद जो है सो मैं हूं ऐसा प्रथम निश्चय करे। नंतर स्व पदस्थके अनुसार आचरणकरके बंधको विदारतो जाय, महा मोहको छोडतो जाय, अर आपने आत्माको ध्यानकरि अनुभवरूप प्रकाशमें अवलोकन करे। तब कर्मकलंक रहित, प्रत्यक्ष, अचल, बाधा रहित, शाश्वत आत्मारूप देव मैं हूं ऐसा देखे है ॥ १३ ॥

॥ अब गुणगुणी अभेद कथन ॥ सवैया २३ सा ॥—

शुद्ध नयातम आतमकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है सोई ॥
वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई ॥
यो सरवंग सदा लखि आपुहि, आतम ध्यान करे जब कोई ॥
मेटि अशुद्ध विभावदशा तब, सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥ १४ ॥

अर्थ—शुद्ध नयसे आत्माका अनुभव करना सोही ज्ञानकी संपदा है। वस्तुअपेक्षासे विचारिये तो आत्मा अर अनुभवज्ञान भिन्न भिन्न नही है एक वस्तु है,। आत्मा गुणी है अर ज्ञान गुण है, ऐसे गुण अर गुणी नामके भेदकरि दोय कहावे है। परंतु सर्वप्रकारे आपहीकूं गुण अर गुणी जानकरि

जो कोई आत्मध्यान करे। तब अशुद्ध रागादिक विभावदशा मिटाय सिद्धस्वरूपकी प्राप्ति होय है॥१४॥

॥ अब ज्ञाताका चिंतवन कथन ॥ सवैया ३१ सा—

अपनेही गुण परजायसो प्रवाहरूप, परिणयो तिहूं काल अपने आधारसो ॥
अंतर वाहिर परकाशवान एकरस, क्षीणता न गहे भिन्नरहे भो विकारसो ॥
चेतनाके रस सरवंग भरिरह्या जीव, जैसे लूण कांकर भर्‍यो है रस क्षारसो ॥
पूरण स्वरूप अति उज्वल विज्ञानघन, मोको होहु प्रगट विशेष निरवारसो ॥ १५ ॥

अर्थ—यो जो कोई आत्मानामा पदार्थ है सो ज्ञानघन (विशेष ज्ञानमय) है सो–तीन कालमें प्रवाहरूप (अविछिन्न, अखंडित,) आपके ज्ञानादिक गुण अर गुणके पर्यायको स्वयंसिद्ध (परके आश्रयविना) परिणमि रह्याहै। अर ये विज्ञानघनकी ऐसी महिमा है की, ताते अंतर अर बाह्य एक चेतना रस (गुण) से प्रकाशवान हो रह्या है, (आत्माको जाने सो अंतर प्रकाश है अर बाह्य वस्तुको जाने सो बाह्य प्रकाश है) चेतना गुणसे रहित नही होय है अर भव जो संसार परिभ्रमण ताके विकारसो भिन्न रहे है। सर्व प्रदेशमें चेतनाको रसते जीव भर्‍या है जैसे लवणका कांकरा सर्वांगमें क्षार रससे भर्‍या है तैसे। ऐसा पूर्णस्वरूपसे अति उज्वल विज्ञानघन समस्त रागादिक विभावकूं निवारण करिके मेरे प्रगट होऊं, ये रीते ज्ञाता पुरुष मनमें चिंतवन करे अर इसमे स्थिर रहे ॥१५॥

॥ अब द्रव्य पर्याय अभेद कथन ॥ कवित्त ॥—

जहां ध्रुवधर्म कर्मक्षय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोई ॥
शुद्धोपयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहे सबकोई ॥

यो परतक्ष परोक्ष स्वरूपसो, साधक साध्य अवस्था दोई ॥
दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवे सिव वंछक थिर होई ॥ १६ ॥

अर्थ—विज्ञानघन (आत्मा) है ते द्रव्य है अर ज्ञान है ते पर्याय है, ऐसो विज्ञानघन अर ज्ञान एकही है तातै द्रव्य अर पर्यायको अभेदपणो बतावे है—जहां सकल कर्मका क्षय होनेसे ध्रुवधर्म (गुण) है लक्षण जाका ऐसा सिद्धका स्वभाव है ताको साध्यपद कहिये है । (सिद्ध स्वभावका अनंत कालमेंही नाश नही है तातै ध्रुव कहिये है सो साध्यपद है) अर जिन्हके मन वचन कायके योग शुद्धोपयोगरूप परणये है तिनको (तीर्थंकर, साधु वा सम्यक्तीको) साधकपद कहिये है सो सिद्धपदका साधनेवाला है । साधक है सो परोक्ष स्वरूप है अर साध्य है सो प्रत्यक्ष स्वरूप है ऐसे साधक अर साध्य दोय अवस्था है । ज्ञान संचयकरि दोऊको एक स्वभाव जानि जो ग्रहण करे है, सो निर्वाणका वांछक पुरुष, साध्य अर साधक दोउ पदस्थमें एक विज्ञानघन है ऐसे चिंतवन करि स्थिर होय है ॥ १६ ॥

॥ अव द्रव्य गुण पर्याय भेद कथन ॥ कवित्त ॥—

दरसन ग्यान चरण त्रिगुणातम, समलरूप कहिये विवहार ॥
निहचै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार ॥
सम्यक्दशा प्रमाण उभयनय, निर्मल समल एकही वार ॥
यौं समकाल जीवकी परणती, कहे जिनेंद गहे गणधार ॥ १७ ॥

अर्थ—दर्शन, ज्ञान, अर चारित्र, ये तीनगुण आत्माके है, ऐसा तीनरूप कहना सो मलरूप व्यवहार नय है । अर निश्चयते एक चेतन गुण युक्त है, भेद रहित है अर शुद्ध निर्विकार है । ये

दोऊ नय सम्यक् भेदमें प्रमाण है, नय है ते तो अभिप्राय विशेष है तातै एकही अव्यक्त (निर्मल तथा समल) रूप जानीए। ऐसे एक कालमें निर्मल अर समल जीवकी समान परणति होय रही है, सो जिनेंद्रदेवने कही है अर गणधरदेवने धारण (श्रद्धान) करीहै ॥ १७ ॥

॥ अब व्यवहार कथन ॥ दोहा ॥—

एकरूप आतम दरव, ज्ञान चरण दृग तीन। भेदभाव परिणाम यो, विवहारे सु मलिन॥१८॥

अर्थ—आत्मद्रव्य एकरूप है तिसमें दर्शन, ज्ञान, अर चारित्र, ऐसे तीनरूप कहना सो भेद भावके परिणामते कहना है, एक अखंड वस्तुमें गुण अर गुनीकी भेदरूप कल्पना कर तीन भेद कहना सो मलिन व्यवहार नय है ॥ १८ ॥

॥ अब निश्चयरूप कथन ॥ दोहा ॥—

यद्यपि समल व्यवहार सो, पर्यय शक्ति अनेक। तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक १९

अर्थ—अब निश्चयनय करि निर्मल स्वरूपको ध्यान करना योग्य है सो कहे है—यद्यपि व्यवहार नयके अपेक्षासे आत्मामें अनेक शक्ति अर अनेक पर्याय दीखे है तातै ते समल है। तथापि निश्चय नयके अपेक्षासे आत्मा शुद्ध निरंजन (कर्ममल रहित) एक रूपही है ॥ १९ ॥

॥ अब शुद्ध कथन ॥ दोहा ॥—

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर। समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और २०

अर्थ—अब शुद्धरूप उपादेय (ग्राह्य) है सो कहेहै—जो एक शुद्ध चेतनामय रूपकूं देखना सो दर्शन है, शुद्ध चेतनाका जानना सो ज्ञान है अर शुद्ध चेतना रूपमें स्थिर होना सो चारित्र है.

यह शुद्ध स्वरूपकी अपेक्षा कही। चारित्रके अपेक्षासे समल विमलका भेद होय है, सो शुद्ध स्वरूपमें एक आत्माका अनुभव है तातै सर्व सिद्धि शुद्ध स्वरूपसे होय है अन्य स्वरूपसें नही है ॥ २० ॥

॥ अब शुद्ध अनुभव प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके पद सोहत सुलक्षण अनंत ज्ञान, विमल विकाशवंत ज्योति लह लही है ॥
यद्यपि त्रिविधिरूप व्यवहारमें तथापि, एकता न तजे यो नियत अंग कही है ॥
सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करवेकूं मेरी मनसा उमगी है ॥
जाते अविचल रिद्धिहोत औरभांति सिद्धि, नाही नाहीनाही यामे धोखो नाही सही है ॥२१॥

अर्थ—अब ऐसो शुद्ध स्वरूपको अनुभव स्थिर रहना दुर्लभ है, तातै सर्व ज्ञाताजन अनुभवका मनोरथ (चिंतवन, इच्छा,) करे है सो कहे है—शुद्ध अनुभवपदमें अनंत ज्ञानरूप सुलक्षण शोभे है, तिस लक्षणकें शुद्ध प्रकाशकी ज्योति लखलखाट करे है। (स्व अर परका जानपणा करे है) यद्यपि व्यवहार नयसे आत्मज्योति दर्शन, ज्ञान, अर चारित्र रूप है वा वाह्यआत्मा, अंतरआत्मा, परमात्मा, त्रिविधिरूप है तथापि नियत (निश्चय) नयसे अभेद है एकता नहि तजे है, ऐसे एक स्वरूपी जो जीव (आत्मा) ताका सदाकाल ध्यान करनेकूं मेरी मनसा (इच्छा) हो रही है सो कैसेही युक्तिकरी तिसका ध्यान होऊं। इस आत्मध्यानहीते अविचल रिद्धि (मोक्ष सिद्धि) होय है अन्य रीतीसे सिद्धि होना नही है, इसिमें कछु धोका नही है, ये बात साची है ॥ २१ ॥

॥ अब ज्ञाताकी व्यवस्था कथन ॥ २२ ॥ सा—

कै अपनोपद आप संभारत, कै गुरुके मुखकी सुनिबानी ॥
भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके, प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥

भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोक्षदशा ठहरानी ॥
ते नर दर्पण जो अविकार, रहे थिररूप सदा सुख दानी ॥ २२ ॥

अर्थ—अब भेदज्ञानसे आत्मअनुभव होय अर मुक्ति मिले सो परमार्थ कहे है—कोईक जीव तो आपना पद (निरालंबन स्वरूप) आप संभारिके, आप ग्रंथी भेद करि आपके स्वरूपको आप पहिचाने है। अर कोईक जीव गुरुके मुखते अनेकांत सिद्धांत जिनवाणी सुनी आपके स्वरूपको पहिचाने है, इस प्रकारे जिसको स्व परका भेदज्ञान जाग्रत भया है तिसको स्व ज्ञानकी कलारूप राजधानी (ईश्वरसत्ता) प्राप्त भयी। तिस ज्ञानरूप राजधानीमें अनंत भाव अर पदार्थ प्रतिबिंबित होय है। (सब पदार्थका ज्ञायक ठहरा) तातै सो भेदज्ञानीजीव जीवन (संसार) अवस्थामें मोक्ष स्वरूपी है। भेदज्ञानमें स्व अर परके अनंत भाव प्रतिबिंबित होय है तोपण भेदज्ञानी समलरूप होय नहीं जैसे आरसीमें अनेक पदार्थ प्रतिबिंबित होय है परंतु तिस पदार्थके गुण अवगुणको सो आरसी ग्रहण नहिकरें है, विकार रहित स्थिर रहे है, तैसे भेदज्ञानी सदा स्थिररूप सुखी रहे है॥ २२ ॥

॥ अव भेदज्ञान प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

याही वर्तमानसमै भव्यनको मिथ्योमोह, लग्योहै अनादिको पग्योहै कर्ममलसो ॥
उदैकरे भेदज्ञान महा रुचिको निधान, ऊरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसो ॥
जाते थिर रहे अनुभौ विलास गहे फिरि, कवहूं अपना यौ न कहे पुदगलसो ॥
यह करतुति यो जुदाइ करे जगतसो, पावक ज्यो भिन्नकरे कंचन उपलसो ॥ २३ ॥

अर्थ—इस वर्तमान कालमें भव्यजीवोंका मोहभ्रम मिटजावो, ये मोहकर्म अनादि कालसे आत्माके

साथ लग्या है अर कर्मरूप मलमें व्यापि रह्यो है। ये मोहकर्म मिटनेसे भेदज्ञानका उदय होय है कैसा है भेदज्ञान ? महारुचि जो दृढश्रद्धान (प्रतीति) ताकी निधि है, अर भेदज्ञानसे सम्यक् हृदयमें महान् उजाला होय है अर संशय दशातें न्यारा करे है। जब संशयका अभाव होय तब आत्मा स्व स्वरूपमें स्थिर रहे है तथा अपने अनुभवके विलासकूं ग्रहण करे है, अर फेरि कबहूही शरीर कर्मादि पुद्गलको आपना नही माने है। अर ये करतूति जे भेदज्ञानकी क्रिया है सो आत्माकूं जगतसे जुदा (भिन्न) करे है, जैसे—अग्नि है सो पापाणकूं अर कंचनकूं भिन्न भिन्न करे है तैसे करे है ॥ २३ ॥

॥ अब परमार्थकी शिक्षा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

बनारसी कहे भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहूं भांति कैसेहूके ऐसा काज कीजिये ॥
एकहु मुहूरत मिथ्यात्वको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये ॥
वाहीको विचार वाको ध्यान यह कौतुहल, योंही भर जनम परम रस पीजिये ॥
तजि भव वासको विलास सविकाररूप, अंतकरि मोहको अनंतकाल जीजिये ॥ २४ ॥

अर्थ—अब शुद्ध आत्मामें स्थिर रहना सो परमार्थ है ताका क्रमसे उपदेश करे है—बनारसीदास कहे है हे भाई भव्यजीवो ? मेरा उपदेश सुनो, कोऊही भांतिसे (प्रकारसे) कैसाही होके ऐसा कार्य करिये की। एक मुहूर्त मात्रहूं मिथ्यात्वका विध्वंस हो जाय, अर ज्ञानको अंश जाग्रत हो करि हंस जो आत्मा ताकें स्वरूपकी पहचान कर लीजिये। अर आत्मस्वरूपकी पहचान होयगी जब उसहीका विचार कर उसहीका ध्यान कर उसहीकी क्रीडा कर ऐसेही यावज्जीव आत्मानुभवरूप परम रस पीजिये। तब भव विलास (जन्ममरणका फेरा) अर विकार (राग दोष) ते छूटैगा, अर मोहका नाश होय सिद्धपद प्राप्त होयगा तहां अनंत काल जीवना है इसही प्रकारें सिद्ध होय है ॥ २४ ॥

॥ अब तीर्थंकरके देहकी स्तुति ॥ सवैया ३१ ॥ सा—

जाके देह द्युतिसों दसो दिशा पवित्र भइ, जाके तेज आगे सब तेजवंत रूके हैं ॥
जाको रूप निरखि थकित महा रूपवंत, जाके वपु वाससों सुवास ओर लूके हैं ॥
जाकी दिव्यध्वनि सुनि श्रवणको सुखहोत, जाके तन लछन अनेक आय ढूके हैं ॥
तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुण, निश्चय निरखि शुद्ध चेतनसों चूके है ॥ २५॥

अर्थ—अब आत्मा महिमावान् होनेसे शरीरपण महिमावान् होय है तातै कविराज तीर्थंकरके शरीररूपकी स्तुति कहे है—तीर्थंकरके देहके तेजतैं दशदिशा उज्जल शोभायमान होय है, अर जाके तेजके आगे समस्त तेजवंत (चंद्रसूर्यादि देवता) छुपे है । जिसके रूपकूं देखिकारि महारूपवंत इंद्रादिक देव चकित होजाय है, अर जिसके शरीरकी सुगंधते अन्य सर्व सुगंध मंदार सुपारिजातादि मंद होय है । जाकी दिव्यध्वानि सुनि सर्वत्रके श्रवणको आनंद होत है, अर जिसके शरीरपै १००८ सुंदर लक्षण आय ढोक रहे है । ऐसे तीर्थंकर जिनराज देव है तिनके व्यवहार गुण कहे ते शरीरके आश्रयते कहे है, अर निश्चयतै देखिये तो ये देहाश्रितगुण शुद्धआत्माके गुणते अति न्यारे है ॥ २५ ॥

जामें वालपनो तरुनापो वृद्धपनो नांहि, आयु परजंत महारूप महावल है ॥
विनाहि यतन जाके तनमें अनेकगुण, अतिसै विराजमान काया निरमल है ॥
जैसे विन पवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है ॥
ऐसे जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाके सुभगति महा मुकतिको फल है ॥ २६ ॥

अर्थ—जिनमें बालपणा तरुणपणा अर वृद्धपणा ये तीन भेद नही है, (बालकवत् अज्ञान् नही,

वृद्धवत् देह जीर्ण नहि होय है) जन्मते मोक्ष होने पर्यंत महा रूप अर महा बल समान रहे है। प्रयत्न विनाही जिनके शरीरमें अनेक गुण, अर चौतीस अतिशय (महिमा) विराजमान् हो रहें है अर जिनका देह प्रस्वेदादि मल रहित अति निर्मल है। जैसे विना पवन समुद्र अचल रहे, तैसे जिनको मन अर आसन अचल रहें है। ऐसे जिनराजदेव जगतमें जयवंत रहो, जिनकी शुभ भक्ति करनेसे मुक्तिको फल प्राप्त होय है ॥ २६ ॥

॥ अव जिन स्वरूप यथार्थ कथन ॥ दोहा ॥—

जिनपद नांहि शरीरको, जिनपद चेतनमांहि। जिनवर्णन कछुं और है, यह जिनवर्णन नांहि॥२७

अर्थ—कर्म वैरीकूं जीते सो जिन है तातै जिन ऐसा पद शरीरकूं नही है, जिनपद है सो शुद्ध आत्माको है। जिन जो परमात्मा ताका वर्णन कछुं और प्रकारका है, अर पूर्वे (२५ । २६ कवित्तमें) जो वर्णन कीया है सो शरीराश्रित जिनका है जिन परमात्माका नहिहै ॥ २७ ॥

॥ अव पुद्गल अर चेतनके भिन्न स्वभाव दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥—

उंचे उंचे गढके कांगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक गीलिवेकों दांत दियो है ॥
सोहे चहुंओर उपवनकी सघन ताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है ॥
गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा वताई, नीचो करि आनन पाताल जल पियो है ॥
ऐसा है नगर यामें नृपको न अंगकोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है ॥ २८॥

अर्थ—अब इहां कवी एक नगरका दृष्टांत देयके राजाका भिन्नपणा दिखावै है, तैसेही शरीररूपी नगरीमें आतमराजा भिन्न है सो कहे है—कैसा है नगर? जाको उंचे उंचे कोटके कांगुरे ऐसे

शोभे है, मानो वो नगरनें स्वर्गलोकके गिलिवेको दांत उंचे कीये है. भावार्थ—कोट अति उंचा है। अर वे नगरके चारो तरफ वागवगीचे ऐसे सघन है, मानो घेरादेय नरलोकको घेरलिया है. भावार्थ—वागवगीचे बहूत है। अर वे नगरके चारो तरफ गहरी (उंडी) गंभीर खाई है ताकी ऐसी उपमा बनी है, मानो ये नगर आपना मुखकूं नीचाकरि पातालका जल पीवे है. भावार्थ—खाई अति जलसे भरी उंडी है। ऐसे नगरको बहूत उपमा देके वर्णन कीयो तथापि इसिमें राजाके अंगका कोऊ लेशहूं नही नगरते राजा भिन्न है, तैसेही शरीरते आत्मा भिन्न है शरीरके वर्णनमें आत्माका वर्णन नाहि आवे है ॥२८॥

॥ अब तीर्थंकरकी निश्चै गुण स्वरूप स्तुति कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जामें लोकालोकके स्वभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान शकति विमल जैसी आरसी ॥
दर्शन उद्योत लियो अंतराय अंत कियो, गयो महा मोह भयो परम महा ऋषी ॥
संन्यासी सहज जोगी जोगसूं उदासी जामें, प्रकृति पच्यासी लगरही जरि छारसी ॥
सोहे घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिनराज तांहि वंदत बनारसी ॥ २९ ॥

अर्थ—अब तीर्थंकरके अनंत चतुष्टय (अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ती, अनंत सौख्य,) गुणस्वरूपकी स्तुति वर्णन करे है—जिसके ज्ञानावरण कर्मका क्षय होनेसे अनंत ज्ञान प्राप्त भया है तिस ज्ञानके शक्तीसे, लोक अर अलोकवर्ती समस्त पदार्थ (षट्द्रव्य) तथा षट्द्रव्यके तीनकालमेंके स्वभाव प्रत्यक्ष प्रतिबिंबित होय है जैसे निर्मल दर्पणमें वस्तु प्रतिभासे तैसे। अर जिसके दर्शनावरण कर्मका क्षय होनेसे अनंत दर्शन प्रगट भया है तिस अनंत दर्शनमें त्रैलोक्य दीखे है अर जिसके अंतरायकर्म क्षय होनेसे अनंत बल प्रगट भया ताते अनंत धैर्य धारे है, अर जिसके महा मोहका क्षय

होनेसे परम ऋषिपणा प्राप्त भयो है ताते यथाख्यात चारित्र पाले है। अर यथाख्यात चारित्र धारण करनेसे संन्यासी कहावे है तथा ज्ञान दर्शन अर चारित्र आदि जे सहज (स्वाभाविक) योग है तिनको धरनारे ते सहयोगी है इस संयोग (१३ वें) गुणस्थानमें मन वचन अर देहके योग है, तथा चार अघातिया कर्मकी ८५ प्रकृतीहूं है परंतु वो प्रकृती ऐसी उदासीन शक्ती रहित हो रही है जैसी दग्ध वस्तूकी भस्म रहजाय है। अर जो आपने देहरूप मंदिरमें चेतनरूप प्रत्यक्ष शोभे है, ऐसा परमौदारिक शरीरमें तिष्ठता जिनराज है ताकों बनारसीदास वंदना करे है. ये निश्चय स्तुति कही ॥ २९ ॥

॥ अब शुद्ध परमात्म स्तुतिका दृष्टांत कह कर निश्चय अर व्यवहारको निर्णय करे है ॥ कवित्त छंद ॥—

तनु चेतन व्यवहार एकसें, निहचे भिन्न भिन्न है दोइ ॥
तनुकी स्तुति विवहार जीवस्तुति, नियतदृष्टि मिथ्याथुति सोइ ॥
जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनुजिन एक न माने कोइ ॥
ता कारण तनकी जो स्तुति, सों जिनवरकी स्तुति नाहीं होइ ॥ ३० ॥

अर्थ—शरीर अर आत्मा ये व्यवहार नयते एक है, अर निश्चय नयते दोऊही भिन्नभिन्न है। तातै तनु जो शरीर ताकी जे स्तुति है सो व्यवहार जीव स्तुति है, अर निश्चयते देखिये तो सो शरीर स्तुति असत्य है स्तुति कैसी कहीजाय। जीवही कर्मवैरीकूं जीते जिन होय है तातै जिन है सो जीव है अर जीव है सो जिन है, पण शरीर अर जिन इनको एक करी कोई नही माने है। तिस कारणते शरीरकी जो स्तुति है, सो जिनवरकी स्तुति कैसी होयगी ? नही होयगी ॥ ३० ॥

॥ अब वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांतते दृढकरत हैं ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों चिरकाल गडी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी ॥
कोउ उखारि धरे महि ऊपरि, जे दृगवंत तिने सब सूझी ॥
त्यों यह आतमकी अनुभूति, पडी जडभाव अनादि अरूझी ॥
नै जुगतागम साधि कहीगुरु, लछन वेदि विचक्षण बूझी ॥ ३१ ॥

अर्थ—जैसे कोई महा निधि (धन) धरतीमें, बहुत कालसे दबी रही होय । तिस धनको कोऊ पुरुष धरतीमेंसे उखारि भूमिपर धरदे, तब नेत्रवान् मनुष्यको सो धन सब दीखे है । तैसे या आत्माके अनुभव है सो, अनादि कालते शरीरादिक तथा रागादिक भाव मलमें दब रहा है । तिस अनुभवको ज्ञानीगुरु सिद्धांत (व्यवहार अर निश्चय दोय नय) ते साधी, आत्मस्वरूपको लक्षण कहे है तब विचक्षण (चतुर) मनुष्य तिस अनुभवको जाणिलेय है तथा ग्रहण करे है ॥ ३१ ॥

॥ अब भेदज्ञानको स्वरूप कथन धोबीको दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ जनगयो धोबीके सदन तिन, पहऱ्यो परायो वस्त्र मेरोमानि रह्यो है ॥
धनी देखि कह्यो भैय्या यहुतो हमारो वस्त्र, चिन्ह पहचानतही त्याग भाव लह्यो है ॥
तैसेही अनादि पुदगलसों संजोगी जीव, संगके ममत्वसों विभावतामें वह्यो है ॥
भेदज्ञान भयो जब आपोपर जान्योतब, न्यारो परभावसों स्वभाव निज गह्यो है ॥ ३२ ॥

अर्थ—कैसा है भेदज्ञान ? जैसे कोऊ मनुष्य धोबीके घरजाय, दुसरेको वस्त्र आपनो मानि भूलमें लेयके पहऱ्यो अर मनमें आपनो वस्त्र मानी रह्योहै । नंतर खरो मालक जब मिले अर वस्त्रको देखकरि

कहे हे भैया ये तूं पहन्यो वस्त्र हमारो है, ऐसे सुनतेही अर चिन्हको पहचानतेहि यह वस्त्र तो दुसरेका है ऐसा जानि तत्काल त्यागभाव उपजे है। तैसेही अनादि कालतै देहका तथा कर्मका संयोगी जीव है सो, संगके ममत्वसे देहको आपना मानि रह्याहै। अर गुरुमुखते स्वपरका लक्षण समझे देह अर आत्माका भेदज्ञान होय जब आपकूं अर परकूं जाने है तब, रागादिक परभावते न्यारा होय आपना ज्ञाता दृष्टा सुखमय अर अविनासी ऐसे निश्चय स्वरूपको ग्रहण करे है ॥ ३२ ॥

॥ अब निश्चय आत्म स्वरूप कथन ॥ अडिल्ल छंद ॥—

कहे विचक्षण पुरुष सदा हूं एक हों। अपने रससूं भऱ्यो आपनी टेक हों ॥
मोहकर्म मम नांहिनांहि भ्रमकूप है। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ॥ ३३ ॥

अर्थ—जब ज्ञाता आपणो निश्चय स्वरूप जाणे तब कैसा विचार करे है सो कहे है—विचक्षण जो भेदज्ञानी है सो मनमें ऐसा विचार करे है मैं सदा एकटा हुं, मेरा कोऊ दूजा साथी नहीहै। अपने ज्ञान तथा दर्शन रस भरपूर गुणसे भऱ्या है अर आपनेही आधार है, मेरा दूजा कोऊ आधार (आश्रय) नही है। ये जो नाना प्रकारका मोहकर्म है सो मेरा स्वरूप नही है, मात्र ये भ्रमजालरूप कूप है। अर जो शुद्ध ज्ञानचेतनाका समुद्र सो हमारा रूप है ॥ ३३ ॥

॥ अब ऐसा आपना स्वस्वरूप जाननेसे कैसी अवस्था प्राप्त होय है सो कहे है ॥

॥ ज्ञान व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

तत्त्वकी प्रतीतिसों लख्यो है निजपरगुण, दृग ज्ञान चरण त्रिविधि परिणयो है ॥
विसद विवेक आयो आछो विसराम पायो, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयोहै ॥

कहत बनारसी गहत पुरुषारथकों, सहज सुभावसों विभाव मीटि गयो है ॥
पन्नाके पकाये जैसे कंचन विमल होत, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है ॥ ३४ ॥

अर्थ—कैसा है ज्ञानी? नव तत्त्वकी दृढ प्रतीति होनेसे आत्माके गुण तथा देहके गुण सर्व देख्यो है तिस कारणते आपने स्वगुण, जे दर्शन ज्ञान अर चारित्र तीन गुण है तिसमेंही परणमें है पुद्गलादिकके गुणमें नहि परणमे है। ऐसा निर्मल भेदज्ञान प्राप्त होय तब स्वस्वरूपमें उत्तम विश्राम (स्थिरता) पाय, अपने स्वस्वरूपमेंही आपनो सहायपणा (साह्यता) शोधिलेय है स्वस्वभाव शोधिलेय है। बनारसीदास कहे है जब यो पुरुषार्थ (आत्मस्वरूप अर्थ) हेतु ग्रहण करे, अर ऐसे सहज स्वाभाविक स्वभाव ग्रहण करे तब राग द्वेष अर मोहरूप जे विभाव अनादिकालके है ते सर्व मिटी जाय है जैसे पक्के मूसीमें पकानेसे सुवर्ण निर्मल होय है, तैसे ज्ञानीके शुद्ध आत्माका प्रकाश होय है ॥ ३४ ॥

॥ अव विभाव छूटनेसे निज स्वभाव प्रगट होय तेऊपर नटी (नाचणारी स्त्री) को दृष्टात कहे है ॥

॥ वस्तु स्वरूप कथन ॥ पात्राका दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवत आखारे निसि आडोपट करिके ॥
दूहूओर दीवटि सवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखे दृष्टि धरिके ॥
तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेदि करि, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक भरिके ॥
ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीव, शुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके ॥ ३५ ॥

अर्थ—जैसे कोऊ नृत्यकारणी स्त्री आपने अंगऊपर वस्त्राभरण पेहरके मनोहररूप बनवाय, आडो पडदोकरि रात्रीको नृत्यकरनेके आखारेमें आय उभी रहे परंतु सो आडो पडदो है ताते रात्रीमें दिखाय

नही। अर जब दोऊ तरफ चिराक सजी आय पडदो दूरकरे है, तब सभाके सकल लोक दृष्टीते तिस पात्राकाररूप श्रृंगार वगैरेकी शोभा प्रत्यक्ष अवलोकन कर रीझे है। तैसे ज्ञानका समुद्र ऐसा जो आत्मा सो मिथ्यात्वरूप पडदेमें अनादिकालते छिप रह्या था सो काहू समयमें मिथ्यात्व विभावरूप पडदो दूर-करे है, अर निज स्वरूपको प्रगट होय तब ज्ञानसमुद्र परमात्मा त्रैलोक्यमें भर रहेगा (ताके आत्मामें त्रैलोक्य दर्पणवत् भासी रहेगा) सो जानना। अब गुरु कहे अहो जगतवासी जीव ? ऐसा पूर्वोक्त उपदेश सुनि, जगतके जालसे निकरि अपनी शुद्धताकी संभाल करना उचित है ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको प्रथम जीवद्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ १ ॥





॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको द्वितीय अजीवद्वार प्रारंभ ॥ २ ॥

जीवतत्व अधियार यह, प्रगट कह्यो समझाय। अब अधिकार अजीवको, सुनो चतुर मनलाय ॥१॥

अर्थ—जीव तत्वका जैसा स्वरूप लक्षण अर गुण है, तैसा इस प्रथम अधिकारमें समुझाय करि कह्यो। अब दूजे अधिकारमें अजीव तत्वका स्वरूप कहूं हूं, सो चतुर लोको चित्त देइके तुम सुनहूं ॥१॥

॥ अब ज्ञान अजीवकू पण जाने है तातै संपूर्ण ज्ञानकी अवस्था निरूपण करे है ॥ सवैया ३१ सा—

परम प्रतीति उपजाय गणधरकीसी, अंतर अनादिकी विभावता विदारी है ॥
भेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी शकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है ॥
करमको नाशकरि अनुभौ अभ्यास धरि, हियेमें हरखि निज उद्धता संभारी है ॥
अंतराय नाश गयो शुद्ध प्रकाश भयो, ज्ञानको विलास ताकों वंदना हमारी है ॥ २ ॥

अर्थ—ज्ञानका विलास कैसा है सो अनुक्रम कहे है—प्रथम तो गणधरके समान तत्त्वकी दृढप्रतीति उत्पन्न करे है, अर अंतरंगमें अनादिकी विभाव (रागादिक) अर स्वभाव (ज्ञानादिक) इनकी एकता थी सो विदारण करे है। नंतर भेदज्ञान दृष्टीसे जड तथा चेतन इनके भेदरूप जो विवेक तिस विवेकके शक्तिकूं साध्य करे है, अर चेतन जो अपना आत्मा तिसमें जो अचेतनकी रीत थी तिसकूं छोड दे है। पीछे अनुभवका अभ्यास कर गुणश्रेणीको धर क्षणक्षणे कर्मकी निर्जरा करने लगजाय है, अर हृदयमें हर्षधर आपके स्वशक्तीकी उत्कृष्टता संभारे है। ऐसे कार्य करते अर अंतराय कर्मका नाश होते शुद्ध परमात्माका प्रकाश (केवलज्ञान प्राप्त) होय है, ऐसो क्रमे क्रमे करी ज्ञानको विलास प्राप्त भयो है तिसको हमारी वंदना है ॥ २ ॥

॥ अव गुरु परमार्थकी शिक्षा कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

भैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसों, एक छ महीना उपदेश मेरो मान रे ॥
और संकलप विकलपके विकार तजि, बैठिके एकंत मन एक ठोर आन रे ॥
तेरो घट सर तामें तूंही व्हे कमल वाकों, तूंही मधुकर व्हे सुवास पहिचान रे ॥
प्रापति न व्हैहे कछु ऐसा तूं विचारत है, सही व्हैहै प्रापति सरूप योंहि जान रे ॥ ३ ॥

अर्थ—गुरु परमार्थका उपदेश कथन करे है—हे भाई जगतमें रहनेवाला ? तूं जगतसे स्पर्श रस गंध वर्ण अर शब्द इनसे उदासीन होयके, एक छ महिना मेरा उपदेश मानहुं । सो कहूंहूं—तूं विषय कषाय अर आर्तरौद्र ध्यान जनित विकार तजि, अर एकांतमें बैठि अपना मन एकाग्र (एक ठेकाणें) राख । अर तेरे चित्तरूप सरोवरमें तूंही निर्मल सहस्र दलका कमल हो, उस कमलमें तूंही भ्रमर होके आपना स्वस्वभावरूप सुगंधकूं पहिचान कर तिसमें मग्न हो तल्लिन हो अर सहस्रदल कमलमें विलास कर । तूं ऐसा विचारत है जो मोकूं कछु प्राप्ति न होयगी सो ऐसा मति जानहूं, निश्चयतै स्वस्वरूपकी प्राप्ति होयगी ये पिंडस्थ ध्यान है सो करनेसे प्राणायामते कमलकोश खुलेगा आपके स्वस्वरूपकी प्राप्ति होगी अर ज्ञानगुण प्रगटेगा ॥ ३ ॥

॥ अव जीव अर अजीवका जुदा जुदा लक्षण कहे है ॥ वस्तु स्वरूप कथन ॥ दोहा ॥—

चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम । याते अनमिल और सब, पुद्गलके परिणाम ॥४॥

अर्थ—चेतनवंत अर अनंतगुण सहित जे पदार्थ है ते तो आत्माराम है, आपके आत्मस्वरूपमें रमे है ताकारण आत्माराम कहिये है । अर आत्माके गुणको नाहि मिले ते सर्व, पुद्गल के परिणाम है ॥ ४ ॥

॥ अब ऐसी पिछान अनुभव विना न होय, तातै अनुभव प्रशंसा कथन करे है ॥ कवित्त ॥—

जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखे निज दृगसों निज मर्म ॥
तब सुखरूप विमल अविनाशिक, जाने जगत शिरोमणि धर्म ॥
अनुभव करे शुद्ध चेतनको, रमे स्वभावमें वमे सब कर्म ॥
इहि विधि सधे मुकतिको मारग, अरु समीप आवे शिव सर्म ॥ ५ ॥

अर्थ—ये चेतन (आत्मा) है सो जब अपने पुरुषार्थ (पराक्रम) कूं करे, अर ज्ञान नेत्रते अपना मर्म (चेतनपणा स्वस्वभाव) कूं देखे । तब आपनो स्वधर्म (स्वस्वभाव) सोख्यरूप जो निर्मलपणा तथा अविनाशीपणा, अर जगत् शिरोमणीपणाको जाने है । येही अनुभव (निःसंदेह यथार्थ ज्ञान) है सो चैतन्यको शुद्ध करे है, अर येही अनुभव है सो आपने स्वस्वभावमें रमे है अर सर्व कर्मकूं दूर करे है। इस प्रकार अनुभवते मुक्तिका मार्ग जो साधनकरे है, तिसके निकट मोक्ष सुख आवे है ॥५॥

॥ अब अनुभवकी प्रशंसा कथन ॥ दोहा ॥—

वरणादिक रागादि जड, रूप हमारो नांहि । एकब्रह्म नहिदूसरो, दीसे अनुभव मांहि ॥ ६ ॥

अर्थ—ये देहमें जे स्पर्श रस गंध अर वर्ण तथा रागद्वेषादिक है तेतो जड है, मेरा आत्मरूप नही मेरारूप तो चेतन है । ताते मेरे अनुभवज्ञानमें एक ब्रह्म (आत्मा) ही दीखे है, अन्य दूजा जो पुद्गलका विकार है सो पर रूप है ते मेरे स्वअनुभवमें दीखे नही ॥ ६ ॥

॥ अब वस्तु विचार कथन ॥ दोहा ॥—

खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग । न्यारो निरखत म्यानसों, लोह कहे सबलोग ७

अर्थ—जीव अर देह एक क्षेत्रावगाही है सो पृथक् कैसे समझिये तेऊपर दृष्टांत कहे है—
जैसे सोनेके म्यानमें रखी तलवारकूं, लोक सोनेकी तलवार कहे है। परंतु जब म्यानतें निराला देखे,
तब सर्वलोक लोहेकी तरवार कहे है तैसे देहमें अंतरात्मा है सो जानना ॥ ७ ॥

॥ अब निश्चय अर व्यवहार वस्तु विचार कथन ॥ दोहा ॥—

वरणादिक पुद्गल दशा, धरे जीव बहु रूप। वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥८॥

अर्थ—व्यवहार नयते बाह्यात्मा अर अंतरात्मा कहिये है परंतु निश्चय नयते सो परमात्मा है ऐसा
वस्तूके स्वरूपका विचार करके समझावे है—संसारीजीव है सो कर्मके आधीन हुवा, नाना प्रकारके
देहरूप धारण करे है। पण वस्तु स्वरूपका विचार करिये तो, कर्मते पृथक् है एक चैतन्यरूप है ॥८॥

॥ अब व्यवहारको दृष्टांत कथन ॥ दोहा ॥—

ज्यौं घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव, । त्यौं वरणादिक नामसों जडता लहे न जीव ॥९

अर्थ—व्यवहारमें जैसे मृत्तिकाके घडेकूं घृतके संबंधतै घृतका घडा कहेहै परंतु घडा है सो कदाचित्
घृतका नाहिहै मृत्तिकाको ही है। तैसे जीवकूं देहके संबंधसे छोटा बडा काला अर गोरा इत्यादिक नाम
करि कहे है, परंतु आत्मा देहरूप नहि होय है देहादिकते पृथक्ही है सोजानना ॥ ९ ॥

॥ अब आत्माका साक्षात् स्वरूप कथन ॥ दोहा ॥—

निराबाद चेतन अलख, जाने सहज सुकीव। अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमें जीव १०

अर्थ—कैसा है आत्मा ? जाका कोई रीतीसे अनंतकालमें नाशनही ताते निराबाध है चेतना है
ताते चैतन्य है इंद्रियद्वारा दिखे नही ताते अलख है, आपने स्वभावकूं आपही जाने है ताते स्वकीय है।

आपने ज्ञान स्वभावते नहि चले तातै अचल है आदि रहित है तातै अनादि है अनंत गुणसहित है तातै अनंत है शाश्वत है तातै नित है, ऐसा जीव है सो जगतमें प्रत्यक्ष प्रगट है प्रमाण है ॥ १० ॥

॥ अब अनुभव विधान कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

रूप रसवंत मुरतीक एक पुदगल, रूपविन और यौं अजीव द्रव्य द्विधा है ॥
च्यार हैं अमूरतिक जीवभी अमूरतिक, याहितें अमूरतिक वस्तु ध्यान मुधा है ॥
औरसों न कबहू प्रगट आपआपहीसों, ऐसो थिर चेतन स्वभाव शुद्ध सुधा है ॥
चेतनको अनुभौ आराधे जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखवेकी क्षुधा है ॥ ११ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य है सो रूप रस गंध अर वर्ण युक्त है ताते एक पुद्गलद्रव्य मूर्तीक (रूपी) है, अर चार पुद्गलद्रव्यें (धर्म, अधर्म, आकाश, काल,) है सो रूपादि रहित अमूर्तीक है ऐसे अजीवद्रव्य मूर्तीक अर अमूर्तीक दोय प्रकारे है । च्यार पुद्गलद्रव्यें अमूर्तीक है अर जीवद्रव्यभी अमूर्तीक है, परंतु अमूर्तीक पुद्गल (अजीवद्रव्य) का ध्यान वृथा है। कारण अन्य द्रव्यके अवलंबनसे आत्मरूप प्रगट नहि होय है आपते आप प्रगट होय है ऐसा स्थिर चैतन्य स्वभाव है सोही शुद्ध अमृत है सो अमृत रस चैतन्यको प्रगट करे है। इस जगतमें तेही जीव चैतन्यके अनुभव (यथार्थज्ञान) की आराधना करे है जिनिकै अखंड रस (आत्म रस) आस्वादन करनेकी क्षुधा है ते ॥ ११ ॥

॥ अब मूढ स्वभाव वर्णन ॥ सवैया २३ सा ॥—

चेतन जीव अजीव अचेतन, लक्षण भेद उभै पद न्यारे ॥
सम्यक्दृष्टि उदोत विचक्षण, भिन्न लखे लखिके निरवारे ॥

जे जगमांहि अनादि अखंडित, मोह महा मदके मतवारे ॥
ते जड चेतन एक कहे, तिनकी फिरि टेक टरे नहि टारे ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई कहे है की जीव अंगुष्ठ प्रमाण है वा तंदूल प्रमाणहै ऐसे जीवको मूर्त्तिमान् स्थापे है तिनकी मूढता बतावे है—जीवका लक्षण चेतन है अर अजीवका लक्षण अचेतन (जड) है, ऐसे लक्षण भेदकरि दोऊ पदार्थ न्यारे न्यारे है । सम्यग्दर्शनका उजाला जाके हृदयमें भया ऐसा विचक्षण पुरुष है सो, दोऊनिकूं भिन्न भिन्न देखे है अर भिन्न भिन्न देखि जीव अजीवका निश्चय (निर्धार) करे है । पण जगतमें जे पुरुष अनादिका अखंडित, महा मोह मदकरि उन्मत्त है । ते पुरुष मिथ्यात्व अंधकारसे जीव अर पुद्गलको एक कहे है, तिनकी टेक (हट्ट) फिरि टारेतैहूं नही टरे है ॥ १२ ॥

॥ अव ज्ञाताका विलास कथन ॥ सवैया २३ सा ॥—

या घटमें भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो ॥
तामंहि और सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करे अति भारो ॥
फेरत भेष दिखावत कौतुक, मोज लिये वरणादि पसारो ॥
मोहसु भिन्न जुदो जडसों चिन्, मूरति नाटक देखन हारो ॥ १३ ॥

अर्थ—इस घटमें भ्रमरूप अनादिका, विस्तीर्ण महा अविवेकका आखाडा है । तिस अविवेकके अखाडेमें अन्य कोऊ शुद्ध स्वरूप तो दीखताही नहि है, अर एक पुद्गलद्रव्य अतिभारी नृत्य करे है । ये पुद्गल एकेंद्रियादि पर्यायरूप नाना भेषकूं फेरत है, अर स्पर्श रस गंध अर वर्णादिकका पसारा लिये नाना

प्रकारे कौतुक दिखावे है। परंतु मोहसु भिन्न अर जड पुद्गलसु भिन्न चैतन्यरूप आत्मा ज्ञाता है, सो आत्मा पुद्गलका नाटक जो नृत्य तिसका देखनहारा राजा है ॥ १३ ॥

॥ अब ज्ञान विलास कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे करवत एक काठ वीचि खंड करे, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों ॥
तैसे भेदज्ञान निज भेदक शकति सेंति, भिन्न भिन्न करे चिदानंद पुदगलकों ॥
अवधिकों धावे मनपर्येकी अवस्था पावे, उमगिके आवे परमावधिके थलकों ॥
याही भांति पूरण सरूपको उदोत धरे, करे प्रतिबिंबित पदारथ सकलकों ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसे करवत एक काठके बीचि दोय फाड करे वा, जैसे राजहंसपक्षी दुग्धजल एकठा होय ताकूं निराला करे है। तैसे भेदज्ञान है सो अपने भेदक शक्तीसे, चिदानंद अर पुद्गलकूं भिन्न भिन्न करे है। फिरि यो भेदज्ञान है सो कर्मका क्षयोपशम करि अवधिज्ञानरूप होय मनःपर्यय अवस्थाको पावे है, अर बधते बधते परमावधि सुधि पोहोचे। इसभांति यो भेदज्ञान बधते बधते ज्ञानका परिपूर्ण स्वरूप (केवलज्ञान) के उदयकूं धरे है, अर समस्त त्रैलोक्यवर्ति पदार्थनिकूं प्रतिबिंबित करे है ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको द्वितिय अजीवद्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ २ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको तृतीय कर्ताकर्मक्रियाद्वार प्रारंभ ॥३॥

यह अजीव अधिकारको, प्रगट वखान्यो मर्म । अब सुनु जीव अजीवके, कर्ता क्रिया कर्म ॥१॥

अर्थ—अजीव पदार्थसे जीवपदार्थ जुदा है ऐसो व्याख्यान इस अधिकारमें समझाविने प्रगट मर्म कह्या, अब जीवके अर अजीवके विषे कर्त्ताकर्मक्रियाको विचार गुरु कहे है सो तुम सुनहूं ॥ १ ॥

॥ अव कर्मकर्तृत्वमें जीवकी कल्पना है सो भेदज्ञानसे छूटे है तातै भेदज्ञानका महात्म कहे है ॥ २१ सा ॥

प्रथम अज्ञानी जीव कहे मैं सदीव एक, दूसरो न और मैंही करता करमको ॥
अंतर विवेक आयो आपा पर भेदपायो, भयो बोध गयो मिटि भारत भरमको ॥
भासे छहो दरवके गुण परजाय सब, नासे दुख लख्यो मूख पूरण परमको ॥
करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड, आप करतार भयो आतम धरमको ॥ २ ॥

अर्थ—प्रथम अज्ञानी जीव स्वस्वरूपके भूलसे ऐसा कहे की निरंतर रागादिक कर्मको कर्त्ता मैंही एक हूं, अन्य कोई दूजा नही है ऐसे अज्ञान अपेक्षा लेयके कर्मको कर्त्ता बने है । परंतु जिसकाल अंतरंगमें विवेक विचार प्राप्त होय अपना अर परका भेद समजे है, तिसकाल सम्यक्‌ज्ञान बोध प्रगट होय मिथ्यात्वरूप भ्रमको भार मिटिजाय है । अर आपने ज्ञान स्वभावमें गुण पर्याय सहित समस्त पदार्थ (छहद्रव्य) भासे है, ताते समस्त दुःख विनसे है अर पूर्ण परम (परमात्मा) का स्वरूप देखे है । तदि कर्मका कर्ता पुद्गल पिंडकूं माने है, अर आप कर्मका अकर्त्ता होय आत्माके ज्ञान दर्शनादिक गुणका कर्त्ता आप होय है ॥ भावार्थ—कर्मको अकर्त्ता अर स्वस्वभावको कर्त्ता मैं हूं ऐसो कहवा लगिजाय ॥ २ ॥ पुनः ॥—

जाही समै जीव देह बुद्धिको विकार तजे, वेदत स्वरूप निज भेदत भरमको ॥
महा परचंड मति मंडण अखंड रस, अनुभौ अभ्यास परकासत परमको ॥
ताही समै घटमें न रहे विपरीत भाव, जैसे तम नासे भानु प्रगटि धरमको ॥
ऐसी दशा आवे जब साधक कहावे तब, करता व्है कैसे करे पुद्गल करमको ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव है सो जब [जिस समयमें श्रेणीकूं आरोहण होय अप्रमत्तता पावे है] देहमें आपापनाके बुद्धिके विकारकूं तजे है, तब निज स्वरूपकूं वेदे (अनुभवे) अर बुद्धिके भ्रमकूं भेदे (नाश करे) है। तथा तीक्ष्णबुद्धिको मंडण अखंड है रस जामें, ऐसें आत्माके अनुभवका अभ्यास करे है ता ते परमात्म स्वरूपका प्रकाश होय है। तिसही समयमें विपरीत भाव (अहंबुद्धिते कर्मको कर्त्तापणा) तिसके घटमें रहे नही, जैसे सूर्यका धरम जो तेज सो प्रगट होते अंधकारका नाश करे है। ऐसी अनुभव दशा प्राप्त होय जब तो आत्मस्वभावको साधक होय है सो आप कर्मको कर्त्ता होय कैसे ? अर पुद्गलरूपी कर्मकूं करे कैसे ? ॥ ३ ॥

॥ अब प्रथम आत्माकूं कर्मको कर्त्ता माने पीछे अकर्ता माने है ते ज्ञानके सामर्थ्यसे वने है सो कहे है ॥

॥ अव ज्ञानसामर्थ्य कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगमें अनादिको अज्ञानी कहे मेरो कर्म, करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है ॥
अंतर सुमति भासी जोगसूं भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है ॥
निरभै स्वभाव लीनो अनुभौको रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचेमें राखी है ॥
भरमकी डोरीतोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीतजोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

अर्थ—इस संसारमें अनादिका अज्ञानी जीव है सो यौं कहै की ये शुभ अर अशुभ कर्म मेरा है इनको कर्त्ता मैं हूं ऐसे क्रियाको पक्षपात करे है । अर पीछे जब अंतरंगमें सुबुद्धिका प्रकाश होय मनवचन कायके योगसे उदासीन होय है, तब परका ममत्व मिटाय पर्यायमें आतमबुद्धि थी ताकूं छोडदे है । अर आत्माका जो निर्भय स्वभाव है ताकूं ग्रहण कर आत्मानुभवके रसमें मग्नहोय है, तथा व्यवहारमें प्रवृत्ति करे है तोहूं अंतरंग विषें श्रद्धातो निश्चयमें राखे है । ऐसे करते भ्रमकी दोरी तोड कर अर आत्मधर्मको धारण कर मोक्षपदसे प्रीति जोरे है, अर पुद्गल कर्मकरे ताकूं देख साक्षीदार होय है पण मैं कर्मका कर्त्ता है ऐसा कदापि नही माने है ॥ ४ ॥

॥ शिष्य पूछे है की चेतन अर अचेतन दोनूंही एक क्षेत्रमें रहे है अर कर्म करे है सो चेतनकूं कर्मको अकर्ता कैसे कहाय ? ताको गुरु कहे है की ज्ञान शक्तीसे अकर्ता कहवाय है ताते ज्ञानको सामर्थ्य कहे है ॥ २१ सा ॥—

जैसे जे दरव ताके तैसे गुण परजाय, ताहीसों मिलत पैं मिले न काहु आनसों ॥
जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद, ऐसे अमिलाप ज्यों नितंब जुरे कानसों ॥
ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भागे भानसों ॥
सोइ जीव करमकों करतासो दीसे पैहि, अकरता कह्यो शुद्धताके परमानसों ॥ ५ ॥

अर्थ—जैसो जो द्रव्य होय तिसके तैसेही गुणपर्याय होय है, अर ते गुणपर्याय तिसही द्रव्यसूं मिले है पण अन्य द्रव्यसूं कदाचित् नहि मिले है जैसे कोई स्निग्ध घृतादिक द्रव्य स्निग्धगुणवाला द्रव्यके साथ मिले पण रुक्षगुणवालाके साथ न मिले है । तैसे ये जीवद्रव्य चेतन जाति है, अर कर्म जड पुद्गल जाति है ऐसे इनके जातिभेद है, ताते चेतन तथा जडको अमिलनता है सो इनका कोई

प्रकारते मिलाप न होय है जैसे नितंब (मोतीका चौकडा) कानसों जुरे है पण तिसका मिलाप कानसों कदाचित् नही है । ऐसो गुण अर पर्यायको विवेक जिसके हृदयमें प्रगट हुवा है, तिसका कर्मके कर्तेपणाका भ्रम नष्ट होजाय है जैसे सूर्यका उदय होते अंधकार भागे है । ऐसा भेदज्ञानी जीव जगतके जीवकूं कर्मका कर्त्ता दीखे है, परंतु सो रागद्वेषादि रहित शुद्ध है ताते [भगवान्] तिसकूं अकर्त्ताही कह्या है ५ ॥

॥ अव जीवके अर पुद्गलके जुदे जुदे लक्षण कहे है ॥ छपै छंद ॥—

जीव ज्ञानगुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक । आपा परगुण लखे, नांहि
पुद्गल इहि लायक । जीवरूप चिद्रूप सहज, पुदगल अचेत जड । जीव अमूरति
मूरतीक, पुदगल अंतर वड । जवलग न होइ अनुभौ प्रगट, तवलग मिथ्यामति
लसे । करतार जीव जड करमको, सुबुद्धि विकाश यहु भ्रम नसे ॥ ६ ॥

अर्थ—जीव जो है सो ज्ञानगुण सहित है अर आपके गुणकूं तथा परके गुणकूं जाननेवाला है । इस ज्ञायक गुणसे जीव आपके तथा परके गुणकूं देखे है, जीवके समान् जाननेकी अर देखनेकी शक्ती पुद्गलमें कोई काल नाहि होय है । जीवका स्वयंसिद्ध चेतन लक्षण है, पुद्गलका अचेतन (जड) लक्षण है । जीव अमूर्तीक (अरूपी, है अर पुद्गल मूर्तीक (रूपी) है, इन जीवके अर पुद्गलके लक्षणमें तथा गुणमें बडा अंतर है । जबतक इन दोऊके भेदका अनुभव (परिचय) नहि होय है, तबतक मिथ्याबुद्धीही लहलहाट करे है । अर जडरूपी कर्मको कर्त्ता जीव है ऐसे भ्रमबुद्धि रहे है, परंतु यो अनादिकालका भ्रम है सो सुबुद्धिका प्रकाश होनेतेही नाश पावे है ॥ ६ ॥

॥ अब कर्त्ता कर्म अर क्रिया ये त्रय स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्ता परिणामी द्रव्य कर्मरूप परिणाम । क्रिया पर्यायकी फेरनि, वस्तु एक त्रय नाम ॥ ७ ॥

अर्थ—सर्व द्रव्यमें परिणमनेकी शक्ति है—जब द्रव्य रूपांतर करनेकूं विचार करे तब ताकूं परिणामी द्रव्य कहवाय तथा परिणामीपणाकूंही कर्त्ता कहते है, अर जब द्रव्य रूपांतर करे तब ताकूं परिणाम कहवाय तथा परिणामकूंही कर्म कहते है। अर जब द्रव्यके परिणाम क्रमे क्रमे फिरे तब ताकूं पर्याय कहवाय तथा पर्यायकूंही क्रिया कहते है, ऐसे कर्ता कर्म अर क्रिया ये त्रय नाम है परंतु वस्तु एकही है ॥ ७ ॥

॥ अब कर्त्ता कर्म अर क्रिया इनका एकत्वपणा कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्त्ता कर्म क्रिया करे, क्रिया कर्म कर्तार । नाम भेद बहुविधि भयो, वस्तु एक निर्धार ॥ ८ ॥

अर्थ—कर्त्ता कब कहे की ? जब कर्म होनेकी क्रिया करे जैसे घट करनेकूं माटी ल्यावना ताकूं कर्त्ता कहिये अर क्रिया कब कहे की ? जब कर्म करने लगे जैसे मातीका घट करने लगजाय ताकूं क्रिया कहिये अर कर्म कब कहे की ? जब घट पूर्ण होजाय ताकूं कर्म कहिये। ऐसे नाम भेद करि बहुत प्रकार है परंतु निश्चयते करनेसे कर्त्ता, करनेसे क्रिया अर करनेसे कर्म एकज वस्तु होय है ॥ ८ ॥

॥ अब कर्म क्रिया अर कर्ता एकज होय है ते कहे है ॥ दोहा ॥—

एक कर्म कर्त्तव्यता, करे न कर्त्ता दोय । दुधा द्रव्य सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय ॥९॥

अर्थ—यह बात तो प्रसिद्ध है की—एक कर्मकी क्रिया एकज होय है अर तिस क्रियाका कर्त्ता एकज होय है, पण एक क्रियाका कर्त्ता दोय नही होय है। यहां चेतन द्रव्यसत्ता अर पुद्गलद्रव्य सत्ता ये दोय सत्ता जुदी जुदी है, सो एक स्वभाव कैसा होय ? ॥ ९ ॥

॥ अव कर्त्ता कर्म अर क्रियाको विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एक परिणामके न करता दरव दोय, दोय परिणाम एक द्रव्य न धरत है ॥
एक करतूति दोय द्रव्य कबहूं न करे, दोय करतूति एक द्रव्य न करत है ॥
जीव पुदगल एक खेत अवगाहि दोउ, अपने अपने रूप कोउ न टरत है ॥
जड परिणामनिको करता है पुदगल, चिदानंद चेतन स्वभाव आचरत है ॥ १० ॥

अर्थ—एक परिणामको कर्त्ता दोय द्रव्य नहि होय, अर एक द्रव्य है सो दोय परिणामकूं नहि धारण करे है। ऐसेही दोय द्रव्य मिलिके एक क्रिया कबहूं नाहि करे है, अर तैसेंही एक द्रव्य दोय क्रिया पण नहि करे है। ये व्यवस्था कहवा लायक है की—जीव अर पुद्गल एकमेक होय रहे है ताते ये दोऊ द्रव्य एक क्षेत्रावगाही है, तोहूं ते आप आपने स्वभावकूं कोई नहि टले है। पुद्गल जे है ते जड है सो जड परिणामका कर्त्ता है, अर चिदानंद है ते चेतन है सो ज्ञान स्वभावका कर्त्ता है ॥ १० ॥

॥ अव मिथ्यात्व अर सम्यक्त्व स्वरूप वर्णन करे है ॥ सवैया ॥ ३१ ॥—

महा धीठ दुःखको वसीठ पर द्रव्यरूप, अंध कूप काहूपै निवाऱ्यो नहि गयो है ॥
ऐसो मिथ्याभावलग्यो जीवके अनादिहीको, याहि अहंबुद्धि लिये नानाभांति भयो है ॥
काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेदि, ममता उछेदि शुद्ध भाव परिणयो है ॥
तिनही विवेक धारि बंधको विलास डारि, आतम सकतिसों जगत जीति लियो है ॥ ११ ॥

अर्थ—कैसा है मिथ्यात्व भाव ? महा धीठ है यामें सदा दुःख वसे है अर पुद्गल द्रव्यके समान् जड हैं, तथा जिसमें सत्यपणा नहि है तातें अंधकूप है तिस मिथ्यात्वका कोईसे निवारण नहि होय है।

ऐसा मिथ्याभाव (मोहकर्म) जीवके अनादि कालते लगि रह्या है, ताते या मोहकर्मके प्रतापसे जीवकी परद्रव्य तरफ आत्मबुद्धि होयके नाना प्रकार पर्यायरूप आप हो रह्या है। अर जब कोई जीव मिथ्यात्व अंधकारकूं भेदे है, अर परद्रव्यमें जो आत्मपणा था ताका उछेद करे है तथा आत्माके शुद्ध परिणामका परिणमन होय है। तब जड अर चेतनका विवेक (भेदज्ञान) धारण करिके बंधके विलास कहिये हेतू (१२ अविरत २५ कषाय १५ प्रमाद अर १५ योग) कूं छोडे है, अर अपने आत्मशक्तीसे संपूर्ण कर्मका क्षय कर जगतसे मुक्त होय है ॥ ११ ॥

॥ अव यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन, दुहूंको करतार जीव और नहि मानिये ॥
कर्मपिंडको विलास वर्ण रस गंध फास, करता दुहूंको पुदगल परवानिये ॥
ताते वरणादि गुण ज्ञानावरणादि कर्म, नाना परकार पुदगल रूप जानिये ॥
समल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते सव अलख पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

अर्थ—चेतनमें शुद्ध ज्ञायक परिणाम तथा अशुद्ध रागादिक परिणाम जे देखनेमें आवे है ते तो परिणामरूप चेतन कर्मके विलास है, ताते इन दोऊ परिणामका कर्त्ता जीव द्रव्य है दूजा कोउ कर्त्ता मानिये नही। अर ज्ञानको ढकणो तथा दर्शनको ढकणो इत्यादिक जे है ते जड (पिंड) कर्मके विलास (हेतू) है तथा स्पर्श रस गंध अर वर्ण इत्यादिक जे है ते पिंडकर्मके कार्य है, पिंडकर्मके हेतू (कारण) अर पिंडकर्मके कार्य इन दोऊका कर्त्ता पुद्गलद्रव्य है सो प्रमाण है। ताते स्पर्श रस गंध अर वर्ण इत्यादि गुणयुक्त शरीर तथा ज्ञानावरणादिक कर्मके स्कंध ऐसे नाना प्रकारके भेद है ते एक

पुद्गलद्रव्य है सो जानना। चेतनके जे जे शुद्ध परिणाम है तथा अशुद्ध परिणाम है, ते ते समस्त अलख अरूपी चेतनद्रव्य है [अशुद्ध परिणाम कर्मके प्रभावते होय है अर शुद्ध परिणाम कर्मके अभावते होय है ताते कर्त्ता अर कर्म एकही है] ऐसे ज्ञानी कहे है ॥ १२ ॥

॥ अव ये वातके रहस्यकूं मिथ्यादृष्टी जानेही नहि है ते ऊपर दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जैसे गजराज नाज घासके गरास करि, भक्षण स्वभाव नहि भिन्न रस लियो है ॥
जैसे मतवारो नहि जाने सिखरणि स्वाद, जुंगमें मगन कहे गऊ दूध पियो है ॥
तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्यसों सहज शुन्न हियो है ॥
चेतन अचेतन दुहुकों मिश्र पिंड लखि, एकमेक माने न विवेक कछु कियो है ॥१३॥

अर्थ—जैसे नाज अर घास दोऊका मिल्याहुवा ग्रास हाथीकूं देवे सो खाय है, पण हाथीको स्वभाव ऐसा है की नाजका अर घासका जुदा जुदा स्वाद लेय नही। अथवा जैसे कोऊ माणस मद्यपान करि मतवारो होय तिसकूं धई अर मिश्रिके मिलापते वणी शिखरणी खवावें अर पूछिये की इसका स्वाद कैसा है ? तव तो कहे की ये तो गायका दूध पीये जेवा है, पण ताकूं दारूके गुंगीमें शिखरणीके स्वादकी खबर पडे नही। तैसे अनादि कालको मिथ्यादृष्टी जीवही सदैव ज्ञानरूपी है, परंतु पापकर्ममें अर पुण्यकर्ममें लीन हो रहा है (आपकूं पुन्य अर पापरूपही माने है) तथा आत्मस्वरूप जाननेमें शुन्य हृदय होरहा है। ताते चेतन अर अचेतन दोऊका मिल्या हुवा देहपिंडकूं देखि एक रूप माने है (पुद्गलके मिलापते चेतनकूं कर्मको कर्त्ता माने है) पण स्वपरका भेद जाणणारा विवेक हृदयमें कछुभी नाहि करे है ॥ १३ ॥

॥ अब मिथ्यात्वी जीव कर्मको कर्त्ता माने है सो भ्रम है ते ऊपर दृष्टात कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे महा धूपके तपतिमें तिसाये मृग, भरमसें मिथ्याजल पीवनेकों धायो है ॥
जैसे अंधकार मांहि जेवरी निरखी नर, भरमसों डरपि सरप मानि आयो है ॥
अपने स्वभाव जैसे सागर है थिर सदा, पवन संयोगसों उछरि आकुलायो है ॥
तैसे जीव जडसों अव्यापक सहज रूप, भरमसों करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसे मृग उष्णकालमें धूपके सख्त गरमीसे तृषातूर होय है, अर मृगजलकूं देखि ताकूं तलावका जलमानि भरमसें पीवनेकूं दौडे है। अथवा जैसे अंधारेमें कोऊ मनुष्य दोरीकूं देखे है, अर ताकूं सर्पमानि भरमसे भयभीत होय भागे है। अथवा जैसे समुद्र अपने स्वभावतेही सदा स्थिर है, परंतु पवनके संयोगसे उछले है। तैसेही (ऊपरके तीन दृष्टांत समान्) जीव निश्चयते देखिये तो अपने स्वभावतेही जडमें अव्यापक (नहि व्यापे) है, परंतु अनादि कालके सहजरूपी मिथ्यात्व भ्रमसे कर्मको कर्त्ता कहे है ॥ १४ ॥

॥ अब सम्यक्त्वी भेदज्ञानते कर्मके कर्त्ताका भ्रम दूर करे है ते ऊपर दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे राजहंसके बदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो क्षीर न्यारो नीर है ॥
तैसे समकितीके सुदृष्टिमें सहज रूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोही शरीर है ॥
जब शुद्ध चेतनके अनुभौ अभ्यासें तव, भासे आप अचल न दूजो और सीर है ॥
पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसे राजहंस पक्षीकी चूंच आम्ल स्वभावकी है, ताते तिनके स्पर्श मात्रतेही दूध अर

पाणी न्यारो न्यारो होय दीखे है। तैसे सम्यक्तीके सत्यार्थ श्रद्धानरूप दृष्टी है, तिसमें जीव न्यारा कर्मन्यारा अर देहन्यारा दीखे है। अर सम्यक्ती जब शुद्ध चेतनके अनुभवका अभ्यास करे है, तब एक आत्मद्रव्य अचल दीसे है और सब नाशवंत भासे है दूजा कोऊ सार नहि दीसे है। पूर्व संचित किये कर्म जे है ते उदय आय दिखाई देय है परंतु आप कर्मको कर्त्ता नही होय है, तिस उदयकूं आये कर्मका तमासा देखे है ॥ १५ ॥

॥ अब जीव अर पुद्गल एकमेक हो रहे है तिसको जुदा कैसे जानना सो कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जैसे उषणोदकमें उदक स्वभाव सीत, आगकी उषणता फरस ज्ञान लखिये ॥
जैसे स्वाद व्यंजनमें दीसत विविधरूप, लोणको सुवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये ॥
तैसे घट पिंडमें विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसो परखिये ॥
भरमसों करमको करता है चिदानंद, दरव विचार करतार नाम नखिये ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे उष्ण जलमें जलका स्वभाव सीतल अर अग्निका स्वभाव गरम ये दोनूंही मिले है, परंतु तिसमें अग्निके गरमपणाका स्वभाव स्पर्श इंद्रियके ज्ञानते न्यारा जान्या जाय है। अथवा जैसे तरकारीमें लवणादिक नाना प्रकारके पदार्थका स्वाद मिला है, परंतु तिसमें लवणके क्षारपणाका स्वभाव जिव्हा इंद्रियके ज्ञानते न्यारा जान्या जाय है। तैसे अज्ञानरूप घटपिंड अर जडरूप कर्मपिंड तथा ज्ञानरूप चेतन इनका मिलाप अनादि कालसे हो रहा है, तिसमें चेतनके ज्ञानपणाका स्वभाव भेदज्ञानसे न्यारा जान्या जाय है। ये चिदानंदकूं कर्मका कर्त्ता मानना सों भ्रम हैं, अर आत्मद्रव्यका विचार करिये तो कर्त्ता ऐसा नामही इस जीवके नही है जीव तो ज्ञाताही है ॥ १६ ॥

॥ अव निश्चय नयके प्रमाणसे जो जिसका कर्त्ता है तिसको जुदा जुदा बतावे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञान भाव ज्ञानी करे, अज्ञानी अज्ञान । द्रव्यकर्म पुद्गल करे, यह निश्चै परमाण ॥ १७ ॥

अर्थ—ज्ञानी है सो ज्ञानभाव करे (जाननेरूप जे कार्य है ते करे) है, अर अज्ञानी है सो मैं कर्त्ताहूं ऐसा मानि अज्ञान भाव करे है । द्रव्यकर्म है सो पुद्गलही करे है, यह निश्चय नयते प्रमाण है ॥ १७ ॥

॥ अव शिष्य पूछे है की हे स्वामी ! ज्ञानभाव ज्ञानी करे ऐसे कहनेसे ज्ञानका कर्त्ता जीव ठहरे है ते कौन नयते ठहरे है ? तिसका उत्तर गुरू व्यवहार कर्तृत्व कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञान स्वरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और । द्रव्यकर्म चेतन करे, यह व्यवहारी दोर ॥ १८ ॥

अर्थ—आत्मा (जीव) ज्ञान स्वरूपी है ताते ज्ञान (जाननेरूप भाव) कूं तो तोज करे है, और दूजा कोई नहि करे है यह निश्चय नयते कहना है । अर द्रव्यकर्मकूं जीव करे है, यह कहना व्यवहार नयते है सो जानना ॥ १८ ॥

॥ अव शिष्य प्रश्नः—कर्तृत्व कथन ॥ सवैया २३ सा ॥—

पुद्गलकर्म करे नहि जीव, कही तुम मैं समझी नहि तैसी ॥
कौंन करे यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी ॥
आपहि आप मिले विछुरे जड, क्यों करि मो मन संशय ऐसी ॥
शिष्य संदेह निवारण कारण, बात कहे गुरु है कछुं जैसी ॥ १९ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे है की हे स्वामी ? आप कही जो पुद्गलकर्मकूं जीव करे नही, सो ये बात मेरे समझमें नहि आवे । जो कर्मकूं जीव करें नहि तो कौन करे है, इन कर्मका कर्त्ता कौन अर कर्मकी

क्रिया कैसी ते कहो। अर जड पुद्गल कर्मकूं तो मिलनेकी विछुरनेकी शक्तीही नहि है सो आपही आप मिले कैसे अर विछुरे कैसे, यह मेरे मनमें संशय है सो दूर करो ॥ १९ ॥

अव शिष्यका संशय निवारणेके कारण गुरु यथार्थ उत्तर कहे हैं ॥ दोहा ॥—

पुद्गल परिणामी द्रव्य, सदा परणवे सोय। याते पुद्गल कर्मका, पुद्गल कर्ता होय ॥ २० ॥

अर्थ—हे शिष्य? पुद्गल जे है ते परिणामी द्रव्य है, सो सदा काल परिणमें है अर क्षण क्षणमें तरेहवार बन जाय है। ताते पुद्गलकर्मका कर्त्ता पुद्गलहि होय शके है ॥ २० ॥

॥ अव पुनः शिष्य प्रश्नः- ॥ छंद अडिल्ल ॥—

ज्ञानवंतको भोग निर्जरा हेतु है। अज्ञानीको भोग वंध फल देतु है ॥
यह अचरजकी वात हिये नहि आवही। पूछे कोऊ शिष्य गुरू समझावही ॥ २१ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे है की हे स्वामी? ज्ञानी जे भोगभोगवे है सो कर्मकी निर्जरा करे है ताते तो ज्ञानीका भोग निर्जराका हेतु कह्यो। अर अज्ञानी जे भोगभोगवे है सो कर्मबंध करे है तातें तो अज्ञानीका भोग बंधका हेतु कह्यो। जो भोगभोगनेमें ज्ञानी अर अज्ञानी समान है सो एकका भोग निर्जराका कारण कह्यो अर एकका भोग बंधका कारण कह्यो। यह तो बडे आश्चर्यकी बात है सो मेरे समजमें नहि आवे है सो समझावो ॥ २१ ॥

॥ अव शिष्यका संदेह निवारणेके कारण गुरु यथार्थ उत्तर कहे है ॥ सवैया ॥ ३१ ॥ सा—

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दुहु कर्म भोग पैं दुहूको एक खेत है ॥
ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पैं, परिणाम भेद न्यारो न्यारो फल देत है ॥

ज्ञानवंत करनी करें पैं उदासीन रूप, ममता न धरे ताते निर्जराको हेतु है ॥
वह करतूति मूढ करे पैं मगनरूप, अंध भयो ममतासों बंध फल लेत है ॥२२॥

अर्थ—दया पालना दान देना अर पूजा करना ये एक प्रकारके कर्म है अर पंच इंद्रियके विषय सेवन करना तथा रागद्वेष करना यह एक प्रकारके कर्म है, इस दोऊ कर्मके फल संसारमें भोगना है तथा दोऊही कर्म बंधकूं उपजानेवाला एक प्रकारका क्षेत्र है । यह दोऊ कर्म ज्ञानी करे है तथा अज्ञानीही करे है अर कर्म करते बखत ज्ञानी तथा अज्ञानी एकसारखे दीखे है, परंतु दोऊके परिणाम न्यारे न्यारे है ताते फलभी न्यारा न्यारा होय है । ज्ञानवंत भोग भोगे है पण उदासीन रूप होय भोगे है, ते भोग ऊपर ममता नहि धरे है ताते ज्ञानीका भोग कर्मके निर्जराका कारण है । अर वही संसार भोगोपभोग मूढ भोगे है सो उसमें तल्लिन होय भोगे है, ताते अज्ञानीका भोग नवीन कर्मके बंधकूं कारण होय है ॥ २२ ॥

॥ अब कुंभारको दृष्टांत देय मूढको कर्तापणा सिद्ध करे है ॥ छप्पै ॥—

ज्यों माटी मांहि कलश, होनेकी शक्ति रहे ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल,
बाहिज निमित्त हुव । त्यों पुदगल परमाणु, पुंज वरगणा भेष धरि ।
ज्ञानावरणादिक स्वरूप, विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त बहितरातमा,
गहि संशै अज्ञानमति । जगमांहि अहंकृत भावसों, कर्मरूप व्है परिणमति ॥२३॥

अर्थ—जैसे माटीमें कलश होनेकी शक्ति शाश्वत है माटी विना कलश नहि होय है, कलशाका उपादान (मुख्य) कारण माटी है । परंतु दंड चक्र डोरी अर कुंभार इत्यादिक बाह्य निमित्त मिले है,

तब कलश होय है । तैसेही पुद्गल परमाणूकें पुंज कर्म वर्गणाका रूप धरे है । अर ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप होय विचरे है सो कर्मरूप तो पुद्गल परमाणुही है । परंतु तिसकूं बाह्य निमित्त संसारी आत्मा है सो संशय विपर्यय अर भ्रमरूप अज्ञानी होय है । अर शरीरादिकमें तथा राग द्वेषादिकमें आत्मपणाका अहंकार माने है तातें पुद्गलपरमाणु है ते कर्मरूप होय परिणमे है ॥ २३ ॥

॥ अब निश्चयसे जीवकूं अकर्त्ता मानि आत्मानुभवमें रहे है ताका महात्म कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जे न करे नय पक्ष विवाद, धरे न विषाद अलीक न भाखे ॥
जे उदवेग तजे घट अंतर, सीतल भाव निरंतर राखे ॥
जे न गुणी गुण भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखे ॥
ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखंडित ज्ञान सुधारस चाखे ॥ २४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य एक नयके पक्षपातते वाद करे नाहि, द्वेष धरे नही अर असत्य वचन बोले नही है । अर जो आर्त रौद्र ध्यानकूं छोडिके हृदयमें कषाय रहित होय शीतल परिणाम निरंतर राखे है । अर जो आत्मा गुणी है तथा ज्ञान गुण है ऐसा भेद न करे है (ध्याता अर ध्येय एक होजाता है) तब मनके समस्त विकल्प नष्ट होय शुद्ध आत्मानुभवी होय है । सोही मनुष्य जगतमें आत्मध्यान धरिके केवलज्ञानरूप अमृत रस अखंड चाखे है ॥ २४ ॥

॥ अब निश्चयसे अकर्त्तापणा अर व्यवहारसे कर्तापणा स्थापन करि बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

व्यवहार दृष्टिसों विलोकत बंध्योसों दीसे, निहचै निहारत न बांध्यो यहु किनही ॥
एक पक्ष बंध्यो एक पक्षसों अबंध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इनही ॥

कोउ कहे समल विमलरूप कोउ कहे, चिदानंद तैसाही वखान्यो जैसे जिनही ॥
बंध्यो माने खुल्यो माने द्वै नयके भेदजाने, सोई ज्ञानवंत जीव तत्त्व पायो तिनही ॥ २५ ॥

अर्थ—चतुर्गतिमें भ्रमण करनेते आत्माकूं व्यवहार नयसे देखिये तो आत्मा बंध्या दीखे है, अर निश्चय नयसे देखिये तो ज्ञान स्वरूपी आत्माकूं कोईने बांध्या नहीं है पुद्गलकर्म अनादिके है सो नवीन पुद्गल कर्मका बंध करे है परंतु अमूर्तिक आत्मा अबंध है। ताते एकलो व्यवहार पक्षसे कहे तो आत्मा बंधमें है अर एकलो निश्चय पक्षसे कहे तो आत्मा सदा अबंध है, ऐसे दोऊ पक्ष अनादि कालके है। दृष्टांत—जैसे गौकूं बंधि देखि व्यवहार नयवाला गौकूं बांधी है ऐसा कहे अर निश्चय नयते स्वरूप जाननेवाला कहेकी डोरीकी गाठ डोरीसे बंधी है परंतु गाय डोरीसे बंधी नही है। तैसे जो व्यवहार नयवाला होय सो आत्माकूं समल (कर्म सहित) कहें अर जो निश्चय नयवाला होय सो आत्माकूं विमल (कर्म रहित) कहे परंतु समल विमल कहना नयका पक्ष है, जिसने जैसे अपने नयसे चिदानंदकूं वखाण्यो है तैसाही चिदानंद है। अर जो सम्यक्दृष्टी है सो आत्माको बंध सहित माने है तथा बंध रहितही माने है ऐसे दोऊ नयके भेद जाने है, सोही ज्ञानवंत है अर तिसनेही जीव तत्वका स्वरूप जान्या है ॥ २५ ॥

॥ अव दोऊ नयकूं जानकर समरस भावमें रहे है ताकी प्रसंशा करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम नियत नय दूजो व्यवहार नय, दुहुकों फलावत अनंत भेद फले है ॥
ज्यों ज्यों नय फैले त्यों त्यों मनके कलोल फैले, चंचल सुभाव लोकालोकलों उछले है ॥

ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव; समरसि भये एकतासों नहि टले है ॥
महा मोहनासे शुद्धअनुभो अभ्यासे निज, वल परगासि सुखरासी मांहि रले है ॥ २६ ॥

अर्थ—पहलो तो निश्चय नय है अर दूजो व्यवहार नय है, ये दोऊ नयकूं एकएक द्रव्यके गुण अर पर्यायके साथ फैलाइये तो अनंत द्रव्यकी अपेक्षा लिये नयके अनंत भेद फैले है। जैसे जैसे नयके भेद फैले है तैसे तैसे मनके कल्लोल (तरंग) पण अनंत भेद फैले है, ते मनके तरंग चंचल स्वभावरूप होय षट्गुणी हानी वृद्धीते लोकालोकके प्रदेश प्रमाण होय है। ऐसे नयकी सेनाके एकांत पक्षकूं ज्ञानी जीव छोडे है, अर समरस भाव होय रहे है तथा समस्त नयके विस्तारमें आत्मस्वरूपकी एकतासो नहि टले है । सो समरसी भाववाला जीव महा मोहका नाश करि शुद्ध आत्माके अनुभवका अभ्यास करे है, अर स्वशक्ति (ज्ञान) का प्रकाश करि सुखराशि जो मोक्षपद तिसिमें मिलिजाय है ॥ २६ ॥

॥ अव व्यवहार अर निश्चय वताय चिदानंदका सत्यस्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहु वाजीगर चोहटे वजाई ढोल, नानारूप धरिके भगल विद्या ठानी है ॥
तैसे में अनादिको मिथ्यात्वकी तरंगनिसों, भरममें धाइ वहु काय निजमानी है ॥
अव ज्ञानकला जागि भरमकी दृष्टि भागि, अपनि पराई सव सौंज पहिचानी है ॥
जाके उदे होत परमाण ऐसी भांति भइ, निहचै हमारि ज्योति सोई हम जानी है ॥ २७ ॥

अर्थ—जैसे कोऊ वाजीगर चौहटेमें ढोल वजावे है, अर नाना प्रकारका स्वांग धरि ठगविद्या करे तिसकूं देखि लोक सांची माने है। तैसे मैंहू संसारी जीव अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप विपके

लहरते भ्रममें मग्न हो रह्यो अर बहुत देह धारण करि आपनी मानि रह्यो। अब गुरूके प्रसादते मेरेकूं ज्ञानकी कला जाग्रत होनेसे मिथ्यात्वरूप भ्रमकी दृष्टी भागी, ताते अपने अर परके वस्तूकी पहिचान भई है। तिस ज्ञानके कलाका उदय होते प्रमाण ऐसी पहिचान भई है की ? हमारे परंपराकी शुद्धि आय निश्चयते हमारी आत्मज्योती हमने जानि लिई है ॥ २७ ॥

॥ अब ज्ञाता होय सो आत्मानुभवमें विचार करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे महा रतनकी ज्योतिमें लहरि ऊठे, जलकी तरंग जैसे लीन होय जलमें ॥
तैसे शुद्ध आतम दरव परजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे निज थलमें ॥
ऐसो अविकलपी अजलपी आनंद रूपि, अनादि अनंत गहि लीजे एक पलमें ॥
ताको अनुभव कीजे परम पीयूष पीजे, बंधकों विलास डारि दीजे पुदगलमें ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे उत्तम रत्नके ज्योतिमें लहर (चमक) उठे है अर वो लहर ज्योतिमेंही समाय जाय है ज्योतिकी लहर रत्नसे भिन्न नहि है, अथवा जैसे पाणीकी तरंग पाणीमेंही समाय जाय है। तैसे शुद्ध आत्मद्रव्यका जो ज्ञान प्रमुख गुणका पर्याय है, सो पर्यायार्थिकनयते समय समय उपजे है तथा विनसे है अर द्रव्यार्थिक नयते अपने द्रव्यस्थानमें स्थिर रहे है उपजना अर विनशना ए विकल्प पर्यायके आश्रयते होय है द्रव्यमें विकल्प नही है। ऐसे विकल्प रहित स्थीर अर आनंदमय जे आत्मद्रव्य है, ते अनादि अनंतकाल सूधि एक रूप रहे है ऐसे ग्रहण (श्रद्धान) करना। अर तिस आत्मद्रव्यका अनुभव करना तथा अनुभवमें परम अमृत रस उपजे है सो पीवना, अर कर्मबंधका विलास आत्मामें दीखे है सो पुद्गलका है ऐसा जानिके तिसकूं पुद्गल सामग्रीमें डारि देना ॥ २८ ॥

॥ अब आत्माका शुद्ध अनुभव है सो परम पदार्थ है ताकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

द्रव्यार्थिक नय परयायार्थिक नय दोउ, श्रुत ज्ञानरूप श्रुत ज्ञान तो परोख हे ॥
शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट ताते, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोख हे ॥
अनुभौ प्रमाण भगवान् पुरुष पुराण, ज्ञान औ विज्ञानघन महा सुख पोख हे ॥
परम पवित्र यो अनंत नाम अनुभौके, अनुभौ विना न कहुं और ठोर मोख हे ॥ २९ ॥

अर्थ—पदार्थके स्वरूप जाननेकूं दोय नय हैं—एक द्रव्यार्थिक नयसे द्रव्यको स्वरूप जाने जाय अर एक पर्यायार्थिक नयसे पर्यायको स्वरूप जाने जाय है, ये दोऊ नय श्रुतज्ञानका स्वरूप है तथा श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ज्ञान है। अर शुद्ध परमात्माका अनुभव है सो प्रत्यक्ष प्रमाण है, ताते अनुभवही विशेष शोभनीक महा बलवान् अर शुद्ध है। तिस अनुभवके नाम कहे है—प्रमाण, भगवान्, पुरुष, पुराण, ज्ञान, विज्ञानघन, महा सुखपोष, परम पवित्र, ऐसे अनुभवके अनंत नाम है। अर ऐसे शुद्ध अनुभव विना दुसरे कोई स्थानमें मोक्ष नही है ॥ २९ ॥

॥ अब अनुभव विना संसारमें भ्रमे अर अनुभव होते मोक्ष पावे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे एक जल नानारूप दरवानु योग, भयो वहु भांति पहिचान्यो न परत हे ॥
फीरि काल पाई दरवानुयोग दूर होत, अपने सहज नीचे मारग ढरत है ॥
तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति जोनि भेष भव भावरि भरत है ॥
सम्यक् स्वभाव पाइ अनुभौके पंथ धाइ, वंधकी जुगती भानि मुकति करत है ॥ ३० ॥

अर्थ—जैसे जलका एक वर्ण है पण नाना प्रकारके पदार्थ (माटी, गेरू, शाड्ड,) में मिले है,

जब बहु भांतिका वर्ण होय जलका स्वरूप पहिचाने नहि जाय है। अर फेरि अवसर पाय पर पदार्थका संयोग दूर होय है, तब अपना स्वभाव पाय नीचे मारगसे ढरने लग जाय है। तैसे यह चेतनहूं राग द्वेषादिक पर संगतीसे अपना स्वरूप भूले है, ताते च्यार गती चौऱ्यासी लक्ष योनि अर एकसो साडे निन्याणवे लक्षकोटि कुल इसमें जन्म धारण करते फिरे है। अर फेर कोई अवसरसे अपना स्वस्वभाव पाय आत्मानुभवके मार्गमें लागे है, तब कर्मबंधका क्षय करिके (अपने आत्माकूं बंधते छुडाय) मोक्षको जाय है ऐसा अनुभवका सामर्थ्य है ॥ ३० ॥

॥ अब मिथ्यादृष्टी अनुभव शिवाय कर्मको कर्ता होय सो कहे है ॥ दोहा ॥—

निशि दिन मिथ्याभाव बहु, धरे मिथ्याती जीव। ताते भावित कर्मको, कर्त्ता कह्यो सदीव॥

अर्थ—रात्र अर दिन परकूं अपना मानिके अपने भूलते मिथ्यात्वी जीव है सो– ते फलाणा मैं कीया ते फलाणा मैं लीया इत्यादि बहुत प्रकारे, रागादिक भावकर्म निरंतर करे है। ताते ऐसी अशुद्ध चेतना है सो भावित कर्म है, तिसका कर्त्ता सदा मिथ्यात्वी जीव है ॥ ३१ ॥

॥ अव मूढ मिथ्यात्वी है सो कर्मको कर्त्ता है अर ज्ञानी अकर्त्ता है सो कहे है ॥ चौपाई ॥—

करे करम सोई करतारा। जो जाने सो जानन हारा ॥
जो करता नहि जाने सोई। जाने सो करता नहि होई ॥ ३२ ॥

अर्थ—मूढ अर ज्ञानी दोनूंहूं कर्म करे है ते एक सारखा देखाय है तथापि मूढ जीवकूं कर्मका कर्त्ता कह्यो अर ज्ञानी जीवकूं कर्मका अकर्त्ता कह्यो तिसका कारण कहे है—जो कर्मकूं करे है ताकूं

कर्त्ता कहीये है अर जो जाने है ताकूं ज्ञाता कहीये है। जो कर्त्ता है सो ज्ञाता नहि होय अर जो ज्ञाता है सो कर्त्ता नहि होय ॥ ३२ ॥

॥ अब जे ज्ञाता जाननहार है ते अकर्ता कैसा होय सो कहे है ॥ सोरठा ॥—

ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञान मही ॥
ज्ञान करम अतिरेक, जो ज्ञाता सो करता नही ॥ ३३ ॥

अर्थ—ज्ञानभाव अर मिथ्यात्वभाव एक कहवाय नही, तथा राग द्वेष अर मोह इत्यादिक भाव ज्ञानमें होय नहिं। ज्ञान है सो कर्मते न्यारे है, ताते जो ज्ञाता है सो भावकर्मका कर्त्ता नही है ॥ ३३ ॥

॥ अब मिथ्यात्वी है सो द्रव्यकर्मका कर्त्ता नहि भावकर्मका कर्ता हैं सो कहे है ॥ छप्पै ॥—

करम पिंड अरु रागभाव, मिलि एक होय नहि। दोऊ भिन्न स्वरूप वसहि, दोऊ न जीव महि। करम पिंड पुद्गल, भाव रागादिक मूढ भ्रम। अलख एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रकृति सम। निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिणमहि तिम। करतार जीव जड करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म अर रागद्वेषादिक भावकर्म ये दोऊ मिलि एकरूप नहि होय है इनि दोऊका भिन्न भिन्न स्वभाव है अर दोऊ कर्म जीवमें नहि रहे है। ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म है सो पुद्गलरूपी है अर रागादिक भाव कर्म है सो जीवके विभाव (भ्रम) रूपी है ते जीवमें अहंबुद्धि करे है। अर जीव है सो दोऊ कर्मते अलख (भिन्न) है तथा किसीमें मिले नहि एकता लिये रहे

है ताते एक है अर पुद्गलद्रव्य है सो अनंतता लिये रह्या है इनकी प्रकृति (स्वभाव) भिन्न भिन्न है सो जीव अर पुद्गल समान् कैसे होय ? । इस जगत्में जे जे द्रव्य है ते ते समस्त अपने अपने स्वभावयुक्त है जैसा जैसा जिसका स्वभाव है तैसे तैसेही सहज (स्वाभाविक) परिणमन होय है । ताते जडरूप कर्मको कर्त्ता जीव है ऐसे वचन जे जीव मोहते विकल है ते कहे है ॥ ३४ ॥

॥ अव जीवका सिद्धांत (आत्म प्रभाव कथन) समजावे है ॥ छप्पै ॥—

जीव मिथ्यात् न करे, भाव नहि धरे भरम मल । ज्ञान ज्ञानरस रमे, होइ
करमादिक पुदगल । असंख्यात परदेश शकति, झगमगे प्रगट अति । चिद्विलास
गंभीर धीर, थीर रहे विमल मति । जबलग प्रबोध घट महि उदित, तवलग अनय
न पेखिये । जिम धरमराज वरतंत पुर, जिहि तिहि नीतिहि देखिये ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीव है सो मिथ्यात्वकर्म करे नही, अर भ्रमरूप भाव मलकूंहूं धरे नही । जीव ज्ञानयुक्त है अर ज्ञानगुण है सो ज्ञान रसमेंही रमे है, ज्ञानावरणादिक तथा रागद्वेषादिक कर्म है ते पुद्गल द्रव्यकी सामग्री है सो पुद्गल द्रव्यते होय है । अर ये जीवके तो असंख्यात प्रदेश है, तिनिविषे ज्ञानकी अति शक्ति प्रत्यक्ष झगमगे है । ज्ञानविलासमें गंभीर धीर स्थीर अर विमल मतिवंत ऐसी शक्ती है । ऐसा प्रबोध सम्यक्ज्ञान राजा जबतक हृदयमे प्रकाशमान् हो रह्या है, तबतक मिथ्यात्वादि अन्याय नाहि होय है । जैसे—जिस पुरमें धर्मवंत राजा प्रवर्ते है तिस पुरमें जहां तहां नीतिहि देखिये है ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको कर्त्ता कर्म क्रिया त्रितीय द्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ ३ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारंभ ॥ ४ ॥

कर्त्ता क्रिया कर्मको, प्रगट वखान्यो मूल। अब वरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥१॥

अर्थ—कर्त्ता क्रिया अर कर्म इनिके मूल (रहस्य) का व्याख्यान प्रगट कीयो। अब पाप अर पुण्य ये दोऊ समान् है तिसका अधिकार वर्णन करूं हूं ॥ १ ॥

॥ अव पापपुण्य द्वारविषें प्रथम ज्ञानरूप चंद्रके कलाकूं नमस्कार करे है ॥ कवित्त ॥—

जाके उदै होत घट अंतर, विनसे मोह महा तम रोक ॥
शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक थोक ॥
जाकी कला होत संपूरण, प्रति भासे सब लोक अलोक ॥
सो प्रतिबोध शशि निरखि, बनारसि सीस नमाइ देत पग धोक ॥ २ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानरूप चंद्रमाका उदय होते हृदयमें जो मोहरूप महा अंधकार है, तिस अंधकारका नाश होय है। इस अंधकारका नाश होनेसे शुभकर्म भला है अर अशुभकर्म भला नही ऐसी जो द्विधा है सो सहज मिटि जाय है, अर ये शुभ अशुभकर्म आत्माकूं कर्मबंध करनेवाले है ऐसे एकरूप दीखे है। अर इस ज्ञानरूप चंद्रमाकी कला जब संपूर्ण प्रगट होय है, तब समस्त लोकालोक प्रगट दीसे है। ऐसो प्रबोध केवलज्ञानरूप चंद्रमाकूं अवलोकन करि, बनारसीदास मस्तक नमाइके तिनके चरणकूं प्रणाम करे है ॥ २ ॥

॥ अब मोहते शुभ अर अशुभ कर्मकी द्विधा दीखे है सो एकरूप दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा—

जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन, एक दीयो बामनकूं एक घर राख्यो है ॥
बामन कहायो तिन मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन मद्यमांस चाख्यो है ॥
तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुन्य नाम भिन्न भाख्यो है ॥
दुहूं मांहि दोर धूप दोऊ कर्म बंध रूप, याते ज्ञानवंत कोउ नांहि अभिलाख्यो है ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे कोई चांडालके स्त्रीकूं दोय पुत्र हुये, तिने एक पुत्र ब्राम्हणकूं दीया अर एक पुत्र अपने घरमें राख्या है। जो ब्राह्मणकूं दीया तिसकूं ब्राह्मण कहवायो सो पुत्र मद्य मांस खानेका त्याग करे है, अर जो चांडालके घरमें रहा तिस पुत्रकूं चांडाल कहवायो सो मद्यमांस भक्षण करे है। तैसे एक वेदनीय कर्मके दोय पुत्र है, तिसमें एक पाप अर एक पुन्य ऐसे नाम मात्र जुदा जुदा कह्या है परंतु दोनूंमें वेदनाकी सत्ता (खेदसंताप) है अर दोनूंकाहूं कर्मबंध करनेका स्वभाव है, तातैं ज्ञानवंत मनुष्य पाप अर पुन्य इन दोनूंकाहूं अभिलाष (इच्छा) नहि करे है ॥ ३ ॥

॥ अब गुरुने पाप अर पुन्यको समान् कह्यो तिस ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥ चौपाई ॥—

कोऊ शिष्य कहे गुरु पाही। पाप पुन्य दोऊ सम नाही ॥
कारण रस स्वभाव फल न्यारो। एक अनिष्ट लगे इक प्यारो ॥ ४ ॥

अर्थ—कोई शिष्य गुरुकूं पूछे की हे स्वामी ? आपने पाप अर पुन्य दोनूंको समान् कह्या परंतु ते समान् तो दीखेही नही है। दोनूके कारण, रस, स्वभाव, अर फल च्यारोहूं न्यारे न्यारे है अर दोनूंमें एक अनिष्ट (अप्रिय) है तथा एक इष्ट (प्रिय) है सो दोनूं एक कैसे होय ॥ ४ ॥

॥ अब शिष्य पापपुन्यके कारण, रस, स्वभाव, अर फल, जुदे जुदे कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

संकलेश परिणामनिसों पाप बंध होय, विशुद्धसों पुन्य बंध हेतु भेद मानिये ॥
पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदै साता मिष्ट रस भेद जानिये ॥
पाप संकलेश रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दुहुंको स्वभाव भिन्न भेद यों वखानिये ॥
पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय, ऐसो फल भेद परतक्ष परमानिये ॥ ५ ॥

अर्थ—संक्लेश (तीव्र कषाय) के परिणामते पापबंध होय है, अर विशुद्ध (मंद कषाय) के परिणामते पुन्यबंध होय है ऐसे पापका कारण (हेतू) जुदा है तथा पुन्यका कारण भी जुदा है । पापका उदय होते असाता उत्पन्न होय तिसका रस कटुक (दुःख) होय है, अर पुन्यका उदय होते साता उत्पन्न होय तिसका रस मिष्ट (सुख) होय है ऐसे पापका रस जूदा है तथा पुन्यका रसभी जुदा है । पापका स्वभाव तीव्र कषाय है अर पुण्यका स्वभाव मंद कषाय है, ऐसे पाप अर पुन्यका स्वभाव जुदा जुदा है । पापते नरकपश्वादि कुगतीमें जन्म होय है अर पुन्यते स्वर्गमनुष्यादि सुगतीमें जन्म होय है, ऐसे पापकर्मका तथा पुन्यकर्मका फलभी जुदा जुदा है इस प्रकार कारण, रस, स्वभाव अर फल ये च्यार भेद पाप पुन्यमें प्रत्यक्ष प्रमाण जुदे जुदे दीखे है सो एक कैसा होय ? ॥ ५ ॥

॥ अब शिष्यके प्रश्नकूं गुरु उत्तर कहे है पापपुन्य एकत्व करण ॥ सवैया ३१ ॥—

पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये ॥
संकलेश विशुद्धि सहज दोउ कर्मचाल, कुगति सुगति जग जालमें विसेखिये ॥

कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात मांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये ॥
दोउ महा अंध कूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहुंको विनाश मोक्ष मारगमें देखिये ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसा पापका बंध होय है तैसाही पुन्यका पण बंध होय है अर जहां बंध है तंहां मुक्ति नही अर मुक्ति मार्ग रोकनेको कारण दोऊ बंध है ताते पाप पुन्यको कारणभी समान् है, तथा जे दुःख रस पाप अर सुख रस पुन्य ये दोऊ रस पुद्गलकेही है ताते पाप अर पुन्य इन दोऊके रसभी एक समान् है। संक्लेश स्वभाव पाप है तथा विशुद्धि स्वभाव पुन्य है दोऊकेहूं स्वभाव कर्मकी वृद्धि करानेवाले है तातै दोऊका स्वभावभी एक समान् है, पापका फल कुगति है अर पुन्यका फल सुगति है तथा पापपुन्यते कर्मका क्षय नहि होय है जगत स्थिर करानेवाले जाल है ताते पापपुन्यका फलभी एक समान् है। गुरु कहे है हे शिष्य ? तुझै जे पापपुन्यमें (कारण, रस, स्वभाव, फल,) भेद दीखे है सो अज्ञानपणा ते दीखे है, अर जब अज्ञानभाव दूर करि ज्ञानदृष्टीते देखिये तब पापपुन्यमें द्वैतभाव दीखेही नही ये आत्माके एक बाधक बंधही है। इन दोऊते आत्माका अवलोकन नही होय ताते ये महा अंध कूप है तथा ये दोनूंहूं कर्म है ते बंधरूप है, अर मोक्षमार्गमें इन दोऊका त्याग कह्या है ताते ये दोऊ समान् है ॥ ६ ॥

॥ अव मोक्ष मार्गमें पापपुन्यका त्याग कह्या तिस मोक्ष पद्धतीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

सील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है ॥
कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥

ऐसी बंध पद्धति वखानी वीतराग देव, आतम धरममें करत त्याग जोग है ॥
भौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया महा, मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य, तप, पंच इंद्रिय निग्रह, व्रत, दान, पूजादिक, इह पुन्य बंधके कारण है, अर अब्रह्म, (कुशील) प्रमाद, इंद्रियपुष्टता, अव्रत, लोभ कषाय, विषयभोग, इह पापके कारण है। इन दोऊमें एक शुभरूप कर्म है अर अशुभरूपकर्म है, पण आत्माके हितका मूल विचार करिये तो दोऊही कर्मरूप रोग है। ऐसे बंधके परिपाठीमें वीतराग देवनें कह्या है, ताते आत्मीक धर्ममें (मोक्षमार्गके पद्धत्तीमें) पुन्य अर पाप दोनूंहूं कर्म त्यागने योग्य है। अर संसार समुद्रसे तारनेवाला रागद्वेषकूं हरनेवाला तथा महा मोक्षके सुखकूं देनेवाला एक शुद्धोपयोग (आत्मानुभव) है सो ग्रहण करणे योग्य है ॥ ७ ॥

॥ अब अर्धा सवैयामें शिष्य प्रश्नकरे अर अर्धा सवैयामें गुरु उत्तर कहे है ॥ ३१ सा ॥—

शिष्य कहे स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषेध मेरे संशे मन मांहि है ॥
मोक्षके सधैया ज्ञाता देश विरती मुनीश, तिनकी अवस्था तो निरावलंब नांहि है ॥
कहे गुरु करमको नाश अनुभौ अभ्यास, ऐसो अवलंब उनहीको उन मांहि है ॥
निरुपाधि आतम समाधि सोई शिव रूप, और दौर धूप पुदगल पर छांही है ॥ ८ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे है की हे स्वामी ? आप मोक्ष मार्गमें शुभ अर अशुभ (पुन्य अर पाप) के दोनूं क्रियाका निषेध कीया सो, तिसका मेरे मनमें संशय है। मोक्षमार्गके साधन करनेवाले ज्ञाता जे अणुव्रती श्रावक तथा महाव्रती मुनी है, सो निरावलंब नही है ते तो क्षमादिक वा तपादिक शुभक्रिया करे ही है अर आप उस शुभ क्रियाका निषेध कैसे कीया ?। तब गुरू उत्तर कहे है की

ज्ञानी जो शुभक्रिया करे है सो बाह्य देखनेमें मात्र आवे है परंतु कर्मका नाश होना है सो आत्मानुभवके अभ्यासतेही होय है, ताते ऐसा आत्मानुभवका अभ्यास ज्ञानी अपने ज्ञानमें निरंतर करे है सो बाह्य दीखनेमें नहि आवे है। आत्मानुभवमें उपाधि (राग, द्वेष, अर इच्छा) नही है आत्माकी समाधि (स्थिरपणा) है सोही मोक्ष स्वरूप है, और पाप पुन्य तो पुद्गलकी छाया है सो खेद संता है ॥ ८ ॥

॥ अव शुभक्रियामें वंध तथा मोक्ष ये दोनूं है सो स्वरूप वतावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

मोक्ष स्वरूप सदा चिन्मूरति, बंध महि करतूति कही है ॥
जावत काल वसे जह चेतन, तावत सो रस रीति गही है ॥
आतमको अनुभौ जबलों तबलों, शिवरूप दशा निवही है ॥
अंध भयो करनी जब ठाणत, बंध, विथा तव फैलि रही है ॥ ९ ॥

अर्थ—चिन्मूरति (आत्मा) हैं सो सदा मोक्षस्वरूप (अबंध) है, परंतु क्रिया सदा बंध करनेवाली है। आत्मा जितने कालतक जहां वसे है, तितने कालतक तहां तैसाही रस ग्रहण करे हे। चेतन जहांतक आत्मानुभवमें रहे, तहांतक शुभ क्रिया करे तोहूं मोक्ष स्वरूपमें रहे अर अबंध कहवाय है। अर जब आत्मस्वरूपकूं भूलि अंध होय क्रिया करे है, तब क्रियाके रस (बंध) का फैलाव होय है॥९॥

॥ अब मोक्ष प्राप्तीका कारण अंतर दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा ॥—

अंतर दृष्टि लखाव, अर स्वरूपको आचरण। ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥१०॥

अर्थ—जो पर स्वरूपमें आत्मपणाका विचार है सो त्याग कर अंतर ज्ञान दृष्टिते आत्माकूं देखना अर अपने ज्ञान तथा दर्शन स्वरूपमें स्थिर रहना। यही परमात्माका स्वभाव है, सो येही परमात्माका स्वभाव मोक्षप्राप्तिका सदा कारण (उपाय) है ॥ १० ॥

॥ अव बंध होनेका कारण वाह्य दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा ॥—

कर्म शुभाशुभ दोय, पुद्गलपिंड विभाव मल। इनसों मुक्ति न होय, नांही केवल पाइये॥ ११ ॥

अर्थ—शुभकर्म अर अशुभकर्म ये दोऊ कर्म है ते द्रव्यकर्म है, अर राग द्वेषादिक है ते भावकर्म है। द्रव्यकर्म अर भावकर्म जबतक है तबतक आत्माकूं मुक्ति नही होय अर केवलज्ञान प्राप्त होय नही ॥ ११ ॥

॥ अब ये बात ऊपर शिष्य प्रश्न करे अर गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शिष्य कहे स्वामी अशुभक्रिया अशुद्ध, शुभक्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी ॥
गुरु कहे जबलों क्रियाके परिणाम रहे, तबलों चपल उपयोग जोग धरनी ॥
थिरता न आवे तौलों शुद्ध अनुभौ न होय, याते दोउ क्रिया मोक्ष पंथकी कतरनी ॥
बंधकी कैरया दोउ दुहूमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२ ॥

अर्थ—कोऊ शिष्य गुरूकूं पूछे हे स्वामी ? आप–हिंसादिक पापकूं अशुभ क्रिया कही सो तिसकूं अशुद्ध क्रिया क्यों न कही, अर दयादिक पुन्यकूं शुभ क्रिया कही सो तिसकूं शुद्ध क्रिया क्यों न कही। तब गुरु कहे है हे शिष्य ? जबतक क्रियाके परिणाम रहे है, तबतक आत्माके ज्ञान अर दर्शन उपयोग तथा मन वचन अर कायाके योग चंचल रहे है। अर जबतक उपयोग अर योग स्थिर नहि रहे है तबतक आत्माका शुद्ध अनुभव नहि होय है, ताते पाप अर पुन्यके क्रियाको अशुभ अर शुभ कही अशुद्ध तथा शुद्ध नहि कही ये दोनूंही क्रिया मोक्षमार्गकूं कतरनी समान् कतरनहारी है। अर दोनूंही क्रिया कर्मबंध करनहारी है ताते दोनूंमें एकहूं भली नही है, [जो संसारमें कर्मबंध

करे सो काहेकी भली है] ये दोनूंहूं क्रिया मोक्षमार्गके विचारमें बाधक है याते दोनूंहूं क्रियाका निषेध कीया ॥ १२ ॥

॥ अब ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मुकतिके साधककों बाधक करम सब, आतमा अनादिको करम मांहि लुक्यो है ॥
येतेपरि कहे जो कि पापबुरो पुन्यभलो, सोइ महा मूढ मोक्ष मारगसों चुक्यो है ॥
सम्यक् स्वभाव लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमंगि चल्यो काहूंपैं न रुक्यो है ॥
आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप व्हैके कारिजको ढूक्यो है ॥ १३ ॥

अर्थ—आतमा मुक्तिका साधक है तिसको सब कर्म बाधक (घातक) है, ताते आतमा अनादि कालते कर्ममें दबि रह्या है। ऐसे होतेहूं जो कोई कहे पाप बुरा है अर पुन्य भला है, सो महा मूढ है मोक्ष मार्गसे चूक्या है। अर जब कोई जीवके सम्यक्तकी प्राप्ति होय हृदयमें ज्ञान प्रगट होय है, तब सो जीव उर्ध्व गमन करे है कोई कर्मादिकते रुके रहे नही है। अर आरसी समान् उज्जल ऐसा केवलज्ञान कारण प्राप्त होय, सिद्धरूप कार्यकूं आपही करें है ऐसे बनारसीदास कहे है ॥ १३ ॥

॥ अब ज्ञानका अर कर्मका व्यवरा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोलों अष्ट कर्मको विनाश नांही सरवथा, तोलों अंतरातमामें धारा दोई वरनी ॥
एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥
इतनो विशेषजु करम धारा बंध रूप, पराधीन शकति विविध बंध करनी ॥
ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

अर्थ—इस जीवके जबतक अष्ट कर्मका नाश सर्वस्वी नहि होय है, तबतक मोक्ष नहि होय अर अंतरात्मामें दोय धारा प्रवर्ते है । एक ज्ञानकी धारा है अर एक शुभ अशुभ कर्मकी धारा है, इस दोऊ धाराकी प्रकृति (स्वभाव) न्यारी न्यारी है तथा इसका स्थान पण न्यारा न्यारा है । इसमें इतना विशेष भेद है की जो कर्मकी धारा है सो बंधन रूप है, अर शक्तीकूं पराधीन करनेवाली है तथा प्रकृतिबंध स्थितिबंध प्रदेशबंध अर अनुभागबंध ऐसे नाना प्रकारका अगाने बंध करानेवाली है । अर जो ज्ञान धारा है सो मोक्ष स्वरूप है ते मोक्षकी करनहारी है, तथा कर्म दोष मात्रकूं हरनहारी अर भवरूप समुद्रकूं तरनहारी नाव समान् है ॥ १४ ॥

॥ अव मोक्ष प्राप्ति ज्ञान अर क्रिया ते होय ऐसा जो स्याद्वाद है तिनकी प्रशंसा करे है ॥ २१ सा ॥—

समुझे न ज्ञान कहे करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ॥
ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ डूबे है चहलमें ॥
जथा योग्य करम करे पैं ममता न धरे, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें ॥
तेई भव सागरके उपर व्है तरे जीव, जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें ॥१५॥

अर्थ—जे क्रियावादी है ते कहे है की ज्ञान भला नही जिसमें संशय उपजे है अर संशयसे जीव न इधर न उधर ऐसी अवस्था बने है ताते क्रियाके करनेसेही मोक्ष होय है, ऐसे ज्ञान विना क्रियासे मोक्षप्राप्ति माननेवाले जीव मिथ्यात्वके गहलसे विकल भया संसारमें भ्रमे है । अर जे ज्ञान-वादी है ते ज्ञानका पक्ष ग्रहण कर कहे की बंध तथा मोक्ष प्रकृतिमेंही है अर आत्मा सदा अबंध है, ऐसे क्रिया विना ज्ञानसे मोक्षप्राप्ति माननेवाले जीव क्रियाहीन होय स्वच्छंद (मर्जी माफक) प्रवर्ते है

तेहूं संसाररूप कर्दममें डूबे है। अर स्याद्वादी (जैन सिद्धांत शास्त्रके पारगामी) है सो अपने पदस्थके अनुसार क्रिया करे है पण क्रियामें आतमपणाकी बुद्धि नहि धरे है, ज्ञान अर आत्मविचारमें सावधान रहे है। तेही जीव भव संसार रूप सागरसे तरे है, जे स्याद्वादके महलमें रहे है ते ॥ १५ ॥

॥ अब मूढके क्रियाका तथा विचक्षणके क्रियाका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे मतवारो कोउ कहे और करे और, तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरत है ॥
अशुभ करम बंध कारण बखाने माने, मुकतीके हेतु शुभ रीति आचरत है ॥
अंतर सुदृष्टि भई मूढता विसर गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरत है ॥
करणीसों भिन्न रहे आतम स्वरूप गहे, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करत है ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे कोई मदिरा प्राशन करनेते मनुष्य बोले और अर करे तो और, तैसे मूढ प्राणी विपरीत (उलटे) स्वभावकूं धरे है। अशुभ क्रियाकूं तो कर्मबंधका कारण समझे है, अर मुक्ति होनेके कारण कर्मबंध करनेवाली शुभ क्रियाकूं करे है। अर ज्ञानीके अंतरंगमें सम्यक्दृष्टी प्रगट हुई है ताते मूढपणा जाय है, अर ज्ञानके उद्योतसे भ्रम (मिथ्यात्व) रूप अंधकारकूं हरे है। अर शुभ क्रियासे भिन्न होकर आत्मस्वरूपको ग्रहण करके, आत्मानुभवके आरंभ रूप रसमें रमे (क्रिडा करे) है ॥१६॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ४ ॥

॥ अथ समयसार नाटकको पंचम आश्रवद्वार प्रारंभ ॥ ५ ॥

पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप । अव आश्रव अधिकार कछु, कहूं अध्यातम रूप ॥१॥

अर्थ—पाप पुन्यकी एकता है सो अगम अर अनुपम है तिसका वर्णन कीया । अव आश्रवका अर अध्यात्म स्वरूपका अधिकार कछुक कहूंहूं ॥ १ ॥

॥ अव आश्रव सुभटको नाश करनहार ज्ञान सुभट है तिस ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ ३१ सा ॥—

जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे वल तोरिके ॥
महा अभिमानी ऐसो आश्रव आगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाडो भयो मूछ मोरिके ॥
आयो तिहि थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभठ सवायो वल फेरिके ॥
आश्रव पछाऱ्यो रणथंव तोडि डाऱ्यो ताहि, निरखी वनारसी नमत कर जोरिके ॥ २ ॥

अर्थ—जे जे जगतमें रहणार त्रस तथा थावर लहान मोठे जीव है, ते ते समस्तके वलकूं तोडिके आश्रव जोद्धाने आपने वश करि राख्या है । ऐसा महा अभिमानी आश्रवरूपी अगाध जोद्धा है, सो जोद्धा जगतमें रणथंभकूं रोपि मूछ मरोडि ठाडो भयो है अर जगत्रयमें मोकूं जीतनेवाला कोऊ नहि ऐसा कहे है । कोई काल पाय तिस स्थानकमें अचानक महा तेजस्वी ऐसा, ज्ञान नामा सुभट (आश्रवका प्रतिपक्षि) सवायो वल फेरिके आश्रवसे युद्ध करनेकूं आयो । अर आवत प्रमाणही आश्रवकूं पछाड्यो तथा रणथंभ तोड डाऱ्यो, ऐसे ज्ञानरूप सुभटको देखिके वनारसीदास हाथ जोडिके नमस्कार करे है ॥ २ ॥

॥ अव द्रव्यआश्रवका भावआश्रवका अर सम्यक्ज्ञानका लक्षण कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं, पुद्गल जीव प्रदेश गरासे ॥
भावित आश्रव सो कहिये जहिं, राग विमोह विरोध विकासे ॥
सम्यक् पद्धति सो कहिये जहिं, दर्वित भावित आश्रव नासे ॥
ज्ञानकला प्रगटे तिहि स्थानक, अंतर बाहिर और न भासे ॥ ३ ॥

अर्थ—जहां जीवके सर्व प्रदेशकूं पुद्गलद्रव्य आच्छादित करे सो द्रव्य आश्रव कहिये । जहां द्रव्य आश्रवके प्रसंगते आत्मामें रागद्वेष अर मोह उत्पन्न होय सो भाव आश्रव कहिये । जहां द्रव्य आश्रवका अर भाव आश्रवका अभाव होय सो आत्माका सम्यक् स्वरूप कहिये । जहां आत्मामें ज्ञान कला उपजे तहां अंतर अर बाहिर ज्ञान शिवाय अन्य कोई भासेही नहीं ॥ ३ ॥

॥ अव ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

जो द्रव्याश्रव रूप न होई । जहां भावाश्रव भाव न कोई ॥
जाकी दशा ज्ञानमय लहिये । सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ४ ॥

अर्थ—जो द्रव्याश्रवरूप होय नही अर जहां भावाश्रवका परिणाम पण कोऊ होय नहि अर जिसकी दशा ज्ञानमय होय सोही ज्ञाता (ज्ञानी) जीव आश्रव रहित कहिये ॥ ४ ॥

॥ अव ज्ञाताका सामर्थ्य (निराश्रवपणा) कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिणामनकी ममता हरतु है ॥
मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव, तिनके विनाशवेको उद्यम धरतु है ॥

याही भांति पर परणतिको पतन करे, मोक्षको जतन करे भौजल तरतु है ॥
ऐसे ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावे सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५ ॥

अर्थ—मन प्रत्यक्ष जाने ऐसे बुद्धिपूर्वक उपजे जे वर्तमान कालके रागादिक अशुद्ध परिणाम, तिस परिणामकी ममता छोडे (तिस परिणामकूं आत्मपणा नहि माने) है। अर मन नाहि जाने तथा बुद्धिसे ग्रहण करने नहि आवे ऐसे अशुद्ध परिणामकूं अनागत कालमें नहि होने देवे सावधान रहे, अर अतीत कालके हुवे अशुद्ध परिणामका नाश करनेकूं उद्यम करे है। इस प्रकार पर वस्तूके परिणामकूं छोडे है, तिसते छूटनेका यत्न करे है ते भवसंसार समुद्रसे तरे है। ऐसे जे ज्ञानवंत है ते सदा निराश्रवी है, तिस ज्ञानीकी प्रशंसा प्रवीण मनुष्य निरंतर करे है ॥ ५ ॥

॥ अब गुरूने ज्ञानीकूं निराश्रवी कह्या ते ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों जगमें विचरे मतिमंद, स्वछंद सदा वरते बुध तैसे ॥
चंचल चित्त असंजम वैन, शरीर सनेह यथावत जैसे ॥
भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करे जहां ऐसे ॥
पूछत शिष्य आचारजकों यह, सम्यक्वंत निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे जगतमें अज्ञानी जन स्वच्छंद (मरजी मुजब) वर्तन करे है तैसे ज्ञानीजन पण सदाकाल वर्तन करे है। सो—चित्तकी चंचलता, असंयम वचन, अर शरीरमें स्नेह, अज्ञानीके समान् ज्ञानी हूं करे है। तथा भोगमें संयोग, परिग्रहका संग्रह, अर परमें मोह विलास, (ममता भाव) ये

समस्त ज्ञानीकेहूं अज्ञानीके समान् है ऐसा ज्ञानीका अर अज्ञानीका एकसार वर्तन देख । शिष्य गुरूकूं पूछे है हे स्वामी, सम्यक्तवंतकूं निराश्रवी आप कैसे कह्यां ॥ ६ ॥

॥ अब शिष्यके प्रश्नकूं गुरू उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पूरव अवस्था जे करम बंध कीने अब, तेई उदै आई नाना भांति रस देत हैं ॥
केई शुभ साता केई अशुभ असाता रूप, दुहूंमें न राग न विरोध समचेत हैं ॥
यथायोग्य क्रियाकरे फलकी न इच्छाधरे, जीवन मुकतिको बिरद गहि लेत हैं ॥
यातें ज्ञानवंतको न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये शुद्धता समेत हैं ॥ ७ ॥

अर्थ—पूर्व कालमें अज्ञान अवस्थाविषें जे जे कर्मबंध कीया होय, अब ते ते कर्म वर्तमान् कालमें उदयकूं आय नाना प्रकार रस (फल) देवे है। तिसमें कित्येक कर्म शुभ है ते सुख देवे है अर कित्येक कर्म अशुभ है ते दुःख देवे है, परंतु इन दोनूं जातके कर्ममें ज्ञानीकी प्रीति अर द्वेष नहि है समान् चित्त राखे है।अर ज्ञानी अपने पदस्थ योग्य क्रिया करे है पण तिस क्रियाके फलकी इच्छा नहि धरे है, संसारमें है तोहूं मुक्त जीवके समान् देहादिकतें अलिप्त रहे है ऐसा बिरद संभाले है। ताते ज्ञानवंतको तो कोऊही आश्रव कहे नही, अर ज्ञानवंत है सो मूढता रहित तथा आत्म अनुभवकी शुद्धता सहित वर्ते है ॥ ७ ॥

॥ अब राग द्वेष मोह अर ज्ञानका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

जो हित भावसु राग है, अहित भाव विरोध। भ्रमभाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥८॥

अर्थ—जो हितरूप परिणाम सो राग (प्रीति) है अर जो अहितरूप परिणाम सो विरोध (द्वेष) है। पर पदार्थमें आत्मपणाका भ्रमरूप परिणाम सो मोह है अर राग द्वेष तथा मोहमल रहित निर्मल परिणाम ते सम्यक्ज्ञान है ॥ ८ ॥

॥ अब राग द्वेष अर मोहका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल। येई कर्म बढाइके, करे धरमकी भूल ॥ ९ ॥

अर्थ—राग द्वेष अर मोह है सो आत्माकूं मल (दोष) है अर ये दोष आश्रवका मूल है। अर येई आश्रव कर्मको बंधाइ करि धर्म (आत्मस्वरूप) को भुलाइ देवे है ॥ ९ ॥

॥ अब ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे हैं ॥ दोहा ॥—

जहां न रागादिक दशा सो सम्यक् परिणाम। याते सम्यक्वंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥१०॥

अर्थ—जहां राग द्वेष अर मोह अवस्था नाहि है सो सम्यक् परिणाम है। यातें सम्यक्वंतको निराश्रव नाम कह्या है ॥ १० ॥

॥ अब ज्ञाता निराश्रवपणामें विलास करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे कोई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणये हैं ॥
जिन्हके सुदृष्टीमें न राग द्वेष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनूं जीति लये हैं ॥
तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं ॥
तेई बंध पद्धति विडारि पर संग झारि, आपमें मगन व्हे के आपरूप भये हैं ॥११॥

अर्थ—जे कोई निकट भव्यराशिके जीव है, ते मिथ्यात्व बुद्धिकूं भेदि करि स्वस्वरूप (ज्ञान स्वभाव) में परिणमें है । जिन्हके ज्ञानरूपी दृष्टीमें राग द्वेष अर मोह ये होय नहि, अर आत्म-स्वरूप आवलोकनतें तीनोंकूं जीति लिया है । अर पंधरा प्रमाद तजि अपने देहकूं शुद्ध कर मन वचन अर देहके योगकूं रोके है, तथा शुद्धोपयोग (दर्शन अर ज्ञान उपयोग) में मिलि गये है । तेई सम्यक्ज्ञानी कर्मबंधके मार्गकूं नाश कर पर वस्तुके संगकूं छांडे है, अर आत्मस्वरूपमें मग्न होयके आत्मरूप होय है ऐसे सम्यग्ज्ञानीका विलास है ॥ ११ ॥

॥ अब ज्ञाताके क्षयोपशम भावते तथा उपशम भावते चंचलपणा है सो कहे है ॥ २१ ॥ सा—

जेते जीव पंडित क्षयोपशमी उपशमी, इनकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है ॥
खिण आगिमांहि खिण पाणिमांहि तैसे येउ, खिणमें मिथ्यात खिण ज्ञानकला भासी है ॥
जोलों ज्ञान रहे तोलों सिथल चरण मोह, जैसे कीले नागकी शकति गति नासी है ॥
आवत मिथ्यात तव नानारूप बंध करे, जेउ कीले नागकी शकति परगासी है ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षयोपशम भावते अर उपशम भावते, ज्ञानी जीवकी अवस्था लुहारकी सांडसी समान् होय है । जैसे लुहारकी सांडसी लोहकूं ग्रहण करि गरम करवा क्षणमें अग्निमें प्रवर्ते है अर लोहकूं ठंडो करवा क्षणमें पाणीमें प्रवर्ते है, तैसे ये क्षयोपशमी अर उपशमी जीवकूं क्षणमें मिथ्यात्व भाव प्रगट होय अर क्षणमें ज्ञानकला प्रकाशमान् रहे है । जबतक ज्ञानकला प्रकाशमान् रहे है तबतक चारित्र मोह कर्मकी पचीस प्रकृति सिथल होय रहे है, जैसे मंत्रते वा वनस्पत्यादि जडीते सर्पकी

शक्ति अर गति सिथल होय है। अर जब मिथ्यात्व भावका उदय आवे है तब नाना प्रकार कर्मबंध करे है, जैसे सर्पके उपरका मंत्र निकालनेसे शक्ति अर गति फेर प्राप्त होय है तैसे जानना॥ १२ ॥

॥ अब ज्ञानके शुद्धपणाकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

यह निचोर या ग्रंथको, यहे परम रस पोख। तजे शुद्धनय बंध है, गहे शुद्धनय मोख ॥१३॥

अर्थ—इस समयसार नाटक ग्रंथका येही रहस्य (भावार्थ) है अर येही उत्कृष्ट रसका पुष्ट करनेवाला है की। जो शुद्ध नयकी रीत छोडे तो बंध है अर शुद्ध नयकी रीत ग्रहण करे तो मोक्ष है ॥ १३ ॥

॥ अब जीवके बाह्य विलास अर अंतर विलास बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, व्है रह्यो बहिरमुख व्यापत विषमता ॥
अंतर सुमति आई विमल बडाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता ॥
शुद्धनै निवास कीनो अनुभौ अभ्यास लीनो, भ्रमभाव छांडि दीनो भीनोचित्त समता ॥
अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलंबि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

अर्थ—त्रैलोक्यमें कर्मरूप चक्र (शैन्य) फिरे है तिसमें जगवासी जीव पण फिर रह्यो है, ताते बहिर्मुख (बाह्य देह विषय भोगके सुख दुखका ग्राहक) होय अंतर दृष्टीसे आत्माका स्वरूप न जाण्यो अर कहां इष्ट संयोग तथा कहां अनिष्ट संयोग इनसे जीवमें विषमता (अशुद्धता) व्याप्त हुई है। अर जब अंतरंगमें सुमति आय आत्मस्वरूपके निर्मल प्रभुताकूं प्राप्त होय है, तब देहकी प्रीति तूटे है तथा राग द्वेष छूटे है। जैसा शुद्ध नयसे आत्म स्वरूप कह्या तैसा आत्मस्वरूपमें उपयोग

लगावे अर आत्मानुभवका अभ्यास करे है, ताते मिथ्यात्व भाव छूटे है अर चित्त समतामें लीन होय है। अर अनादि अनंत काल सूधी जिस स्वरूपमें दूजा विकल्प नहि पावे ऐसा, अचल पद अवलंबन करि अपने आत्म स्वरूपमें रमनेवाला जो रमता राम (आत्मा) है ताकूं अवलोके है ॥ १४ ॥

॥ अब आत्माका शुद्धपणा सम्यक्दर्शन है तिसकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके परकाशमें न दीसे राग द्वेष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है ॥
तिहुं काल जामें प्रतिबिंबित अनंतरूप, आपहूं अनंत सत्ता ऽनंततें सरस है ॥
भावश्रुत ज्ञान परमाण जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां वाणीको परस है ॥
अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐसो सम्यक् दरस है ॥ १५ ॥

अर्थ—शुद्ध आत्माके प्रकाशमें राग द्वेष अर मोह तो नही दीसे है, अर आश्रव मिटे है तथा बंधका त्रास पण नहि होय है। अर शुद्ध आत्माके प्रकाशमें तीन काल संबंधी पदार्थोंका अनंत स्वरूप प्रतिबिंबित होय है, तथा आपहू अनंत स्वरूप है अर सत्ता (ज्ञान) हूं अनंतते सरस (अधिक) है तिस ज्ञानके जे अनंत पर्याय है ते सर्व धर्म (गुण) है । अर आत्मवस्तुकूं भावश्रुतज्ञान प्रमाणते विचार करिये तो अनुभव गोचर है, परंतु द्रव्यश्रुत (अक्षर रूप वाणी) ते आत्मवस्तु अनुभवमें नहि आवे है। अर आत्मवस्तु अतुल अखंड अचल अविनाशी अर ज्ञानज्योतिका निधान है, तथा चिदानंद (ईश्वर) स्वरूप है ऐसा सम्यक् दर्शन है सो जानना॥ १५ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको पंचम आश्रव द्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ ५ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको छठो संवर द्वार प्रारंभ ॥ ६ ॥

॥ दोहा—आश्रवको अधिकार यह, कह्या जथावत् जेम।
अब संवर वर्णन करूं, सुनहु भविक धरि प्रेम ॥ १ ॥

अर्थ—अब आश्रवके अधिका स्वरूप यथावत् (जैसा है तैसा) कह्या। अब संवरका स्वरूप कहूंहूं सो भविजन हो तुम प्रेम धरिके श्रवण करो ॥ १ ॥

॥ अब संवर द्वारके आदिमें, ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आश्रव महातम अखंड अंडवत है ॥
ताको विसतार गिलिवेकों परगट भयो, ब्रहमंडको विकाश ब्रहमंडवत है ॥
जामें सब रूप जो सबमें सब रूपसों पैं, सबनिसों अलिप्त आकाश खंडवत है ॥
सोहै ज्ञानभान शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत है ॥२॥

अर्थ—आत्माका अहित करनेवाला अर आत्म स्वरूप रहित ऐसे, आश्रवरूप महा अंधःकारने अखंड अंडाके समान् जगतके सर्व आत्माकूं सब तरफते घेर राख्या है। तिस अंधःकारकें विस्तारका नाश करनेकूं प्रत्यक्ष ज्ञानका प्रकाश ब्रह्मांड (सूर्य) वत् है, सो समस्त ब्रम्हांड (त्रैलोक्य) कूं प्रकाश करनेवाला है। तिस ज्ञानमें समस्त पदार्थोंके आकार झलके है अर आपहूं सब पदार्थोंके आकाररूप होय रहे है, तथापि समस्त पदार्थोंसे आकाशके प्रदेश समान् अलिप्त है। सो ज्ञानरूप सूर्य शुद्ध संवरको भेष धरे है, तिसके प्रकाशकूं हमारो दंडवत है ॥ २ ॥

॥ अब ज्ञानसे जड अर चेतनका भेद समझे तथा संवर होय है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ २३ सा ॥—

शुद्ध सुछंद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा ॥
अंतर भेद स्वभाव विभाव, करे जड चेतन रूप दुफारा ॥
सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचे तिन्हको परसंग सहारा ॥
आतमको अनुभौ करि ते, हरखे परखे परमातम धारा ॥ ३ ॥

अर्थ—यो ज्ञान है सो शुद्ध कहिये पर स्वभाव रहित है अर स्वछंद कहिये आपका स्वरूप बतावनहार है अर अभेद कहिये एकरूप है इसमें कोई दुसरा रूप नहि है अर अबाधित कहिये प्रमाणते अर नयते बाधा नहि पावे ऐसा अखंडित है, तिस भेद ज्ञानकूं कमोतके समान् तीक्ष्णा आरा है। तिस आराते स्वस्वभावका अर परस्वभावका भेद होय है, तथा अनादि कालते मिल्या हुवा देह अर आत्मा तिनका दुफारा करे है । ऐसा भेद करनहारा ज्ञान जिसके हृदयमें उपज्या है, तिसकूं देहादिक पर वस्तुके संगका साह्य नहि रुचे है। सोही जीव आत्मानुभवके रुचि करि हर्षित होय है, तथा परमात्माके धारा (स्वरूप) की परिक्षा करे हैं ॥ ३ ॥

॥ अब सम्यक्तके सामर्थ्यते सम्यग्ज्ञानकी अर आतमस्वरूपकी प्राप्ति होय है सो कहे है ॥ २३ सा ॥—

जो कबहूं यह जीव पदारथ, औसर पाय मिथ्यात मिटावे ॥
सम्यक् धार प्रवाह वहे गुण, ज्ञान उदै मुख ऊरध धावे ॥
तो अभिअंतर दर्वित भावित, कर्म कलेश प्रवेश न पावे ॥
आतम साधि अध्यातमके पथ, पूरण व्है परब्रह्म कहावे ॥ ४ ॥

अर्थ—जो कबहूं यह जीव काललब्धि पाय द्रव्य मिथ्यात्वकूं अर भाव मिथ्यात्वकूं मिटावे है तथा सम्यक्तरूप जलकी धारामें प्रवाहरूप वहे है तब ज्ञान गुण उदय (प्राप्त) होय उर्ध्व लोक (मुक्ति) के सन्मुख गमन करे है। तिस ज्ञानके प्रभाव करि अभ्यंतर द्रव्यकर्मके अर भावकर्मके क्लेशका प्रवेश नहि होय है। ताते आत्माकी शुद्धि होनेका साधन समभाव धारण कर आत्मानुभवका अभ्यास करे है तब आत्म स्वरूपकी परिपूर्ण प्राप्ति होय परब्रह्म कहावे है ॥ ४ ॥

॥ अब संवरका कारण सम्यक्त्व है ताते सम्यक्दृष्टिकी महिमा कहे है ॥ २३ सा ॥—

भेदि मिथ्यात्वसु वेदि महा रस, भेद विज्ञान कला जिनि पाई ॥
जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों जु पराई ॥
उद्धत रीत वसे जिनिके घट, होत निरंतर ज्योति सवाई ॥
ते मतिमान सुवर्ण समान्, लगे तिनकों न शुभाशुभ काई ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मिथ्यात्वकूं नाश करके उपशमके महारसके उदयते भेदज्ञान कलाकूं प्राप्त हुवा है। अर जो भेदज्ञानतें आत्मस्वरूपकी प्राप्ति करके ज्ञान दर्शन अर चारित्ररूप महिमाकूं धारण करे है तथा हृदयमेंसे देहादिकके ममताका त्याग करे है। अर देशव्रत तथा महाव्रत संयमव्रत उंची क्रिया स्फुरायमान् होय निरंतर तप करके आत्मज्ञान ज्योति सवाई प्रगट हुई है। सो भेदज्ञानी जीव सुवर्ण समान् निःकलंक है तिनको शुभ अर अशुभ कर्मका कलंक काई नहि लगे है ताते सहज संवर होय है ॥५॥

॥ अब भेदज्ञान है सो संवरको तथा मोक्षको कारण है ताते भेदज्ञानकी महिमा कहे है ॥ अडिल्ल ॥—

भेदज्ञान संवर निदान निरदोप है। संवर सो निरजरा अनुक्रम मोक्ष है ॥

भेदज्ञान शिव मूल जगत महि मानिये । जदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥ ६ ॥

अर्थ—भेदज्ञान है सो निर्दोष है तथा संवरको मूल कारण है, अर संवर है सो निर्जराका कारण है अर निर्जरा है सो मोक्षका कारण है । इस अनुक्रम प्रमाणे मोक्षका कारण परंपराते भेदज्ञानही जगतमें है, यद्यपि शुद्ध आत्मस्वरूपकी अपेक्षासे भेदज्ञान हेय (त्यागने योग्य) है तद्यपि जबतक निर्विकल्प शुद्ध आत्म स्वरूपकी प्राप्ति नहि होय है तबतक नय अपेक्षासे उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है सो जानना ॥ ६ ॥

॥ अब आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होय तब भेदज्ञान त्यागने योग्य है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

भेदज्ञान तबलौं भलो, जबलौं मुक्ति न होय ।
परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥ ७ ॥

अर्थ—भेदज्ञान तबतकहूं भला है की, जबतक मुक्ति न होय है । अर जहां परम ज्योति (शक्ति) प्रगट होय है, तहां कोई विकल्प रहे नही, तो भेदज्ञान कैसे रह शके ॥ ७ ॥

॥ अब मुक्तिको उपाय भेदज्ञान है तातै भेदज्ञानकी महिमा कहे है ॥ चौपाई ॥—

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो । सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेदज्ञान जिन्हके घट नांही । ते जड जीव बंधे घट मांही ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस जीवकूं भेदज्ञान रूप संवरकी प्राप्ति भई, तेही जीव शिव (मुक्त) रूप कहावे है जाकूं मुक्त हुवाही समझना । अर जिसके हृदयमें भेदज्ञान नही, ते मूर्ख देहपिंडमेंही बंधायलो रहे है ॥ ८ ॥

॥ अब भेदज्ञानसे आत्माकी महिमा बढे है सो कहे है ॥ दोहा—

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर । धोवी अंतर आतमा, धोवे निजगुण चीर ॥ ९ ॥

अर्थ—भेदज्ञान जे है सो साबू है अर समताभाव है सो निर्मल नीर है अर अंतर (सम्यक्ती) आत्मा है सो धोबी है सो धोबी आत्माके गुणरूप वस्त्रकूं सदा धोवे है ॥ ९ ॥

॥ अब भेदज्ञानकी जो क्रिया (कर्तव्यता) है सो दृष्टांत ते कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे रज सोधा रज सोधिके दरव काढे, पावक कनक काढे दाहत उपल को ॥
पंकके गरभमें ज्यो डारिये कुतक फल, नीर करे उज्जल नितोरि डारे मलको ॥
दधिके मथैया मथि काढे जैसे माखनको, राजहंस जैसे दूधपीवे त्यागि जलको ॥
तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञानकी शकति साधि, वेदे निज संपत्ति उछेदेपर दलको ॥ १० ॥

अर्थ—जैसे रजका शोधनेवाला झारेकरि रजकूं शोधि सोना रूपादिक द्रव्य न्यारा न्यारा काढे है, अथवा जैसे अग्नि पाषाणकूं दग्धकरि सुवर्ण न्यारा काढे है । अथवा जैसे कर्दममें कुतल फल डारेहे, तब नीरकूं उज्जल करे है अर मलकूं निचोर डारे है । अथवा जैसे दहीके मथनहार दहीकूं मथन करि माखण न्यारा काढे है, अथवा जैसे मिल्या हुवा जल अर दुधकूं राजहंसपक्षी जलकूं छांडि दूध पीवे है । तैसे (उपरके ५ दृष्टांत माफिक) जे ज्ञानवंत है ते भेदज्ञानके शक्तिते आत्माके ज्ञान संपत्तीको ग्रहण करे है, अर पुद्गलके दल जे राग तथा द्वेषादिक है तिनको त्याग करे है ॥ १० ॥

॥ अब मोक्षका मूल भेदज्ञान है सो कहे है ॥ छपै छंद ॥—

प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुण जाने । पर परणति परित्याग, शुद्ध अनुभौ थिति ठाने । करि अनुभौ अभ्यास, सहज संवर परकासे । आश्रव द्वार निरोधि,

कर्मघन तिमिर विनासे। क्षय करि विभाव समभाव भजि, निरविकल्प निज
पद गहे। निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, परम अतींद्रिय सुखलहे ॥ ११ ॥

अर्थ—भेदज्ञान है सो प्रत्यक्ष आत्माके गुण अर देहादिकके गुण जाने है। अर देहादिकमें पूर्वे जो आत्मपणा माना था ताकूं त्याग कर शुद्ध आत्मानुभवमें स्थिर रहे है। फेरि अनुभवका अभ्यास करे है ताते सहजही संवरका प्रकाश होय है। अर संवरका प्रकाश होते आश्रवके द्वार जे ५ मिथ्यात्व १२ अविरत २५ कषाय १५ प्रमाद अर १५ योग है तिनका निरोध करे है, ताते कर्मरूप महा अंधकारका क्षय होय है। अर राग द्वेष तथा मोह इस परस्वभावका क्षय करि साम्यभावका अवलंबन कर निर्विकल्प आपने निजपद (मोक्ष) कूं धारण करे है। तहां निर्मल शुद्ध अनंत अर स्थिर ऐसे परम अतिंद्रिय सुख लहे है ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको छट्ठो संवरद्वार बालबोध सहित समास भयो ॥ ६ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको सप्तम निर्जरा द्वार प्रारंभ ॥ ७ ॥

॥ अब ज्ञानभाव को नमस्कार निर्जराका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥ चौपई ॥—

वरणी संवरकीदशा, यथा युक्ति परमाण । मुक्ति वितरणी निर्जरा, सुनो भविक धरि कान ॥
जो संवर पद पाइ अनंदे । सो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥
जो अफंद व्है वहुरि न फंदे । सो निर्जरा वनारसि वंदे ॥ १ ॥

अर्थ—जो ज्ञान संवररूप अवस्था धारण कर आनंद करे है, अर जो पूर्वे अज्ञान अवस्थामें वांधे कर्मकूं जड सहित उखाडे है । तथा जो रागद्वेषादिक भावकर्मके फंदकूं छोडि फेर तिस फंदमें नहि फसे है तिसका नाम निर्जरा है, तिस ज्ञानरूप निर्जरा भावकूं वनारसीदास वंदना करे है ॥ १ ॥

॥ अब निर्जराका कारण सम्यक्ज्ञान है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥ सोरठा ॥—

महिमा सम्यक्ज्ञानकी, अरु विराग वलजोय ॥
क्रिया करत फल भुंजते, कर्मवँध नहि होय ॥ २ ॥
पूर्व उदै संवंध, विषय भोगवे समकिती ॥
करे न नूतन वंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्यक् ज्ञानते जे कर्म तूटे है तिस कर्मका फेर वंध नहि होय है यह सम्यक्ज्ञानकी महिमा है, अर सम्यक्ज्ञानके साथ साथही वैराग्यका बल उत्पन्न होय है । तिस कारणते सम्यक्ज्ञानी शुभ अर अशुभ क्रिया करे तोहूं तथा पूर्वकृत कर्मका दीया शुभ अर अशुभ फल (विषय) भोगवे है तोहूं, ज्ञानीकूं कर्मका नवा बंध नहि होय है यह सम्यक्ज्ञानके वैराग्यकी महिमा है ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ अव सम्यक्ज्ञानी भोग भोगवे है तोहूं तिसकूं कर्मका कलंक नहि लगे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म, कौतूकि कहावे तासो कोन कहे रंक है ॥
जैसे व्यभिचारिणी विचारे व्यभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित्त बंक है ॥
जैसे धाई बालक चुंघाई करे लालपाल, जाने तांहि औरको जदपि वाके अंक है ॥
तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठाने, कीरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥४॥

अर्थ—कोई राजा ठठ्ठा मस्करीते भाट सारिखा स्वांग धरे तो, तिस राजाकूं कौतुकी कहवाय पण कोई रंक नही कहे है। अथवा जैसे व्यभिचारिणी स्त्री भर्तारके पास रहे पण तिसका चित्त व्यभिचार करनेमें रहे है, ताते व्यभिचारिणी स्त्रीका जारसे प्रेम रहें अर भर्त्तासे अरुचि रहे है। अथवा जैसे कोई धाई स्त्री होय सो पराया बालककूं स्तनपान अर लालन पालन करे तथा गोदमें लेके बैसे है, पण तिस बालककूं परकाही माने है। तैसे (इन तीन दृष्टांतके समान्) सम्यक्ज्ञानीहूं नाना प्रकारकी शुभ अर अशुभ क्रिया कर्मके उदय माफिक करे है परंतु तिस समस्त क्रियाकूं आपने आत्म स्वभावसें भिन्न पुद्गलरूप माने है ताते ज्ञानीकूं कर्मका कलंक नहि लगे है ॥ ४ ॥ पुनः ॥—

जैसे निशि वासर कमल रहे पंकहीमें, पंकज कहावे पैं न वाके ढीग पंक है ॥
जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी शकति वाके विना विष डंक है ॥
जैसे जीभ गहे चिकनाइ रहे रूखे अंग, पानीमें कनक जैसे कायसे अटंक है ॥
तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठाने, कीरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥५॥

अर्थ—जैसे कमल रात्रदिन पंक (चीकड) में रहे है, अर पंकते उत्पन्न होय है ताते पंकज कहावे है तो पण कमलकूं चिकड लगे नही है। अथवा जैसे मंत्रवादी गारुडी होय सो आपने हातसे सर्पकूं पकड कर चवावे है, पण मंत्रके शक्तीसे सर्पका विष गारूडीके शरीरकूं लगे नही है। अथवा जैसे जीभ घृत दुग्धादिक चिकण पदार्थ भक्षण करे है पण जीभकूं चिकणाई लगे नही है, अथवा जैसे सुवर्ण बहुत दिनपर्यंत पानीमें रखे तोहूं सोनेकूं कीड लगे नही है। तैसे सम्यक्ज्ञानीहूं नाना प्रकारकी शुभ अर अशुभ क्रिया कर्मके उदय माफिक करे है, परंतु तिस समस्त क्रियाकूं आपने आत्म स्वभावते भिन्न पुद्गलरूप माने है ताते ज्ञानीकूं कर्मका कलंक नहि लगे है ॥ ५ ॥

॥ अव सम्यक्ती है सो ज्ञान अर वैराग्यकूं साधे है सो कहे है ॥ सवैया २३ ॥—

सम्यक्वंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुण धारे ॥
जासु प्रभाव लखे निज लक्षण, जीव अजीव दशा निरवारे ॥
आतमको अनुभौ करि स्थिर, आप तरे अर औरनि तारे ॥
साधि स्वद्रव्य लहे शिव सर्मसों, कर्म उपाधि व्यथा वमि डारे ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यक्ती है सो सदाकाल अपने अंतःकरणमें ज्ञान अर वैराग्य इस दोनूं गुणकूं धारण करे है। तिस गुणके प्रभावते अपने ज्ञानचेतना लक्षणकूं देखे है अर ये जीव अनादि कालसे देहादिक पर वस्तुकूं अपना मानि रह्याथा तिस हठकूं छोडे है अर पृथक् जाने है। तथा आत्माका अनुभव करि स्वस्वरूपमें स्थिर होय संसार समुद्रते आप तिरे हैं अर सत्य उपदेश देय औरनिकूंहूं तारे है। ऐसे आत्मतत्वकूं साधि कर्मके उपाधिका क्षय कर सम्यक्ती मोक्षके सुखकूं लहे हैं ॥ ६ ॥

॥ अब विषयके अरुचि विना चारित्रका वल निष्फल है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जो नर सम्यक्वंत कहावत, सम्यक्ज्ञान कला नहि जागी ॥
आतम अंग अबंध विचारत, धारत संग कहे हम त्यागी ॥
भेष धरे मुनिराज पटंतर, अंतर मोह महा नल दागी ॥
सून्य हिये करतूति करे परि, सो सठ जीव न होय विरागी ॥ ७ ॥

अर्थ—जो मनुष्य आपकूं सम्यक्ती कहावे है, पण तिसकूं सम्यक्तका अर ज्ञानका गुण प्रासही हुवा नही है। सो मनुष्य निश्चय नयका पक्ष ग्रहण करि आपकूं अबंध (बंध रहित) माने है, अर देहादिक पर वस्तूमें ममत्व राखे है अर कहे है हम त्यागि है। मुनिराज समान् भेषहूं धारण करे है, पण अंतरंगमें मोहरूप महा अग्नि धगधगी रही है। सो जीव हृदय सून्य (ज्ञान रहित) हुवा मुनिराज समान क्रिया करे है, तथापि तो मूढ विषयसे वैरागी नहि होय है ताते तिनकूं द्रव्यलिंगी मुनीही कहीये है ॥ ७ ॥

॥ अब भेदज्ञान विना समस्त क्रिया (चारित्र) असार है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ग्रंथ रचे चरचे शुभ पंथ, लखे जगमें विवहार सुपत्ता ॥
साधि संतोष अराधि निरंजन, देइ सुशीख न लेइ अदत्ता ॥
नंग धरंग फिरे तजि संग, छके सरवंग मुधा रस मत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पैं, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ८ ॥

अर्थ—ग्रंथकी रचना करे धर्मकी चरचा करे अर शुभ अशुभ क्रियाकूंहूं जान है, तथा जगतमें

व्यवहार साचा रखे है। संतोष समाधानीसे रहे अर निरंजन (सर्वज्ञ वीतराग देव) की भक्ति करे, अन्य जीवोंको भला उपदेशहूं देवे है तथा अदत्तका धन नहि लेवे है। समस्त परिग्रहकूं छोडि नंग (दिगंबर) होय फिरे है, आत्मानुभव विना देहको कष्ट सहे है। ऐसी ऐसी क्रिया करे है परंतु, अनात्मसत्ता (राग द्वेष अर मोह) तथा आत्मसत्ता (शुद्धज्ञान चैतन्य) इन दोनूकूं भिन्न भिन्न नहि समुझे है ताते मूढ कहवाय ॥ ८ ॥

ध्यान धरे करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिने निज नत्ता ॥
त्यागि विभूति विभूति मढे तन, जोग गहे भवभोग विरत्ता ॥
मौन रहे लहि मंद कषाय, सहे वध वंधन होइ न तत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पैं, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ९ ॥

अर्थ—नाना प्रकारका आसन लगाय ध्यान धरे है तथा इंद्रिय दमन करे है अर देहके प्रीतिका नाता छोडदे है। धन संपदका त्याग करे तथा स्नान करे नहि ताते शरीरकूं धूल लिप्त हो रही है, त्रिकाल प्राणायामादि योग साधन करे है तथा संसार देह भागते विरक्त हो रहे है। मौन धारण करि कषाय मंद करे है, अर वध बंधनकूं सहन करे है पण अंतरंगमें तप्त नहि होय है। ऐसी ऐसी क्रिया करे है परंतु, अनात्मसत्ता अर आत्मसत्ता भिन्न भिन्न नहि समुझे है ताते मूढ कहवाय ॥ ९ ॥

चौ०—जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहे। जो विन क्रिया मोक्षपद चाहे ॥
जो विन मोक्ष कहे मैं सुखिया। सो अजान मूढनिमें मुखिया ॥ १० ॥

अर्थ—जे जीव मिथ्यात्व छोडे विना सम्यक्तकी इच्छा करे अर सम्यक्त विना ज्ञानकी प्राप्ति माने है। अथवा ज्ञानविना चारित्र धारण करे तथा चारित्र विना मोक्ष पद चाहें अर मोक्ष विना आपकूं सुखी कहे है ते जीव मूढमें मुख्य महामूढ है ॥ १० ॥

॥ अब गुरु उपदेश करे पण मूढ नही माने तिस ऊपर चित्रका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश करे, तुह्मे इहां सोवत अनंत काल वीते है ॥
जागो व्है सचेत चित्त समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्ष रस जीते है ॥
आवो मेरे निकट बताउं मैं तिंहारे गुण, परम सुरस भरे करमसों रीते है ॥
ऐसे बैन कहे गुरु तोउ ते न धरे उर, मित्र कैसे पुत्र किधो चित्र कैसे चीते है ॥ ११ ॥

अर्थ—जगवासी जीवनिकूं सद्गुरु उपदेश करे है, अहो संसारी जीव हो ? तुह्मे अनंतकाल हो गये इस जगतमें मोह निद्राविषै सूते हो। अबतो जागो अर चित्तमें सचेत होयके समतासे केवली भगवान्‌का हितकर उपदेश सुनो, तिसमें आत्मानुभवका मोक्षोपदेश है। हे भव्य ? तुम मेरे पास आवो तुमकौ मैं परम रसते भरे अर कर्मते रहित ऐसे आत्माके गुण बताउंहूं, इस प्रकार सद्गुरु कहे तोहूं संसारी जीव चित्तमें धरे नही, मित्रके पुत्र समान अथवा चित्रके मनुष्य समान कार्य करनेमें असमर्थ होय है ॥ ११ ॥

ऐतेपर पुनः सद्गुरु, बोले वचन रसाल। शैन दशा जाग्रत दशा, कहे दुहूंकी चाल ॥१२॥

अर्थ—पुनः सद्गुरु दयाल होके बोले हे शिष्य ? तुमकूं शयन दशाका अर जाग्रत दशाका स्वरूप कहूंहूं ॥ १२ ॥

॥ अब जीवके शयन दशाका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

काया चित्र शालामें करम परजंक भारि, मायाकि सवारि सेज चादर कलपना ॥
शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर, विषै सुख कारीजकि दोर यहै सपना ॥
ऐसे मूढ दशामें मगन रहे तिहुं काल, धावे भ्रम जालमें न पावे रूप अपना ॥१३॥

अर्थ—देहरूप महल है तिसमें कर्मरूप विस्तीर्ण पलंग है, तिस ऊपर मायारूप सेज (गद्दी) पसारी है अर कल्पनारूप चादर है। ऐसे गहन सामग्रीमें आत्मा शयन करे है तहां स्वस्वरूपकी भूलरूप नींद लेय है, तिस नींदमें मोहरूप लोचनका ढकना है। अर पूर्व कर्मके उदयका बलरूप श्वासका घोरना है, तथा विषय सुखके कार्योंकूं दौडना येही स्वप्न है। देहरूप महलसे विषय सौख्यरूप स्वप्न पर्यंत जो स्थिति कही इसीकाही नाम शयन दशा अथवा मूढ दशा है हे शिष्य ? संसारी जीव है सो ऐसे मूढ दशामें तिहुं काल मग्न हो रहा है, अर भ्रम जालमें दौडता फिरे है परंतु अपने आत्माके स्वरूपकूं नाहि देखे है ॥ १३ ॥

॥ अब जीवके जाग्रत दशाका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चित्रशाला न्यारि परजंक न्यारी सेज न्यारि, चादरभि न्यारि इहां झुठी मेरी थपना ॥
अतीत अवस्था सैन निद्रा वाहि कोउ पैं, न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥
श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझे सब अंग लखि आतम दरपना ॥
त्यागि भयो चेतन अचेतनता भाव छोडि, भाले दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—हे शिष्य ? आत्माकूं जब सम्यक्ज्ञान पावे है तब देहरूप मंदिर, कर्मरूप पलंग, मायारूप शैय्या, कल्पनारूप चादर अर आत्माका शयन ये सर्व न्यारो तथा झूठ दीखने लग जाय है। अर अतीत कालमें शयन दशामें निद्रा लेनेवाला कोई दूजा रूप में मैं था, पण अब वर्तमान कालमें एक पलकभी इस निद्रामें नांहि छिपूगा। कर्मके उदयका बलरूप श्वासका घोर अर विषयसौख्यरूप स्वप्न येही स्वस्वरूपके भूलरूप नींदके संयोगते दीखे है, अब मेरेकूं सम्यक्ज्ञान भया है ताते ज्ञानरूप आरसेमें आत्माके समस्त गुणरूप अंग दीखे है। ऐसे अचेतनरूप निद्राकूं आत्मा छोडे है, तब ज्ञानरूप दृष्टि खोलिके अपने आत्माके स्वरूपकूं देखे है ॥ १४ ॥

॥ अब शयन दशाका अर जाग्रत दशाका फल कहे है ॥ दोहा ॥—

इहविधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव। जे सोवहि संसारमें, ते जगवासी जीव ॥ १५॥
जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप। जिहि पद परसत और पद, लगे आपदा रूप ॥ १६॥

अर्थ—ऐसे जे जीव आत्मानुभव करके जाग्रत भये है, ते सदा मोक्ष स्वरूपी ही है। अर जे अचेत होके संसारमें सोवे है, ते जगतमें सदा जन्म मरण करते फिरे है ॥ १५ ॥ आत्मानुभव पद है ते संसारपदके भय हरे है, सो अनुपम आत्मानुभव पद सेवन करहूं। तिस पदका स्पर्श होतेही, अन्य समस्त इंद्रादिकपद आपदा (भय) रूप लागे है ॥ १६ ॥

॥ अब संसारपदका भय तथा झूटपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जब जीव सोवे तव समझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागे जब जागे नींद खोइके ॥
जागे कहे यह मेरो तन यह मेरी सोज, ताहुं झूठ मानत मरण थिति जोइके ॥

जाने निज मरम मरण तब सूझे झूठ, बूझे जब और अवतार रूप होइके ॥
वाही अवतारकि दशामें फिर यहै पेच, याहि भांति झूठो जग देखे हम ढोइके ॥१७॥

अर्थ—जब जीव सूतो होय तब स्वप्न लगे तिस तिस स्वप्नकूं नींदमे सत्य समझे अर नींदसे जागो होय तब वो स्वप्न झूठा माने है। अर देहादिक सकल सामग्रीकूं मेरी मेरी कहे है, परंतु अपने मरणका विचार सूजे तव देहादिक सकल सामग्रीकूं हूं झूठ माने है। अर आत्मस्वरूपका मर्म जाने तब मरण पण झूठ दीखे है और दुसरा जन्म लेय तब फेर ऐसेही जाने है। सूता–जागता, साचा–झूठा इत्यादि पेच आगली रीतेज लागे रहे है, ऐसे वारवार जन्म लेना अर मरणा है सो चौकसी करि देख्या तो सब जगत झूठाही झूठा दीखे है ॥ १७ ॥

॥ अब ज्ञाता कैसी क्रिया करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि, दुंदुज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ॥
मति श्रुति अवधि इत्यादि विकलप मेटि, नीरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥
इंद्रिय जनीत सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमके रूप व्हे करम निर्जरतु है ॥
सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १८ ॥

अर्थ—पंडितजन है सो भेदज्ञानते आत्माकी ऐक्यता राखे है, अर प्रथम अज्ञान अवस्थामें देहादिककूं आत्मरूप जाननेकी द्वंददशा (अनेकता) थी ताकूं दूर करे है। तथा मति श्रुति अवधि इत्यादि ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशम जानित विकल्पकूं मिटावे है, अर निर्विकल्प केवलज्ञानकूं मनमें धारण करे है। इंद्रिय जनित सुखदुःखसे विमुख होयहै, अर शुद्ध आत्मानुभवते कर्मकी निर्जरा करे

है। सोही आत्मध्यानकी सहज समाधि साधि कर्म जनित उपाधी (राग द्वेष अर मोह) कूं छोडे है, अर आत्माकी आराधना कर परमात्मरूप होय है ॥ १८ ॥

॥ अव ज्ञानते परमात्माकी प्राप्ति होय है तिस ज्ञानकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ ॥ सा ॥—

जाके उर अंतर निरंतर अनंत द्रव्य, भाव भासि रहे पैं स्वभाव न टरत है ॥
निर्मलसों निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करत है ॥
जाने मति श्रुति औधि मनपर्यै केवलसु, पंचधा तरंगनि उमंगि उछरत है ॥
सो है ज्ञान उदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरत है ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानरूप समुद्रमें अनंत द्रव्यके स्वभाव (गुण अर पर्याय) भासे है, तोहूं पण तिस द्रव्यके स्वभावरूप आप होय नही अर आपने जानपणाके स्वभावकूं छोडे नही है। अर ज्ञान-समुद्रमें सबते निर्मल आत्म द्रव्य प्रत्यक्ष है, अर अक्षीण आत्मरस क्रीडा करे है। अर जिसमें मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, अर केवल ये पांच ज्ञान है, इनके तरंग उछलि रहे है। ऐसा ज्ञानरूप समुद्र है सो उदार अर अपार महिमावान् है, तथा कोईके आधार नही है एकरूप है तथापि ज्ञातापणामें अनेकता धरे है ॥ १९ ॥

॥ अव ज्ञान विना मोक्षप्राप्ति नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

केई क्रूर कष्ट सहे तपसों शरीर दहे, धूम्रपान करे अधोमुख व्हैके झूले है ॥
केई महा व्रत गहे क्रियामें मगन रहे, वहे मुनिभार पैं पयार कैसे पूले है ॥

इत्यादिक जीवनिकों सर्वथा मुकति नांहि, फीरे जगमांहि ज्यों वयारके वघूले है ॥
जीन्हके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरवाण, करमके करतार भरममें भूले हैं ॥ २० ॥

अर्थ—केई क्रूरपरिणामी शरीरकूं नाना प्रकार कष्ट सहन करे है अर पंचाग्नि तप करिके शरीरकूं दग्ध करे है, तथा केई धूम्रपान करे है अर केई नीचा मुख ऊपर पग करि झूले है। केई पंचमहाव्रत धारण करि तपश्चरणादिक क्रियामें मग्न रहे है, तथा परिषहादिक सहन करे है परंतु ज्ञान विना परालके घासके पूले समान निःसार है। इत्यादिककूं ज्ञानविना सर्वथा मुक्ति नहि है, ते अज्ञानी जगतमें चतुःगतीविषै जन्म मरण करते फिरे है जैसे पवनका बभूला नीचा उंचा फिरे है कहां ठिकाणा नही पावे तैसे। अर जिन्हके हृदयमें सम्यक्ज्ञान है तिन्हहीकूं निर्वाण है, अर जे केवळ क्रिया करणहारे है ते भ्रममें भूले है ॥ २० ॥

लीन भयो व्यवहारमें, उक्ति न उपजे कोय। दीन भयो प्रभुपद जपे, मुक्ति कहाते होय ॥२१॥
प्रभु सुमरो पूजा पढो, करो विविध व्यवहार। मोक्ष स्वरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥२२॥

अर्थ—जो क्रियामें मग्न हुवा है तिसकूं निज परका भेदरूप ज्ञान नाहि होय है। अर दीन होय प्रभुपद (मुक्तिपद) की इच्छा करे है पण आत्मानुभव विना मुक्ति कहाते होय ? ॥ २१ ॥ प्रभूका स्मरण करो, पूजा करो, स्तुति पढो अथवा औरहूं नाना प्रकार चारित्र करो। परंतु मोक्ष स्वरूपी आत्माका अनुभव ज्ञानके आधीन है ॥ २२ ॥

॥ सवैया २३ सा ॥—

काजविना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण मांहि न झूझे ॥
डील विना न सधे परमारथ, सील विना सतसो न अरूझे ॥

नेम विना न लहे निहचे पद, प्रेम विना रस रीति न बूझे ॥
ध्यान विना न थंभे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझे ॥ २३ ॥

अर्थ—अब इहां दृष्टांत बतावे है की जैसे कार्य विना संसारी जीव उद्यम करे नही, अर लोक लाज विना रण संग्राममें कोई झूंझे नही। मनुष्यदेह धारण करे विना मोक्षमार्ग सधे नही अर शील स्वभाव धरे विना सत्यका मिलाप होय नही। संयम (दीक्षा) धारे विना मोक्षपद मिले नही, अर प्रेम विना आनंद रस उपजे नही। ध्यान विना मनकी गति थंभे नही, तैसे ज्ञान विना मोक्षमार्ग (आत्मानुभव) सूझे नही ॥ २३ ॥

॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्ञान उदै जिन्हके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत न मैली ॥
बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यानकला विधि फैली ॥
जे जड चेतन भिन्न लखेसों, विवेक लिये परखे गुण थैली ॥
ते जगमें परमारथ जानि, गहे रुचि मानि अध्यातम सैली ॥२४॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें सम्यग्ज्ञानका उदय हुवा है, तिन्हकी आत्मज्योती जाग्रत रहके बुद्धि मलीन नहि होय है। तथा तिनका देहसे ममत्व छूटके हृदयमें आत्मध्यानका विस्तार होय है। ज्ञानी है ते देहकूं अर चेतनकूं भिन्नाभिन्न जाने है अर देहके तथा चेतनके गुणकी परीक्षा करे है। अर रत्नत्रयकूं जानि तिनकूं रुचिसे अंगिकार करे है तथा अध्यात्म सैली (आत्मानुभव)कूं मान्यता करे है ऐसे ज्ञानकी महिमा है ॥ २४ ॥

॥ अब ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥—

बहुविधि क्रिया कलापसों, शिवपद लहे न कोय । ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय॥२५॥
ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार । निजनिज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार॥२६॥

अर्थ—नाना प्रकार बाह्य क्रियाके क्लेशते मोक्षपद मिले नही, अर सम्यग्ज्ञान कलाके प्रकाशते सहज (विना क्लेशते) मोक्षपद मिले है ॥ २५ ॥ ज्ञानकला तो समस्त जीवके घटघटमें वसे है पण मन वचन अर देह इनते अगम्य है । ताते अपनी अपनी ज्ञानकला आपही जाग्रत करके जन्ममरणते मुक्त होहु ऐसा समस्त जीवकूं सद्गुरुका उपदेश है ॥ २६ ॥

॥ अब अनुभवते मोक्ष होय है ताते अनुभवकी प्रशंसा करे है ॥ कुंडलीया छंद ॥—

अनुभव चिंतामणि रतन, जाके हिये परकास ॥ सो पुनीत शिवपद
लहे, दहे चतुर्गति वास ॥ दहे चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मंडे ॥
नूतन बंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहंडे ॥ ताके न गिणु विकार, न गिणु
बहु भार न गिणु भव ॥ जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामणि अनुभव ॥२७॥

अर्थ—जिसके हृदयमें अनुभव चिंतामणी रत्नका प्रकाश हुवा है । सो पवित्र जीव चतुर्गतीका नाश करके मोक्षपदकूं लहे है । अनुभवी है सो इच्छा रहित चारित्र पाले है तिनते नवीन कर्मके बंधकूं रोकि पूर्वकृत कर्मकी निर्जरा करे है । ताते हे भव्य ? अनुभवी जीवके रागादिककूं तथा परिग्रहके भारकूं दोष मतगिणो ॥ २७ ॥

॥ अव अनुभवी ज्ञानीका सामर्थ्य कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके हियेमें सत्य सूरज उद्योत भयो, फैलि मति कीरण मिथ्यात तम नष्ट है ॥
जिन्हके सुदृष्टीमें न परचे विषमतासों, समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है ॥
जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधे, सघन निरोध जाके तनको न कष्ट है ॥
तिन्हके करमकी किलोल यह है समाधि, डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥२८॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें अनुभवरूप सत्य सूर्यका उदय हुवा है, सो उदय सुबुद्धिरूप किर्णका फैलाव करके मिथ्यात्वरूप अंधकारकूं नाश करे है। जिन्हके सुदृष्टीमें विषमता (राग अर द्वेष) का परिचय नहि रहे, अर समतासों प्रीति रहे तथा मोहममताकी प्रीति छोडे है। जिन्हको पलकमें मोक्षमार्ग सधे है, अर देहके कष्टविना सघन (मन) कूं जीते है तिन्ह अनुभवीका विषयभोग है सो समाधि है, रागद्वेषमें डोले है सो जोगासन है अर बोले है तो पण मौन्यव्रती है ऐसा अनुभवका सामर्थ्य है ॥२८॥

॥ अव सामान्य परिग्रहका अर विशेष परिग्रहका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आतम स्वभाव परभावकी न शुद्धि ताकों, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है ॥
ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलौं समुच्चैरूप कह्यो है ॥
अव निज पर भ्रम दूर करिवेको काज, बहुरी सुगुरु उपदेशको उमह्यो है ॥
परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है ॥ २९ ॥

अर्थ—जिसका मन परिग्रहमें मग्न हो रह्या है, तिसकूं आत्मस्वभावकी तथा पुद्गल स्वभावकी शुद्धि (स्मरण) नही रहे है। ऐसे अविवेकका निधान परिग्रहकी प्रीति है, तिस प्रीतिका समुच्चै त्याग

करना सो सामान्य परिग्रह त्याग कह्या है । अब स्व स्वरूपका अर पर स्वरूपका भ्रम दूर करनेके अर्थि, सद्गुरु उपदेश करनेको उमगी रह्या है। सो परिग्रह तथा परिग्रहके विशेष अंग कहे है अर शिष्य सचेत होके सुननेको लहलह्यो है ॥ २९ ॥

त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार। विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ३०

अर्थ—जितनी पर वस्तु है तितनी समस्त त्यागने योग्य है यह सामान्य परिग्रह त्यागका विचार है। अर अनेक प्रकारकी वस्तु है तिसकूं नाना प्रकार करि विरति (त्याग) करना यह विशेष विस्तार-रूप परिग्रह त्यागका विचार है ॥ ३० ॥

॥ अब परिग्रह होताहुं ज्ञाताकी परिग्रह ऊपर अलिप्तता रहे सो कहे है ॥ चौपई ॥—

पूरव करम उदै रस भुंजे। ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे ॥
मनमें उदासीनता लहिये। यों बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो ज्ञानमें तत्पर है सो पूर्वे बांध्या कर्मके उदय माफिक जैसा शुभ अथवा अशुभ कर्मका रस उपजे तैसा भोगवे है, पण तिस भोगमें तल्लिन होके प्रीति करे नही। तथा परिग्रहादिक भोगके संयोगमें अर वियोगमें हर्ष विषाद करे नही अर मनमें उदासीनतासे रहे है, ऐसे ज्ञानीकूं परिग्रहवंत नही कहिये ॥ ३१ ॥

॥ अब ज्ञानीका अवांछक गुण दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे जे मन वंछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब राखे न रहत है ॥
और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, ते ते विनासीक धाररूप व्है वहत है ॥

एकता न दुहो मांहि ताते वांछा फूरे नांहि, ऐसे भ्रम कारीजको मूरख चहत है ॥
सतत रहे सचेत परेसों न करे हेत, याते ज्ञानवंतको अवंछक कहत है ॥ ३२ ॥

अर्थ—जगतमें मन वांछित विलास करने योग्य जे जे भोग सामग्री है, ते ते समस्त नाशिवंत है अपने राखे नहि रहे है। अर भोगके अभिलाषरूप जे जे मनके परिणाम है, ते तेहूं चंचलरूप धारावाही नाशिवंत है। ए भोग अर भोगके परिणाम इन दोनूंसें एकता नहीं है अर विनश्वरपणा है ताते ज्ञानीकी भोगविषें इच्छा नहि होय है, ऐसे भ्रमरूप कार्यकू तो मूर्ख होय सो चाहे है। ज्ञानी तो निरंतर अपने आत्मस्वरूपमें सावधान रहे है अर पर वस्तुकी इच्छा नहि करे है, तातें ज्ञानवंतको निर्वांछक कहे है ॥ ३२ ॥

॥ अब सम्यक्ती परिग्रहते अलिप्त कैसा कहवाय ताका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे फिटकडि लोद हरडेकि पुट विना, स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें ॥
भीग्या रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नहि अंतर सुपेदी रहे चीरमें ॥
तैसे समकीतवंत राग द्वेष मोह विन, रहे निशि वासर परिग्रहकी भीरमें ॥
पूरव करम हरे नूतन न बंध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे स्वेतवस्त्र मजीठ रंगके नीरमें चिरकाल भिज्या रहे तोहूं। लोद फटकडी अर हरडे ये कषायले द्रव्य है इनका पूट दीये विना वस्त्र लाल होय नही, वस्त्रके अंतर रंग भेदे नहीं सुपेदही रहे। तैसे सम्यग्दृष्टी रात्रंदिन परिग्रहके भीरमें रहे, परंतु राग द्वेष अर मोह विना रहे हैं। तातें

तिनकूं नवीन कर्मका बंध होय नहीं अर पूर्वकर्मकी निर्जरा होय है, अर विषयसुखकी इच्छा नहि करे तथा शरीरमें मोह रखे नहीं तिस कारणते ज्ञानी परिग्रहते अलिप्त कहवाय ॥ ३३ ॥

॥ अव सम्यक्तीकूं संसारीक सुख दुःखकी उपाधि नहि लगे ताका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहु देसको वसैया बलवंत नर, जंगलमें जाइ मधु छत्ताकों गहत है ॥
वाकों लपटाय चहु ओर मधु मच्छिका पैं, कंवलकि ओटसों अडंकीत रहत है ॥
तैसे समकीति शीव सत्ताको स्वरूप साधे, उदेके उपाधीको समाधीसि कहत है ॥
पहिरे सहजको सनाह मनमें उच्छाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहत है ॥ ३४ ॥

अर्थ—जैसे कोई सशक्त मनुष्य जंगलमें जाय मधु छत्ताकूं निकाले है। तब चारि तरफ मक्षिका लपटाइ जाय है, परंतु कंबल वोढि राख्या है तातें तिसकूं मक्षिकाका डंक लगे नही । तैसे सम्यक्ती जीव मोक्षमार्गकूं साधे है, तब कर्मोदयकी अनेक सुख दुःखादि उपाधि आय लागे है, परंतु सम्यक्ती ज्ञान बकतर पहिरे है अर कर्मकी निर्जरा करनेका उच्छाह मनमें धारे है, ऐसे अनंत सुखमें तिष्ठे है ताते सम्यक्तीकूं उपाधीका खेद नहि होय है समाधीसी लागे है ॥ ३४ ॥

॥ अव ज्ञाताका अवंधपणा वतावे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोइ । चित्त उदास करणी करे, कर्मवंध नहिं होइ ॥३५॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास। मुक्ति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥३६॥

अर्थ—ज्ञानी है सो ज्ञानमें मग्न रहे है, तथा राग द्वेष अर मोहादिक दोषकूं छोड देवे है। अर जे जे संसारीक भोगोपभोगके कार्य है ते सब चित्तमें उदासीनरूप होय करे है, ताते ज्ञानीकूं कर्म-

बंध नहि होय है ॥ ३५ ॥ कैसा है ज्ञान? मोहरूप महा अंधकारकूं तो हरे है, अर सुबुद्धीक प्रकाश करके, मोक्षमार्गकूं प्रत्यक्ष बतावे है, ऐसे ज्ञानरूप दीपकका विलास है ॥ ३६ ॥

॥ अब ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जामें धूमको न लेश वातको न परवेश, करम पतंगनिकों नाश करे पलमें ॥
दशाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारकों वियोग जाके थलमें ॥
जामें न तताइ नहि राग रकताइ रंच, लह लहे समता समाधि जोग जलमें ॥
ऐसे ज्ञान दीपकी सिखा जगि अभंगरूप, निराधार फूरि पैं दूरि है पुदगलमें ॥३७॥

अर्थ—ज्ञानदीपकमें धूमका तो लेशही नही है अर जिसकूं बुझावनेकूं कोई पवन पण प्रवेश करे नहि, अर कर्मरूप पतंगका नाश एक पलमें करे है। जिसमें बत्तीका तथा घृत तैलादिकका प्रयोजन नही लगे है, मात्र जहां ज्ञानरूप दीपक है तहांही मोहरूप अंधकारका वियोग होय है। ज्ञानदीपकमें तप्तपणा तथा ललाई रंचमात्रही नही, अर समता समाधि अर ध्यान लह लहाट करे है। ऐसा जो ज्ञानरूप दीपक है तिसकी जोती सदा अभंग जाग्रत रहे है, सो जोती सर्व पदार्थोंका ज्ञान करनेकूं आधार है अर आप निराधार स्वयंसिद्ध आत्मामें स्फुरायमान है देहमें नही है ॥ ३७ ॥

॥ अब शंखका दृष्टांत देके ज्ञानकी स्वच्छता दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसो जो दरवतामें तैसाही स्वभाव सधे, कोउ द्रव्य काहूको स्वभाव न गहत है ॥
जैसे शंख उज्जल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसा न दीसे नित उज्जल रहत है ॥
तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहत है ॥
ज्ञानकला दूनी होइ द्वंददशा सूनी होइ, ऊनि होइ भौ थीति बनारसि कहत है ॥३८॥

अर्थ—जो जैसा द्रव्य है तिसमें तैसाही स्वभाव स्वयं सिद्ध है, कोई द्रव्य काहू अन्य द्रव्यका स्वभाव नहि ग्रहण करे है। जैसे शंख उज्जल है सो नाना प्रकारकी माटी भक्षण करे है, परंतु शंख माटी सदृश नहि होय है सदा उज्जलही रहे है। तैसे ज्ञानवंतहूं परिग्रहके संयोगते नाना प्रकारके भोग भोगे है, परंतु अज्ञानता नहि लहे है। ज्ञानीके ज्ञानकलाकी तो सदा वृद्धीही होय है अर भ्रमदशा दूर होय है, तथा भव स्थीति कमति होके अल्प कालमें संसारते मुक्त होय है ऐसे बनारसीदास कहे है ॥ ३८ ॥

॥ अब सद्गुरु मोक्षका उपदेश करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोलों ज्ञानको उद्योत तोलों नहि बंध होत, वरते मिथ्यात्व तव नाना बंध होहि है ॥
ऐसो भेद सुनीके लग्यो तूं विषे भोगनीसुं, जोगनीसुं उद्यमकि रीति तैं विछोहि है ॥
सूनो भैया संत तूं कहे मैं समकीतवंत, यहु तो एकंत परमेश्वरका द्रोहि है ॥
विषैसुं विमुख होहि अनुभौ दशा आरोहि, मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोहि है ॥३९॥

अर्थ—जबतक सम्यग्ज्ञानका उद्योत है तबतक कर्मबंध नहि होय है, अर जब मिथ्यात्व (अज्ञान) भावका उद्योत होय है तब नाना प्रकारका कर्मबंध होय है। ऐसे ज्ञानके महिमाका भेद कह्या सो सुनीके तूं [अथवा कोई] विषय भोगने लग जाय है, अर संयम ध्यानादिककूं तथा चारित्रकूं छोडे है। अर कहे है मैं सम्यक्ती है, सो हे भव्य ? यह तुम्हारा कहना एकांत मिथ्यात्वरूप है अर आत्माका द्रोही (अहित करणारा) है। ताते अब मेरी बात सुनो तुम विषय सुखते पराङ्मुख होके आत्माका अनुभव करी मोक्षका सुख देखो, ऐसी बुद्धि करना तुमको शोभे है ॥ ३९ ॥

॥ अब नेत्रका दृष्टांत देके ज्ञानकी अर वैराग्यकी युगपत् उत्पत्ती दिखावे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

ज्ञानकला जिसके घटजागी । ते जगमांहि सहज वैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुखमांही । यह विपरीत संभवे नांही ॥ ४० ॥

ज्ञानशक्ति वैराग्य बल, शिव साधे समकाल । ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखे दोऊ ताल ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सम्यग्ज्ञानके कलाका उद्योत भया है, ते तो जगतसे सहज वैरागी होय है । अर ज्ञानी होके विषयसुखमें मग्न रहे हैं, यह विपरीत बात संभवे नही ॥ ४० ॥ ज्ञान अर वैराग्य ए दोनूवस्तू एक कालमें उपजे है, अर इनके बलते मोक्ष साधे है । जैसे दोनूं नेत्र न्यारे न्यारे रहें है, तोहू पदार्थका देखना दोनू नेत्रते एक कालमेंही होय है ॥ ४१ ॥

॥ अब कीटकका दृष्टांत देके अज्ञानीके तथा ज्ञानीके कर्मबंधका विचार कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

मूढ कर्मको कर्त्ता होवे । फल अभिलाष धरे फल जोवे ॥
ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी । लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥ ४२ ॥

बंधे कर्मसों मूढ ज्यों, पाट कीट तन पेम । खुले कर्मसों समकिती, गोरख धंदा जेम ॥ ४३ ॥

अर्थ—मूढ है सो भोगकी इच्छा धरे है, फल जोवे है, ताते कर्मबंधका कर्ता होवे है । अर ज्ञानी है सो भोग भोगे है, पण उदासीनतासे भोगे है ताते तिनकूं नवीन कर्मका लेप होवे नही अर कृतकर्म खपी जाय है ॥ ४२ ॥ मूढ मिथ्यात्वी है सो नवीन नवीन कर्मका बंध करे है, जैसे रेशमका कीडा अपने मुखते तार काढि अपने शरीर उपर वेष्टन करे है । अर सम्यक्ती भेदज्ञानी है सो कर्मबंधते खुले है, जैसे गोरखधंदा नामका कीडा है सो अपने जालीकूं फोडके निकले है ॥ ४३ ॥

॥ अब ज्ञानी है सो कर्मका कर्ता नही सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे ॥
जे दुखमें न विलाप करे, निर वैर हिये तन ताप सहेंगे ॥
है जिनके दृढ आतम ज्ञान, क्रिया करिके फलको न चहेंगे ॥
ते सु विचक्षण ज्ञायक है, तिनको करता हमतो न कहेंगे ॥ ४४ ॥

अर्थ—अपने पूर्व संचित कीये कर्मके उदयमाफिक सुख दुःख आवे है, तब जे जीव तिस सुखकूं भोगे है पण प्रीति नहि करे है उदास रहे है। अर तिस दुःखकूं सहे है पण विलाप नहि करे है तथा अन्य जीवने अपनेकूं कष्ट दीया तो सहन करे है तिस ऊपर वैर नहि धरे है। अर जिन्हकूं भेदज्ञान अत्यंत दृढ हुवा है, तथा शुभ क्रिया करे तिस क्रियाका फल स्वर्ग वा राज्य वैभवादिक नहि चाहे है। तेही मनुष्य ज्ञानी है, सो संसारभोग भोगे है तोहूं तिसकूं कर्मका कर्त्ता हमतो नहिं कहेंगे ॥४४॥

॥ अब ज्ञानीका आचार विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा—

जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हको आचार सु विचार शुभ ध्यान है ॥
स्वारथको त्यागि जे लगे है परमारथको, जिन्हके वनीजमें न नफा है न ज्यान है ॥
जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानीयत, धानकोसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है ॥
पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है ॥४५॥

अर्थ—जिन्हके ज्ञानदृष्टिमें इष्ट वस्तु अर अनिष्ट वस्तु दोनू समान दीखे है, जिन्हको आचार तथा विचार एक शुभ ध्यान प्राप्तीमें रहे है। जे विषयसुखको छोडिके आत्मध्यानरूप परमार्थ मार्गकूं

लागे है, जिन्हके वचन व्यवहारमें एककूं तोटा अर एककूं नफा ऐसा पक्षपात नही है। जे शरीरकूं ऐसा माने है जैसा धान्यके ऊपरका छीलका अथवा तरवारके ऊपरका म्यान है। जे जीव तथा अजीव पदार्थके पारखी है अर पांच मिथ्यात्वमें भ्रमका भारत (युद्ध) चालि रह्या है तिसके साक्षीदार है, (पूछनेके स्थानक है) सोही साधू है अर तिन्हहीकूं सत्यार्थ ज्ञान है ॥ ४५ ॥

॥ अब ज्ञानीका निर्भयपणा वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जमकोसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहत है ॥
सुरगनिवासि भूमीवासि औ पतालवासि, सबहीको तन मन कंपत रहत है ॥
ऊरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसे, डोलत निशंक भयो आनंद लहत है ॥
सहज सुवीर जाको सास्वत शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहत है ॥ ४६ ॥

अर्थ—यह असाता कर्म है सो महा दुःख देनेवाला है मानू जमको भाई है, इस असाता कर्मका जब उदय आवे है तब मूर्खजन साहस नहि धारे है। स्वर्गनिवासी देव अर भूमिनिवासी मनुष्य तथा पशू अर पातालनिवासी देवता तथा नारकी, इन सब जीवोंका तन अर मन अशाता वेदनी कर्मके उदयते भयभीत कंपायमान होय है। अर जिसके हृदयमें ज्ञानका उजारा है सो सप्त भयते अपने आत्माकूं न्यारा देखे है अर निशंक होय आनंदसे डोलत फिरे है। जिसकूं अपने आत्माका वीरपणा सोही शाश्वत ज्ञानरूपी शरीर है ताको भय काहेका है, ऐसे सप्तभय रहित जो ज्ञानी है सो आर्य (पवित्र) है ऐसे आचार्य कहते है॥ ४६ ॥

॥ अव सप्त भयके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात। अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

अर्थ—इसभवका भय, परभवका भय, मरणका भय, वेदनाका भय, अनरक्षा भय, अनगुप्त भय, अकस्मात् भय, ये सात भयके नाम है ॥ ४७ ॥

॥ अव सात भयके जुदेजुदे स्वरूप कहे है ॥सवैया ३१ सा ॥—

दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानीये ॥
प्राणनिको हरण मरण भै कहावै सोइ, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानीये ॥
रक्षक हमारो कोउ नांही अनरक्षा भय, चोर भै विचार अनगुप्त मन आनीये ॥
अनचिंत्यो अवहि अचानक कहांधों होय, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानीये ॥ ४८ ॥

अर्थ—धन धान्यादि दश प्रकारके परिग्रहका वियोग होनेकी चिंता करना सो इसभवका भय है ॥ १ ॥ दुर्गतिमें जन्म होनेकी चिंता करना सो परभवका भय है ॥२॥ प्राण जानेकी चिंता करना सो मरणका भय है ॥ ३ ॥ रोगादिकके कष्ट होनेकी चिंता करना सो वेदनाका भय है ॥ ४ ॥ हमारी रक्षा करनेवाला कोई नही है ऐसी चिंता करना सो अनरक्षक भय है ॥ ५ ॥ चोर वा दुश्मन आवे तो कैसे बचेंगे ऐसी चिंता करना सो अनगुप्त भय है ॥६॥ संसारमें अचानक कुछ दगा होयगा क्या ? ऐसी चिंता करना सो अकस्मात भय है ॥ ७ ॥ ऐसे जगतमें सात प्रकारका भय है सो जानना ॥४८॥

॥ अव इसभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ १ ॥ छपै छंद ॥—

नख शिख मित परमाण, ज्ञान अवगाह निरक्षत । आतम अंग अभंग संग, पर
धन इम अक्षत । छिन भंगुर संसार विभव, परिवार भार जसु । जहां उतपति

तहां प्रलय, जासु संयोग वियोग तसु । परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इहभव भय
उपजे न चित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ४९ ॥

अर्थ—नखशिखा पर्यंत समस्त देहमें, अभंग आत्मा है सो ज्ञानते देखे । अर ज्ञान है सो आत्माका अंग है, अर आत्माके संग जे शरीरादिक है सो पर पदार्थ है ऐसा निश्चय करे । संसारका वैभव परिवार अर परिग्रहका भार है सो, क्षणभंगुर है। जिसकी उत्पत्ती तिसका नाश है, अर जिसका संयोग तिसका वियोग होय है । ऐसे परिग्रहका प्रपञ्च (कपट) है तिस कपटकूं परखिये तो, चित्तमें इसभवका भय नहि उपजे है । इस प्रकार ज्ञानी है सो विचार करके परिग्रहके वियोगकी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ४९ ॥

॥ अब परभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ २ ॥ छपै छंद ॥—

ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख । इतर लोक मम नांहि नांहि,
जिसमांहि दोष दुख । पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुख दायक ।
दोउ खंडित खानि, मैं अखंडित शिव नायक । इहविधि विचार परलोक भय,
नहि व्यापत वरते सुखित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५०॥

अर्थ—ज्ञानचक्र विस्तार है सो मेरा लोक है, जिसमें मोक्षसुखका अवलोकन होय है । इतर स्वर्गलोक नरक लोक अर मनुष्य लोक यह लोक मेरा नही है, इसीमें अनेक दोष तथा दुःखके स्थान है । पुन्य सुगतीका देनेवाला है, अर पाप दुर्गतीका देनेवाला है । ये पाप अर पुन्य दोनूंहू विनाशीक है, पण मेरा आत्मा अखंडित अर मोक्षका नायक है । इसि प्रकार विचार करिये तो, परलोकका भय

नहि उपजे है अर सुख होय है। ज्ञानी है सो परलोककी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५० ॥

॥ अब मरणके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ३ ॥ छपै छंद ॥—

फरस जीभ नाशिका, नयन अरु श्रवण अक्ष इति। मन वच तन बल तीन, स्वास उस्वास आयु थिति । ये दश प्राण विनाश, ताहि जग मरण कहीजे। ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहुं काल न छीजे । यह चित करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५१ ॥

अर्थ—१ स्पर्श १ जीभ १ नाक १ नेत्र १ कान ये पांच इंद्रियप्राण है। १ मन १ वचन १ देह ये तीन बलप्राण है, १ श्वासोच्छ्वास प्राण १ अर आयुष्य प्राण । ऐसे दश प्राण है, इनिके विनाशकूं जगतमें मरण कहते है। अर जीव है सो भाव (ज्ञान) प्राण संयुक्त है, तिस भावप्राणका तीन कालमें नाश नहीं होय है। जिनेंद्रभगवानने देह अपेक्षासे मरण कह्या है पण जीवकूं मरण नही, इस प्रकार चिंतवन करनेसे मरणका भय नहि उपजे है। ज्ञानी है सो मरणकी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५१ ॥

॥ अब वेदनाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ४ ॥ छपै छंद ॥—

वेदनहारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय, । यह वेदना अभंग, सो तो मम अंग नांहि विय। करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख। दोउ मोह विकार,

पुद्गलाकार बहिर्मुख । जब यह विवेक मनमें धरत, तव न वेदना भय विदित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५२ ॥

अर्थ—जीव है सो ज्ञानी है अर ज्ञान है सो जीवका अभंग अंग है । इस ज्ञानरूप मेरे अभंग अंगमें जडकर्मकी वेदना नहि व्यापे है । कर्मकी वेदना दोय प्रकारकी है एक सुखमय वेदना अर एक दुखमय वेदना । इह दोनूंहू वेदना मोहका विकार अर जड पुद्गलाकार है सो आत्माते बाह्य है । जब ऐसा विवेक मनमें धरे है तब वेदनाका भय चितमें नहि उपजे है । ज्ञानी है सो वेदनाकी चिंता नहि करे निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५२ ॥

॥ अव अनरक्षाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ५ ॥ छपै छंद ॥—

जो स्ववस्तु सत्ता स्वरूप, जगमांहि त्रिकाल गत । तास विनाश न होय, सहज निश्चय प्रमाण मत । सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर । तिहि कारण रक्षक न होय, भक्षक न कोय पर । जब यह प्रकार निरधार किय, तव अनरक्षा भय नसित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५३॥

अर्थ—जो सत्तारूप आत्मवस्तु है, सो जगतमें तीनकालमें व्याप्त रहे है । तिस आत्मवस्तुका कदापि नाश नहि होय, यह स्वरूप निश्चय नयके प्रमाणते है । ऐसे मेरा आत्मानामा पदार्थहू सर्वथा कोईकी साह्यता नहि धरे है । ताते इस आत्माका कोई रक्षक नही अर कोई भक्षक पर नही । जब इस प्रकार निश्चयरूपका निर्धार करे तब अनरक्षाका भय नाश होजाय है । ज्ञानी है सो निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे है ॥ ५३ ॥

॥ अब चोरभय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ६ ॥ छपै छंद ॥—

परम रूप परतच्छ, जासु लच्छन चित मंडित । पर परवेश तहां नांहि, महि-
माहि अगम अखंडित । सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन । तांहि
चोर किम गहे, ठोर नहि लहे और जन । चितवंत एम धरि ध्यान जब, तव
अगुप्त भय उपशमित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५४ ॥

अर्थ—आत्मा परमरूप प्रत्यक्ष है, अर ज्ञान लक्षणते भूपित है। तिस आत्मस्वरूपमें परका प्रवेश नाहि होय है, तिस आत्मस्वरूपकी महिमा इंद्रियते अगम्य है अर अखंडित है। तैसेही मेरा अनुपम्य आत्मरूप धन है, सो किसीका कीया नही है अटूट अर अविनाशी है। ते धन चोर कैसे हरण करेगा ? अन्य जनके धसनेकूं तहां ठोरही नही है। जब ऐसे ध्यान देके आत्म स्वरूपका विचार करे है, तब अगुप्त (चोरका) भय नहि उपजे है । इस प्रकार ज्ञानी है सो चोरभयकी चिंता नाहि करे है, निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे ॥ ५४ ॥

॥ अब अकस्मात्के भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ७ ॥ छपै छंद ॥—

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम । अलख अनादि अनंत, अतुल
अविचल स्वरूप मम । चिदविलास परकाश, वीत विकलप सुख थानक । जहां
दुविधा नहि कोइ, होइ तहां कछु न अचानक । जब यह विचार उपजंत तब,
अकस्मात भय नहि उदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५५॥

अर्थ—आत्म वस्तु है सो शुद्ध ज्ञानमय है, अविरोधी है, अर सिद्धसमान ऋद्धिवंत है। अगम्य है अनादि है, अनंत है, अतुल अर अविचल है ऐसाही मेरा स्वरूप है। सो ज्ञान विलासते प्रकाश युक्त है, अर विकल्प रहित सुखका स्थान है। जिसमें कोई प्रकारकी द्विधा नही, तिसमें कोई प्रकारका अचानकभय पण कछु नही होयसके। जब ऐसा विचार करे तब अकस्मातभय नहि उपजे। ज्ञानी है सो, निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे ॥ ५५ ॥

॥ अव निःशंकितादि अष्टांगसम्यक्तीकी महिमा कहे है ॥ छपै छंद ॥—

जो परगुण त्यागंत, शुद्ध निज गुण गहंत ध्रुव। विमल ज्ञान अंकुरा,
जास घटमांहि प्रकाश हुव। जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धारि वहावत।
जो नव बंध निरोधि, मोक्ष मारग मुख धावत। निःशंकितादि जस अष्ट गुण,
अष्ट कर्म अरि संहरत। सो पुरुष विचक्षण तासु पद, वनारसी वंदन करत॥५६॥

अर्थ—जो पुद्गलके गुणोकूं त्याग करके आत्माके गुणोकूं ग्रहण करे है। जिसके हृदयमें सम्यग् ज्ञानके अंकुराका प्रकाश हुवा है। जो पूर्वीके कृतकर्मकूं निर्जराके धारामें वहावे है। अर नवीन बंधकूं निरोध करिके मोक्षमार्गके सन्मुख दौडे है। अर जो निःशंकितादि अष्ट गुणते अष्ट कर्मरूप वैरीका संहार करे है। सोही सम्यग्ज्ञानी पुरुष है तिसके चरणनकौं बनारसीदास वंदना करे है ॥ ५६ ॥

॥ अव निःशंकितादि अष्ट अंगके (गुणके) नाम कहे है ॥ सोरठा ॥—

प्रथम निसंशै जानि, द्वितीय अवंछित परिणमन।
तृतीय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुण ॥ ५७ ॥

पंच अकथ परदोष, थिरी करण छट्टम सहज ।
सप्तम वत्सल पोष, अष्टम अंग प्रभावना ॥ ५८ ॥

अर्थ—निःसंशय अंग ॥१॥ निःकांक्षित अंग ॥२॥ निर्विचिकित्सित अंग ॥३॥ अमूढदृष्टि अंग ॥४॥ उपगूहन अंग ॥ ५ ॥ स्थितीकरण अंग ॥६॥ वात्सल्य अंग ॥७॥ प्रभावना अंग ॥ ८ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

॥ अव सम्यक्तके अष्ट अंगका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धर्ममें न संशै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभकों देखि न गिलानि आणे चित्तमें ॥
साचि दृष्टि राखे काहू प्राणीको न दोष भाखे, चंचलता भानि थीति ठाणे बोध वित्तमें ॥
प्यार निज रूपसों उच्छाहकी तरंग ऊठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें ॥
ताहि समकितकों धरे सो समकीत वंत, वेहि मोक्ष पावे वो न आवे फीर इतमें ॥५९॥

अर्थ—धर्ममें संदेह न करना सो निःशंकित अंग है ॥ १ ॥ शुभक्रिया करिके तिसके फलकी इच्छा नहि करना सो निःकांक्षित अंग है ॥ २ ॥ अशुभवस्तु देखि अपने चित्तमें ग्लानि नहि करना सो निर्विचिकित्सित अंग है ॥ ३ ॥ मूढपणा त्यागि सत्य तत्वमें प्रीति रखना सो अमूढदृष्टी अंग है ॥ ४ ॥ धार्मिकके दोष प्रसिद्ध न करना सो उपगूहन अंग है ॥ ५ ॥ चंचलता त्यागि ज्ञानमें स्थिरता रखना सो स्थितिकरण अंग है ॥ ६ ॥ धार्मिक ऊपर तथा आत्मस्वरूपमें प्रेम रखना सो वात्सल्य अंग है ॥ ७ ॥ ज्ञानकी प्रसिद्धीमें तथा आत्मस्वरूपके साधनमें उत्साहका तरंग ऊठना सो प्रभावना अंग है ॥८॥ ये आठ अंग जब सम्यक्तमें जाग्रत होय है तब ताको सम्यक्ती कहिये है । तिस सम्यक्तकूं धरनहारो सम्यक्तवंतही मोक्षकूं जावे है, सो फेर जगमें नहि आवे है ॥ ५९ ॥

॥६१॥

॥ अब अष्टांगसम्यक्तीके चैतन्यका निर्जरारूप नाटक वतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पूर्व बंध नासे सो तो संगीत कला प्रकासे, नव बंध रोधि ताल तोरत उछरिके ॥
निशंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरि, समता अलाप चारि करे स्वर भरिके ॥
निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग बाजे, छक्यो महानंदमें समाधि रीझि करिके ॥
सत्ता रंगभूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्धदृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६० ॥

अर्थ—सम्यक्ती पूर्वीके कृतकर्मका नाश करे है सो— संगीत कलाका प्रकाश है, अर नवीन कर्मकूं रोके है सो— उछलि उछलिकरि ताल तोरे है। सम्यक्ती निःशंकितादि अष्ट अंग पाले है सो— संग साथीदार जोडी है, अर समता धारे है सो—स्वर धरिके आलापसे गाना है। सम्यक्ती कर्मकी निर्जरा करे है सो—वाद्य वाजिंत्रका नाद हो रहा है अर आत्मानुभवरूप ध्यान धरे है सो—मृदंग बाजे है, अर रत्नत्रयरूप समाधीमें तल्लीन होय है सो—गायनमें तन्मय होना है। आत्मसत्ता है सो— रंगभूमी है ऐसा सम्यग्दृष्टीनट ज्ञानरूप स्वांग धरि, मुक्त होनेके वास्ते तिहूं काल नाचे है ॥ ६० ॥

कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधन हार। अब कछु बंध प्रबंधको, कहूं अल्प विचार ॥६१॥

अर्थ—ऐसे मोक्षमार्ग साधनहारा निर्जराका स्वरूप कह्या। अब बंधद्वारका अल्प स्वरूप कहूंहूं ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको सप्तम निर्जराद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ७ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकका अष्टम बंधद्वार प्रारंभ ॥ ८ ॥

॥ अब सम्यक्ती [भेदज्ञानी] कूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मोह मद पाइ जिन्हे संसारी विकल कीने, याहिते अजानवान बिरद वहत है ॥
ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहत है ॥
ताको बल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्दिम महत है ॥
सो है समकीत सूर आनंद अंकूर ताहि, नीरखि बनारसी नमोनमो कहत है ॥ १ ॥

अर्थ—इस बंधरूप सुभटनें मोहरूप मदिराका पान करवाय समस्त संसारी जीवकूं विकल करि राख्या है, ताते अज्ञानी होय बंध करनेके बिरद (पक्ष) कू निरंतर वहे है। ऐसो विकराल यह बंधरूप सुभट है सो जगतके जीवकूं महा जाल समान है, अर ज्ञानके प्रकाशकूं मंद करनेवाला है जैसे चंद्रमाके प्रकाशकूं राहु मंद करे है। तिस बंधका बल तोडवेकूं जिसके हृदयमें सम्यक्त प्रगट भया है, सोही बंधकूं विदारण करनेकूं उद्धत (बलाढ्य) उदार अर महा उद्यमी है। ऐसे सूरवीर सम्यक्तरूप आनंदअंकूरकूं देखिके, बनारसीदास वारंवार नमस्कार करे है ॥ १ ॥

॥ अब ज्ञानचेतनाका अर कर्मचेतनाका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जहां परमातम कलाको परकाश तहां, धरम धरामें सत्य सूरजकी धूप है ॥
जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है ॥
फेली फिरे घटासी छटासी घन घटा बीचि, चेतनकी चेतना दुहूंधा गुपचूप है ॥
बुद्धीसों न गही जाय बैनसों न कही जाय, पानिकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है ॥ २ ॥

अर्थ—जहां आत्मामें ज्ञानकलाका प्रकाश है, तहां धर्मरूप धरतीमें सत्यरूप सूर्यका तेज है । अर जहां शुभ तथा अशुभ कर्ममें आत्मा बुलाइ रहा है, तहां मोहका विलासरूप घोर अंधेरका कूप है। ऐसे आत्माकी चेतना दोनूं तरफ गुपचुप हो रही है सो, शरीररूप मेघमें बीजली माफक फैलि फिर रहे है। ये चेतना बुद्धीसे ग्रही न जाय अर वचनसे कही न जाय, जैसे पानीकी तरंग पानीमें गुप्प होय है ॥२॥

॥ अब कर्मबंधका कारण रागादिक अशुद्ध उपयोग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कर्मजाल वर्गणासों जगमें न वंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों ॥
चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, वंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों ॥
कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासो अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों ॥
इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, वंधे एक रागादि अशुद्ध उपयोगसों ॥ ३ ॥

अर्थ—जगतमें कर्मजाल पुद्गलकी वर्गणा अनंतानंत भरी है परंतु जीवकू बंध होनेका कारण कर्मवर्गणासें भऱ्या जगत नही है, तथा मन वचन अर कायके योगसे कदापि कर्मबंध नहि होय है । चेतन वा अचेतनके हिंसाते कर्मबंध नहि होय है, अर पंच इंद्रीयोंके विषय सेवन करनेसे अलख (आत्मा) कूं कर्मबंध नहि होय है । जो कर्मवर्गणाका भऱ्या जगत बंधकूं कारण होतातो सिद्ध— भगवान् जगतमें है अर तिनकूं बंध नही है तथा मन वचन अर कायके योग बंधकूं कारण होतेतो जिनभगवान्कूं योग है अर तिनकूं बंध नही है, अर हिंसाही बंधकूं कारण होतीतो साधूसे अकारित हिंसा होय है । अर तिनकूं बंध नही है तथा इंद्रीयके विषय बंधकूं कारण होतेतो ज्ञाता विषय भोगवै

है अर तिनकूं बंध नही है। इत्यादिक कर्मवर्गणाके प्रमुख वस्तुके मिलापसे आत्माकूं कर्मबंध नाहि होय है, परंतु एक अशुद्ध उपयोग (राग द्वेष अर मोह) से जीव कर्मबंधकूं प्राप्त होय है ॥ ३ ॥

॥ अब कर्मबंधका कारण अशुद्ध उपयोग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कर्मजाल वर्गणाको वास लोकाकाश मांहि, मनवच कायको निवास गति आयुमें ॥
चेतन अचेतनकी हिंसा वसे पुद्गलमें, विषै भोग वरते उदैके उर झायमें ॥
रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकि, यहै उपादान हेतु बंधके वढावमें ॥
याहिते विचक्षण अबंध कह्यो तिहूं काल, राग द्वेष मोहनांहि सम्यक् स्वभावमें ॥ ४ ॥

अर्थ—कर्मजाल वर्गणाका निवास लोकाकाशमें है, [आत्मामें नही है] मन वचन अर कायके योग चारी गतीमें वा चारी आयुष्यमें है [आत्मामें नही है] चेतन वा अचेतनकी हिंसा पुद्गलमें है, [आत्मामें नही है] इंद्रियके विषयभोग कर्मके उदय माफिक होवे है। [आत्मामें नही है ताते यह आत्माकूं कर्मबंधके कारण नही है] अर राग द्वेष तथा मोहते आत्मा मूढ होय देहादिक परवस्तूकूं आपना माने है सो अशुद्ध उपयोग है, ताते ये अशुद्ध उपयोगही बंध बढानेकूं मुख्य उपादान कारण है। अर सम्यक् स्वभावमें राग द्वेष अर मोह नही है, ताते सम्यग्ज्ञानीकूं तीनकाल अबंध कह्या है ॥ ४ ॥

॥ अब ज्ञाताकूं अबंध कह्या पण उद्यमी होय क्रिया करनेकूं कह्या है ॥ सवैया ३१ सा—

कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे है, तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन वैनमें ॥
ज्ञानदृष्टि देत विषै भोगनिसों हेत दोउ, क्रिया एक खेत यों तो बने नांहि जैनमें ॥

उदै बल उद्यम गहै पै फलको न चहै, निरदै दशा न होइ हिरदेके नैनमें ॥
आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यांत मांहि, जहां न संभारे जीव मोह निंद सैनमें ॥ ५ ॥

अर्थ—यद्यपि ज्ञानी है सो–कर्मजाल योग हिंसा अर विषय भोगसे कर्मबंधकूं नही बंधे है, तथापि ज्ञानीकूं उद्यम (पुरषार्थ.) करनेकूं जैन शास्त्रमें कह्या है। ज्ञानमें तत्परता अर विषयभोगमें इच्छा इन दोनूं बातोंकातो विरोध है, सो ये दोनूं क्रिया एक स्थानमें नहि होय। ज्ञानी है सो शरीरादिकके शक्तिप्रमाण अर अपने पदस्थके योग्य पुरषार्थ (क्रिया) करे है परंतु तिस क्रियाके फलकूं नहि चाहे, हृदयमें सदा दया परिणाम राखे है। आलस अर निरुद्यमीका स्थानतो मिथ्यात्व है, मिथ्यात्वीजीव मोहरूप नींदमें शयन करे है सो आत्मस्वरूपकूं नहि जाने है ॥ ५ ॥

॥ अब कर्म उदयके बलका वर्णन कहे है ॥ दोहा ॥—

जब जाकों जैसे उदै, तब सो है तिहि थान। शक्ति मरोरी जीवकी, उदै महा बलवान ॥६॥

अर्थ—जब जिस जीवकों जैसे कर्मका उदय आवे है, तब सो जीव तिस उदय माफक प्रवर्त्ते है। कर्मका उदय जीवके शक्तीकूं मोडिके आपरूप करे है, ऐसा कर्मका उदय बडा बलवान है ॥ ६ ॥

॥ अब हाथीका अर मच्छका दृष्टांत देके कर्मका उदैबल कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे गजराज पर्‍यो कर्दमके कुंडबीच, उद्दिम अरूढे पै न छूटे दुःख दंदसों ॥
जैसे लोह कंटककी कोरसों उरझ्यो मीन, चेतन असाता लहे साता लहे संदसों ॥
जैसे महाताप सिरवाहिसो गरास्यो नर, तके निज काज उठिशके न सु छंदसों ॥
तैसे ज्ञानवंत सब जाने न बसाय कछु, वंध्यो फिरे पूरव करम फल फंदसों ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसे कर्दमके कुंडमें पड्या हाथी निकलनेकूं उद्यम करे है परंतु तो दुःखमेंसे छूटे नही। अथवा जैसे धीवरके डाऱ्या लोहके कांटेसे फसा मच्छ दुःख सहे पण छूटतो नही। अथवा जैसे महा तापसे मस्तक पीड्या नर ग्रहकार्य करनेकूं उठशके नही। तैसे ज्ञानवंत हित अर अहित सब जाने परंतु तिसके स्वाधीन कछु नहीहै पूर्व कर्मके उदयरूप फंदसे बंध्यो फिरे है ॥ ७ ॥

॥ अब आलसीका अर उद्यमीका स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥—

जे जीव मोह नींदमें सोवे । ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना। तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ८ ॥

अर्थ—जे जीव मिथ्यात्वरूप मोह नींदमें सोवे है ते आलसी तथा निरुद्यमी होवे है। अर जे जीव ज्ञान दृष्टि खोलिके जाग्रत भये है तिनोंने आलस तजिके पुरुषार्थ कीया है ॥ ८ ॥

॥ अब आलसीकी अर उद्यमीकी क्रिया कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

काच बांधे शिरसों सुमणि बांधे पायनीसों, जाने न गवार कैसा मणि कैसा काच है ॥
योंहि मूढ झूठमें मगन झूठहीकों दोरे, झूठ बात माने पै न जाने कहां साच है ॥
मणिको परखि जाने जोहरी जगत मांहि, साचकी समझ ज्ञान लोचनकी जाच है ॥
जहांको जुवासी सोतो तहांको परम जाने, जाको जैसो स्वांगताको तैसे रूप नाच है ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे दिवाना होय सो काचकूं मस्तक उपर बांधे अर रत्नकूं पाय ऊपर बांधे, काचकी अर रत्नकी क्या कीमत रहती है सो जाने नही। तैसेही अज्ञानी है सो झूटमें मग्न रहे अर झूठकाम करनेकूं दौरे है, तथा झूठकूं साच माने पण इसमें क्या साच है सो जाने नही। अर जैसे जगतमें

झवेरी होय सो नेत्रते काचकी अर रत्नकी परिक्षा करे है तथा कीमत जाने है, तैसेही ज्ञानी है सो ज्ञानरूपी नेत्रते सत्य अर असत्यकी कीमत जाने है अर परीक्षा करे है। मिथ्यात्वी मिथ्यात्वकूं साच माने है अर सम्यक्ती सम्यक्तकूं साच माने है, जो जैसा स्वांग धरे है सो तैसाही नाच नाचे है॥ ९ ॥

॥ अब जे जैसी क्रिया करे ते तैसे फल पावे है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

बंध बढावे अंध व्है, ते आलसी आजान। मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यम वान ॥१०॥

अर्थ—अज्ञानी है ते आळसी होके अंध होय है अर कर्मका बंध बढावे है। अर मुक्तिके कारण जे क्रिया करे है ते मनुष्य उद्यमवान है॥ १० ॥

॥ अब जवलग ज्ञान है तवलग वैराग्य है सो कहे है॥ सवैया ३१ सा ॥—

जवलग जीव शुद्धवस्तुकों विचारे ध्यावे, तवलग भोगसों उदासी सरवंग है ॥
भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नांहि, भोग अभिलाषकि दशा मिथ्यात अंग है ॥
ताते विषै भोगमें मगनसों मिथ्याति जीव, भोगसों उदासिसों समकीति अभंग है॥
ऐसे जानि भोगसों उदासि व्है सुगति साधे, यह मन चंगतो कठोठी मांहि गंग है॥ ११ ॥

अर्थ—जबलग जीव शुद्धवस्तुके विचारमें दौडे है, तबलग सर्व अंगमें भोगसे उदासीनपणा रहे है। अर जब भोगमें मग्न होय तब ज्ञानकी जाग्रती नही होय अर अंगमे भोगकी इच्छारूप अज्ञान-अवस्था रहे है। ताते विषयभोगमें मग्न है सो मिथ्यात्वीजीव है, अर भोगसे उदासीन है सो अभंग सम्यग्दृष्टी है। ऐसे जानि हे भव्य? भोगसे उदासीन होके मुक्तिका साधन करो, जिसका मन शुद्ध है तिसका कठोटीमें न्हाना है सो गंगास्नानवत है॥ ११ ॥

॥ अब मुक्तिके साधनार्थ चार पुरुषार्थ कहे है ॥ दोहा ॥—

धर्म अर्थ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग। कुधी कल्पना गहि रहे, सुधी गहे सरवंग ॥१२॥

अर्थ—धर्म धन काम अर मोक्ष ये पुरुषार्थके च्यार अंग है। पण कुबुद्धीवाला है सो अपने मनमाने तैसा अंग ग्रहण करे है अर सुबुद्धीवाला है सो नयते संर्वागकूं ग्रहण करे हे ॥ १२ ॥

॥ अब चार पुरुषार्थ उपर ज्ञानीका अर अज्ञानीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुलको विचार ताहि मूरख धरम कहे, पंडित धरम कहे वस्तुके स्वभावकों ॥
खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहे, ज्ञानी कहे अरथ दरव दरसावकों ॥
दंपत्तिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहे, सुधि काम कहे अभिलाष चित्त चावकों ॥
इंद्रलोक थानकों अजान लोक कहे मोक्ष, सुधि मोक्ष कहे एक बंधके अभावकों ॥१३॥

अर्थ—अज्ञानी है सो अपने कुलाचार (स्नान सोच चौकादिक) कूं धर्म कहे है, अर ज्ञानी है सो वस्तुके स्वभावकूं धर्म कहे है। अज्ञानी है सो पृथ्वीके खजाने (सोना रूपा वगैरे) कूं द्रव्य कहे है, अर ज्ञानी है सो तत्व अवलोकनकूं द्रव्य कहे है। अज्ञानी है सो स्त्री पुरुषके संभोगकूं काम कहे है, अर ज्ञानी है सो चित्तके अभिलाषकूं काम कहे है। अज्ञानी है सो इंद्रलोक (स्वर्ग) कूं मोक्ष कहे है, अर ज्ञानी है सो कर्मबंधके क्षयकूं मोक्ष कहे है ॥ १३ ॥

॥ अब आत्मरूप साधनके चार पुरुषार्थ कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धरमको साधन जो वस्तुको स्वभाव साधे, अरथको साधन विलक्ष द्रव्य षटमें ॥
यहे काम साधन जो संग्रहे निराशपद, सहज स्वरूप मोक्ष शुद्धता प्रगटमें ॥

अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोके बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घटमें ॥
साधन आराधनकी सोंज रहे जाके संग, भूल्यो फिरे मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ १४ ॥

अर्थ—वस्तुके स्वभावकूं यथार्थपणे जानना सो धर्मका साधन है, अर षट्‌ द्रव्यकूं भिन्न भिन्न जानना सो अर्थका साधन है। आशा रहित निराश पद (निस्पृहता) कूं ग्रहण करणा सो कामका साधन है, अर आत्मस्वरूपकी शुद्धता प्रगट करना सो मोक्षका साधन है। ऐसे धर्म अर्थ काम अर मोक्ष ये चारु पुरुषार्थ है सो, ज्ञानी अपने हृदयमें अंतर्दृष्टीसे देखे है। अर अज्ञानी है सो चार पुरुषार्थ साधनकी अर आराधनकी सामग्री अपने संग होतेहूं तिसकूं देखे नही अर मिथ्यात्वके अलटमें बाहेर धूंडता फिरे है ॥ १४ ॥

॥ अब वस्तूका सत्य स्वरूप अर मूढका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

तिहुं लोकमांहि तिहुं काल सब जीवनिको, पूरव करम उदै आय रस देत हैं ॥
कोउ दीरघायु धरे कोउ अल्प आयु मरे, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेत है ॥
याहि मैं जिवाऊ याहि मारूं याहि सुखी करुं, याहि दुखी करु ऐसे मूढ मान लेत है ॥
याहि अहं बुद्धिसों न विनसे भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम बंध हेत है ॥१५॥

अर्थ—तीन कालमें तीन लोकके सब जीवनिकूं, पूर्व कृतकर्म उदय आय फल देवे है। तिस कर्मफलते कोई दीर्घ आयुष्यी होय है अर कोई अल्प आयुष्य भोगि मरे है, कोई दुःखी है कोई सुखी है अर कोई समचित्ती है। ऐसे होतेहू कोई मूढ प्राणी कहे मैं इसिकूं जिवाउं, मैं इसिकूं मारूं,

मैं इसिकूं सुखी करूं, मैं इसिकूं दुखी करूंहूं ऐसे अज्ञानी मानिलेत है। इसही अहंबुद्धीसे भ्रमरूप भूल नहि विनसे है, अर येही मिथ्याधर्म है सो मूढकूं कर्मबंधका कारण होय है ॥ १५ ॥ पुनः—

जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबे असहाय कोउ काहुको न धनी है ॥
जैसे जैसे पूरव करम सत्ता बांधि जिन्हे, तैसे तैसे उदैमें अवस्था आइ बनी है ॥
एतेपरि जो कोउ कहे कि मैं जिवाउ मारूं, इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है ॥
सोतो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहुं काल, डोले निज आतम शकति तिन्ह हनीहे ॥ १६ ॥

अर्थ—जबलग जीव जगतमें रहे है, तबलग असाहायपणे रहे है कोई काहूका धनी नही है। जिसने जैसे जैसे पूर्व कालमें कर्मकी सत्ता बांधी है, तैसे तैसे जीवकूं उदय आय फल देवे है तिस कर्मके फलकूं कम जादा करनेकूं कोउ समर्थ नही है। ऐसे होतेहू कोऊ कहे मैं याकूं जिवाऊं अर मैं याकूं मारूं, इत्यादि अनेक प्रकारके बातका विकल्प करे है। ताते इस अहंबुद्धीसे विकल होय तीन कालमें डोले है, अर स्व आत्माके ज्ञानशक्तीकूं हने है ॥ १६ ॥

॥ अब उत्तम मध्यम अधम अधमाधम इन जीवके स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

उत्तम पुरुषकी दशा ज्यौं किसमिस द्राख, बाहिर अभिंतर विरागी मृदु अंग है ॥
मध्यम पुरुष नालियर कीसि भांति लीये, बाहिज कठिण हिए कोमल तरंग है ॥
अधम पुरुष बदरी फल समान जाके, बाहिरसों दीखे नरमाई दिल संग है ॥
अधमसों अधम पुरुष पूंगी फल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है ॥ १७ ॥

अर्थ—उत्तम मनुष्यका स्वभाव किसमिस(द्राक्षा)समान अंतरहू कोमल अर बाहिरहू कोमल

नालियर समान बाहिर कठोर (अभिमानी) अर
(दयारूप) है। अर मध्यम मनुष्यका स्वभाव बोरफल समान अंतर कठोर अर बाहिर
अंतर कोमल है। अधम (कनिष्ट) मनुष्यका स्वभाव सुपारी समान अंतर कठोर अर बाहिरहू कठोर है ॥१७॥
कोमल है। अधमसे अधम मनुष्यका स्वभाव

॥ अब उत्तम मनुष्यका स्वभाव कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मीचसि मित्ताइ गुरुवाई जाके गारसी ॥
कांचसों कनक जाके नीचसों नरेश पद, हौंस पुदगल छबि छारसी ॥
जहरसी जोग जाति कहरसि करामति, हहरसि कुटुंब काज लोक लाज लारसी ॥
जालसों जग विलास भालसों भुवन वास, कालसों जाकि रीत ताहि बंदत बनारसी ॥ १८ ॥
सीठसों सुजस जाने वीठसों वखत माने, ऐसि

अर राज्यपदकूं नीच समान
अर्थ—जो सुवर्णकूं कीचडसमान आत्माकूं मलीन करनेवाला जानेहै मरण समान अचेतपणा करणारा समझे
मद बधाय नरककूं पोचावनेवाला माने है, लोकके मित्राइकूं माने है। जो रसकूपादिक जोग जातीकूं
है अर अपनी कोई बढाई करे तिसकूं जो गाली समान जाने है, जगतके माया-
जहर पीवने समान अर मंत्रादिकके करामतीकूं तीव्र वेदनाके दुःखसमान है, हौसकूं अनर्थकारी अर
रूप विलासकूं जाल समान अर घरवासकूं बाणकी टोक समान समझे समान अर लोक लाजकूं मुखके लाळ-
शरीरके कांतिकूं राख समान देखे है। संसार कार्यकूं काल विष्टा समान समझे है,
समान जाने है। अपने सुयशकूं नाशिकाके मल समान अर भाग्योदयकूं
ऐसी जाकी रीत है तिनकूं बनारसीदास वंदना करे है ॥ १८ ॥

॥ अब मध्यम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ सुभट स्वभाव ठग मूर खाई, चेरा भयो ठगनके घेरामें रहत है ॥
ठगोरि उतर गइ तबै ताहि शुद्धि भइ, पऱ्यो परवस नाना संकट सहत है ॥
तैसेहि अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोले आठो जाम विसराम न गहत है ॥
ज्ञानकला भासी तब अंतर उदासि भयो, पै उदय व्याधिसों समाधि न लहत है ॥१९॥

अर्थ—जैसे सुभटकूं कोई ठगने जडीकी मुळी खुवायदीनी, ताते सो सुभट तिस ठगका चेला होय हुकुममें रहे है। अर मूळीका अमल उतर जाय तब सुभट अपने शुद्धिमें आवे है अर ठगकूं दुर्जन जाने है, परंतु ठगके वस हुवा है ताते नाना प्रकारके संकट सहे है। तैसेही अनादि कालका मिथ्यात्वीजीव है सो मिथ्यात्व स्वभावते अचेत होय, आठौ प्रहर संसारमें डोले है विश्राम लेय नही। अर भेदज्ञान होय तब अंतरंगमें उदासी रहेहै, परंतु कर्मोदयके व्याधीसे समाधानपणा नहि पावे सो मध्यम पुरुष है ॥ १९ ॥

॥ अब अधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे रंक पुरुषके भावे कानी कौडी धन, उल्लूवाके भावे जैसे संझाही विहान है ॥
कूकरके भावे ज्यों पिडोर जिरवानी मठा, सूकरके भावे ज्यों पुरीष पकवान है ॥
वायसके भावे जैसे नींबकी निंबोरी द्राख, बालकके भावे दंत कथा ज्यों पुरान है ॥
हिंसकके भावे जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भावे शुभ बंध निरवान है ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे दरिद्री मनुष्यकूं कानी कौडी धनसमान प्रीय लागे है, अथवा जैसे घुवडकूं प्रभात-

समान संध्या समय लागे है। अथवा जैसे कुत्तेकूं दहीके मठ्ठे समान वमन प्रिय लागे है, अथवा जैसे शुकरकूं पकान्न समान विष्टा प्रिय लागे है। अथवा जैसे काकपक्षीकूं द्राक्ष समान नींबकी निंबोली प्रिय लागे है, अथवा जैसे बालककूं पुराणसमान दंत कथा प्रिय लागे है, अथवा जैसे हिंसककूं हिंसा धर्मसमान प्रिय लागे है, तैसे अज्ञानीकूं पुण्यबंध मोक्षसमान प्रिय लागे है ॥ २० ॥

॥ अब अधमाधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुंजरकों देखि जैसे रोष करि भुंके स्वान, रोष करे निर्धन विलोकि धनवंतकों ॥
रैनके जगैय्याकों विलोकि चोर रोष करे, मिथ्यामति रोष करे सुनत सिद्धांतकों ॥
हंसकों विलोकि जैसे काग मन रोप करे, अभिमानि रोप करे देखत महंतकों ॥
सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करे, त्योंहि दुरजन रोष करे देखि संतकों ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे हाथीकूं देखि रोष करि श्वान भुंके है, अथवा जैसे धनवंतकूं देखि दरिद्री मनमें रोष करे है। अथवा जैसे रात्रिके जगैयाकूं देखिके चोर रोष करे है, अथवा सिद्धांत शास्त्रकूं सुनिके मिथ्यात्वी मनमें रोष करे है। अथवा जैसे हंसकूं देखि काकपक्षी रोप करे है, अथवा जैसे महंत पुरुषकूं देखि अभिमानी मनमें रोष करे है। अथवा जैसे सुकविकूं देखि कुकवि रोष करे है, तैसे सत्पुरुषकूं देखि दुर्जन मनुष्य मनमें रोष करे है ॥ २१ ॥ पुनः—

सरलकों सठ कहे वकताकों धीठ कहे, विनै करे तासों कहे धनको आधीन है ॥
क्षमीकों निबल कहें दमीकों अदत्ति कहे, मधुर वचन बोले तासों कहे दीन है ॥

धरमीकों दंभि निसग्रहीकों गुमानि कहे, तृपणा घटावे तासों कहे भाग्यहीन है ॥
जहां साधुगुण देखे तिनकों लगावे दोप; ऐसो कछु दुर्जनको हिरदो मलीन है ॥२२॥

अर्थ—सरल परिणाम राखे तिसकूं कहे ये मूर्ख है अर वोलनेमें जो हुपार है तिसकूं कहे ये धीठ है, विनय करे तिसकूं कहे ये धनके आधीन है। क्षमा करे तिसकूं कहे ये निर्वल है अर इंद्रिय दमन करे तिसकूं कहे ये कृपण है, मधुर वचन वोले तिसकूं कहे ये गरीव है। धर्मात्मा है तिसकूं कहे ये दंभी (कपटी) है अर निस्पृही है तिसकूं कहे ये अभिमानी है, परिग्रह छोडे है तिसकूं कहे ये भाग्यहीन है। जहां सद्गुण देखे तहां दोप लगावे है, ऐसा दुर्जनका हृदय मलीन है ॥ २२ ॥

॥ अव मिथ्यादृष्टीके अहंवुद्धीका वर्णन करे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मैं करता मैं कीन्ही कैसी। अव यों करो कहे जो ऐसी ॥
ए विपरीत भाव है जामें। सो वरते मिथ्यात्व दशामें ॥ २३ ॥

अहंबुद्धि मिथ्यादशा, धरे सो मिथ्यावंत। विकल भयो संसारमें, करे विलाप अनंत ॥२४॥

अर्थ—मैं कर्त्ता मनुष्यहू देखो हमने यह कैसा काम कीया है ऐसा काम दुसरेसे नाहि वनसके, अवहू हम जैसा कहेंगे तैसाही करेंगे। ऐसा जिसमें अहंकारके वशते विपरीत भाव है, सो मिथ्यात्व अवस्था है ॥२३॥ ऐसे अहंबुद्धि मिथ्यात्वअवस्थाकों जो धारण करे है सो मिथ्यात्वीजीव है। सो संसारमें विकल होय भटके है अर अनंत दुःख सहता विलाप करे है ॥ २४ ॥

रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटत है ॥
कालके ग्रसत छिन छिन होत छिन तन, आरेके चलत मानो काठ ज्यों कटत है ॥

लग्योफिरे लोकनिसों पग्योपरे जोगनीसों, विषैरस भोगनिसों नेक न हटत है ॥
एतेपरि मूरख न खोजे परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटत है ॥ २५ ॥

अर्थ—जैसे अंजुलीमेंका पाणी घटे है, तैसे दिन दिन प्रति सूर्यका उदय अस्त होते मनुष्यका आयुष्य घटे है। अर जैसे करोतके खैचनेते लकडी कटे है, तैसे छिन छिनमें शरीर क्षीण होय है। ऐसे आयुष्य अर देह छिन छिनमें क्षीण होतेहूं, मूर्खजन परमार्थकूं नहि धूंडे है, अपने संसारस्वार्थके कारण भ्रमका बोझा उठावे है। अर कामक्रोधादिकके साथे लगि फिरे है तथा शरीर संयोगमें मिलि रहे हैं, ताते विषय सुखके भोगते किंचितहूं नहि हटे है ॥ २५ ॥

॥ अब मृगजलका अर अंधका दृष्टांत देके संसारीमूढका भ्रम दिखावे है ॥ ३१ सा ॥—

जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपति मांहि, तृषावंत मृषाजल कारण अटत है ॥
तैसे भववासी मायाहीसों हित मानिमानि, ठानि २ भ्रम भूमि नाटक नटत है ॥
आगेकों ढुकत धाइ पाछे बछरा चवाई, जैसे द्रग हीन नर जेवरी वटत है ॥
तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करे, रोवत हसत फल खोवत खटत है ॥ २६ ॥

अर्थ—जैसे जेष्ट महिनेमें सूर्यका बहुत ताप पडे है, तब मत्त मृग तृषातुर होय मृषाजलकूं जल जानि पीवनेकेअर्थी दौडे है पण तहां जल नही है। तैसे संसारी जीवहूं माया जालमें हित मानि मानि, भ्रमरूप भूमिकामें नटके समान नाचे है। अथवा जैसे कोऊ अंधमनुष्य आगे जेवरी (डोरी) वटत जाय है, अर पीछे गऊका बछडा जेवरीकूं चावी नाखे है सो अंध जाने नही ताते तिसकी मेहनत व्यर्थ जाय है। तैसे मूढ जीव पुण्योपार्जनकी क्रिया करे है, परंतु पूर्वकालके अशुभकर्मका उदय आवे तब रोवे है अर शुभकर्मका उदय आवे तब हासे है ताते इस राग द्वेषसें सुकृत क्रियाका फल नाश होवे है ॥२६॥

॥ अब मूढजीव कर्मबंधसे कैसे निकसे नही सो लोटण कबूतरका दृष्टांत देके कहे है ॥ ३१ सा ॥—

लीये दृढ पेच फिरे लोटण कबूतरसों, उलटो अनादिको न कहूं सुलटत है ॥
जाको फल दुःख ताहि सातासों कहत सुख, सहत लपेटि असि धारासी चटत है ॥
ऐसे मूढजन निज संपत्ति न लखे कोंहि, योंहि मेरी २ निशिवासर रटत है ॥
याहि ममतासों परमारथ विनसि जाइ, कांजिको फरस पाइ दूध ज्यों फटत है ॥ २७ ॥

अर्थ—जैसे लोटण कबूतरके पंखकूं दृढ पेंच देके छोड देवेतो उलटही फिरे है, तैसे संसारीप्राणी अनादिकालका कर्मबंधके पेंचतें उलटही फिरे है पण कोईरीते सुलट मार्ग धरतो नही । अर जैसे मध लपेटी तरवारके धारकूं चाटेतो तिससें मिठांश थोडा अर दुःख बहुत है । तैसे जिसका फल दुःख है ऐसे विषय भोगसे किंचित् साता उपजे तिसकूं सुख माने है, ऐसे मूढ प्राणी शरीरादिक पर वस्तुकूं रात्रंदिन मेरी मेरी कर रह्यो है, पण अपने ज्ञानादिक संपत्तीकूं देखतो नही । इसही ममतासे परमार्थ (आत्म कल्याण) बिगडी जाय है, जैसे कांजी (लूणके पाणी) का स्पर्श होते दूध फटिजाय है ॥२७॥

॥ अब नाकका अर काकका दृष्टांत देके मूढके अहंबुद्धीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

रूपकी न झांक हिये करमको डांक पीये, ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक जैसे घनमें ॥
लोचनकि ढांकसों न मानें सदगुरु हांक, डोले मूढ रंकसों निशंक तिहूं पनमें ॥
टांक एक मांसकी डलीसि तामें तीन फांक, तीन कोसो अंक लिखि राख्यो काहू तनमें ॥
तासों कहे नांक ताके राखवेको करे कांक, वांकसों खडग वांधिवांधि धरे मनमें ॥२८॥

अर्थ—मूढके हृदयमें ज्ञानरूप दृष्टी नही ताते कर्मका उदय होय तैसे बन जात है, तिस कारणते आत्मस्वरूप जे शुद्धज्ञान है सो दबि रहे है जैसे बादलमें चंद्र दबि जाय है तैसे। अर ज्ञानरूप दृष्टि दबनेसे अज्ञानी होय सद्गुरुकी हाक (आज्ञा) नहि माने है, ताते बाल तरुण अर वृद्ध इन तीनौं अवस्थामें बोधरहित दरिद्री होय निशंक डोले है। अर अपना नाक (अहंकार) राखनेके कारण मनमें बांकरूप खड्ग बांधि बांधि लरे है। नाक है सो शरीरका एक मांसका भाग है तिसमें तीन फांक है, तिस नाकका आकार तीनके (३) अंक समान है ऐसे कवि नाककूं अलंकार देवे है ॥ २८ ॥

॥ अब कुत्तेका दृष्टांत देके मूढका विषयमें मग्नपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनकि कोर चहुवोर चूभे मुखमें ॥
गाल तालु रसनासों मूखनिको मांस फांटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥
तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, तामें चित्त साने हित माने खेद दुःखमें ॥
देखे परतक्ष वल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग रुखमें ॥ २९ ॥

अर्थ—जैसे कोई भुकित कुत्ता सूके हाड चावे, तिस हाडकी कोर मुखमें चहुंवोर टोचे है। ताते गाल तालू अर जीभ फाटिके मुखमेते रक्त निकसे है, सो अपने रक्तकूं आप चाटि स्वाद सुखमें मग्न होय है। तैसेही मूढमनुष्य कामभोगकी क्रीडा करे है, तब तिसमें मनसा राखे है अर तिसते खेद तथा दुःख उपजे तोहूं तिसकूं अपना हित माने है। स्त्रीभोगमें शक्तिकी हानी अर मल मूत्रकी खानि प्रत्यक्ष दीखे है, तथापि तिसकी ग्लानि नहि करे है उलट तिसमें रात्रदिन प्रेमही राखे है ॥ २९ ॥

॥ अव जिसकूं मोहकी विकलता नही ते साधु है सो कहे है ॥ छंद अडिल ॥—

सदा मोहसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥
करे विकल्प अनंत, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥३०॥

अर्थ—निश्चय नयते आत्मा मोहसे भिन्न है, पण व्यवहार नयते मोहकर्मकरि विकलता (आत्मस्वरूपमें भ्रम) मानि मिथ्यात्वी हो रह्या है। ताते अहंबुद्धि धरिके मनमें अनंत विकल्प करे है अर जो अहंबुद्धिकूं निवारण करिके आत्मस्वरूपमें स्थिर होय है सो मुनी है ॥ ३० ॥

॥ अव सम्यक्ती आत्मस्वरूपमें कैसे स्थिर होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

असंख्यात लोक परमाण जे मिथ्यात्व भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है ॥
जिन्हके मिथ्यात्व गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन व्यवहारसों मुकत है ॥
निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुण मोक्ष पंथकों ढुकत है ॥
तेई जीव परम दशामें थिर रूप व्हैके, धरममें धुके न करमसों रुकत है ॥ ३१ ॥

अर्थ—लोकके असंख्यात प्रदेश है तिस असंख्यात प्रदेशरूप भाव होना सो मिथ्यात्व भाव है तेही व्यवहारमिथ्यात्वके असंख्यात भाव है ऐसे केवलीभगवानका भाष्य है। जिसका मिथ्यात्व गया अर सम्यक्त प्राप्त भया है, ते निश्चयमें लीन है अर व्यवहारते मुक्त (रहित) है। अर व्यवहारते मुक्त होय जे विकल्प अर उपाधि रहित आत्मानुभव करे है, तथा ज्ञानते मोक्षमार्गकूं देखे है। तेही जीव आत्मस्वरूपमें स्थिररूप होयके, मोक्षकूं जाय है कर्मसे रूके नहि ॥ ३१ ॥

॥ अब शिष्य कर्मबंधका कारण पूछे है ॥ कवित्त ॥—

जे जे मोह कर्मकी परणति, बंध निदान कही तुम सव्व ॥
संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हको मूल हेतू कहु अव्व ॥
कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल दव ॥
सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहे सुगुरु उत्तर सुनि भव ॥ ३२ ॥

अर्थ—मोहकर्मकी जे जे राग द्वेषादिक परणति है ते ते सर्व कर्मबंधका कारण है ऐसे आपने कह्या। परंतु मोह परणति तो शुद्ध आत्मासे सदा भिन्न है, सो बंधका कारण कैसा होय? ये कर्मबंध है सो स्वाभाविक जीवके कौतुकते होय है कि, पुद्गल द्रव्यके निमित्तते होय है। इनका मूल हेतु अब कहो ऐसे मस्तक नवाइके शिष्य पूछे है ॥ ३२ ॥

॥ अब कर्मबंधका कारण सद्गुरु कहे है सो हे भव्य तुम सुनो ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे नाना वरण पुरी बनाइ दीजे हेठ, उज्जल विमल मणि सूरज करांति है ॥
उज्जलता भासे जब वस्तुको विचार कीजे, पूरिकी झलकसों वरण भांति भांति है ॥
तैसे जीव दरवको पुद्गल निमित्तरूप, ताकि ममतासों मोह मदिराकि मांति है ॥
भेदज्ञान दृष्टिसों स्वभाव साधि लीजे तहां, साचि शुद्ध चेतना अवाचि सुखशांति है ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे काश्मिरी सफेत पाषाण (स्फटिक) के मणीमें नाना प्रकार रंगका पुड दीजे, तब तो मणी सूर्यकांतिके मणि समान नानारंगरूप दीखे है। जब मूल वस्तूका विचार कीजे तो मणि उज्जल भासे है, परंतु पुडके निमित्तसे तद्देवार देखाय है। तैसे जीवद्रव्यकूं अशुद्ध दशाका निमित्त

पुद्गलद्रव्य है, तिन पुद्गलके ममतासे मोहरूप मदिराका उन्मत्तपणा होय है। अर जब भेदज्ञान दृष्टीसे मूल जीववस्तुका विचार कीजे तो, अवाच्य (वचन गोचन नही ऐसे) सत्यार्थ सुखशांतिरूप शुद्ध आत्माही भासे है ॥ ३३ ॥

॥ अब वस्तुके संगतसे स्वभावमें फेर पडे सो नदीके प्रवाहका दृष्टांत देयके कहे है ॥ ३१ सा ॥—

जैसे महि मंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहिमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है ॥
पाथरको जोर तहां धारकी मरोर होत, कांकरकी खानि तहां झागकी झरनि है ॥
पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग ऊंठे, भूमिकी निचान तहां भोरकी परनि है ॥
ऐसे एक आतमा अनंत रस पुदगल, दूहुके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥ ३४ ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी उपर नदीका प्रवाह एकरूप है, पण उस प्रवाहमें पाणीका बहना अनेक प्रकार है। जहां मोठा मोठा पाषाण आडो होय तहां पाणीके धारकूं मोड पडे है, अर जहां कांकरी बहुत होय तहां पाणीमें झागकी भभकी ऊठे है। जहां पवनकी झकोर लाग है तहां पाणीमें चंचल तरंग ऊठे है, अर जहां जमीन नीची है तहां भौंर फिरे है। तैसेही एक आत्मद्रव्य है परंतु अनंत रसरूप पुद्गलद्रव्य है, इन पुद्गलके संयोगते आत्मामें राग द्वेषादिक विभावकी भरणी होय है ॥ ३४ ॥

॥ अब आतमा अर देह एक हो रह्या है पण लक्षण जुदा जुदा है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

चेतन लक्षण आतमा, जड लक्षण तन जाल। तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥३५॥

अर्थ—आत्माका लक्षण चेतन है, अर शरीरका लक्षण जड है। ताते शरीरकी ममता छोडिके आत्माकी चाल जो शुद्ध ज्ञान है सो ग्रहण कर लीजे ॥ ३५ ॥

॥ अब आत्माकी शुद्ध चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जो जगकी करणी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई ॥
देह प्रमाण पैं देहसुं दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई ॥
देह धरे प्रभु देहसुं भिन्न, रहे परछन्न लखे नहि कोई ॥
लक्षण वेदि विचक्षण बूझत, अक्षनसों परतक्ष न होई ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो इस जगतकी समस्त करणी (चतुर्गतीमें गमनादि) है सो करे है, अर जो जगतकूं जाणे है अर देखेहू है। जो अपने देह प्रमाण है परंतु देहते दूजा है, देह अचेतन (ज्ञानशून्य) है अर आत्मा है सो चेतन (ज्ञानवान) है । देह रूपी है अर प्रभू (आत्मा) अरूपी है, आत्मा देह धरे है परंतु देहसे भिन्न है ढकि रहे है इसकूं कोई देखे नही । इस आत्माके जे लक्षण हैं तिस लक्षणकूं ज़ाणि ज्ञानी मनुष्य आत्माकूं ऊलखे है, पण नेत्र इंद्रियते प्रत्यक्ष दृग्गोचर नहि होय ॥ ३६ ॥

॥ अब देहकी चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेतकि क्यारी ॥
व्याधीकि पोट आराधीकि ओट, उपाधीकि जोट समाधिसों न्यारी ॥
रे जिय देह करे सुख हानि, इते पर ती तोहि लागत प्यारी ॥
देह तो तोहि तजेगि निदान पैं, तूंहि तजे क्युं न देहकि प्यारी ॥ ३७ ॥

अर्थ—देह है सो प्रेतवत् अचेतन है तथा रक्त अर रेतकी भरी गुफा है, अर मल मूत्र उपजनेकी खेतकी वाडी है । रोगकी पोटडी है अर आत्माकूं छुपावनेकूं आगळ है, क्लेशाकी झुंड है असमाधानी-

पणाका स्थान है। अरे जीव ? ये देहतो सुखका नाश करे है, इतनेपर तुझे प्यारी लागत है। पण ये देहतो तुझको तजेगी, अरे जीव ? तूं क्युं इस देहकी प्यारी तजे नही ॥ ३७ ॥ दोहा ॥—

सुन प्राणि सद्गुरु कहे, देह खेहकी खानि। धरे सहज दुख पोषको, करे मोक्षकी हानि ॥३८॥

अर्थ—सद्गुरु कहे हे प्राणी ? ये देह है सो मट्टीकी खाण है। ये स्वभावतेही वात पित्त कफ वा क्षुधा तृषादिक दोषकूं पुष्ट करनेवाली अर मोक्षकी हानी करनेवाली है ताते इसिका ममत्व छोडो ॥३८॥

॥ अब देहका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

रेतकीसी गढी कीधो मढि है मसाण कीसि, अंदर अंधेरि जैसी कंदरा है सैलकी ॥
ऊपरकि चमक दमक पट भूषणकि, धोके लगे भलि जैसी कलि है कनैलकी ॥
औगुणकि उंडि महा भोंडि मोहकी कनोंडि, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी ॥
ऐसी देह याहीके सनेह याके संगतीसों, व्हे रहि हमारी मति कोलुकैसे बैलकी ॥ ३९ ॥

अर्थ—यह देह है सो रेतकी गठडी अथवा मसाण समान अपवित्र स्थान है, इस देहमें पर्वतके गुफा जैसा अंधेर है। देहके ऊपर चमक दमक दीखे है सो वस्त्राभरणकी शोभाते झूठा भबका भला लोग है, कनेल वृक्षके कली समान दुर्गंध है। औगुण रहनेकी उंडी बावडी है दगा देनेकूं महाकृतघ्नी अर मोहकी कांणी आख है, माया जालका मसूदा अर मैलकी पूतली है। इसके ममतासे अर स्नेहसे, हमारी मती है सो कोल्हूके घाणीके बैल समान सदा भ्रमण करे है ॥ ३९ ॥

ठौर ठौर रकतके कुंड केसनीके झुंड, हाडनीसों भरि जैसे थरि है चुरैलकी ॥
थोरेसे धकाके लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पूरि कीधो चादर है चैलकी ॥

सूचे भ्रम वानि ठानि मूढनीसों पहिचानि, करे सुख हानि अरु खानी वद फैलकी ॥
ऐसीदेह याहीके सनेह याके संगतीसों, व्हैरहे हमारी मति कोल्हकैसे बैलकी ॥ ४० ॥

अर्थ—इस देहमें जगे जगे रक्तके कुंड अर केशके झुंड है, अर इस देहमें हाडकी थडी चुडले जैसी रची है। इह देह जरासा धका लगेतो फटिजाय है, मानूं कागदकी पूतली है अथवा जुनी चादर है। इसीका ममत्व करनेसे भ्रम उपजे है पण मूढलोक इसका स्नेह करे है, यह देह सुखकी हानी करनेवाली अर वदफैली (काम क्रोध) की खाण है। इसीके ममतासे अर स्नेहसे, हमारी मती कोल्हूके घाणीके बैल समान सदा भ्रमण करे है ॥ ४० ॥

॥ अव संसारी जीवकी गति कोल्हूके बैल समान है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पाठी बांधी लोचनीसों संचुके दवोचनीसों, कोचनीके सोचसों निवेदे खेद तनको ॥
धाइवोही धंधा अरु कंधा मांहि लग्यो जोत, वार वार आर सहे कायर व्हे मनको ॥
भूख सहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहे छिनको ॥
पराधीन घूमे जैसे कोल्हूका कमेरा बैल, तैसाहि स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥४१॥

अर्थ—कैसा है कोल्हूका बैल ? जिसके नेत्र ऊपर ढकणा बांधे है अर गुह्य स्थानमें दवोचनीते टोचे है, ताते वेदना होय है तोहूं शरीरकूं थकवा देय नही। धंदेमें दौडता फिरे है अर खांदेपर जोत है तिनते निकसने नहि पावे, अर वार वार मार सहे है ताते मनमें कायर हो रह्या है। भूख प्यास अर दुर्जनका त्रास सहे है, पण क्षणभर उश्वास लेनेकूं स्थिरता नही है। ऐसे कोल्हूके घाणीका काम करनेवाला बैल पराधीन हुवा घूमे है, तैसाही जगवासी संसारी जीवका घूमनेका स्वभाव है ॥४१॥

जगतमें डोले जगवासी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कींधो रेत कैसे धूहे है ॥
दीसें पट भूषण आडंबरसों नीके फीरे, फीके छिन मांहि सांझ अंवर ज्यों सूहे है ॥
मोहके अनल दगे मायाकी मनीसों पगे, डाभकि अणीसों लगे ऊस कैसे फूहे है ॥
धरमकी बूझि नांहि उरझे भरम मांहि, नाचि नाचि मरिजाहि मरी कैसे चूहे है ॥ ४२ ॥

अर्थ—संसारी जीव है तें जगतमें मनुष्यका रूप धरि डोले है, पण ते प्रेतके दीपक समान जलदी बुझ जाय है अथवा रेतके धूवे समान इहांसे उडी उहां पैदा हो जाय है। मनुष्य देह वस्त्राभरणते शोभनीक दीखे है, परंतु क्षणमें सांझके आकाश समान फीके पडे है। सदा मोहरूप अग्नीसे दाहे है अर मायामें व्यापि रहे है, पण घास ऊपरके पाणीके वूंद समान क्षणमें विनाश हो जाय है। संसारी जीवकूं धर्मकी ओळखही नही अर विषयते भूलि मोहमें नाचि नाचि मरजाय है, जैसे मरी रोग (प्लेग) के उंदीर नाचि नाचि मरे है तैसे ॥ ४२ ॥

॥ अब जगवासी जीवके मोहका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जासूं तूं कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जैसे नाक सिनकी ॥
तासूं तूं कहत हम पुन्य जोग पाइ सो तो, नरककि साई है वढाई डेढ दिनकी ॥
घेरा मांहि पऱ्योतूं विचारे सुख आखिनिको, माखिनके चूटत मिठाई जैसे भिनकी ॥
एतेपरि होई न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी ॥४३॥

अर्थ—अरे संसारी प्राणी ? जिस संपदाकूं तूं आपनी कहे है, सो तिस संपदाकूं साधू लोकने नाकके मैल जैसी दूर फेक दीई है तिसकूं फेर नहि लेवे। अर ताकूं तूं कहे हम पुन्य जोगसे पाई है परंतु

इह संपदा नरकके जानेकूं साइ (इसार) है अर इसकी बढाई दीड दीनकी है। इस स्त्री पुत्रादिकके घेरेमें तूं पडा है अर आखीनकूं सुख दीखे है, परंतु तूं विचार कर ? ये तेरी धन संपदा खानेकूं संग लगे है जैसे मिठाई खानेकूं मक्षिका चूटे है भिनभिनाट कर घेर राखे है। ऐसे होतेहू जगवासी जीव धनसंपदादिकते उदासीन होय नही सो बडा आश्चर्य है, विचार करिये तो इस जगतमें सदा दुःखही है सुख क्षणभरभी नही है ॥ ४३ ॥

॥ अब संसारी जीवकूं सद्गुरु समझावे है ॥ दोहा ॥—

यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज। तेरे घटमें जगवसे, तामें तेरो राज ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे भव्य ? इह जगवासी लोकसे अर जगतसे तेरा संबंध राखनेका काम नही। तेरे घट पिंडमें ज्ञान स्वभावमय समस्त प्रकाशरूप ब्रह्मांड वसे है तहां तेरा अविनाशी राज्य है ॥ ४४ ॥

॥ अब जे पिंड ते ब्रह्मांड ये वात साची है ऐसे सिद्धकरी वतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

याहि नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थीति, याहिमें त्रिविधि परिणामरूप सृष्टि है ॥
याहिमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुखवारीदकि वृष्टि है ॥
याहिमें करतार करतूति यामें विभूति, यामें भोग याहिमें वियोग यामें घृष्टि है ॥
याहिमें विलास सर्व गर्भित गुपतरूप; ताहिको प्रगट जाके अंतर सुदृष्टि है ॥४५॥

अर्थ—कटीके नीचे पाताल लोक अर नाभि है सो मध्य लोक अर नाभी ते ऊपर स्वर्गलोक ऐसे त्रिभुवनरूप स्थिति इस मनुष्य देहमें वसे है, अर इसहीमें कइक परिणाम उपजे है कइक नाश पावे है अर कइक स्थिर रहे है ऐसे परिणामरूप त्रिविध सृष्टि बन रही है। इस देहपिंडमें आत्माकूं

कर्मकी उपाधिरूप दुःखमय दावाग्नि है, अर इसहीमें आत्मध्यानरूप सुखकी मेघ वृष्टि है। इस देहपिंडमें कर्मका कर्त्ता पुरुष (आत्मा) है अर कर्त्ताकी क्रिया है अर इसिमें ज्ञानरूप संपदा है, इसिमें कर्मका भोग है अर त्रियोग है अर इसिमें शुभ तथा अशुभ गुण उपजे है। ऐसे इस देहपिंडमें गर्भित समस्त विलास गुप्तरूप है, पण जिसके हृदयमें सुदृष्टि (ज्ञान) का प्रकाश है तिसकूं सब विलास प्रत्यक्षपणे दीखे है ॥ ४५ ॥

॥ अब आतमाके विलास जाननेका उपदेश गुरु करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

रे रुचिवंत पचारि कहे गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही ॥
खोज हिये निज चेतन लक्षण, है निजमें निज गूझत नांही ॥
शुद्ध स्वच्छंद सदा अति उज्जल, मायाके फंद अरुझत नाही ॥
तेरो स्वरूप न दुंदकि दोहिमें, तोहिमें है तोहि सूझत नांही ॥ ४६ ॥

अर्थ—शिष्यकूं बुलाइके गुरु कहे, रे रुचिवंत भव्य ? तूं आपना स्वरूप वोलखतो नही। तूं आपना चेतन लक्षण हृदयमें धुंढ, तेरा लक्षण तेरे मांहि है, पण दृष्टिगोचर नही। तेरा स्वरूप सिद्ध समान है निज आधिन है अर कर्मरहित अति उज्जल है, पण मायाके फंदमें पड्या है तातें छूटि शकतो नही। तेरा स्वरूप क्लेश वा भ्रमजालके दुबिधामें नही है, तेरेमेंही है पण तोकूं सूझे नहि है ॥ ४६ ॥

॥ अब आतमस्वरूपकी ऊलख ज्ञानसे होय है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

केइ उदास रहे प्रभु कारण, केइ कहीं उठि जांहि कहींके ॥
केइ प्रणाम करे घडि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके ॥

केइ कहें असमानके ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेट जमींके ॥
मेरो धनी नहि दूर दिशान्तर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके ॥ ४७ ॥

अर्थ—कोई प्रभू (आत्मा) जाननेके कारण उदासीन होय बैठ रहे है, अर कोई केइ दूर क्षेत्रविषे यात्रा करनेकूं उठि जाय है। कोई परमेश्वरके घडी मूर्त्तिकूं प्रणाम करे है, अर कोई छीकेमें बैठीके पहाड चढे है। कोई कहे अस्मानके ऊपर परमेश्वर है अर कोई कहे जमीनके नीचे परमेश्वर है। [ऐसे अनेक लोकके अनेक मत है] पण ज्ञानी ऐसा विचार करे की मेरा धनी (परमेश्वर) तो कोई दूर देशांतरमें नही है, मेरे मांही है सो मुझकूं आच्छी रीतीसे सूझे (अनुभवमें आवे) है ॥ ४७ ॥

कहे सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ। सुथिर चित्त अनुभौ करे, प्रभुपद परसे सोइ॥४८॥

अर्थ—सद्गुरु कहे है की जो समकिती है, सो संसारते परम उदासीन होय है। अर मन स्थिर करके आत्माका अनुभव करे है, तव प्रभुपदका (आत्मस्वरूपका) अवलोकन होय है ॥ ४८ ॥

॥ अव मनका चंचलपणा वतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

छिनमें प्रवीण छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्र है ॥
लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥
नट कोसो थार कीधों हार है रहाट कोसो, नदीकोसो भोरकि कुंभार कोसो चक्र है॥
ऐसो मन भ्रामकसु थिर आज कैसे होइ, औरहीको चंचल अनादिहीको वक्र है ॥४९॥

अर्थ—ये मन है सो क्षणमें गर्वसे प्रवीण होय है अर क्षणमें मायासे मलीन बने है, क्षणमें विषयका वांछक होय दीन दशा धरे है, अर क्षणमें इंद्रसमान बनजात है। क्षणमें दौडादौड करे है

अर क्षणमें अनंतरूप धरे है जैसे दाधिका मथाणमें तक्र कोलाहल करे है। अथवा नटका फिराया थाल वा रहाटके घडेकी माल वा नदीके जलमेंका भ्रमर वा कुंभारका चक्र जैसे भ्रमण करे है। ऐसे मन भ्रमण करे है सो जातकाही चंचल है अर अनादिकालका वक्र है, सो मन आज स्थीर कैसे होय ॥४९॥

॥ अब मनका चंचलपणा स्थिर कैसे होयगा सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धायो सदा काल पै न पायो कहुं साचो सुख, रूपसों विमुख दुख कूपवास वसा है ॥
धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कुरापाति जाकी संनिपात कीसि दसा है ॥
मायाकों झपटि गहे कायासों लपटि रहे, भूल्यो भ्रम भीरमें बहीर कोसो ससा है ॥
ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचल सु, ज्ञानके जगेसे निरवाण पंथ धसा है ॥५०॥

अर्थ—यह मन सुखके वास्ते सदाकाल दौडता फिरे है पण साचो सुख कहांहूं नहि मिले है, अर अपने आत्मरूपसे पराङ्मुख होय भोगके आकुलतारूप कूपमें बसे है। अर धर्मका घाती है तथा अधर्मके संघाती है, ऐसे महा कुरापाती है जिसकी दशा तो कोई मनुष्य शनिपात तापतैं शुद्धिरहित होय है तैसी है। कपटकूं अर इच्छाकूं झट ग्रहण करे है तथा देहके ममतामें लपट रहे है, अर भ्रमजालमें पडके भूल्यो है जैसे शीकारी लोकके भींडते शुसा जनावर आय जालमें पडे है अर भ्रमतो फिरे है। ऐसे यह मन चंचल है सो पताकाके छेडासमान क्षणभरभी स्थीर नहि रहे है, परंतु जब सम्यक्ज्ञान जाग्रत होय है तब मोक्षमार्गमें प्रवेश करै है ॥ ५० ॥

॥ अब मन स्थिर करनेका उपाय कहे है ॥ दोहा ॥—

जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ। जो मन ध्यान विचारसों, रुकेसु अविचल होइ ॥५१॥

ताते विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वाणि। शुद्धातम अनुभौ विषें, कीजे अविचल आणि ॥५२॥

अर्थ—जो मन विषय अर कषायमें प्रवर्ते है सो चंचल है। अर जो मन ध्यानके विचारमें प्रवर्तै है सो अविचल है ॥ ५१ ॥ ताते मनके बाणीकूं विषय कषायते निकालो। अर शुद्ध आत्मानुभवमें लगायके अविचल करो ॥ ५२ ॥

॥ अब आत्मानुभवमें क्या विचार करना सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है ॥
नानारूप भेष धरे भेषको न लेश धरे, चेतन प्रदेश धरे चैतन्यका खंध है ॥
मोह धरे मोहीसो विराजे तामें तोहीसो, न मोहीसो न तोहीसों न रागी निरबंध है ॥
ऐसो चिदानंद याहि घटमें निकट तेरे, ताहि तूं विचार मन और सब धंध है ॥५३॥

अर्थ—यह आत्मा अलक्ष है अमूर्ति है अरूपी है अविनाशी है अर अजन्म है, निराधार है ज्ञानी है कर्मरहित है अर अखंड है। व्यवहारतें देखिये तो नाना प्रकारका भेप धरेहै पण निश्चयतें देखिये तो भेषका लेश नही है, चैतन्यके प्रदेशकूं धारण करे है तातें चैतन्यका पुंज है। अर यह आत्मा मोहकूं धरे जब मोही हो रहे है अर मनकूं धरे जब मनरूप होय है, पण निश्चयतें देखिये तो मोहरूप नही है अर मनरूपभी नही है ऐसा विरागी अर निर्बंध है। अरे मन ? जहां तूं रहे है तहांही तेरे निकट ए आत्मा रहे है, अरे मन ? तूं ऐसाही आत्माका विचार कर (सोही अनुभव है) और सब द्वंद (दूजारूप) है ॥ ५३ ॥

॥ अव आत्मानुभव करनेके विधिका क्रम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम सुदृष्टिसों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानीये ॥
अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न, ताहूमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानिये ॥
तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये ॥
वाहिको विचार करि वाहिमें मगन हूजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥५४॥

अर्थ—प्रथम भेदज्ञानते शरीरकूं भिन्न मानना, फेर शरीरमें जो सूक्ष्म तैजस शरीर है अर सूक्ष्म कार्माण शरीर है तिसकूं भिन्न मानना। फेर अष्ट कर्मके उपाधि (राग अर द्वेष) कूं भिन्न मानना, फेर कर्मते सुबुद्धीके विलास (भेद ज्ञान) कूं भिन्न मानना। तिस ज्ञानके विलासमें आत्मा अखंड वसे है, ऐसे श्रुत ज्ञानके प्रमाण अर नय निक्षेपते हृदयमें स्थापन करना। अरे मन ? तूं इस माफिक आत्माका विचार कर अर इस आत्मामेही मग्न हो, परमात्मपद (मोक्षपद) साधवेकूं येही आत्मानुभवकी विधि युक्त है सो निरंतर करना ॥ ५४ ॥

॥ अव आत्मानुभवते कर्मका वंधनहि होय है सो कहे है ॥ चौपई ॥ सवैया ३१ सा ॥—

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने ॥
तातें ज्ञानवंत जग मांही। करम बंधको करता नांही ॥ ५५ ॥

अर्थ—ऐसे आत्मस्वरूप जाने है अर रागद्वेषादिककूं पर माने है। तातैं भेदज्ञानी है सो जगतमें कर्मबंधकूं कर्ता नही है ॥ ५५ ॥

॥ अव अनुभवी जो भेदज्ञानी है तिसकी क्रिया कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानी भेदज्ञानसों विलक्ष पुदगल कर्म, आतमीक धर्मसों निरालो करि मानतो ॥
ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेकों शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो ॥
याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपमांहि आपनो स्वभाव गहि आनतो ॥
साधि शिवचाल निरबंध होत तीहुं काल, केवल विलोक पाई लोकालोक जानतो ॥ ५६ ॥

अर्थ—ज्ञानी है सो भेदज्ञानके प्रभावते पुद्गलकर्मकूं पररूप जाने है, आत्मीक धर्मसे जुदा करि माने है। अर पुद्गलीक कर्मबंधका मूल कारण जे अशुद्ध रागादिक भाव है, तिसका नाश करनेकूं शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है। अर पूर्वे ५४ वे कवित्तमें कह्या तैसे अनुक्रमते शरीरादिक वा रागादिक परद्रव्यके संबंधकूं त्यागे है अर अपनेमें अपने ज्ञान स्वभावकूं ग्रहण करे है। ऐसे मोक्षमार्गका त्रिकाल साधन करि कर्मबंधका नाश करे है अर केवलज्ञान पाय लोकालोककूं जाननेवाला होय है ॥ ५६ ॥

॥ अव अनुभवी (भेदज्ञानी) का पराक्रम अर वैभव कहै है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ मनुष्य अजान महावलवान, खोदि मूल वृक्षको उखारे गहि वाहुसों ॥
तैसे मतिमान द्रव्यकर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दशाहुसों ॥
याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे जोति केवल प्रधान सविताहुसों ॥
चुके न शकतीसों लुके न पुदगल माहि, धुके मोक्ष थलकों रुके न फिरि काहुसों ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसे कोऊ मूढ मनुष्य महा बलवान होय सो, वृक्षके मूलकूं खोदि अपने बाहुसे उखाड डारे है। तैसे अनुभवी भेदज्ञानी है सो ज्ञानदशातें, द्रव्यकर्मकूं अर भावकर्मकूं त्यागिके कर्मरहित होय रहे

है। ऐसेही क्षणक्षणमें मोह अंधकार मिटावे है, तब सूर्यसे श्रेष्ठ अर सब ज्ञानमें प्रधान ऐसी केवलज्ञानकी ज्योति जाग्रत होय है । तथा अनंत शक्ति प्रगटे है सो फेर नाश नहि पावे अर कर्म नोकर्मसे छिपे नही है, सो अनंत शक्ती मोक्ष स्थानकूं पोहोचावे है ते काहूसे रुके नही ॥ ५७ ॥ दोहा ॥—

बंधद्वार पूरण भयो, जो दुख दोष निदान । अब वरणूं संक्षेपसे, मोक्षद्वार सुखथान ॥ ५८॥

अर्थ—दुःखका अर दोषका कारण ऐसा बंधद्वार पूर्ण भया । अब सुखका स्थान जो मोक्षद्वार है सो संक्षेपते वर्णन करूंहू ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको अष्टम बंधद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ८ ॥



॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको नवमो मोक्षद्वारप्रारंभ ॥ ९ ॥

॥ अब आदिमें ज्ञानरूप विश्वनाथकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे ॥
अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे, करम भरमको खजानो खोलि खरचे ॥
योंहि मोक्ष मुख धावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि लहे परमकों परचे ॥
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे ॥१॥

अर्थ—ज्ञानी है सो भेदज्ञानरूप करोतसे आत्माकी अर कर्मकी दोय फाड करे है, अर दोनूं फाडाकूं जुदा जुदा जाने है। आत्मीक धारा (फाड) के अनुभवका अभ्यास कर शुद्ध समाधि ग्रहण करे, अर कर्म धाराका खजीना (सत्ता) खोलि निर्जरा करे है। ऐसे विधि कर मोक्षके सन्मुख धावे है ताते केवलज्ञान निकट आवे है, अर परिपूर्ण आत्म स्वरूपका परिचय होय पूर्ण निराकुलताकूं पावे है। सो भव भ्रमणके दोरकूं छांडि निरदोर होय है कछु करना बाकी न रहे है, ऐसो जो ज्ञानरूप विश्वनाथ है तिसकूं बनारसीदास वंदे है पूजे है ॥ १ ॥

॥ अब सुबुद्धीसे आत्म स्वरूप सधाय है सो मोक्ष अधिकार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धरम धरम सावधान व्है परम पैनि, ऐसि बुद्धि छैनी घटमांहि डार दीनी है ॥
पैठी नो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विभावताकी संधि शोधि लीनी है ॥
तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है ॥
मुधासों विरचि सुधा सिंधुमें मगन होय, येति सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है ॥ २ ॥

अर्थ—कोई धर्मात्मा मनुष्य धर्ममें सावधान होयके, बुद्धिरूप छेनी (शस्त्र) अपने हृदयमें डार देवे है। सो छैनी हृदयमें जाय नोकरमकूं अर द्रव्य कर्मकूं छेदे है, अर स्वभाव तथा परभाव ऐसे दोय संधी (फाडा) का शोध करे है। ज्ञानी पुरुष तिस संधिके मध्यपाती होय दोय फाडाकूं देखे है, तो तिसमें एक फाड कर्मरूपी अज्ञानमई दीखे है अर एक फाड ज्ञानरूप अमृतमई दीखे है। ज्ञानी अज्ञान फाडकूं छोड देय है अर ज्ञानरूप अमृत फाडामें मग्न होय है, ज्ञानी है सो इतनी सब क्रिया एक समयमें करे है ॥ २ ॥

जैसि छैनी लोहकी, करे एकसों दोय। जड चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होय ॥ ३॥

अर्थ—जैसे लोहकी छैनी है सो एकके दोय भाग करे। तैसे चेतनकी अर अचेतनकी एकता है सो भेद ज्ञानतेही होय है ॥ ३ ॥

॥ अव सुबुद्धिका विलास कहे है ॥ सर्व ह्रस्व अक्षर सवैया ३१ सा ॥—

धरत धरम फल हरत करम मल, मन वच तन बल करत समरपे ॥
भखत असन सित चखत रसन रित, लखत अमित वित कर चित दरपे ॥
कहत मरम धुर दहत भरम पुर, गहत परम गुर उर उपसरपे ॥
रहत जगत हित लहत भगति रित, चहत अगत गति यह मति परपे ॥ ४ ॥

अर्थ—सुबुद्धी है सो धर्मरूप फलकूं धरे है अर कर्मरूप मलकूं हरे है, तथा मन वचन अर देह इनके बलकूं ज्ञानमें लगावे है। निर्दोष भोजन करे पण जिव्हा इंद्रियके स्वादमें मग्न नहि होय

है, अर अपना ज्ञानरूप अपूर्व धन चित्तरूप दर्पणमें देखे है। आत्म स्वरूपका व्याख्यान कहे अर भ्रमरूप मिथ्यात्व नगरकूं दग्ध करे है, हृदयमें सुगुरका उपदेश धारण करे अर चित्तकूं स्थिरता राखे है। जगमें सर्व प्राणीका हित होय तैसे प्रवर्ते अर त्रैलोक्य पतीकी भक्ती (श्रद्धा) करे है, पुनः जन्म नहि होय तिस गती (मुक्ती) की इच्छा धरे है ऐसे सुबुद्धीका उत्कृष्ट विलास है ॥ ४ ॥

॥ अब ज्ञाताका विलास कहे है ॥ सर्व दीर्घ अक्षर सवैया ३१ सा ॥—

राणाकोसो बाणालीने आपासाधे थानाचीने, दानाअंगी नानारंगीखाना जंगी जोधा है ॥
मायावेली जेतीतेती रेतेमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोंसो लोधा है ॥
बाधासेती हांतालोरे राधासेती तांता जोरे, बांदीसेती नांता तोरे चांदीकोसो सोधा है ॥
जानेजाही ताहीनीके मानेराही पाहीपीके, ठानेबाते डाहीऐसो धारावाही बोधा है ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्ञाता है सो राजा सारिखा बाणा लिये है राजा तो आपना देश साधनेमें चित्त राखे अर ज्ञानी आपने आत्म साधनमें चित्त राखे, राजा तो शाम दाम दंडादि तथा खाना जंगी लढाई करि दुर्जनको हटावे अर ज्ञानी है सो राग द्वेषका त्यागि होय इंद्रिय दमनादि अनेक भेदरूप तपकरि कर्मकूं क्षपावे। अथवा लुहार जैसे रेतडीसे लोहेकूं घसि डारे तैसे ज्ञानी सुबुद्धीसे क्रोध मान माया अर लोभरूप वेलींकूं छेदिनाखे, अथवा किसाण (खेती करनेवाला) जैसे भूमीकूं खोदे धान्यमेका घास निकाले तैसे ज्ञानीहूं मिथ्यात्वकूं छोडे है। अर कर्मबंधके बाधाकूं जूदा करे तथा सुबुद्धिरूप स्त्रीसे स्नेह जोडे है, अर कुबुद्धीका नाता तोरे है तथा योग्य वस्तूकूं ग्रहण करे अर अयोग्य वस्तूकूं छोडे है जैसे सोना रूपा शोधनेवाला वस्तु शुद्ध कर सोना रूपा लेय अर केर कचरा फेकदे तैसे। अर

आत्माकूं तथा शरीरादिककूं नीके जानकर आत्माकूं माख मगज समान अर पुद्गलकूं तुक फोल समान माने हे, ऐसी ऐसी डाही बाता करे है सो सम्यक् धाराकूं वहनारा बोधा (ज्ञाता) है ॥ ५ ॥

॥ अव ज्ञाताका पराक्रम चक्रवर्त्तीसेहू अधिक है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हकेजु द्रव्य मिति साधत छखंड थीति, विनसे विभाव अरि पंकति पतन हैं ॥
जिन्हकेजु भक्तिको विधान एइ नौ निधान, त्रिगुणके भेद मानो चौदह रतन है ॥
जिन्हके सुबुद्धिराणी चूरे महा मोह वज्र, पूरे मंगलीक जे जे मोक्षके जतन है ॥
जिन्हके प्रणाम अंग सोहे चमूं चतुरंग, तेइ चक्रवर्ति तनु धरे ये अतन है ॥ ६ ॥

अर्थ—चक्रवर्ती राजा छह खंड पृथ्वी साध्य करे है अर ज्ञानीहू पृथ्वीतलके छह द्रव्यकूं प्रमाण अर नयते साध्य करे है, चक्रवर्ती शत्रुका क्षय करेहै तैसे ज्ञानीहू राग द्वेषका क्षय करे है । चक्रवर्त्तीकूं नव निधि अर चौदह रत्न है, तैसे ज्ञानीकूं नवधा भक्तिरूप नवनिधि अर रत्नत्रयरूप चौदह रत्न है । चक्रवर्तीकी पट राणी दिग्विजयके अवसर राज्याभिपेकके समयमें चक्रवर्तीके सन्मूख दो अंगुलीसे रत्नका चूर्ण करि मंगल चौक पूरे है, तैसे ज्ञानीके सुबुद्धीरूप स्त्रीहूं मोक्षके अर्थि निबड मोहकर्मका सहज चूर्ण करे है । चक्रवर्त्तीकूं हत्ती घोडे बैल अर पायदल चतुरंग सेना है तैसे ज्ञानीकूं प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण अर निक्षेप यह चतुरंग सेना है, चक्रवर्ती देह धरे है अर ज्ञानी है सो देहते विरक्त है ताते देह होतेहू देह रहित है ॥ ६ ॥

॥ अव ज्ञानी नव प्रकारे भक्ती करे है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

श्रवण कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान । लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमाण ॥७॥

अर्थ—ज्ञानी है सो–परमात्माके गुण श्रवण करे, गुणका व्याख्यान करे, गुणका चिंतवन करे, गुणका अध्ययन करे, गुणमें तल्लीन होय, गुणका स्मरण रखे, गुणका गर्व नहि करे, साम्यभाव धरे, अर आत्मस्वरूमें एक हो जाय (देहकूं पर माने) है, ऐसे नव प्रकारे भक्तीके भेद है सो ज्ञानी करे है ॥ ७ ॥

॥ अब जो ज्ञाता अनुभवी है ताके परिचयके वचन कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण विभेद भिन्न करमको जाल है ॥
जाने आप आपकोंजु आपकरी आपविखे, उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥
सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरें, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है ॥
मैंतो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारि, प्रभूता हमारि एकरूप तीहुं काल है ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्माका अनुभव हुवा सो अनुभवी जीव ऐसे कहे की, मेरे अनुभवमें लक्षण भेदते कर्मजाल भिन्न दीसवा लाग्यो है। अर आपकूं आपते आपमें जाने है की, उत्पाद विनाश अर ध्रुव ये तीन प्रबल धारा मेरेमें निरंतर वहे है सो विकल्प है मेरेते सर्वथा न्यारे है, ये तीन धारा व्यवहार नयकी चाल है। मैंतो शुद्ध स्वरूप अनंत ज्ञानका धरनेवाला है, ये मेरे ज्ञान चेतनकी प्रभूता तीन कालमें एकरूप अचल है ॥ ८ ॥

॥ अब आत्माके चेतना लक्षणका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निराकार चेतना कहावे दरशन गुण, साकार चेतना शुद्ध गुण ज्ञान सार है ॥
चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरव माहि, सामान्य विशेष सत्ताहीको विसतार है ॥

कोउ कहे चेतना चिह्न नांही आतमामें, चेतनाके नाश होत त्रिविधि विकार है ॥
लक्षणको नाश सत्ता नाश मूल वस्तु नाश, ताते जीव दरवको चेतना आधार है ॥९॥

अर्थ—आत्माका चेतना गुण है तिस चेतानाके दोय भेद है एक दर्शन चेतना अर एक ज्ञान चेतना तिसमें दर्शन चेतना निराकार है, अर ज्ञान चेतना साकार है। ऐसे चेतनाके दोय भेद है पण आत्म द्रव्यमें एकरूप रहे है, दर्शन सामान्य चेतना है अर ज्ञान विशेष चेतना है ऐसे सामान्य विशेषतें दोय भेद दीखे है पण एक आत्मसत्ताका विस्तार है। कोई मतवाले कहे की आत्मामें चेतना लक्षण नही है, परंतु ऐसे लक्षणका अभाव कहनेसे तीन दोष (मन, वचन, अर देहके विकार,) उपजे है। एकतो लक्षणका नाश माननेसे सत्ताका नाश होय अर सत्ताका नाश होते मूल वस्तुका नाश होय, ताते जीवद्रव्यके जाननेकूं चेतना येक आधार है ॥ ९ ॥ दोहा ॥—

चेतना लक्षण आतमा, आतम सत्ता मांहि। सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमें नांहि ॥१०॥

अर्थ—आत्माका चेतना लक्षण है, सो आत्माके सत्तामें है। अर सत्तायुक्त आत्म वस्तु है, पण द्रव्य अपेक्षाते देखिये तो तीनूमें भेद नही है एकरूप है ॥ १० ॥

॥ अब आत्माके चेतना लक्षणका शाश्वतपणा दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों कलधौत सुनारकि संगति, भूषण नाम कहे सब कोई ॥
कंचनता न मिटी तिहि हेतु, वहे फिरि औटिके कंचन होई ॥
त्यों यहजीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप हुवो नहि दोई ॥
चेतनता न गई कबहूं तिहि, कारण ब्रह्म कहावत सोई ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे सोनेकूं सोनार घडावे है, तब तिस घाटके संयोगसे सबलोक तिसकूं भूषण कहते है। तथापि तिसका सुवर्णपणा नहि जाय है, वह भूषण अटवावेतो फेर सुवर्णही होय है। तैसे जीव है सो कर्मके संयोगते चतुर्गतीमें अनेकरूप धारण करै है, पण यह जीव अन्यरूप नहि बने है। चेतनका अभाव कोई कालमें नहि होय है, ताते सब अवस्थामें जीवकूं ब्रह्म कहते है ॥ ११ ॥

॥ अब अनुभव है सो सुबुद्धि सखीकूं ब्रह्मका स्वरूप कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

देख सखी यह ब्रह्म विराजत, याकि दशा सब याहिको सोहै ॥
एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद्व लिये दुविधा महि दो है ॥
आप सभारि लखे अपनो पद, आप विसारिके आपहि मोहे ॥
व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कोन अज्ञानमें को है ॥ १२ ॥

अर्थ—अनुभव है सो सुबुद्धि सखीकूं कहे है की हे सखी देख ? यह अपना ईश्वर कैसा विराजे है, इसीका स्वरूप इसीकूंही शोभे है। आत्म सत्तामें देखिये तो एकरूप है पुद्गलमें देखिये तो अनेक रूप है, ज्ञानमें देखिये तो ज्ञानरूप है अर अज्ञानमें देखिये तो अज्ञानरूप है ऐसे दोय रूप आपही है। कबहू तो आपना स्वरूप आप सचेत होयके देखे है, अर कबहूतो आपना स्वरूप आप अचेत होके भूले है अर मोहमें पडे है। हे सखी ? ऐसाही ईश्वर घटके अंतर व्यापकरूप है ताते अपने समस्त अवस्थामें व्यापि रहे है, ज्ञानमें तथा अज्ञानमें एक आत्माराम है ॥ १२ ॥

॥ अब आत्मस्वरूपका अनुभव कब होय है सो दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटे जब कौतुक देखे ॥

नी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखे ॥
न राव, विभाव दशा धरि रूप विसेखे ॥
लखे अपनो पद, दुंद विचार दशानहि लेखे ॥ १३ ॥

नट बहुत प्रकारके सोंग धरे है, अर ते ते सोंगकी बतावणी जब्र करे है
है। तथा वह नटहू अपने अनेक सोंगके कर्तव्यकूं आप देखे है परंतु
। स्वरूप भिन्न जाने है। तैसेही घटमें चेतनराव नट है सो रागादिक अनेक
रण करि बहुत रूप करे है। परंतु जब सुज्ञान दृष्टि खोलि अपना स्वरूप आप ऊलखे
रागादिक विभाव दशाकूं आपनी नहि जाने है॥ १३ ॥

॥ अव चेतनके भाव ग्रहण करना औरके भाव त्यागना सो कहे है ॥ छंद अडिल्ल ॥—

जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है। और भाव जो धरे सो और कोइ है ॥
जो चिन मंडित भाव उपादे जानने। त्याग योग्य परभाव पराये मानने ॥ १४ ॥

अर्थ—जिसमें चेतन भाव है सोही चिदात्मा है, अर चेतन विना जे भाव है सो पुद्गलके भाव है। ताते चेतनायुक्त जे भाव है सो स्वभाव जानकर तिसकूं ग्रहण करनां योग्य है, अर चेतन विना अन्य जे भाव है सो परभाव मानकर तिसकूं त्याग करनां योग्य है ॥ १४ ॥

॥ अव भेदज्ञानी मोक्षमार्गका साधक है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके सुमति जागि भोगसों भये विरागि, परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें ॥
रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारि, कबहु मगन व्है न रहे धाम धनमें ॥

जे सदैव आपकों विचारे सरवांग शुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापे कहु मनमें ॥
तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावे रहो मंदिरमें भावे रहो वनमें ॥१५॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सुमति जागी है अर भोगसूं विरागी हुवा है, अर देहादिक पर संगके त्यागी त्रैलोक्यमें जे पुरुष है। अर जिसकी रहनी रागद्वेषादिकके भावसे रहित है, सो कबहू घरमें अर धनमें मग्न नहि रहे। अर जो निश्चयते सदा अपने आत्माकूं सर्वस्वी शुद्ध माने है, ताते तिनके मनमें कोई प्रकारे कबहू विकलता (भ्रम) नहि व्यापे है। ऐसे जे जीव हे तेही मोक्षमार्गके साधक कहावे है, पीछे ते चाहिये तो घरमें रहो अथवा चाहिये तो वनमें रहो तिनकी अवस्था सब ठेकाणें एक है ताते मोक्षमार्ग सधे है ॥ १५ ॥

॥ अब मोक्षमार्गके साधकका विचार कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ॥
राग विरोध विमोह दशा, समझे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥
भोग संयोग वियोग व्यथा, अवलोकि कहे यह कर्मजु घेरो ॥
है जिन्हकों अनुभौ इह भांति, सदा तिनकों परमारथ नेरो ॥ १६ ॥

अर्थ—जो आपने आत्मामें दृष्टि देयके विचारे की—मेरा अंग है सो चेतनायुक्त है अखंडित है, अर शुद्ध पवित्र पदार्थ है। अर जो राग द्वेष तथा मोहरूप अवस्था संसारमें दीखे है, ते सब पुद्गल कर्मकृत भ्रमरूप नाटक है। अर विषयभोगके संयोग तथा वियोगकी व्यथा है सो पूर्व कर्मका उदय है मेरेते बाह्य है। जिसीकूं सदाकाल ऐसा परिचय रहे है, तिसकूं परमार्थरूप मोक्ष नाजिक है ॥१६॥

॥ अब मोक्षके निकट है ते साहुकार है अर दूर है ते दरिद्री है सो कहे है दोहा ॥—

जो पुमान परधन हरे, सो अपराधी अज्ञ । जो अपने धन व्यवहरे, सो धनपति सर्वज्ञ ॥१७॥
परकी संगति जो रचे, बंध बढावे सोय । जो निज सत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होय ॥१८॥

अर्थ—जो पुद्गलके गुणरूप धनकूं धरे है, सो अपराधी (चोर) अज्ञ है । अर जो आपने ज्ञान गुणरूप धनते व्यवहार करे है सो ज्ञानी साहुकार है ॥ १७ ॥ जो पर संगतीमें राचे है, सो कर्म-बंधकूं बढावे है । अर जो आत्मसत्तामें मग्न है, सो सहज मुक्त (बंध रहित) होय है ॥ १८ ॥

॥ अब वस्तुका अर सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

उपजे विनसे थिर रहे, यहुतो वस्तु वखान । जो मर्यादा वस्तुकी, सो सत्ता परमाण ॥ १९ ॥

अर्थ—जो उपजे है विनसे है अर स्थिर रहे है, तिसकूं वस्तु (द्रव्य)कहिये है । अर जो द्रव्यकी मर्यादा (अचलपणा) है तिस गुणकूं सत्ता कहिये है ॥ १९ ॥

॥ अब षट्द्रव्यके सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

लोकालोक मान एक सत्ता हैं आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य एक सत्ता लोक परमीत है ॥
लोक परमान एक सत्ता है अधर्म द्रव्य, कालके अणु असंख्य सत्ता अगणीत है ॥
पुदगल शुद्ध परमाणुकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थीत है ॥
कोउ सत्ता काहुसों न मिले एकमेक होय, सबे असहाय यों अनादिहीकी रीत है॥२०॥

अर्थ—आकाश द्रव्यकी सत्ता (मर्यादा) लोक तथा अलोकपर्यंत एक है ॥ १ ॥ धर्म द्रव्यकी सत्ता लोकपर्यंत एक है ॥ २ ॥ अधर्म द्रव्यकी सत्ताहूं लोकपर्यंत एक है ॥ ३ ॥ काल द्रव्यके अणु

(प्रदेश) लोकाकाशके प्रदेश समान असंख्यात है ताते काल द्रव्यके अणूकी सत्ता असंख्यात है ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यमें पुद्गल द्रव्यके रूपी परमाणू अनंत है ताते पुद्गल द्रव्यके परमाणूकी सत्ता अनंत है ॥ ५ ॥ अर त्रैलोक्यमें जीव अनंत है तिस एक एक जीवकी सत्ता अनंत अनंत है सो न्यारी न्यारी है ॥ ७ ॥ ऐसे छह द्रव्यकी सत्ता कही सो किसी द्रव्यकी सत्ता अन्य दूसरे किसीहू द्रव्यमें एकमेक होय मिले नही है, सब असाह्य रहे है ऐसी अनादिकी रीत है ॥ २० ॥

एइ छह द्रव्य इनहीको है जगतजाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है ॥
काहुकी अनंत सत्ता काहुसों न मिले कोइ, एक एक सत्तामें अनंत गुण गान है ॥
एक एक सत्तामें अनंत परजाय फीरे, एकमें अनेक इहि भांति परमाण है ॥
यहै स्यादवाद यह संतनकी मरयाद, यहै सुख पोष यह मोक्षको निदान है ॥ २१ ॥

अर्थ—ये छह द्रव्य कहे इनसे जगत जाल भऱ्या है, तिसमें पांच द्रव्य जड (अज्ञान) है अर एक चेतन द्रव्य ज्ञानमय है। कोई द्रव्यकी अनंत सत्ता है पण सो दूसरे अन्य द्रव्यके सत्तामें मिले नही ऐसे जुदी जुदी अनंत सत्ता रहे है, अर एक एक सत्तामें अनंतगुण जाननेका ज्ञान है। अर एक एक सतामें अनंत अवस्था फिरे है, ऐसे एकमें अनेक भेद होय है ते प्रमाण है। यह स्याद्वादशमत है सो सत्पुरुषके अचल वचन है, यह वचन सुखका पोषक अर मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

॥ अब एक जीवद्रव्यके सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

साधि दधि मथंनमें राधि रस पंथनमें, जहां तहां ग्रंथनमें सत्ताहीको सोर है ॥
ज्ञान भान सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताको दुरनि सांझ सत्ता मुख भोर है ॥

सत्ताको स्वरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष, सत्ताके उलंघे धूम धाम चहूं ओर है ॥
सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोई साहु, सत्तातें निकसि और गहे सोई चोर है ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसे दधि मंथनमें घृतकी सत्ता साधे है अथवा औषधीके क्रियामें रसकी सत्ता है, जहां तहां शास्त्रमें आत्मसत्ताहीका कथन है। ज्ञानरूपी सूर्यका उदय आत्मसत्तामें उपजे है तथा अमृत अर निधान पण सत्तामें उपजे है, अर आत्मसत्ताकूं छिपावना सो सांझका अंधेर है अर सत्ताकी मुख्यता है सो दिनकी प्रभात है। आत्मसत्ताका स्वरूप समझना मोक्षका मूल है अर आत्मसत्ताके स्वरूपकूं भूलना सो महा दोष (रागद्वेषका) कारण है, आत्मसत्ताकूं उलंघनेसे चहुओर धामधूम (चतुर्गतीमें भ्रमण) होय है। आत्मसत्ताके समाधिमें (अनुभवमें) रहे सो साहुकार है अर आत्मसत्ताकूं छोडके पर (पुद्गल) की सत्ता ग्रहण करे सो चोर है ॥ २२ ॥

॥ अब आत्मसत्ताके समाधीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जामें लोक वेदनांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नांहि करनी ॥
जामें राग द्वेष नांहि जामें बंध मोक्ष नांहि, जामें प्रभु दास न आकाश नांहि धरनी ॥
जामें कुल रीत नांहि जामें हार जीत नांहि, जामें गुरु शिष्य नांहि विष नांहि भरनी ॥
आश्रम वरण नांहि काहुका सरण नांहि, ऐसि शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥२३॥

अर्थ—आत्माके सत्तामें लौकिक सुख दुखकी वेदना नही अर स्थापना तथा उपस्थापना नहीं जिसमें पापका तथा पुन्यका खेद नही अर क्रिया करणी नही। जिसमें राग तथा द्वेश नही अर बंध तथा मोक्ष नहीं, जिसमें स्वामीपणा तथा दासपणा नही अर आकाश तथा धरणी नही। जिसमें

कुलकी रीत नही अर हारी तथा जीत नही, जिसमें गुरु तथा शिष्य नही अर हलन तथा चलन नही। जिसमें कोई आश्रम तथा जाति वर्ण नही अर काहू ईश्वरादिकका शरण नही, ऐसे आत्माके शुद्ध सत्ताके समाधिरूप भूमीका स्वरूप वर्णन कीया ॥ २३ ॥

॥ अब आत्मसत्ताकूं न जाने सो अपराधी है तिसका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

जाके घट समता नही, ममता मगन सदीव। रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदे हिरदे अंध। परको माने आतमा, करे करमको बंध ॥ २५ ॥
झूठी करणी आचरे, झूठे सुखकी आस। झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभूको दास ॥ २६ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें समता नही अर जो सदैव देहादिक पर वस्तुमें मग्न हो रहा है। अर जो अपने देहमें रमनेवाला आत्मारामकूं नहि जाने सो अपराधी जीव है ॥ २४ ॥ जो आत्मस्वरूपकूं जाने नही सो अपराधी मिथ्यात्वी है तिसका हृदय निर्दय अर अंध (ज्ञान रहित) है। ताते देहादिक परवस्तुकूं आत्मा मानि निरंतर कर्मबंध करे है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना क्रिया झूठी है, अर आत्मस्वरूप जाने विना मोक्षसुखकी आश झूठी है। श्रद्धा विना भक्ति झूठि है, अर प्रभूका (ईश्वरका) स्वरूप जाने विना सेवा करना सो झूठा दास है ॥ २६ ॥

॥ अब अपराधीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

माटी भूमि सैलकी सो संपदा वखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है ॥
अपना न रूप गहे ओरहीसों आपा कहे, साताती समाधि जाके असाता कहर है ॥

कोपको कृपान लिये मान मद पान कीये, मायाकी मयोर हिये लोभकी लहर है॥
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें वहर है॥ २७॥

अर्थ—भूमी पर्वतते सुवर्णादिक धातु पैदा होय है तिस सुवर्णादिककूं आपनी संपदा कहे, देहादिकके क्रियाते सिद्धि माने है अर ज्ञानकूं जहर जाने है। आत्मस्वरूपकूं तो ग्रहे नही अर देहादिककूं आपना कहे, सुखकूं समाधि अर दुःखकूं उपाधि समझे। सदा कोपरूप खड्ग लेय रहे है अर अहंकाररूप मद्य पान करे है, तथा हृदयमें कपटकी अर लोभकी लहर उठे है। ऐसे अचेतनकी संगतीसे चेतन है सो, सांचते परान्मुख होय झूठके बहरमें तत्पर हो रह्या है॥ २७॥ पुनः॥—

तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है॥
तासों कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरि, यह मेरोही परोई मेरोही पहर है॥
खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरा गेह, जहां वसे तासों कहे मेराही सहर है॥
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें वहर है॥ २८॥

अर्थ—जगतमें भूत भविष्य अर वर्तमान ऐसे तीन कालका परिवर्तन सदा हो रहा है। तिसकूं कहे यह मेरा दिन यह मेरी घडी है, अर यह मेरे बहरका पहर है। मट्टीका फत्तरका अर लकडीका ढिगला करे अर तासो कहे यह मेरा घर महेल है, जिस गांवमें रहे तिसकूं कहे यह मेरा सहेर है। ऐसे अचेतनकी संगतीसे चेतन है सो, साचते परान्मुख होय झूठके बहरमें तत्पर हो रह्या है॥ २८॥

॥ अब सम्यक्दृष्टी साहुकारका विचार कहे है ॥ दोहा॥—

जिन्हके मिथ्यामति नही, ज्ञानकला घट मांहि। परचे आतम रामसों, ते अपराधी नाहि॥२९॥

अर्थ—जिसके दुर्बुद्धीका नाश होय हृदयमें भेदज्ञान हुवा है। अर जिसने आत्मारामका अनुभव कीया है सो जीव अपराधी नही है, साहुकार है ॥ २९ ॥

॥ अब ज्ञानीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसै मोह विभ्रम विरख तीनो वढे हैं ॥
जिन्हके चितौनि आगे उदै स्वान भुसि भागे, लागे न करम रज ज्ञान गज चढे हैं ॥
जिन्हके समझकि तरंग अंग आगमसे, आगममें निपुण अध्यातममें कढे हैं ॥
तेई परमारथी पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३० ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें धर्मध्यानरूप अग्नि प्रज्वलित हुवा है, तातै संशय मोह अर भ्रमरूप तीनों वृक्ष दग्ध हुये है। अर जिसके बार भावनाके चिंतवन आगे कर्मका उदयरूप कुत्ता भूंखि भूंखि भागे है, अर जे ज्ञानरूप गजेंद्र ऊपरि चढे है ताते तिनकूं कर्मरूप धूल लगे नही। अर जिसके समझकी तरंग शास्त्रअंगसे प्रमाण है, आगम आभ्यासमें निपुण है अर आत्माके अनुभव करानेवाले परिणाम जिसके सदा खडे है। अर जे आठौ प्रहर रामरसमें मग्न होय आत्मानुभवका पाठ पढे है, सोही सम्यक्दृष्टी मनुष्य परम पवित्र है ॥ ३० ॥

जिन्हके चिहुंटी चिमटासी गुण चूनवेकों, कुकथाके सुनिवेकों दोउ कान मढे हैं ॥
जिन्हके सरल चित्त कोमल वचन बोले, सौम्यदृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढे हैं ॥
जिन्हके सकति जगि अलख अराधिवेकों, परम समाधि साधिवेकों मन बढे हैं ॥
तेई परमारथ पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिसकी बुद्धि परके गुण चून लेनेकूं चिमटा जैसी है, अर जिनोंने कुकथा सुनवेकूं दोनूं कान बंद कर राखे हैं। जिन्हका चित्त निष्कपटी है अर जे कोमल वचन बोले है, तथा काम-क्रोधादि रहित सौम्यदृष्टीसे वर्तन करे है मानूं मोमके घडे है। अर जिन्हके सुमतीकी शक्ती आत्माका अनुभव करनेकूं जाग्रत हुई है, तथा परमात्मस्वरूपमें लीन होनेकूं जिन्हका मन बढगया है। तेही सम्यक्दृष्टि परम पवित्र पुरुष है, जे अष्ट प्रहर रामरसमें मग्न होय आत्मानुभवका पाठ पढै है ॥३१॥

॥ अव आत्मसमाधिका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुननकों दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहि कोइ ॥ ३२ ॥
नंदन वंदन थुति करन, श्रवण चिंतवन जाप।
पठन पठावन उपदिशन, बहुविधि क्रिया कलाप ॥ ३३ ॥
शुद्धातम अनुभव जहां, शुभाचार तिहि नांहि।
करम करम मारग विषें, शिव मारग शिव मांहि ॥ ३४ ॥

अर्थ—आत्माराम है सो रस हैं अर अनुभव है सो रसिक है, ये दोय भेद कहनेके सुननेके है। परंतु जब आत्मस्वरूपमें समाधि (तल्लीनता) होय है तब दुविधा (रस अर रसिक ये दोय भेद) नहि रहे ॥३२॥ आत्माराम जब रसिक अवस्था धारे तब आनंद पावे, वंदन करे, स्तुति करे, जाप जपे, शास्त्र श्रवण करे, शास्त्र चिंतवन करे, शास्त्र पठण करे, शास्त्र पठण करावे, अर धर्मोपदेश करे, ऐसे बहुत प्रकारकी उत्तम उत्तम शुभ क्रिया करे है ॥ ३३ ॥ पण जहां शुद्ध आत्माका अनुभव है,

तहां शुभ क्रिया नहि है। शुभ क्रिया है सो कर्मबंध है ते संसारका कारण है, अर शुद्ध आत्माका अनुभव है सो शुद्धोपयोग है ते मोक्षका कारण है ॥ ३४ ॥

॥ अव शुभ क्रिया करे ते प्रमादी कहावे है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी। कही जिनेंद्र कही मैं तैसी ॥
जे प्रमाद संयुत मुनिराजा। तिनके शुभाचारसों काजा ॥३५॥
जहां प्रमाद दशा नहि व्यापे। तहां अवलंवन आपो आपे ॥
ता कारण प्रमाद उतपाती। प्रगट मोक्ष मारगको घाती ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस प्रकार आत्मद्रव्यका स्वरूप जैसा जिनेंद्र कह्या है तैसाही मैं परमागमकूं देखि कह्या है। जे मुनि प्रमादी है ते शुभ क्रियामें प्रवर्ते है॥३५॥ अर जहां प्रमादकी दशा नहि व्यापे है तहां अपने आत्माका अनुभव आपही करे है। ताते प्रमादकी उत्पत्ति है सो प्रत्यक्ष मोक्षमार्गकी घातक है ॥३६॥

जे प्रमाद संयुक्त गुसांई। उठहि गिरहि गिंदुकके नांई ॥
जे प्रमाद तजि उद्धत होई। तिनको मोक्ष निकट द्रिग सोई ॥ ३७ ॥
घटमें है प्रमाद जब तांई। पराधीन प्राणी तव तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासे। तव प्रधान अनुभौ परकासे ॥ ३८ ॥

अर्थ—जे प्रमादयुक्त मुनि है ते गिदड समान उडे है अर पडे है। अर जे प्रमादकूं छोडकर शुद्ध आत्माका अनुभव करे है तिनके निकट मोक्ष है ॥ ३७ ॥ जबतक हृदयमें प्रमाद है तबतक प्राणी पराधीन है। अर जब प्रमाददशाकों छोडे है तब आत्माके अनुभवका प्रकाश होय है ॥ ३८ ॥

॥ अब प्रमादका अर अप्रमादका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

ता कारण जगपंथ इत, उत शिव मारग जोर। परमादीजगकूं ढुके, अपरमाद शिव ओर ॥ ३९॥
जे परमादी आळसी, जिन्हके विकलप भूर। होइ सिथल अनुभौविषे, तिन्हको शिवपथ दूर ॥४०॥
जे परमादी आळसी, ते अभिमानी जीव। जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥ ४१ ॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतनायुक्त। ते मुनिवर लघुकालमें, होइ करमसे मुक्त ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रमाद है सो संसारका मार्ग है, अर अप्रमाद है सो मोक्षका मार्ग है। ताते जे प्रमादी है ते संसारमार्गकूं चले है अर अप्रमादी है सो मोक्षमार्गकूं चले है ॥ ३९ ॥ जे प्रमादी आळसी है तिनकूं बहूत विकल्प (भ्रम) उपजे है। अर ते अनुभवविषे सिथिल होय है ताते तिनकूं मोक्षमार्ग अति दूर है ॥ ४० ॥ अर जे प्रमादी आळसी है ते अहंबुद्धी जीव है। अर जे विकल्प (प्रमाद) रहित आत्मानुभवी है ते समरसी जीव है ॥ ४१ ॥ जे विकल्परहित अर आत्मानुभवी है ते शुद्ध चेतना (ज्ञान अर दर्शन) युक्त है। सो रमरसी मुनी अल्प कालमें कर्मरहित होय मोक्षकूं जायहै ॥ ४२॥

॥ अब अहंबुद्धीका अर ज्ञानीका स्वरूप दृष्टांतसे कहे है ॥ कवित्त ॥—

जैसे पुरुष लखे पहाढ चढि, भूचर पुरुष तांहि लघु लग्गे ॥
भूचर पुरुष लखे ताको लघु, उतर मिले दुहूको भ्रम भग्गे ॥
तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीवको लघुपद दग्गे ॥
अभिमानीको कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समता रस जग्गे ॥ ४३ ॥

अर्थ—जैसे कोई पहाड ऊपर चढे मनुष्यकूं तलाटीका मनुष्य छोटासा दीखे है। अर तलाटीके

मनुष्यकूं पहाड ऊपरका मनुष्य छोटासा दीखे है। पण पहाड ऊपरका मनुष्य नीचे उतरि तलाटीवालेकूं मिले जब दोनूंकूं छोटेपणाका भ्रम उपजा है सो दूर होय है। तैसे अभिमानी मनुष्य अहंकारते अन्य सब जीवकूं तुच्छ माने है। अर जगतके सब लोक अभिमानीकूं तुच्छ माने है ऐसे परस्परके विचारमें विषमता रहे है पण जब ज्ञान जगे है तब विषमता मिटे है अर समता उपजे है ॥ ४३ ॥

॥ अब अहंबुद्धी (अभिमानी)का विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करमके भारी समुझे न गुणको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे है ॥
होइ न नरम चित्त गरम घरम हूते, चरमकि दृष्टिसों भरम भुलि रहे है ॥
आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नायेहू न डोले मानो पाथरके चहे है ॥
देखनके हाउ भव पंथके बढाउ ऐसे, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है ॥ ४४ ॥

अर्थ—अभीमानी है ते बहुत कर्म करे है—गुणका अर दुर्गुणका मर्म समजे नही, तथा महा अनीति अर अधर्मकी रीत ग्रहण करे। निर्दयपणामें अर क्रोधकषायमें अग्नीते गरम रहे, चरम दृष्टीते अहंकाररूप भ्रममें भूले है। हठ छोडे नहीं तथा गर्वते बोले नही, किसीने जुहार किया तो तिसकूं सिर नमावे नही मानू जैसे पथ्थरके चित्र है। दुसरेकूं डरावनेकूं बाऊ है अर दुराचरण बढावनेकूं तयार रहे, ऐसे कपट जालके गुंफनारे जे है ते अभिमानी जीव है ॥ ४४ ॥

॥ अब समरसी (ज्ञानी) जीवका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धीरके धरैय्या भव नीरके तरैय्या भय, भीरके हरैय्या वर वीर ज्यों उमहे हैं ॥
मारके मरैय्या सुविचारके करैय्या सुख, ढारके ढरैय्या गुण लोसों लह लहे हैं ॥

रूपके रीझैय्या सब नैंके समझैय्या सब, हीके लघु भैय्या सबके कुबोल सहे हैं ॥
वामके वमैय्या दुख दामके दमैय्या ऐसे, रामके रमैय्या नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४५॥

अर्थ—ज्ञानी है ते—धैर्य धरे है अर भवसागर तरनेका उपाय करे है, निर्भय रहे है अर शूर समान इंद्रिय दमन करे है। कामके बाणकूं जीते है अर सुविचार करे है, समतारूप सुखके ढारमें वहे है अर आत्मगुणमें लह लहे है। आत्मस्वरूपमें तल्लीन होय है अर सब नयकूं जाने है, सबते छोटे भाई समान रहे अर सबके कुवचन सहे है। स्त्रीकी इच्छा छोडे है अर दुःखकूं सहन करे है, आत्मानुभवमें रमे है इत्यादि गुण ग्रहण करे है सो ज्ञानी जीव है ॥ ४५ ॥

॥ अब शुद्ध अनुभवी जीवकी प्रशंसा करे है ॥ चौपई ॥—

जे समकिती जीव समचेती । तिनकी कथा कहु तुमसेती ॥
जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई । निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥ ४६ ॥
परिग्रह त्याग जोग थिर तीनो । करम बंध नहि होय नवीनो ॥
जहां न राग द्वेष रस मोहे । प्रगट मोक्ष मारग मुख सोहे ॥ ४७ ॥

अर्थ—हे भव्य ? जे सम्यक्ती समचित्ती जीव है तिनके गुणकी कथा तुमसे कहूंहूं। जहां कोई प्रकारे प्रमादकी क्रिया नही है सो निर्विकल्प अनुभवका स्वरूप है ॥ ४६ ॥ अर जहां २४ प्रकारके परिग्रहका त्याग है तथा मन वचन अर देहके योग स्थिर है तहां नवीन कर्मका बंध नही होय है। अर जहां राग द्वेष तथा मोह रस नही है तहां प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग है ॥ ४७ ॥

पूरव बंध उदय नहि व्यापे । जहां न भेद पुन्न अरु पापे ॥

द्रव्य भाव गुण निर्मल धारा । बोध विधान विविध विस्तारा ॥ ४८ ॥
जिन्हके सहज अवस्था ऐसी । तिन्हके हिरदे दुविधा कैसी ॥
जे मुनि क्षपक श्रेणि चढि धाये । ते केवलि भगवान कहाये ॥ ४९ ॥
इह विधि जे पूरण भये, अष्टकर्म वन दाहि । तिन्हकी महिमा जे लखे, नमे बनारसि ताहि ॥५०॥

अर्थ—जहां पूर्व कालके कर्म बंधका उदय व्यापे नही तथा पुन्य अर पापका भेद नही । अर जहां साधूके २८ द्रव्य गुण अर भाव गुणकी निर्मल धारा वहे है तथा नाना प्रकारे ज्ञानका विस्तार है ॥ ४८ ॥ जिसकी स्वयंसिद्ध ऐसी अवस्था हो रही है तिसके हृदयमें कौनसेही प्रकारकी दुविधा (संशय) नहि रहे है । अर जे मुनि क्षपक श्रेणी चढे उर्द्ध गमन करे है ते मुनि केवली भगवान है ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जे मुनि परिपूर्णताकूं प्राप्त होय अष्ट कर्मरूप वनकूं दग्ध करै है । तिनकी महिमा जे सत्पुरुष जाने है तिनकूं बनारसीदास नमस्कार करे है ॥ ५० ॥

॥ अब मोक्ष होनेका क्रम कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

भयो शुद्ध अंकुर, गयो मिथ्यात्व मूल नसि । क्रम क्रम होत उद्योत, सहज जिम शुक्ल पक्ष ससि । केवल रूप प्रकाश, भासि सुख रासि धरम ध्रुव । करि पूरण थिति आउ, त्यागि गत भाव परम हुव । इह विधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बुंद सागर भयो । अविचल अखंड अनभय अखय, जीवद्रव्य जगमांहि जयो ॥ ५१ ॥

अर्थ—प्रथम जब सत्यार्थ देव शास्त्र अर गुरूके गुणनकी श्रद्धारूप शुद्ध सम्यक्तका अंकूर उपजे है, तब मिथ्यात्व मूलते विनसी जाय है । फेर शुक्ल पक्षके चंद्र समान क्रमे क्रमे आत्मा शुद्ध होय

है। फेर केवल ज्ञानरूप प्रकाश होय है, तब आत्माका निश्चल गुण है सो सुखकी रास भासे है। फेर मनुष्य आयुकी स्थिति पूर्ण करिके, अर मनुष्यगतीका स्वभाव छोडिके परमात्मा (अष्ट कर्मते रहित) होय है। इस प्रकार अनन्य प्रभूता धारण करे है, जैसे बुंदबुंदते सागर होय है। तब अचल अखंड निर्भय अर अक्षय ऐसे मोक्ष स्थानमें जीव जाय वसे है ते जीव जगतमें जयवंत होहु ॥५१॥

॥ अब अष्ट कर्म नाश होते जीवकूं अष्ट गुण प्राप्त होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानावरणीके गये जानिये जु है सु सब, दर्शनावरणके गयेते सब देखिये ॥
वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्र विसेखिये ॥
आयुकर्म गये अवगाहन अटल होय, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये ॥
अगुरु अलघुरूप होय गोत्र कर्म गये, अंतराय गयेते अनंत बल लेखिये ॥ ५२ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणीय कर्मका नाश होते केवलज्ञान प्राप्त होय है तब सब लोककूं अर अलोककूं जाने है ॥ १ ॥ दर्शनावरणीय कर्मका नाश होते केवल दर्शन प्राप्त होय है तब सब लोककूं अर अलोककूं देखे हैं ॥ २ ॥ वेदनी कर्मका नाश होते अनंत सौख्य प्राप्त होय है ॥ ३ ॥ मोहनी कर्मका नाश होते शुद्ध सम्यक्त (आत्मामें आत्माका स्थिरपणा) होय है ॥ ४ ॥ आयुष्य कर्मका नाश होते अनंत कालकी स्थिति प्राप्त होय है ॥ ५ ॥ नाम कर्मका नाश होते शरीर रहित अमूर्तीकपणा प्राप्त होय है ॥ ६ ॥ गोत्र कर्मका नाश होते अगुरुलघुपणा प्राप्त होय है ॥ ७ ॥ अंतराय कर्मका नाश होते अनंत बल प्राप्त होय है ॥ ८ ॥ ऐसे सिद्धके आठ गुण हैं ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको नवमो मोक्षद्वार बालबोध सहित समास भयो ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारंभः ॥१०॥

इति श्री नाटकग्रंथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार ॥ अब वरनों संक्षेपसों, सर्व विशुद्धी द्वार ॥ १ ॥

अर्थ—ऐसे नाटक ग्रंथमें मोक्ष अधिकार कह्या । अब सर्व विशुद्धिद्वार कहे है ॥ १ ॥

॥ अब प्रथम शुद्ध ज्ञानपुंज आत्माकी स्तुति करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

कर्मनिको करता है भोगनिको भोगता है, जाके प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है ॥
जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥
ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है स्वभाव जाको, लोक व्यापि लोकातीत लोकमें महित है ॥
शुद्ध वंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्‍यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥ १ ॥
जो निश्चै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत । सो चिद्रूप बनारसी, जगत माहिं जैवंत ॥२॥

अर्थ—आत्मा कर्मका कर्त्ता है तथा-सुख अर दुःखका भोक्ता है ऐसे लोक व्यवहारमें कहे है, पण ये कहना शुद्ध आतमस्वरूपके प्रभुतामें अहितकारी है । तथा शुद्ध आतम स्वरूपमें एक इंद्रियादिक पंच इंद्रियके भेद नही है, आत्मातो सदा निर्दोष है तिसके निश्चय स्वभावमें बंध अर मोक्ष नही है । आत्मा है सो ज्ञानसमूहका पुंज है अर जानते उसिका स्वरूप जान्या जाय है, आत्मा जगमें सर्व स्थानकी व्याप्त है पण आत्माका स्थान जगते भिन्न है अर जगमें आत्मा एक महिमावंत पूजनीक वस्तु है । जिसका कदापि नाश नहि होय है ताते शुद्ध वंश है अर शुद्ध चेतना (ज्ञान अर दर्शन) के रसते भरपूर भया है, ऐसे शुद्धता सहित है सो परमहंस आत्मा) है ॥ १ ॥

जो निश्चय स्वरूपते सदा निर्मल है, तथा आदि मध्य अर अंत इन तीनूं अवस्थामें एकरूप है। ऐसा जो चिद्रूप (आत्मा) है, सो जगतमें जयवंत प्रवर्तो ऐसे बनारसीदास आत्मगुणरूप स्तुति करे है ॥२॥

॥ अब जीव कर्मका अकर्त्ता तथा अभोक्ता है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

जीव करम करता नहि ऐसे । रस भोक्ता स्वभाव नहि तैसे ॥
मिथ्या मतिसों करता होई । गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ३ ॥

अर्थ—जीवका स्वभाव कर्मका कर्त्ता नही है अर कर्मके फलका भोक्ताहूं नही है । अज्ञानपणासे कर्मका कर्त्ता माने है अर जब अज्ञान जाय है तब जीव कर्मका कर्त्ता नहि दीखे ॥ ३ ॥

॥ अब जीव कर्मका अकर्त्ता है तथा कर्त्ता है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निहचै निहारत स्वभाव जांहि आतमाको, आतमीक धरम परम परकामना ॥
अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल स्वरूप गुण लोकाऽलोक भासना ॥
सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमको, करतासों दीसे लिये भरम उपासना ॥
यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्याचार, यहै भो विकार यह व्यवहार वासना ॥ ४ ॥

अर्थ—निश्चय स्वरूपसे देखिये तो आत्माका स्वभाव कैवल्य ज्ञानगुण करि सदा प्रकाशमान है। तिस कैवल्य ज्ञानगुणमें अतीत अनागत अर वर्तमानकाल तथा लोक अर अलोक प्रत्यक्ष भासे है ताते कर्मका अकर्त्ता है । अर सोही आत्मा संसार अवस्थामें कर्मका कर्त्ता दीखे है सो अज्ञानका भ्रम है । यही अज्ञानका भ्रम है सो मोहका फैलाव अर मिथ्याचार तथा भवभ्रमणका विकार करावे है सोही व्यवहार वासना (आत्माका अशुद्ध स्वभाव) है ॥ ४ ॥

॥ अब जीव कर्मका भोक्ता तथा अभोक्ता है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

यथा जीव कर्त्ता न कहावे । तथा भोगता नाम न पावे ॥
है भोगी मिथ्यामति मांहि । गये मिथ्यात्व भोगता नांही ॥ ५ ॥

अर्थ—जीव कर्मका कर्त्ता नही कहावे अर भोक्ताहू नही कहावे है । पण अज्ञानसे भोक्ता है अर अज्ञान गयेते अभोक्ता कहावे है ॥ ५ ॥

॥ अब भोक्ताका अर अभोक्ता लक्षण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धि, सोतो विषै भोगनिसों भोगता कहावे है ॥
समकीति जीव जोग भोगसों उदासी ताते, सहज अभोगताजु ग्रंथनिमें गायो है ॥
यांहि भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बूध, परभाव त्यागि अपनो स्वभाव आयो है ॥
निरविकलप निरुपाधि आतम आराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है ॥ ६ ॥

अर्थ—जगतमें रहतेवाले जे अज्ञानी जीव है ते सदा देहभोगादिकमें ममत्व करे है, ताते अज्ञानी जीव विषय भोगके भोक्ता कहावे है । अर भेदज्ञानी सम्यक्ती जीव है ते मन वचन कायसे देह भोगते उदासीन रहे है, ताते भेदज्ञानी जीव विषयभोगकूं भोगतेहूं अभोक्ता है ऐसे शास्त्रमें कह्या है । ज्ञानी जीव है सो स्वपरका भेद जाने है, अर देहादिककी ममत्व छोडि आत्मस्वभावमें आवे है । ताते कर्म उपाधिरहित ऐसा जो निर्विकल्पआत्मा तिसआत्माका अनुभव करे है, अर मन वचन तथा कायके योगकूं रोकिके आत्मस्वरूपमें मिले (कर्म रहित होय मुक्त होय) है ॥ ६ ॥

॥ अब ज्ञानीजीव कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता नही होय है ताका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुण, रतन भंडारि आप हारी कर्म रोगको ॥
प्यारो पंडितनको हुस्यारो मोक्ष मारगमें, न्यारो पुदगलसों उजारो उपयोगको ॥
जाने निज पर तत्त रहे जगमें विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोगको ॥
ता कारण ज्ञानी ज्ञानावरणादि करमको, करता न होइ भोगता न होइ भोगको ॥७॥

अर्थ—चिनमुद्रा धारी (ज्ञानी) है सो आतम स्वभाव धारे है, ताते गुणरूप रत्नका भंडारि अर कर्मरूप रोगका वैद्य है। जिसको ज्ञानरूप उजारा हुआ है सो देहादिक पुद्गलकूं न्यारो जाने है, अर मोक्षमार्गमें सावधान रहे है ताते पंडित जनको प्यारो लागे है। ज्ञानी है सो स्व तत्व परतत्वका भेद समझे है अर संसारसे उदास रहे है, तथा मन वचन अर कायके योगका ममत्व नही राखे है। इत्यादि गुण धारे है तिस कारणतें ज्ञानीजीव है सो कर्मबधका कर्त्ता तथा कर्मबंधके फल जे सुख अर दुःख तिस सुख अर दुःखका भोक्ता नहि होय है ॥ ७ ॥

निर्भिलाष करणी करे, भोग अरुचि घट मांहि। ताते साधक सिद्धसम, कर्त्ता भुक्ता नांहि ॥८॥

अर्थ—ज्ञानी है सो इच्छा रहित संसार करे है अर चित्तमें भोगकी रुचि नहि धरे है। ताते मोक्षका साधक (ज्ञानी) है सो सिद्ध समान कर्मबंधका कर्त्ता तथा भोक्ताहू नही है ॥ ८ ॥

॥ अब अज्ञानी कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता होय है तिसका कारण कहे है ॥ कवित्त ॥—

जो हिय अंध विकल मिथ्यात धर, मृषा सकल विकलप उपजावत ॥
गहि एकांत पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥
त्यों जिनमती द्रव्य चारित्र कर, करनि करि करतार कहावत ॥

वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विन समकित भव पारन पावत ॥ ९ ॥

अर्थ—जो हृदय अंध अज्ञानी है सो अज्ञानके भ्रमते अनेक मिथ्या विकल्प उपजावे है। अर एकांत पक्ष धारण करि आत्माकूं कर्मका कर्त्ता मानि अधो गतिका पात्र होय है । अथवा कोई जिनमती द्रव्यलिंगि मुनि ज्ञान विना बाह्य क्रिया करे है अर आत्माकूं कर्मका कर्त्ता माने है सो मूढ है । यद्यापि मुक्तिकी वांछा करे है तथापि सम्यक्त (भेदज्ञान) विना मोक्ष नहि पावे है ॥ ९ ॥

॥ अव अकर्त्ता स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

चेतन अंक जीव लखि लीना । पुद्गल कर्म अचेतन चीना ॥
वासी एक खेतके दोऊ । जदपि तथापि मिले न कोऊ ॥ १० ॥
निजनिज भाव क्रिया सहित, व्यापक व्याप्य न कोइ । कर्त्ता पुद्गल कर्मका, जीव कहांसे होइ ॥ ११ ॥

अर्थ—जीवका लक्षण चेतन है अर पुद्गलका तथा कर्मका लक्षण अचेतन जड है । चेतन अर अचेतन ये दोऊ एक क्षेत्रमें वसे है तथापि कोई कोउसे मिले नही है ॥ १० ॥ पदार्थ है सो अपने अपने स्वभाव माफिक क्रिया करे है, इसिमें व्यापकपणा अर व्याप्यपणा कोई नही है । जो जीवको अर पुद्गलको कोई व्यापक व्याप्यपणाका संबंधही नही है तो, जीव है सो पुद्गल कर्मका कर्त्ता कैसे होयगा ? ॥ ११ ॥

॥ अव कर्त्ता स्वरूप तथा अकर्त्ता स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जीव अर पुद्गल करम रहे एक खेत, यद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है ॥
लक्षण स्वरूप गुण परजै प्रकृति भेद, दूहुमें अनादि हीकी दुविधा व्है रही है ॥

एतेपर भिन्नता न भासे जीव करमकि, जौलों मिथ्याभाव तौलों ओंधि वाउ वही है॥
ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि भइ, जीव कर्म पिंडको अकरतार सही है ॥१२॥

अर्थ—जीव अर पुद्गलकर्म एक क्षेत्र (आकाश) में वसे है, तथापि जीवकी सत्ता जीवमें है अर पुद्गलकी सत्ता पुद्गलमें है ऐसी दोनूंकी सत्ता न्यारी न्यारी है । जीवके अर पुद्गलके लक्षणमें भेद है तैसे स्वरूपमें पर्यायमें गुणमें अर प्रकृतीमेंहूं भेद है, ताते जीवकी अर पुद्गलकी अनादि कालते दुविधा चली आवे है। ऐसे दुविधा है तोहूं जबतक अज्ञान भाव है तबतक उलटा विचार चले है, जीवकी अर कर्मकी दुविधा नहि दीसे है। अर जब ज्ञानका उदय होय तब सूधी दृष्टी (विचार) होयकै, जीव कर्मका अकर्त्ताही दीसे है ॥ १२ ॥

एक वस्तु जैसेजु है, तासें मिले न आन। जीव अकर्त्ता कर्मको, यह अनुभौ परमान ॥१३॥

अर्थ—जैसे एक गुणके वस्तुमें दूजी अन्य गुणकी वस्तु नहि मिले है । तैसे जीवके चेतन गुणमें कर्मपुद्गलका अचेतन गुण नाहि मिले है तातै जीव कर्मका अकर्त्ता है, यह परिचै प्रमाणहै ॥१३॥

॥ अब अज्ञानी है सो भाव भावित कर्मका अर अशुद्ध परिणामका कर्त्ता होय है सो कहे है॥ चौपई ॥—

जो दुरमति विकल अज्ञानी। जिन्हे स्व रीत पर रीत न जानी ॥
माया मगन भरमके भरता। ते जिय भाव करमके करता ॥ १४ ॥

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव। तेई भावित कर्मको, कर्त्ता होय सदीव ॥१५॥
जे अशुद्ध परणति धरे, करे अहंपर मान। ते अशुद्ध परिणामके, कर्त्ता होय अजान ॥१६॥

अर्थ—जे दुरमती विकल अज्ञानी है अर जे स्वगुण तथा परगुण जाने नही अर जे मायाचारमें

मग्न है महा भ्रमिष्ट है, ते जीव भाव कर्म (राग द्वेष) का कर्त्ता होय है ॥ १४ ॥ जे अज्ञान अंधकारसे जीव अर अजीका भेद नहि देखे है। ते जीव सदा भावित कर्मका कर्त्ता होय है ॥१५॥ जे अशुद्ध (अज्ञान) परिणामते समस्त कार्यमें अहंपणा माने है । ते जीव अशुद्ध परिणामका कर्त्ता होय है ॥ १६ ॥

॥ अब शिष्य गुरुसे प्रश्न पूछे है ॥ दोहा ॥—

शिष्य पूछे प्रभु तुम कह्यो, दुविध कर्मका रूप। द्रव्यकर्म पुद्गलमई, भावकर्म चिद्रूप ॥ १७ ॥
कर्त्ता द्रव्यजु कर्मको, जीव न होइ त्रिकाल।अब यह भावित कर्म तुम, कहो कोनकी चाल ॥१८॥
कर्त्ता याको कोन है, कोन करे फल भोग। के पुद्गल के आतमा, के दुहूको संयोग ॥१९॥

अर्थ—शिष्य गुरूसे पूछे हे प्रभो, आपने कर्मका स्वरूप दोय प्रकारका कह्यो । एक द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादिक) ते पुद्गलमय कह्या, अर भावकर्म (राग द्वेषादिक) ते चेतनाका विकाररूप कह्या ॥ १७ ॥ ताते द्रव्यकर्मका कर्त्ता तो कदापि जीव नही होय है यह मुझे समझा । अब भावित कर्म कैसे होय है सो तुम कहो ॥ १८ ॥ भावित कर्मका कर्त्ता कोन है, अर इस कर्मका फल भोक्ता कोन है। पुद्गल कर्त्ता भोक्ता है की आतमा कर्त्ता भोक्ता है की दुहूंका संयोग कर्ता भोक्ता है सो सबका निर्णय कहो ॥ १९ ॥

॥ अब शिष्यके प्रश्नका गुरु उत्तर कहे है ॥ दोहा॥—

क्रिया एक कर्त्ता जुगल, यो न जिनागम मांहि। अथवा करणी औरकी, और करे यों नांहि ॥२०॥
करे और फल भोगवे, और बने नहि एम । जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥ २१ ॥

भावकर्म कर्त्तव्यता, स्वयंसिद्ध नहि होय । जो जगकी करणी करे, जगवासी जिय सोय ॥२२॥
जिय कर्त्ता जिय भोगता, भावकर्म जियचाल । पुद्गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्याचाल ॥२३॥
ताते भावित कर्मको, करे मिथ्याती जीव । सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥ २४ ॥

अर्थ—गुरू कहे है हे शिष्य ? एक क्रियाके करनेवाले दोय होय अथवा एककी क्रिया दूसरा करे ऐसी वात जिन शास्त्रमें नही कही हैं ॥ २० ॥ क्रिया करे एक अर तिस क्रियाका फल भोगवे दूसरा येहूं नहि बनसके । जो करे सो भोगवे यह न्याय यथायोग्य है ॥ २१ ॥ भावकर्मकी कर्तव्यता स्वयंसिद्ध नहि होय है । जगतमें जे गमनागमन क्रिया करे है सोही भावकर्मका कर्त्ता जगवासी जीव है ॥ २२ ॥ जीवही भावकर्मका कर्त्ता है जीवही भावकर्मके फलका भोक्ता है अर जीवकेही चल विचलतासे भावकर्म उपजे है । भावकर्मकूं पुद्गल करेही नही अर भोगवेही नही है तथा भावकर्मकूं जीव अर पुद्गल दोऊ मिलकेहूं करे है ऐसा कहना मिथ्या है ॥ २३ ॥ ताते भावकर्मकूं मिथ्यात्ती (अज्ञानी) जीव करे है । अर भाव कर्मके फल जे सुख अर दुःख तेहूं अज्ञानी जीव सदाकाल आपही भोगवे है ॥ २४ ॥

॥ अव एकांतवादी कर्मविषें कैसा विचार करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोइ मूढ विकल एकंत पक्ष गहे कहे, आतमा अकरतार पूरण परम है ॥
तिनसो जु कोउ कहे जीव करता है तासे, फेरि कहे करमकों करता करम है ॥
ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जीन्हके हिये अनादि मोहको भरम है ॥
तिनके मिथ्यात्व दूर करवेकूं कहे गुरु, स्यादवाद परमाण आतम धरम है ॥२५॥

अर्थ—कोई मूढ एकांत पक्ष ग्रहण करके कहेकी, आत्मा पूर्ण पवित्र है; सो कर्मका कर्त्ता नही है। तिन मूढसे कोऊ कहे कर्मका कर्त्ता जीव है, तो फेर मूढ कहें कर्मका कर्त्ता कर्म है जीव नहीं है। ऐसे मिथ्यात्वमें मग्न है सो मिथ्यात्वी जीव ब्रह्मघाती है, तिनके हृदयमें अनादिका मोह भ्रम है। तिस अज्ञानीका भ्रम दूर करनेकूं, गुरू आत्माका स्वरूप स्याद्वादप्रमाणते कहे है ॥ २५ ॥

॥ अब स्याद्वाद प्रमाणते आतमस्वरूप कहे है॥ दोहा ॥—

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।

नहिं करता नहि भोगता, निश्चै सम्यकवान ॥ २६ ॥

अर्थ—जो जीव अज्ञानतासे मिथ्यात्वमें मग्न है, सो कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता है । अर जो भेदज्ञानी सम्यक्ती है सो कर्मका कर्त्ताहूं नही है अर भोक्ताहूं नही है, यह निश्चयते प्रमाण है ॥२६॥

॥ अब एकांत पक्ष त्यागवेकूं स्याद्वादका उपदेश करे है ॥ ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे सांख्यमति कहे अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कवही ॥

तैसे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सूनि, यांहि भांति माने सो एकांत तजो अवही ॥

जोलों दुरमति तोलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सवही ॥

जाके घट ज्ञायक स्वभाव जग्यो जवहीसे, सो तो जगजालसे निरालो भयो तवही ॥२७॥

अर्थ—जैसे सांख्यमती कहे की आत्मा अकरता है, कोइ कालमें कर्मका कर्त्ता नही होय है। तैसे जिनमतीहूं गुरू मुखते निश्चय नयका एक पक्ष सुनिके, जीव कूं सर्वथा अकर्त्ता माने है सो हे भव्य ? अब एकांत पक्षकूं छोडो। जिनेंद्रके स्याद्वाद अनेकांत मतमेंतो ऐसे कह्या है की—जबतक

अज्ञानपणा है तबतक जीव कर्मका कर्त्ता है, अर जब सुमती आवे तब सदा अकर्त्ता है। जिसके हृदयमें भेदज्ञान जग्या है जबसे, सो तो कर्मबंधसे निराला है ॥ २७ ॥

॥ अब बौद्धमतका विचार कहे है ॥ दोहा ॥—

बोद्ध क्षणिकवादी कहें, क्षणभंगुर तनु मांहि। प्रथम समय जो जीव है, द्वितिय समयमें नांहि॥
ताते मेरे मतविषें, करे करम जो कोई। सो न भोगवे सर्वथा, और भोगता होई ॥ २९ ॥

अर्थ—बौद्ध क्षणिकवादी कहेकी, शरीरमें जीव क्षणभर रहे है सदा रहे नहि। शरीरमें प्रथम समयमें जो जीव है सो दुसरे समयमें नहि रहे, दुसरे समयमें दुसरा जीव आवे है ॥ २८ ॥ ताते जो जीव कर्म करे सो सर्वथा उस कर्मका फल भोगवे नही। उसका फल दुसरा जीव भोगवे है मेरे बौद्धमतका विचार है ॥ २९ ॥

॥ अब बौद्धमतका एकांत विचार दूर करनेकूं जिनमती दृष्टांत कहे है ॥ दोहा ॥—

यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनके काज। चिद्विलास अविचल कथा भाषेश्रीजिनराज ॥३०॥
बालपन काहू पुरुष, देखे पुरकइ कोइ। तरुण भये फिरके लखे, कहे नगर यह सोइ ॥३१॥
जो दुहु पनमें एक थो, तो तिहि सुमरण कीय। और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥३२॥
जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध। तब इकांतवादी पुरुष, जैनभयो प्रति बुद्ध ॥३३॥

अर्थ—यह बौद्धमतका एकांत क्षणभंगूर पक्ष दूर करनेके अर्थे। श्रीजिनराज आत्माका स्थिरपणा दृष्टांतते कहे है ॥ ३० ॥ कोईने बालपणमें एक नगर देख्यो। फेर तरुणपणामें वोही नगर देख्यो तब बालपणमें देख्या नगरका स्मरण होवे है ॥ ३१ ॥ जो बाल अर तरुण ये दोनूं अवस्थामें

जीव एक था ताते पूर्वे देख्याथा ताका स्मरण भया। एक जीवका देख्या सो दूसरे जीवकूं स्मरण नहि होयगा ॥ ३२ ॥ जब यह जिनमतका योग्य दृष्टांत सुना, तब बौद्धमतका क्षणिक विचार था सो नष्ट भया अर जिनराजने जो आत्माका स्थिरपणा कह्या सो बौद्धमतीने मान्य कीया ॥ ३३ ॥

॥ अब बौद्धमती एकांत पक्ष करे है तिसका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एक परजाय एक समैमें विनसी जाय, दूजि परजाय दूजे समै उपजति है ॥
ताको छल पकरिके बोध कहे समै समै, नवो जीव उपजे पुरातनकी क्षति है ॥
तातै माने करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिये ऐसी मति है ॥
परजाय प्रमाणको सरवथा द्रव्य जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥३४॥

अर्थ—द्रव्यकी पर्याय क्षणक्षणमें बदले है—प्रथम समयमें जो पर्याय है सो नाश पावे है, अर दूसरे समयमें दूसरी पर्याय उपजे है ऐसे सिद्धांतका वचन है। इस पर्यायके स्वरूपकूं बौद्धमतीने जीव समझा है, अर क्षणक्षणमें नवा जीव उपजे है अर पुराने जीवका नाश पावे है ऐसे कहे है। तिस कारणते कर्मका कर्त्ता एक जीव, अर तिस कर्मके फलका भोक्ता दूसरा जीव होय है ऐसी मति बोद्धके हृदयमें हुई है। अर द्रव्यके पर्यायकूं सर्वथा द्रव्य जाने है, ऐसे अज्ञानीदुर्मती अवश्य मांस आहारादि खोटी क्रिया करके दुर्गतीके पात्र होय है ॥ ३४ ॥

॥ अब दुर्बुद्धीका अर दुर्गतीका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

कहे अनातमकी कथा, चहेन आतम शुद्धि। रहे अध्यातमसे विमुख, दुराराध्य दुर्बुद्धि ॥३५॥
दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्याचाल । गहि एकंत दुर्बुद्धिसे, मुक्त न होई त्रिकाल ॥३६॥

अर्थ—जे सदा देहके महिमाकी कथा कहे है, अर आत्माकी शुद्धता नहि जाने है। तथा आत्मविचारसें परान्मुख रहे है, ते दुर्बुद्धी दुराराध्य (बहुत कष्टसे समझाये तो नहि समझे) है ॥३५॥ मिथ्यात्वी अज्ञानी है तिसकूं दुर्बुद्धी कहिये, अर खोटी क्रिया करे तिसकूं दुर्गति कहिये। दुर्बुद्धी है ते एकांत पक्ष ग्रहण करे है, ताते तिसकूं तीन कालमें मुक्ति नहि होय है ॥ ३६ ॥

॥ अब दुर्बुद्धी भ्रममें कैसे भूले है सो तीन दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कायासे विचारे प्रीति मायाहीमें हारी जीति, लीये हठ रीति जैसे हारीलकी लकरी ॥
चूंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि, त्योंहि पाय गाडे पैं न छोडे टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठोर पावे, धावे चहु वोर ज्यों वढावे जाल मकरी ॥
ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूलि फीरे ममता जंजरनीसों जकरी ॥ ३७ ॥

अर्थ—दुर्बुद्धि है सो सदा देहके ममत्वमें तथा कपटके हारी जीतीमें रहे है, अर हठकूं ऐसे धरे है जैसे चील पक्षी पगमें लकडीकूं पकडे अर आकाशमें उडे तोभी छोडे नही। अथवा जैसे चोर गोह जनावरके कंबरकूं रसी बांधिके मेहल ऊपर फेके तहां गोह भूमीकूं पकडे है, तैसे दुर्जनहूं जो खोटी क्रिया पकडे हैं सो जादा करे पर छोडे नही है। अर मोह मदिराके भ्रमसे कहां ठिकाणा नाहि पावे, ऐसे चहुवोर दौडे है, जैसे मकडी जाल वढावती चहुओर दौडे है। ऐसे दुर्बुद्धी है सो भ्रमसे भूलि झूठके मार्गमें झूल रहे है, अर डोले फिरे है पण ममतारूप बेडीते बंध्या है ॥ ३७ ॥

॥ अब दुर्बुद्धीकी रीत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

वात सुनि चौंकि ऊठे वातहिसों भौंकि ऊठे, वातसों नरम होइ वातहिसों अकरी ॥

निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककि, साता माने प्रभूता असाता माने फकरी ॥
मोक्ष न सुहाइ दोष देखे तहां पैठि जाइ, कालसों डराइ जैसे नाहरसों बकरी ॥
ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठसे झरोखे झूलि, फूलि फीरे ममता जंजीरनीसो जकरी ॥३८॥

अर्थ—दुर्बुद्धी है सो आत्मज्ञानकी बात सुनिके गरम होय कुत्ते समान भों भों करि ऊठे है, अर अपने मर्जी माफिक बात करे तो नरम होय है अर मर्जी माफक न करे तो अकड जाय है। मोक्ष-मार्गके साधककी निंदा करे है अर हिंसककी प्रशंसा करे है, अपने बडाईकूं सुख समझे है अर परके बडाईकूं दुःख माने है। मोक्षकी रीत सुहावे नही अर दुर्गण दृष्टी पडे तो तिसकूं ग्रहण करे है, अर मृत्युकूं ऐसे डरे है की जैसे बाघकूं बकरी डरै है। ऐसे दुर्बुद्धी है सो भ्रममें भूलि झूठके मार्गमें झूल रहे है, अर डोले फिरे है पण ममतारूप बेडीते बंध्या है ॥ ३८ ॥

॥ अब स्याद्वाद (अनेकांत) मतकी प्रशंसा करे है ॥ कवित्त ॥ दोहा ॥—

केई कहे जीव क्षणभंगुर, केई कहे करम करतार । केई कर्म रहित
नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार । जे एकांत गहे ते मूरख, पंडित
अनेकांत पख धार । जैसे भिन्न भिन्न मुकता गण, गुणसों गहत कहावे हार ॥ ३९ ॥
यथा सूत संग्रह विना, मुक्त माल नहि होय । तथा स्याद्वादी विना, मोक्ष न साधे कोय ॥४०॥

अर्थ—केई [बौद्धमती] कहे जीव क्षणभंगुर है, केई [मिमांसकमती] कहे जीव कर्मका कर्त्ता है। केई (सांख्यमती) कहे जीव सदा कर्मरहित है, ऐसे नाना प्रकारके अनंत नय है। जे एक पक्षकूंही अंगीकार करे है ते तो अज्ञानी है, अर जे सर्व अनेकांत पक्षकूं धारण करे है ते ज्ञानी

है । जैसे भिन्न भिन्न मोती है, पण तिस मोतीकूं सूतमें पोयेंसे हार कहावे है ॥ ३९ ॥ जैसे सूतमें पोये विना मोतीकी माल नहि होय है । तैसे स्याद्वादी विना कोई मोक्षमार्ग साधे नहीं है ॥ ४० ॥

॥ अब मत भेदको कारण कहे है ॥ दोहा ॥—

पद स्वभाव पूर्व उदै, निश्चै उद्यम काल । पक्षपात मिथ्यात पथ, सर्वंगी शिव चाल ॥ ४१ ॥

अर्थ—कोई तो आत्माके स्वभावकूं माने है ॥ १ ॥ कोई पूर्व कर्मके उदयकूं माने है ॥ २ ॥ कोई निश्चयकूं माने है ॥ ३ ॥ कोई व्यवहारकूं माने है ॥ ४ ॥ कोई कालकूं माने है ॥ ५ ॥ ऐसे पक्षपात करि एक एककूं माने है सो तो मिथ्यात्वका मार्ग है, अर जो पांचीहूं नयकूं माने है सो मोक्षका मार्ग है ॥ ४१ ॥

॥ अब छहों मतका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एक जीव वस्तुके अनेक गुण रूप नाम, निज योग शुद्ध पर योगसों अशुद्ध है ॥
वेदपाठी ब्रह्म कहे मीमांसक कर्म कहे, शिवमति शिव कहे बौध कहे बुद्ध है ॥
जैनी कहे जिन न्यायवादी करतार कहे, छहों दरसनमें वचनको विरुद्ध है ॥
वस्तुको स्वरूप पहिचाने सोई परवीण, वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है ॥४२॥

अर्थ—जीव वस्तु एक है पण तिसके गुण रूप अर नाम अनेक है, जीव स्वतः शुद्ध है पण परके संयोगते अशुद्ध होय है । वेदपाठी जीवकूं ब्रह्म कहे है अर मीमासकमती जीवकूं कर्म कहे है, शिवमती जीवकूं शिव कहे है अर बौद्धमती जीवकूं बुद्ध कहे है । जैनमती जीवकूं जिन कहे है अर न्यायवादी जीवकूं कर्त्ता कहे है, ऐसे छहों दर्शन (मत) में वचनके भेदते मात्र विरुद्ध दीसे है ।

पण जो जीव वस्तुका स्वरूप पहिचाने है सोही प्रवीण है, अर जो नैगमादि नयते वचनके सर्व भेद माने है सोही शुद्ध है ॥ ४२॥

॥ अब छहों मतका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

वेदपाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहत है ॥
बौद्धमति बुद्ध माने सूक्षम स्वभाव साधे, शिवमति शिवरूप कालको कहत है ॥
न्याय ग्रंथके पढैय्या थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनंद लहत है ॥
पांचो दरसनि तेतो पोषे एक एक अंग, जैनि जिनपंथि सरवंगि नै गहत है ॥ ४३ ॥

अर्थ—वेदपाठी जीवकूं ब्रह्म माने है अर कर्म रहित निश्चय स्वरूपसे एक अद्वैत गुण ग्रहण करे है, मीमांसकमती जीवकूं कर्म माने है अर पूर्व कर्मके उदय माफिक प्रवर्ते है। बौद्धमती जीवकूं बुद्ध माने है अर जीवके सूक्ष्म स्वभावकूं साधे है, शिवमती जीवकूं शिव माने है अर शिवकूं कालरूप कहे है। नैयायिकमती जीवकूं कर्त्ता माने है, अर क्रियामें मग्न होय आनंद लहे है। ऐसे पांचूं मतवाले एक एक अंगकूं पुष्टकर धारण करे है, अर जैनमती है ते सर्व नयकूं ग्रहण करे है ॥ ४३ ॥

॥ अब पांचूं मतके एक एक अंगकी अर जैनीके सर्वांगकी सत्यता दिखावे हैं ॥ ३१ ॥—

निहचै अभेद अंग उदै गुणकी तरंग, उद्यमकि रीति लीये उद्धता शकति है ॥
परयाय रूपको प्रमाण सूक्षम स्वभाव, कालकीसि ढाल परिणाम चक्र गति है ॥
याहि भांती आतम दरवके अनेक अंग, एक माने एककों न माने सो कुमति है ॥
एक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजि जीवे वादि मरे साचि कहवति है ॥ ४४ ॥

अर्थ—जीवके लक्षणमें भेद नही है सब जीव एक समान है ताते वेदपाठीने माना सो अद्वैत अंग सत्य है अर जीवके उदयमें अनेक गुणके तरंग ऊठे है ताते मीमांसक मतवालेने माना सो उदय अंग सत्य है, जीवमें अनंत शक्ती है सो जहां तहां गतीमें प्रवर्ते है ताते नैयायिकमतने माना उद्धत अंग सत्य है। जीवका पर्याय क्षण क्षणमें बदले है ताते वौद्धमतीने माना क्षणीक अंग सत्य है, जीवके परिणाम सदा चक्र समान फिरे है तिसकूं काल द्रव्य साह्य है ताते शिवमतीने माना काल अंग सत्य है। ऐसे आत्म द्रव्यके अनेक अंग है, तिसमें एक अंगकूं माने अर एक अंगकूं नहि माने सो एकांत पक्ष धरनेवाला कुमती है। अर एकांत पक्षकूं छोडि जीवके सर्वांगकूं खोजे (धूंडे) है सो सुमति है, खोजी जीवे वादी मरे यह कहावत है सो सत्य है ॥ ४४ ॥

॥ अव स्याद्वादका स्वरूप कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सो, एक न अनेक कछु कह्यो न परत है ॥
करता अकरता है भोगता अभोगता है, उपजे न उपजत मरे न मरत है ॥
बोलत विचरत न बोले न विचरे कछु, भेखको न भाजन पै भेखसो धरत है ॥
ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसो, उलट पलट नट बाजीसी करत है ॥ ४५ ॥

अर्थ—एक द्रव्यमें अनेक पर्याय है अर अनेक पर्यायमें एक द्रव्य है, याते हर कोई वस्तु सर्वथा एक है अथवा सर्वथा अनेक है ऐसे कह्या नहि जाय है। (कथंचित एक है अथवा कथंचित अनेक है ऐसे कह्या जाय है) व्यवहारते जीव कर्त्ता है अर निश्चयते अकर्त्ता है तथा व्यवहारते भोक्ता है अर निश्चयते अभोक्ता है, व्यवहारते उपजे है अर निश्चयते नहि उपजे है तथा व्यवहारते

मरे है अर निश्चयते नहि मरे है। व्यवहारते बोले है तथा विचरें है अर निश्चयते बोलेहूं नहीं तथा चालेहूं नही है, व्यवहारते देह धरे है अर निश्चयते देहका, पात्र नही है। ऐसा जो श्रेष्ठ चेतन (आत्मा) है सो पुद्गलकर्म के संगतीसे, व्यवहार अर निश्चयमें उलट पटले हो रह्या है मानू नट जैसा खेल कर रह्या है ॥ ४५ ॥

॥ अब अनुभवका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

नट बाजी विकलप दशा, नांही अनुभौ योग। केवल अनुभौ करनको, निर्विकल्प उपयोग ॥४६॥

अर्थ—जीवका नट सारखा उलट पलट खेल है सो विकल्प दशा है, सो विकल्प दशा आत्मानुभवमें योग्य नही है। आत्मानुभव करनेकूं, केवल एक निर्विकल्पदशा उपयोगी है ॥ ४६ ॥

॥ अब आत्मानुभवमें विकल्प त्यागनेकूं दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जैसे काहु चतुर सवारी है मुकत माल, मालाकि क्रियामें नाना भांतिको विग्यान है ॥
क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वारो, मोतीनकि शोभामें मगन सुखवान है ॥
तैसे न करे न भुंजे अथवा करेसो भुंजे, ओर करे और भुंजे सब नै प्रमान है ॥
यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग योग, नीरविकलप अनुभौ अमृत पान है ॥४७॥

अर्थ—जैसे कोई चतुर मनुष्य मोतीनकी माला नाना प्रकारके कल्पनासे बनावे है। पण माला पहेरनेवाला तिस कल्पनाके विचारकूं नही देखे है, मालाके शोभामें मग्न होके सुखी होय है। तैसे आत्मा कर्म करे नही अर फल भोगवे नही अथवा कर्म करे है अर फल भोगवे है, अथवा कर्म करे एक अर

तिसका फल भोगवै दूसरा ऐसे नाना प्रकारके विकल्प है सो सब नय प्रमाणते सत्य है। परंतु आत्म अनुभवमें विकल्पके प्रकार त्यागने योग्य है, अर निर्विकल्प रहना है सो अमृत पान है ॥ ४७ ॥

॥ अब स्याद्वादी आत्माकूं कर्त्ता कौन नयमे माने है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

द्रव्यकर्म कर्त्ता अलख, यह व्यवहार कहाव। निश्चै जो जैसा दरव, तैसो ताको भाव ॥ ४८ ॥

अर्थ—पुद्गलकर्मका कर्त्ता आत्मा है यह व्यवहारनयते कथा है । अर निश्चय नयते जो जैसा द्रव्य है तैसा तिसका स्वभाव है [पुद्गलकर्मकूं पुद्गल करे अर भाव कर्मकूं चेतन करे है] ॥ ४८ ॥

॥ अब ज्ञानका अर ज्ञेयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानको सहज ज्ञेयाकार रूप परिणमे, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है ॥
ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिहीकी मरयाद, काहू वस्तु काहूको स्वभाव नहि गह्यो है ॥
एतेपरि कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभासनिसों ज्ञान अशुद्ध व्हे रह्यो है ॥
याहि दुरबुद्धीसों विकलभयो डोलत है, समुझे न धरम यों भर्म मांहि वह्यो है ॥ ४९ ॥

अर्थ—यद्यपि ज्ञानका स्वभाव ज्ञेय (घटपटादि पदार्थ) के आकाररूप परिणमनेका है, तथापि ज्ञान है सो ज्ञानरूपही रहे ज्ञेयरूप नहि होय ऐसा शास्त्रमें कथा है। अर ज्ञेय है सो ज्ञेयरूप रहे ज्ञानरूप कदापि नहि होय, कोई एक वस्तु अन्य दुसरे वस्तुका स्वभाव नहि धारण करे ऐसे अनादिकालकी मर्याद है। तोभी कोई मिथ्यामती कहे की जबतक ज्ञानमें ज्ञेयको आकार प्रति भासे है, तबतक ज्ञान अशुद्ध होय रहे है। [जब अशुद्धी मिटेगी तब आत्मा मुक्त होयगा] इसही दुर्बुद्धीसे मिथ्यात्वीमोहकसे विकल होय डोले है, अर वस्तुके स्वभावको नहि समझे ताते भ्रममें फिरे है ॥ ४९ ॥

॥ अव सव वस्तुकी अव्यापकता कहे है ॥ चौपई ॥—

सकल वस्तु जगमें असहाई । वस्तु वस्तुसों मिले न काई ॥
जीव वस्तु जाने जग जेती । सोऊ भिन्न रहे सव सेती ॥ ५० ॥

अर्थ—जगतमें जे जे वस्तु है ते सर्व असहाई है ताते कोई वस्तु काहू वस्तुसे मिले नही । जीव है सो जगतके सर्व वस्तुकूं जाने है [ज्ञानमें जगतकी सर्व वस्तु भासे है] पण वस्तुसे ज्ञान मिले नही सबसे भिन्न रहे है ॥ ५० ॥

॥ अव जीव वस्तुका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्मकरे फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ । यह कथनी व्यवहारकी वस्तु स्वरूप न होइ ॥५१॥

अर्थ—कोई अज्ञानी जीव है ते कर्म करे है अर तिस कर्मका फल भागे है। यह कथनी व्यवहारकी है पण [कर्म करना अर तिस कर्मका फल भोगना] यह जीव वस्तुका स्वरूप नही है ॥ ५१ ॥

॥ अव ज्ञानका अर ज्ञेयका लक्षण कहे है ॥ कवित्त ॥—

ज्ञेयाकार ज्ञानकी परणति, पैं वह ज्ञान ज्ञेय नहि होय ॥
ज्ञेयरूप षट् द्रव्य भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पद सोय ॥
जाने भेद भावसो विचक्षण, गुण लक्षण सम्यक्दृग जोय ॥
मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहि कोय ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसा ज्ञेय (घट पटादिक) का आकार है तिस घटपदादिरूप ज्ञानका परिणमन होय है, पण ते ज्ञान है सो ज्ञेयरूप नहि होय है। अर ते ज्ञेय रूप जे षट् द्रव्य है सो भिन्न भिन्न स्वभावके

है अर ज्ञान है सो आत्म स्वभावका है। ऐसे ज्ञान अर ज्ञेयके भेद स्वभाव गुण अर लक्षण, जो सम्यक्दृष्टी भेदज्ञानी है सो जाने है। अर जो मूढ है सो ज्ञानकूं ज्ञेयके आकार कहे है, ताते ज्ञानकूं प्रत्यक्ष कलंक लगे है सो तो देखेही नही है ॥ ५२ ॥

॥ अब मूढ अपना मत दृढ करके दिखावे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

निराकार जो ब्रह्म कहावे। सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब ताई। पूरण ब्रह्म नांहि तब ताई ॥ ५३ ॥

अर्थ—ब्रह्म (आत्मा) है सो निराकार है, तिस ब्रह्मकूं साकार नाम कैसे पावे है। जबतक ज्ञेयके आकार ज्ञानमें है, तबतक पूर्णब्रह्म नही है ॥ ५३ ॥

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने। नाश करनको उद्यम ठाने ॥
वस्तु स्वभाव मिटे नहि कोही। ताते खेद करे सठ योंही ॥ ५४ ॥

मूढ मरम जाने नही, गहि एकांत कुपक्ष। स्याद्वाद सरवगमें, माने दक्ष प्रत्यक्ष ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्ञानमें जो ज्ञेयके आकार प्रतिभासे है सो ब्रह्मकूं मल माने है, अर तिस मलका नाश करनेकूं उद्यम करे है। परंतु सो मल मिटे नही, ताते मूढ वृथा खेद करे है ॥ ५४ ॥ मूढ है सो गुण अर लक्षणका भेद जाने नही, ताते एकांत कुपक्ष ग्रहण करे है। अर प्रवीण है सो स्याद्वादके आश्रयते साकार तथा निराकारका समस्त अंग प्रत्यक्ष माने है ॥ ५५ ॥

॥ अब स्याद्वादके आश्रय करनारे जे सम्यक्ती है तिनकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

शुद्ध द्रव्य अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि, ताते सम्यक्वंत नर, सहज उछेदक नांहि ॥५६॥

अर्थ—जो शुद्ध आत्मद्रव्यका अनुभव करे है तिसके हृदयमें शुद्ध दृष्टि (जाणपणा) है। ऐसा भेदज्ञानी सम्यक्ती पुरुष है सो वस्तु स्वभावका लोप नहि करे है ॥ ५६ ॥

॥ अव ज्ञान है सो परवस्तुमें अव्यापक है ते ऊपर चंद्रकीर्णका दृष्टांत कहे है ॥ ३१ सा ॥—

जैसे चंद्र कीरण प्रगटि भूमि स्वेत करे, भूमिसी न होत सदा ज्योतिसी रहत है ॥
तैसे ज्ञान शकति प्रकाशे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पैं न ज्ञेयको गहत है ॥
शुद्ध वस्तु शुद्ध परयायरूप परिणमे, सत्ता परमाण मांहि ढाहे न ढहत है ॥
सोतो औररूप कबहू न होय सरवथा, निश्चय अनादि जिनवाणि यों कहत है ॥५७॥

अर्थ—जैसे रात्रीमें चंद्र कीर्णका प्रकाश भूमिकूं स्वेत करे है, परंतु चंद्रका कीर्ण भूमि समान नहि होय है प्रकाशरूपही रहे है। तैसे ज्ञानकी शक्तीहू ऐसे है की समस्त हेय उपादेय वस्तुकूं प्रकाशे है, तव ज्ञान है सो वस्तुके आकाररूप भासे है परंतु वस्तुके स्वभावकूं धारण करे नही। शुद्धवस्तु शुद्ध पर्यायरूप परिणमे है, तथा अपने सत्ता प्रमाणमें रहे है किसीके ढाक्या नहि ढके। अर दुसरे वस्तुके स्वरूप समान कबहूं नहि होय यह निश्चये है, ऐसे अनादि कालकी जिनवाणी कहे है ॥ ५७ ॥

॥ अव आत्मवस्तुका यथार्थ स्वरूप कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

राग विरोध उदै जबलों तबलों, यह जीव मृषा मग धावे ॥
ज्ञान जग्यो जव चेतनको तव, कर्म दशा पर रूप कहावे ॥
कर्म विलक्ष करे अनुभौ तहां, मोह मिथ्यात्व प्रवेश न पावे ॥
मोह गये उपजे सुख केवल, सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ५८ ॥

अर्थ—जबतक यह जीव अज्ञान मार्गमें दोडे है, तबतक राग अर द्वेषके उदय रूप दीखे है। अर जब जीवकूं ज्ञान जाग्रत होय है, तब राग द्वेषके कर्म जनित दशाकूं पुद्गलरूप समझे। अर आत्माकूं जुदा जाणे है जहां ज्ञानका अनुभव है, तहां मोह मिथ्यात्वका प्रवेश नहि होय है। मोह गयेते केवलज्ञान उपजे अर जीव सिद्ध होय है सो फेर जगतमें नहि आवे है ॥ ५८ ॥

॥ अब आत्मासे परमात्मा कैसा होय ताका क्रम कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

जीव कर्म संयोग, सहज मिथ्यात्व धर। राग द्वेष परणति प्रभाव, जाने न आप पर। तम मिथ्यात्व मिटि गये, भये समकित उद्योत शशि। राग द्वेष कछु वस्तु नांहि, छिन मांहि गये नशि। अनुभव अभ्यास सुख राशि रमि, भयो निपुण तारण तरण। पूरण प्रकाश निहचल निरखि, बनारसी बंदत चरण ॥ ५९ ॥

अर्थ—अनादि कालसे जीवकूं कर्मका संयोग है, ताते जीव सहजही मिथ्यात्व (अज्ञान) स्वरूपकूं धरे है। तथा राग अर द्वेषमें परिणमे ताते, आत्माका तथा पुद्गलका भेद नहि जाने। अर मिथ्यात्व अंधकार मिटे है, तब सम्यक्त (भेदज्ञान) रूप चंद्रका प्रकाश होय है। तिस प्रकाशते राग अर द्वेष है सो कछु आत्मा नही ऐसे खबर पडे है, तथा क्षणमें राग द्वेषका नाश होय है। फेर आत्मानुभवके अभ्यासरूप सुखमें रमे है, तब आत्मा है सो पूर्ण परमात्मा तारण तरण होय है। ऐसे पूर्ण परमात्माका निश्चय स्वरूप ज्ञानते अवलोकन करि, बनारसीदास तिनके चरणकों वंदना करे है ॥५९॥

॥ अब शिष्य राग द्वेषके कारण पूछें अर गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शिष्य कहे स्वामी राग द्वेष परिणाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोंन है ॥
पुद्गल करम जोग किंधो इंद्रिनीके भोग, कींधो धन कींधो परिजन कींधो भोंन है ॥

गुरु कहे छहो द्रव्य अपने अपने रूप, सवनिको सदा असहाई परिणोंण है ॥
कोउ द्रव्य काहुकों न प्रेरक कदाचि ताते, राग द्वेष मोह मृपा मदिरा अचोंन है ॥ ६० ॥

अर्थ—कोई शिष्य गुरूकूं पूछे हे स्वामि ? आत्माकूं राग द्वेपरूप जे परिणाम उपजे है, तिस परिणामकूं मूल कारण—पुद्गलकर्मका संयोग है अथवा इंद्रियनिके विषय भोग है अथवा धन है अथवा परिवारजन है अथवा घर है सो तुम कहो। तब गुरू कहे हे शिष्य ? तुने जो राग द्वेषके कारण कहे सो नही है—छहों द्रव्य सदाकाल अपअपने स्वभावरूप परिणमें है, अर सब द्रव्यकूं परस्पर असहाईपणा है। कोई द्रव्य काहू द्रव्यकूं कदाचित् साह्य नही करे है, ताते राग अर द्वेषकूं मूल कारण है सो मोह मिथ्यात्वरूप मदिराका पीवना है ॥ ६० ॥

॥ अव राग अर द्वेपविषें अज्ञानीका विचार कहे है ॥ दोहा ॥—

कोउ मूरख यों कहे, राग द्वेष परिणाम। पुद्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ ६१ ॥
ज्यों ज्यों पुद्गल वल करे, धरिधरि कर्मजु भेष। राग द्वेपको परिणमन, त्यों त्यों होय विशेष ॥ ६२ ॥

अर्थ—कोई अज्ञानी कहे की, रागद्वेषके परिणाम है सो पुद्गलकर्मके जबरीते, आत्मामें है ॥ ६१ ॥ जैसे जैसे पुद्गलकर्म, उदयकूं आय बल करे। तैसे तैसे रागद्वेषके परिणाम विशेष होय है ॥ ६२ ॥

॥ अव अज्ञानीकूं सुगुरू समझावे है ॥ दोहा ॥—

इहविधि जो विपरीत पक्ष, गहे सद्दहे कोइ। सो नर राग विरोधसों, कवहूं भिन्न न होइ ॥ ६३ ॥
सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल संग सदीव। सहज शुद्ध परिणामको, औसर लहे न जीव ॥ ६४ ॥

तातें चिद्भावन विषें, समरथ चेतन राव। राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यक्में शिवभाव ॥ ६५ ॥

अर्थ—सुगुरु कहे हे शिष्य ? इस प्रकार जो कोई उलटें पक्षकूं धारे अर श्रद्धा करे है। सो मनुष्य रागद्वेषसे कबहूं छूटे नही है ॥ ६३ ॥ जगमें जीव सदा पुद्गलके संग रहे है। सो स्वयंसिद्ध परिणाम ग्रहण करनेकूं अवसर नहि पावे है ॥ ६४ ॥ जीव जो है सो ज्ञानभावमें समर्थ है। पण मिथ्यात्वमें प्रवर्ते तब रागद्वेषके भाव उपजे अर सम्यक्तमें प्रवर्ते तब मोक्षके भाव उपजे है ॥ ६५ ॥

॥ अब ज्ञानभावकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्यों दीपक रजनी समें, चहु दिशि करे उदोत। प्रगटें घटपट रूपमें, घटपट रूप न होत ॥६६॥
त्यों सुज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म। ज्ञेयाकृति परिणमे पैं, तजे न आतम धर्म ॥ ६७ ॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ। राग विरोध विमोह मय, कबहूं भूलि न होइ ॥६८॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निश्चय है घटमांहि। मूरख मिथ्यादृष्टीसों, सहज विलोके नांहि ॥ ६९ ॥

अर्थ—जैसे दीपक रात्री समयमें, सब ठोर प्रकाश करे है। तिस प्रकाशमें घटपटादि समस्त पदार्थ दीसे है, परंतु दीपकका प्रकाश घटपटादिकके समान होय नही ॥ ६६ ॥ तैसे सुज्ञान है सो ज्ञेय (वस्तु) को मर्म जाने है। अर तिस वस्तुके आकाररूप परिणमे है, परंतु आपना जानपना गुण नहि तजे है ॥ ६७ ॥ ज्ञानका जाननेका गुण है ते सदाकाल अविचल रहे अर कोऊ प्रकारका विकार (दोष) नहि धारण करे है। तथा राग द्वेष अर मोहमय कबहूं नाहि होय है ॥६८॥ ऐसे ज्ञानकी महिमा निश्चयते आत्मामें है। परंतु अज्ञानी मिथ्यादृष्टी आत्मस्वरूपकूं देखे हू नही है ॥ ६९ ॥

॥ अब अज्ञानी है सो आत्म स्वरूप देखे नही पुद्गलमें मग्न रहे सो कहे है ॥ दोहा ॥—

पर स्वभावमें मगन रहे, ठाने राग विरोध । धरे परिग्रह धारना, करे न आतम शोध ॥७०॥

अर्थ—अज्ञानी है सो पुद्गल स्वभावमें मग्न होय है, राग अर द्वेषमें रहे है । तथा मनमें सदा परिग्रहकी इच्छा धरे है, परंतु आत्म स्वभावका शोध नहि करे ॥ ७० ॥

॥ अब अज्ञानीकूं दुर्मती अर ज्ञानीकूं सुमति उपजे सो कहे है चौपई ॥ दोहा ॥—

मूरखके घट दुरमति भासी । पंडित हिये सुमति परकासी ॥
दुरमति कुबजा करम कमावे । सुमति राधिका राम रमावे ॥७१॥
कुब्जा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद । अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥ ७२ ॥

अर्थ—मुर्खके हृदयमें दुर्मति उपजे है, अर ज्ञानीके हृदयमें सुमतिका प्रकाश होय है । दुर्मती कुब्जा (दासी) है सो नवीन कर्म कमावे है, अर सुमति राधिका (राणी) है सो आत्मारामकूं रमावे है ॥ ७१ ॥ दुर्मती कुब्जा कारी अर कुबडी है, सो जगतमें खेद उपजावे है, अर सुमति राधिका है, सो आत्मारामकूं आराधे है तथा स्व परका भेद जाने है ॥ ७२ ॥

॥ अब दुर्मतीके गुण कुब्जा (दासी) के समान है सो दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुटिला कुरूप अंग लगी है पराये संग, अपनो प्रमाण करि आपहि बिकाई है ॥
गहे गति अंधकीसि सकती कमंधकीसि, बंधको वढाव करे धंधहीमें धाई है ॥
रांडकीसि रीत लिये मांडकीसि मतवारि, सांड ज्यों स्वछंद डोले भांडकीसि जाई है ॥
घरका न जाने भेद करे पराधीन खेद, याते दुरबुद्धी दासी कुबजा कहाई है ॥७३॥

अर्थ—दुर्बुद्धी है ते कपटी है ताते तिसकूं कुटिला कही अर जगतकूं अप्रिय लागे ताते तिसकूं कुरूपी कही अर देहके साथ प्रीति राखे ताते तिसकूं व्यभिचारी कही है, अपने अशुद्धपणासे विषयके वश हुई ताते तिसकूं वेंचाई है। दुर्बुद्धीकूं हितका मार्ग नाहि दीखे ताते तिसकूं अंध कही अर चेतन विना अन्यकी वात करे ताते तिसकूं कमंध (विना मस्तकका देह) कही है, कर्मका बंध बढावे ताते तिसकूं धंधाली कही है। दुर्बुद्धी है सो आत्माका अभाव माने ताते तिसकूं रांड कही अर सबके आगे आगे धावे ताते तिसकूं मांड समान मत्तवारी कही है, स्वछंद डोले ताते तिसकूं सांड कही अर निर्लज वचन बोले ताते तिसकूं भांडकी पुत्री कही है। दुर्बुद्धी है सो अपने घरके ज्ञान धनका भेद नहि जाने ताते तिसकूं पराधीन खेद करनहारी कही है, ऐसे दुर्बुद्धीके गुण है ताते तिसकूं कुब्जा (दासी) कहाई है ॥ ७३ ॥

॥ अब सुबुद्धीके गुण राधिका (राणी) समान है सो कहे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

रूपकी रसीलि भ्रम कुलपकी कीलि शील, सुधाके समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है ॥
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदानकि, सुराचि निरवाची ठोर साची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधा रस पंथनिकें ग्रंथनिमें गाई है ॥
संतनकी मानी निरवानी नूरकी निसाणि, याते सदबुद्धि राणी राधिका कहाई है ॥७४॥

अर्थ—सुबुद्धी है ते आत्मानुभवकी रुची करे है ताते तिसकूं स्वरूपवान कही अर भ्रमकूं खोले ताते तिसकूं कुलूपकी कीली कही है, शीस सुधाके समुझमें उछले ताते तिसकूं शीलवान सुखदाई कही है। सुबुद्धी है सो ज्ञानकी पूर्व दिशा है अर निदानकी अजाची है, वचन गोचर नाहि आवे ऐसे शुद्ध

आत्माके अनुभवमें सदा साचे है अर साची ईश्वरता है । अपने आत्मघरकी खबरदार अर आत्मारामके साथ क्रीडा करनहारी है, अध्यात्म पंथके ग्रंथमें इस सुबुद्धीकी बढाई गाई है । सुबुद्धीकूं संत जनोंने मानी है अर क्षोभ रहित स्थानमें रहणारी है तथा शोभाकी निशाणी है, ऐसे सुबुद्धीके गुण है ताते तिसकूं राधिका राणी कहाई है ॥ ७४ ॥

वह कुब्जा वह राधिका, दोउ गति मति मान। वह अधिकारी कर्मकी, वह विवेककी खान ॥७५॥

अर्थ—दुर्मति कुब्जा है अर सुमती राधिका है, सो अप अपने गतीकूं अर मतीकूं भिन्न भिन्न धारे है। दुर्मति कर्म बधावनेकूं अधिकारी है, अर सुमती विवेक बधावनेकूं खानी है ॥ ७५ ॥

॥ अब कर्मचक्र अर विवेक चक्रका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्मचक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिवक्र । जो सुज्ञानको परिणमन, सो विवेक गुणचक्र ॥७६॥

अर्थ—ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्म है ते द्रव्यकर्म चक्र है, अर रागादिक बुद्धीकी वक्रता है ते भावकर्म चक्र है । अर सम्यग्ज्ञानका परिणमने है, ते विवेक गुणचक्र है ॥ ७६ ॥

॥ अब कर्मचक्रके स्वभाव ऊपर चोपटका दृष्टांत कहे हैं ॥ कवित्त ॥—

जैसे नर खिलार चोपरिको, लाभ विचारि करे चितचाव ॥
धरे सवारि सारि बुधि बलसों, पासा जो कुछ परेसु दाव ॥
तैसे जगत जीव स्वारथको, करि करि उद्यम चिंतवे उपाव ॥
लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही स्वभाव ॥ ७७ ॥

अर्थ—जैसे चोपटको खेलनारो कोई मनुष्य होय सो, लाभ समझ खेल खेलनेकूं चित्तमें हौस

राखे है । अर तिस चोपटकूं अपने बुद्धि बलसे जीति होनेके स्थानमें धरे है, परंतु जो पासा पडेगा तिस पासाके आधीन चलनेका दाव है । तैसेही जगतके जीव अपने अपने स्वार्थके अर्थी, उद्यम करे है अर उपाय चिंतवे है । परंतु जैसा कर्म उपार्जन कीया होय, तिसके उदय माफिक फल होय है, ऐसाही कर्मचक्रका स्वभाव है ॥ ७७ ॥

॥ अव विवेक चक्रके स्वभाव ऊपर सतरंजका दृष्टांत कहे है ॥ कवित्त ॥—

जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सव सतरंजकी घात ॥
चले चाल निरखे दोउ दल, महुरा गिणे विचारे मात ॥
तैसे साधु निपुण शिव पथमें, लक्षण लखे तजे उतपात ॥
साधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ ७८ ॥

अर्थ—जैसे सतरंजको खेलनारो कोई मनुष्य होय सो, सतरंजके खेल संबधी अपने अर परके रोणेकी समस्त घात समझे है । तथा अपने अर परके दोऊ दल ऊपर नजर राखि चाल चाले है, तथा अपना अर पराया वजीर हाथी घोडा प्यादा इनिका महुरा ध्यानमें राखि जीत होनेका विचार राखे है । तैसे मोक्ष मार्गके साधनारे जे निपुण ज्ञानी है ते मोक्षमार्गमें खेले है, लक्षणसे स्व (आत्म) स्वरूपकू अर परस्वरूपकू देखे है तथा मोक्ष मार्गमें उत्पाद (विघ्न) रूप कार्य होय तिसकूं छोडदेवे है । अर आतम गुणका साधन करे तथा मोक्षपदका विचार करे है, यह विवेक चक्रका स्वभाव है ॥७८॥

सतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारि । याके निशिदिन जीतवो, वाके निशिदिन हारि ॥७९॥
जाके उर कुब्जा वसे, सोई अलख अजान । जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥ ८० ॥

अर्थ—सुमति राधिका तो सतरंज खेल रही है, अर कुमति कुब्जा चौपट खेल खेले है। पण सुमति राधिका विवेक चक्रते रात्रदिन जीते है अर कुमति कुब्जा कर्मचक्रते रात्रदिन हारे है ॥ ७९ ॥ जिसके हृदयमें कुमति कुब्जा वसे है, सो जीव आत्माका अजान है। अर जिसके हृदयमें सुमति राधिका वसे है, सो ज्ञाता सम्यक्वान है ॥ ८० ॥

॥ अव जहां शुद्धज्ञान है तहांही शुद्ध चारित्र होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत दीसे तहां, शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्रको अंस है ॥
ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग्य विलास धर्म वाको सरवंस है ॥
राग द्वेष मोहकी दशासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है ॥
निरूपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरण परम हंस है ॥ ८१ ॥

अर्थ—जहां आत्मामें शुद्ध ज्ञानके कलाका प्रकाश दीसे है, तहां तिस ज्ञानके प्रमाण मुजब चारित्रका अंश पण उपजे है । ज्ञानी होय ते तो सब ज्ञेय (वस्तु) का मर्म हेय अर उपादेह जाने है, ताते ज्ञानीकूं स्वभावतेही सर्वस्वी वैराग्यविलास गुण प्राप्त होय है। अर राग द्वेष तथा मोहके अवस्थासे भिन्न रहे है, ताते ज्ञानीके त्रिकालवर्त्ती कर्मका सर्वस्वी विध्वंस होय है। [पूर्वकृत कर्मकी निर्जरा होय, वर्तमान कालमें नवीन कर्मबंध नहि होय, अर जिस कर्म प्रकृतीकी निर्जरा हुई सो प्रकृती फेर आगामि कालमें बंधे नही) ऐसे कर्म बंधते छूटे है अर आत्मानुभवमें स्थिर रहे है, ताते ज्ञानीकूं प्रत्यज्ञ पूर्ण परमहंस कहिये है ॥ ८१ ॥

ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरणकी चाल। ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधे समकाल ॥८२॥

अर्थ—जहां ज्ञान भाव है, तहां शुद्ध चारित्रकी रीत (वैराग) है । ताते ज्ञान होय तबही ज्ञान अर वैराग्य मिलिके, मोक्ष मार्ग साधे है ॥ ८२ ॥

॥ अब ज्ञान अर क्रिया ऊपर अंध अर पंगुका दृष्टांत कहे है ॥ दोहा ॥—

यथा अंधके कंध परि, चढे पंगु नर कोय। याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोय ॥८३॥
जहां ज्ञान क्रिया मिले, तहां मोक्ष मग सोय। वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिर होय ॥८४॥

अर्थ—जैसे अंध मनुष्यके कंध ऊपर पंगु मनुष्य बैठे । जब पांगुला मनुष्य नेत्रते मार्ग दिखावे है, अर अंध मनुष्य पावसे चले है, ऐसे दोऊ मिलिके मार्गकी कार्य सिद्धि होय हे ॥ ८३ ॥ तैसे जहां ज्ञान अर क्रिया (वैराग्य) ये दोनूं मिले है तहां मोक्ष मार्ग है । ज्ञान है सो आत्माका स्वरूप जाने है अर वैराग्य है सो आत्मस्वरूपमें स्थिर है ॥ ८४ ॥

॥ अब ज्ञानका अर कर्मका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकूं भूल। ज्ञान मोक्ष अंकूर है, कर्म जगतको मूल ॥ ८५ ॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम । कर्म चेतनामें वसे, कर्म वंध परिणाम ॥ ८६ ॥

अर्थ—ज्ञान है सो जाग्रत अवस्था है ते जीवकूं जगावे है अर कर्म है सो निद्रा अवस्था है ते जीवकूं भुलावे है। ज्ञान है सो मोक्षका अंकूर (कारण) है अर कर्म है सो भवभ्रमणका मूल है ॥८५॥ ज्ञान चेतनाके जाग्रत होते शुद्ध आत्मस्वरूप प्रगटे है । अर कर्म चेतनामें आत्माकूं कर्मबंध होने योग्य परिणाम उपजे है ॥ ८६ ॥

॥ अव ज्ञानका अर कर्मका भिन्न भिन्न प्रभाव कहे है ॥ चौपई ॥—

जबलग ज्ञान चेतना भारी । तबलग जीव विकल संसारी ॥
जब घट ज्ञान चेतना जागी । तब समकिती सहज वैरागी ॥ ८७ ॥
सिद्ध समान रूप निज जाने । पर संयोग भाव परमाने ॥
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे । त्रिविधि कर्मकी ममता नासे ॥ ८८ ॥

अर्थ—जबतक ज्ञान चेतना कर्मरूप जड हुई है, तबतक संसारीजीव अज्ञानरूप है। अर जब हृदयमें ज्ञान चेतना जाग्रत होय है, तब सहज वैराग्य प्राप्त होय सम्यक्ती कहावे है ॥ ८७ ॥ ज्ञानी है सो अपने आत्माकूं सिद्ध समान कर्म रहित समझे है, अर पुद्गल संयोगसे जे राग तथा द्वेष भाव उपजे है ते पररूप माने है। अर शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है, ताते द्रव्यकर्म भावकर्म अर नोकर्मका नाश होय है ॥ ८८ ॥

॥ अव ज्ञाता कृतकर्मकी आलोचना करे सो कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहे आपसों आप। मैं मिथ्यात दशाविषें, कीने बहुविध पाप ॥८९॥

अर्थ—ज्ञानी अपनी कथा आपसो कहेकी। मै पूर्वी अज्ञानपणामें बहुत प्रकारके पाप कीये है ॥८९॥

हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताइ, ताते हम करुणा न कीनी जीव घातकी ॥
आप पाप कीने औरनिकों उपदेश दीने, हूति अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥
मन वच कायामें मगन व्हे कमाये कर्म, धाये भ्रम जालमें कहाये हम पातकी ॥
ज्ञानके उदयते हमारी दशा ऐसी भइ, जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ९० ॥

अर्थ—हमारे हृदयमें महा अज्ञान मोहका भ्रम था ताते हमने जीव घातकी करुणा नहि कीनी। मैने हिंसादिक पाप कीये अर दुसरे लोकनिको पाप करनेका उपदेश दीया तथा कोई पाप करता होय तिसकूं साह्यता करतो हुतो। ऐसे मन वचन अर कायासे उन्मत्त होय पापकर्म कमाये अर अज्ञानरूप भ्रम जालमें दौरत फिऱ्यो ताते हम पापी कहायो। अब ज्ञानका उदय होते हमारी अवस्था ऐसी भई है की जैसे सूर्यका उदय होते प्रातःकालकी अवस्था उद्योतवंत होय अर अंधकार भागे है ॥ ९० ॥

॥ अब ज्ञानका उदै होते अज्ञान अवस्था भागे तिसकूं स्वप्नका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञान भान भासत प्रमाण ज्ञानवान कहे, करुणा निधान अमलान मेरा रूप है ॥
कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥
मोहको विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतसों शून्य पाप पुन्य अंध कूप है ॥
पाप किने किये कोन करे करि है सो कोन, क्रियाको विचार सुपनेकी दोर धूप है ॥ ९१ ॥

अर्थ—ज्ञानरूप सूर्यका उदय होतेही ज्ञानी ऐसे समझे है की, मेरा स्वरूप करुणा निधान अर निर्दोष है। मृत्युसे अतीत अर कर्मबंधसे भय रहित है, तथा मन वचन अर कायाके योगसे अजीत है ऐसी मेरी महिमा अद्भुत है। इस जगतमें मेरा निवास दीखे है पण सो मोहका विलास है मेरा विलास नहीं, मैं जन्ममरणसे रहित है अर यह पाप तथा पुन्य है सो मेरेकूं अंधकूप समान भासे है। ये पापकर्म पूर्वी किसने किये आगे कोण करेगा अर अब करे है सो कोण है, ऐसे क्रियाका विचार करे तब ज्ञानीकूं स्वप्नके अवस्था समान सब मिथ्या दीसे है ॥ ९१ ॥

॥ अब कर्मका प्रपंच मिथ्या है सो दिखावे है ॥ दोहा ॥—

मैं यौं कीनो यौं करौं, अब यह मेरो काम । मनवचकायामें वसे, ये मिथ्यात परिणाम ॥९२॥
मनवचकाया कर्मफल, कर्मदशा जडअंग । दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित कर्म तरंग ॥९३॥
ताते भावित धर्मसों, कर्म स्वभाव अपूठ । कोन करावे को करे, कोसर लहे सब झूठ ॥९४॥

अर्थ—मैं यौं कीया है अर यौं करूंगा, अब जो करूं सो मैं करूंहूं । ऐसे मन वचन अर कायामें अहंकार रहना, सो मिथ्या परिणाम है ॥ ९२ ॥ मन वचन अर कायाके योग है ते पूर्व कृतकर्मके फल है, अर कर्मकी दशा है ते जडरूप है । तिस द्रव्यकर्म जड पिंडमें राग द्वेष उपजे है, सो भावकर्मके अज्ञान तरंग है ॥ ९३ ॥ आत्माके भावित धर्म (ज्ञानगुण) में, कर्म स्वभाव नही है । ताते कर्मकूं करावे कोण, करे कोण अर अनुमोदे कोण, इस कर्मका प्रपंच सब झूठ है ॥ ९४ ॥

॥ अब मोक्षमार्गमें क्रियाका निषेध है सो कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करणी हित हरणी सदा, मुक्ति वितरणी नांहि । गणी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुखमांहि ॥९५॥

अर्थ—क्रिया है सो आत्माका अहित करणारी है, मुक्ति देणारी नही है । ताते क्रियाकी गणना बंध पद्धतीमें करी है, क्रियामें महादुःख वसे है सो आगेके सवैयामें कहे है ॥ ९५ ॥

करणीके धरणीमें महा मोह राजा वसे, करणी अज्ञान भाव राक्षसकी पुरी है ॥
करणी करम काया पुद्गलकी प्रति छाया, करणी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है ॥
करणीके जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करणीकि उट ज्ञानभान दुति दुरी है ॥
आचारज कहे करणीसों व्यवहारी जीव, करणी सदैव निहचै स्वरूप बुरी है ॥९६॥

अर्थ—क्रिया है सो अज्ञानभावरूप राक्षसकी नगरी है, तिस अज्ञान नगरीमें मोह राजा वसे है। अर क्रिया है सो कर्मकी अर काय योगकी पडछाया है, तथा कपटकी जाल है जैसी साखर लगाई छुरी है। इस क्रियारूप जालमें आत्मा मग्न हो रह्यो है, पण क्रियाके बादलसे ज्ञानरूप सूर्यकी ज्योती छपी रहे है। श्रीकुंदकुंदाचार्य कहे है की क्रीया करे सो जीव व्यवहारी (कर्मकर्त्ता) कहावे है, निश्चय स्वरूपसे देखिये तो क्रिया सदा दुखदाई है ॥ ९६ ॥

॥ अव ज्ञाताका विचार कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

मृषा मोहकी परणति फैली । ताते करम चेतना मैली ॥
ज्ञान होत हम समझे येती । जीव सदीव भिन्न परसेती ॥ ९७ ॥
जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निरुपाधि ॥
अविनाशी अशरण सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥ ९८ ॥

अर्थ—हमारेमें पहले राग द्वेष अर मोहका उदय फैला था, ताते कर्मसहित चेतना मलीन हो रहीथी। अब ज्ञान चेतनाका उदय होनेंते हम ऐसे समझे है की, जीव है सो निश्चयसे पर संयोगते सदा भिन्न है ॥ ९७ ॥ अनादि कालते मेरा स्वरूप, कर्मकी उपाधि रहित है। सदा अविनाशी अर अशरण है, तथा सिद्ध समान सुखमय है ॥ ९८ ॥ चौपाई ॥—

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा। चिदविलास पद जगत उज्यारा ॥
राग विरोध मोह मम नांही। मेरो अवलंबन मुझमांही ॥ ९९ ॥

अर्थ—मैं तीन कालमें कर्मसे न्यारा हूं। मेरा स्वरूप ज्ञानविलासमय है सो जगतमें उजाला है।

(ज्ञान दबि जाय तो समस्त जगत अंधेर है) अर राग द्वेष तथा मोहभाव वर्ते है सो मेरा स्वरूप नही है । मेरा स्वरूप मेरेमें है ॥ ९९ ॥

॥ अब सम्यग्दृष्टीका निर्वांछकपणा दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

सम्यकवंत कहे अपने गुण, मैं नित राग विरोधसों रीतो ॥
मैं करतूति करूं निरवंछक, मो ये विषै रस लागत तीतो ॥
शुद्ध स्वचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महा भट जीतो ॥
मोक्ष सन्मूख भयो अब मो कहु, काल अनंत इही विधि वीतो ॥ १०० ॥

अर्थ—सम्यक्दृष्टी अपने गुण कहे है की, मैं सदा राग अर द्वेष रहितहूं । मैं संसार संबंधी जो क्रिया करूंहूं सो निरवंछकपणाते करूंहूं, ताते मुजकूं विषयके रस कडवा लागे है । मैं शुद्ध आत्माका अनुभव करके, जगतका महा मोहरूप सुभट जीत्यो है । अर मोक्षके सन्मूख भयो है, अब मेरेकूं इस प्रकार (सम्यक्तपणामें) अनंत काल वीतो ॥ १०० ॥

कहे विचक्षण मैं रहुं, सदा ज्ञान रस साचि । शुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होहु कदाचि ॥१०१॥
पूर्वकर्मविष तरु भये, उदै भोग फलफूल । मैं इनको नहि भोगता, सहज होहु निर्मूल ॥१०२॥

अर्थ—भेदज्ञानी कहे है की मैं सदा ज्ञान रसमें रमि रहुंहूं । अर शुद्ध आत्मानुभवते कदापि नहि ढलूंहूं ॥१०१॥ पूर्वकृतकर्म है ते विषवृक्ष है अर तिन कर्मका उदयरूप जो भोग उपभोग है सो फल फूल है । मैं इनकूं भोगता नही है, मैं राग अर द्वेष रहितहूं तातै कर्मसे सहज निर्मूल होहूं ॥१०२॥

जो पूर्वकृत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नांहि । मगन रहे आठो पहर, शुद्धातम पद मांहि ॥१०३॥
सो बुध कर्मदशा रहित, पावे मोक्ष तुरंत । भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥१०४॥

अर्थ—जो पूर्वकृत कर्मका फल (भोग अर उपभोग) रुचिसे भोगे नही । अर आठो प्रहर शुद्ध आत्मानुभवमें रहे है ॥ १०३ ॥ सोही पंडित कर्मबंध रहित होय त्वरित मोक्ष पावे है । अर तिस मोक्षमें आगामि अनंतकालपर्यंत परम समाधिका सुख भोगवे है ॥ १०४ ॥

॥ अव ज्ञानीकी क्रमे क्रमे महिमा वधे सो कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

जो पूरव कृतकर्म, विरख विष फल नहि भुंजे । जोग जुगति कारिज करंत, ममता न प्रयुंजे । राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडे । शुद्धातम अनुभौ अभ्यास, शिव नाटक मंडे । जो ज्ञानवंत इह मग चलत, पूरण व्है केवल लहे । सो परम अतींद्रिय सुखविषें, मगन रूप संतत रहे ॥ १०५ ॥

अर्थ—जो विष वृक्षरूप पूर्व कृतकर्मके फल (भोगोपभोग) रुचिसे नहि भोगे है । अर मन वचन तथा काय योगके युक्तिरूप कार्य करे पण तिस कार्यमें ममता धरे नही । राग अर द्वेषका निरोधि करि मनवचनकायके सब विकल्प छोडे हैं । अर शुद्ध आत्म अनुभवका अभ्यासरूप मोक्षका खेल करे है । इस मार्गसे जो ज्ञानवंत चले है सो परमात्मारूप होयके केवल ज्ञान पावे है । अर जन्ममरणते रहित होय मोक्षकूं जाय है तहां अतींद्रिय सुखमें सतत मग्न रहे है ॥ १०५ ॥

॥ अव शुद्ध आत्म द्रव्यका स्वरूप वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निरभै निराकूल निगम वेद निरभेद, जाके परकाशमें जगत माइयतु है ॥

रूप रस गंध फास पुदगलको विलास, तासों उदवस जाको जस गाइयतु है ॥
विग्रहसों विरत परिग्रहसों न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है ॥
सो है ज्ञान परमाण चेतन निधान तांहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है ॥१०६॥

अर्थ—आत्मा है सो निर्भय अर शाश्वत सुखी है तथा भेद रहित वेद अगम्य (ज्ञानगम्य) है, तिस ज्ञान ज्योतीमें समस्त जगत समावे है। रूप रस गंध अर स्पर्श ये जो देहके विलास है, इनसे उदवस (रहित) आत्मा है ऐसे सब शास्त्रमें कह्या है। शरीरादिकसे विरत (रहित) अर परिग्रहसे सदा न्यारो है, आत्मामें तीन योग रहितपणाका चिन्ह पामिये है। ऐसे आत्मा ज्ञान प्रमाणयुक्त है अर चेतनाका निधान है, तिस आत्माकूं अविनाशी ईश्वर मानि हम मस्तक नमावीये है ॥ १०६ ॥

॥ अब सिद्ध आत्माका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसे निरभेद अब भेद कोन कहेगो ॥
दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निजथान फिर वाहिर न वहेगो ॥
कबहु कदाचि अपनो स्वभाव त्यागि करि, राग रस राचिके न पर वस्तु गहेगो ॥
अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगामि अनंत काल रहेगो ॥१०७॥

अर्थ—जैसे अतीत कालमें संसार अवस्थाविषे पण आत्मद्रव्य निश्चय नयसे अभेदरूप मान्यो हुतो, तैसाही केवल ज्ञान प्राप्त होते प्रत्यक्ष अभेदरूप रहे है तिस परमात्माकूं अब भेदरूप कोन कहेगो। अर जो अष्टकर्म रहित होय सुख समाधिरूप अपने स्वस्थान (मोक्ष) पायो है, सो फेरि बाह्य संसारमें नहि आवेगो। मोक्षको गयो सिद्ध जीव है सो कदाचितहूं कोई कालमें अपने केवल ज्ञान स्वभावकूं

त्यागि करिकें, राग अर द्वेषमें राचि देहादिक पर वस्तुकूं नहिं धारण करेगो। जो आत्माकूं अम्लान ज्ञान (केवल ज्ञान) विद्यमान प्राप्त भये तो, तैसाही आगामि अनंत काल पर्यंत रहेगो ॥ १०७ ॥

॥ अब सिद्ध जीव फेर अवतार लेय नही सो सिद्ध करे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

जबहींते चेतन विभावसों उलटी आप, समे पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है ॥
तवहींते जोजो लेने योग्य सोसो सब लीनो, जो जो त्यागयोग्य सोसो सब छांडि दीनोहै ॥
लेवेको न रही ठोर त्यागवेकों नाहिं और, बाकी कहां उबऱ्योजु कारज नवीनो है ॥
संगत्यागि अंगत्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धित्यागि आपा शुद्ध कीनो है ॥१०८॥

अर्थ—अनादि कालसे आत्मा मिथ्यात्व भावरूप विभावमें रमि रह्यो हुतो सो जबसे उलटे, अर अपना शुद्ध स्वभाव ग्रहण करे हैं । तबसे जो जो लेने योग्य ज्ञान दर्शनादिक भाव है ते ते सब लीये, अर जो जो त्यागने योग्य राग द्वेषादिक भाव है ते ते सब छोड दीये है। लेने योग्य कुछ रहा नही अर छोडने योग्यहूं कूछ रहा नही तो, बाकी नवीन कार्य करनेकूं क्या रह्या की फेर अवतार लेवापडे है। परिग्रहका संग छोड देहका ममत्व त्याग कीया अर वचनके विकल्प त्याग कीये, मनके तरंग त्यागि इंद्रिय जनित बुद्धीका त्याग कीया इत्यादिक सब पर वस्तुकूं त्याग करिके आत्मा शुद्ध कीया हैं सो शुद्धआत्मा अवतार कैसा धारण करेगा ? ॥ १०८ ॥

॥ अब मोक्षका मूल कारण द्रव्यलिंग (नग्न भेप) नहीं है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

शुद्ध ज्ञानके देह नही, मुद्रा भेष न कोइ । ताते कारण मोक्षको द्रव्यलिंग नहि होइ ॥१०९॥
द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान । अष्ट रिद्धि अष्ट सिद्धि, एहूं होइ न ज्ञान ॥११०॥

अर्थ—आत्मा तो शुद्ध ज्ञानमय है अर शुद्ध ज्ञानकूं देह नही, अर जब देह नहीं तब ज्ञानकूं मुद्रा भेष पण कोई नही। ताते मोक्षका मूल कारण द्रव्यलिंग नही है ॥ १०९ ॥ ज्ञानते द्रव्यलिंग तो प्रत्यक्ष न्यारो है, कला अर वचन ये ज्ञान नहीं है। अर अष्ट महाऋद्धि (आचार, श्रुत, शरीर' वचन, वाचना, बुद्धि, उपयोग, संग्रह संलीनता,) ये ज्ञान नही तथा अष्ट महा सिद्धि (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व,) ये पण ज्ञान नही ॥ ११० ॥

॥ अव ज्ञान है सो आत्मामें है और स्थानमें नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

भेषमें न ज्ञान नहि ज्ञान गुरू वर्तनमें, मंत्रजंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है ॥
ग्रंथमें न ज्ञान नहि ज्ञान कवि चातुरीमें, वातनिमें ज्ञान नहि ज्ञान कहा वानी है ॥
ताते भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र वात, इनीते अतीत ज्ञान चेतना निशानी है ॥
ज्ञानहीमें ज्ञान नही ज्ञान और ठोर कहु, जाके घट ज्ञान सोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥

अर्थ—कोई भेषमें ज्ञान नही अर महा चारित्रमें ज्ञान नही, मंत्र जंत्र अर तंत्रमें ज्ञानकी बातही नही है। पुस्तकमें ज्ञान नही अर कविता बनानेके चातुर्यतामें ज्ञान नही, व्याख्यान करनेमें ज्ञान नही अर जे वाणी है ते कछु ज्ञान नही ?। ताते भेष चारित्र मंत्र पुस्तक कविता अर व्याख्यान इन समस्तंनितें ज्ञान न्यारे है, ज्ञान है सो आत्माका लक्षण है। ज्ञानमेंही ज्ञान है और कहाहूं स्थानमें ज्ञान नही, जाके घटमें ज्ञान है सोही ज्ञानका मूल कारण आत्मा है ॥ १११ ॥

॥ अव भेपादिक धारी जे है ते विपयके भिकारी है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

भेष धरि लोकनिको वंचे सो धरम ठग, गुरु सो कहावे गुरुवाई जाके चहिये ॥

मंत्र तंत्र साधक कहावे गुणी जादूगीर, पंडीत कहावें पंडिताइ जामें लहिये ॥
कवित्तकी कलामें प्रवीण सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये ॥
एते सब विषैके भिकारी मायाधारी जीव, इनिकों विलोकिके दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

अर्थ—भेष धरि लोकनिकूं याचना करे सो धर्म ठग कहावे, जाकूं महाचारित्र होय सो गुरू कहावे। मंत्र तंत्रादिक गुणके जे साधक है ते जादूगीर कहावे, अर जामें पंडिताई है ते पंडित कहावे। कवित्त करनेके कलामें जो प्रवीण सो कवि कहावे, अर जो बात करनेमें हुशीयार है सो व्याख्यानकार कहावे। ये जो समस्त है सो विषयके भिकारी अर मायाचारी (कपटी) है, इनकूं देखिके आप दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

॥ अब अनुभवकी योग्यता कहे है ॥ दोहा ॥—

जो दयाल भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग। पै तथापि अनुभौ दशा, वरते विगत तरंग ॥११३॥
दर्शन ज्ञान चरण दशा, करें एक जो कोइ। स्थिर व्है साधे मोक्षमग, सुधी अनुभवी सोई ॥११४॥

अर्थ—यद्यपि जो दया भाव है सो ज्ञानका प्रगट अंग है। तथापि आत्माका अनुभव है सो विकल्पके तरंग रहित वर्ते है ॥ ११३ ॥ जो कोई दर्शन ज्ञान अर चारित्ररूप आत्माकूंही माने है। अर स्थिर होय मोक्ष मार्ग साधे है सोही भेदज्ञानी अनुभवी है ॥ ११४ ॥

॥ अब शुद्ध आत्मानुभवकी महिमा कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोई दृग ज्ञान चरणातममें वैठि ठोर, भयो निरदोर पर वस्तुकों न परसे ॥
शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतासें केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसे ॥

त्यागि तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसें ॥
सोई विकलप विजई अलप काल मांहि, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसे ॥ ११५ ॥

अर्थ—कोई दर्शन ज्ञान अर चारित्रकूं आत्मस्वरूमें मानि स्थीर रहे है, सोही संशय रहित होय देहादिक पर वस्तुकूं आपनी नहीं माने। शुद्ध आत्मस्वरूपका विचार करे ध्यान धरे अर क्रिडा करे है, अर आत्मामें स्थीर होय महा आनंदरूप अमृत धारा वरसे है। आत्मामें तल्लीन होनेसे शरीरके कष्टकूं नहि गिणे तव निस्पृही होयके अष्ट कर्मकूं खैचि निर्जरा करे, तथा कर्मबंधका क्षय करे। सोही अनुभवी विकल्प रहित होय अल्प कालमें, जन्म मरणते छूटि मोक्षस्थानकूं प्राप्त होय है ॥ ११५ ॥

॥ अव गुरू आत्मानुभवका उपदेश करे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

गुण पर्यायमें दृष्टि न दीजे। निर्विकल्प अनुभव रस पीजे ॥
आप समाइ आपमें लीजे। तनुपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ११६ ॥

तज विभाव हूजे मगन, शुद्धातम पद मांहि। एक मोक्षमारग यहै, और दूसरो नांहि ॥११७॥

अर्थ—आत्माके गुण अर पर्याय अनेक है तिसमें दृष्टि न देके तथा विकल्प रहित होके आत्म अनुभवरूप अमृत रस पीवो। अर आपने आत्मामें आप लय लगावो तथा शरीरका अहंपणा छोडिके आत्मामें स्थिर रहो ॥ ११६ ॥ परके भावकूं छोडि शुद्ध आत्मस्वरूपमें मग्न होना। यह अद्वितीय मोक्ष मार्ग है ऐसा दुसरा मोक्ष मार्ग नही ॥ ११७ ॥

॥ अव आत्मानुभव विना जिन (नग्न) दीक्षा पण अव्रती है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

केई मिथ्यादृष्टि जीव धरे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहे कहें हम यती है ॥

अतुल अखंड मल रहित सदा उद्योत, ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमती है ॥
आगम संभाले दोष टाले व्यवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती है ॥
आपको कहावे मोक्ष मारगके अधिकारी, मोक्षसे सदैव रुष्ट दुष्ट दुरगती है ॥११८॥

अर्थ—केई मिथ्यादृष्टी जीव गुरूका उपदेश सुनी जिनमुद्रा (नग्न भेष) धारण करे है, अर आचार क्रियामें मग्न रहे अर लोककूं कहे हम यती है। पण जिसकी तुलना नही अखंड अर निर्मल सदा उद्योतवान, ऐसे आत्मानुभवरूप ज्ञान भावसे परान्मुख है ताते मूढमती है। यद्यपि ते सिद्धांत शास्त्र सुने अर दोष टाळि आहार पान करे तथा बाह्य क्रियामें दृष्टी राखे है, महा व्रत पाले है तथापि अंतरंग मिथ्यात्व परिग्रह है ताते अव्रती है । अर ते आपकूं मोक्षमार्गके अधिकारी कहावे है, परंतु मोक्षमार्गसे सदा रुष्ट (विमुख) है दुःख दुर्गतीमें भ्रमण करनेवाले है ॥ ११८ ॥

॥ अव ज्ञान विना वाह्य क्रिया मूढ कहवाय सो कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥ —

जैसे मुगध धान पहिचाने । तुष तंदुलको भेद न जाने ॥
तैसे मूढमती व्यवहारी । लखे न बंध मोक्ष विधि न्यारी ॥ ११९ ॥

जे व्यवहारी मूढ नर, पर्यय बुद्धी जीव । तिनके वाह्य क्रियाहिको, है अवलंव सदीव ॥१२०॥
कुमति बाहिज दृष्टिसो, वाहिज क्रिया करंत । माने मोक्ष परंपरा, मनमें हरष धरंत ॥१२१॥
शुद्धातम अनुभौ कथा, कहे समकिती कोय । सो सुनिके तासो कहे, यह शिवपंथ न होय ॥१२२॥

अर्थ—जैसे अज्ञानी धान्यकूं पहिचाने पण तुष अर तंदुलको भेद नहि जाने है । तैसे बाह्य क्रियामें मग्न मूढमती है सो कर्मबंधकी अर मोक्षकी क्रिया न्यारी न्यारी नहि समझे ॥ ११९ ॥ जे

अज्ञानी है ते देहको जीव माने है । अर सदा बाह्य क्रिया कांडमें मग्न रहे है ॥ १२० ॥ अर बाह्य क्रियाते कर्मकी निर्जरा समझे है । तैसे अनुक्रमे मोक्ष होना मानि मनमें हर्ष धरे है ॥ १२१ ॥ कोई सम्यक्ती आत्मानुभवकी कथा कहे तो । सो सुनीके तिनसूं कहे ये मोक्षमार्गकी कथा नही है ॥१२२॥

॥ अब अज्ञानीका अर ज्ञानीका लक्षण कहे है ॥ कवित्त ॥—

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रमाणहि ॥
ते हिय अंध बंधके करता, परम तत्वको भेद न जानहि ॥
जिन्हके हिये सुमतिकी कणिका, बाहिज क्रिया भेप परमाणहि ॥
ते समकिती मोक्ष मारग मुख, करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि ॥ १२३ ॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें देहविषे आत्मपणाकी बुद्धि है, अर मुनि मुद्रा धारण करि क्रियातेही मोक्ष होना माने है । ते हृदयके अंध अर कर्मबंधके कर्त्ता है, ऐसे मूढ है ते आत्म तत्वका भेद नाहि जाने है । अर जिन्हके हृदयमें आत्मानुभवका अंश जाग्रत भया है, ते बाह्य क्रियाकूं स्वांग समान समझे है । ते सम्यक्ती मोक्ष मार्गके सन्मुख प्रयाण करि, निश्चयते भव स्थितीका भस्म करे है ॥१२३॥

॥ अब आचार्य मोक्षमार्गका सारांश कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आचारज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो ॥
बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप्प भलो, बोलीयेसों वचन प्रयोजन है जितनो ॥
नानारूप जल्पनसो नाना विकलप ऊठे, ताते जेतो कारिज कथन भलो तितनो ॥
शुद्ध परमातमाको अनुभौ अभ्यास कीजे, येही मोक्ष पंथ परमारथ है इतनो ॥ १२४ ॥

अर्थ—आचार्य कहे है हे शिष्या! जिनेश्वरके वचनका विस्तार है, सो अगम्य अपार है हम कितना कहेंगे। हमारी बोलनेकी ताकद नही ताते चुप्प रहना भला है, अर बोलीये तो प्रयोजन है जितना बचन बोलना। बहुत बोलनेसे नाना प्रकारके विकल्प ऊठे है, ताते जितना कार्य है तितना कथन कहना बस है। शुद्ध आत्माके अनुभवका अभ्यास करना, येही परमार्थ अर मोक्षमार्ग है ॥ १२४ ॥

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दोर। मुक्ति पंथ साधन वहै, वागजाल सब और ॥१२५॥

अर्थ—शुद्ध आत्मानुभव करना सोही शुद्ध दर्शन ज्ञान अर चारित्र है। तथा येही मोक्षमार्गका साधन है और सब वचनाडंबर है ॥ १२५ ॥

॥ अब आत्माका कैसा अनुभव करना सो कहे है ॥ दोहा ॥—

जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास। निर्विकल्प शाश्वत सुथिर, कीजे अनुभौ तास ॥१२६॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरण वीत ममत्व। ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥१२७॥

अर्थ—आत्मा है सो जगतमें चक्षु जैसा आनंदमय है अर ज्ञान चेतनारूप प्रकाशमान है। भेदरहित शाश्वत अर स्थीर है ऐसा आत्मानुभव करना ॥ १२६ ॥ अचल अखंडित अर ज्ञानमय है, तथा पूर्ण समाधिवंत अर ममत्वरहित है। ज्ञानगम्य अर कर्मरहित है, सो आत्मतत्व है ॥ १२७ ॥

सर्व विशुद्धि द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ। कुंदकुंद मुनिराजकृत, पूरण भयो जु ग्रंथ ॥१२८॥

अर्थ—जिस द्वारते आत्माकूं सर्व विशुद्धि प्राप्त होय ऐसे अधिकारका यह कथन कीया है, सो प्रत्यक्ष मोक्षका मार्ग कह्या है। श्रीकुंदकुंद मुनिराजकृत समयसार नाटक ग्रंथ संपूर्ण भयो ॥ १२८ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको दशमो सर्व विशुद्धि द्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ १० ॥

॥ अब समयसार नाटक ग्रंथकी अंतिम प्रशस्ती कथन ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

कुंदकुंद मुनिराज प्रवीणा । तिन यह ग्रंथ इहालो कीना ॥
गाथा बद्धसों प्राकृत वाणी । गुरुपरंपरा रीत वखाणी ॥ १ ॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता । सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता ॥
जे नव रस जगमांहि वखाने । ते सब समयसार रस माने ॥ २ ॥
प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होय । नव रस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाने कोय ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीकुंदकुंद मुनिराज अध्यात्म शास्त्रमें प्रवीण भये तिनौंमें यह ग्रंथ सर्व विशुद्धि द्वारपर्यंत गाथाबद्ध प्राकृत वाणीमें कीया । जिन वाणीकूं गुरु संप्रदायसे जैसे वर्णन करते आये तैसे व्याख्यान कीया ॥ १ ॥ (श्रीसीमंदरस्वामीकी वाणी सुनिके यह ग्रंथ कीया ऐसी संप्रदायमें बात है) ताते कुंदकुंदाचार्यका ग्रंथ जगतमें विख्यात भया । इस ग्रंथकूं सुनते ज्ञाताजन महा सुख पावे है । जगतमें जे नव रस कह्या है ते सब रस इस समयसार नाटकके रसमें समाई रहे है ॥ २ ॥ संसारमें ये बात प्रसिद्ध है कीं जे नाटक होय है ते नव रस युक्त होय है । नव रसमें शांत रस सबका नायक है शांत रसमें ज्ञान है ताते एक शांत रसमें नव रस गर्भित है पण तिसकूं कोई विरला जाने है ॥ ३ ॥

॥ अब नव रसके नाम कहे है ॥ कवित्त ॥—

प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, तीजो रस करुणा सुख दायक ॥
हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छठम रस बीभत्स विभायक ॥
सप्तम भय अष्टम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनिको नायक ॥

ये नव रस येई नव नाटक, जो जहां मग्न सोही तिहि लायक ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रथम शृंगार रस है अर दूजो वीर रस है, तीजो करुणा रस है सो करुणा रस समस्त जीवकूं सुखदायक है। चौथा हास्य रस अर पांचवा रौद्र रस है, छट्ठा बीभत्स रस है सो चित्तकूं अप्रिय लगे। सातवा भय रस अर आठवा अद्भुत रस है, नवमा शांत रस है सो सब रसका नायक है। ऐसे नव रस है ते नाटकरूप है, जो प्राणी जिस रसमें मग्न होय सोही रस प्रीय लागे है ॥ ४ ॥

॥ अब नव भव रसके स्थानक कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शोभामें शृंगार वसे वीर पुरुषारथमें, कोमल हियेमें करुणा रस वखानिये ॥
आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये ॥
चिंतामें भयानक अथाहतामें अदभूत, मायाकी अरुचि तामें शांत रस मानिये ॥
येई नव रस भवरूप येई भावरूप, इनिको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये ॥ ५ ॥

अर्थ—शोभामें शृंगार रस रहे अर पुरुषार्थमें वीर रस रहें, कोमल हृदयमें करुणा रस रहे ऐसे कह्या है। आनंदमें हास्य रस रहें अर रणसंग्राममें रुद्र रस रहे, मनकूं घाण उपजे तिसमें बीभत्स रस रहे। चिंतामें भय रस है अर आश्चर्यमें अद्भुत रस रहे, वैराग्यमें शांत रस रहे है सो प्रमाण है। ये नव रस है ते भव (संसार) रूप पण है अर येई नव रस भाव (ज्ञान) रूप पण है, भव रसका अर भाव रसका लक्षण जे है ते तो जगतमें सुदृष्टीसे जाने जाय है ॥ ५ ॥

॥ अब नव भाव रसके स्थानक कहे है ॥ छपै छंद ॥—

गुण विचार शृंगार, वीर उद्यम उदार रुख। करुणा रस सम रीति, हास्य

हिरदे उच्छाह सुख। अष्ट करम दल मलन, रुद्र वर्त्तै तिहि थानक। तन विलक्ष
बीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक। अदभुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज
वैराग्य ध्रुव। नव रस विलास प्रकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्माकूं ज्ञान गुणते भूषित होनेका विचार करना सो भाव शृंगार रस है ॥ १ ॥ कर्मकी निर्जरा होनेका उद्यम करना सो भाव वीर रस है ॥ २ ॥ अपने जीवके समान पर जीव समजना सो भाव करुणा रस है ॥ ३ ॥ आत्मानुभवका हृदयमें उत्साह होना सो भाव हास्य रस है ॥ ४ ॥ अष्ट कर्मके प्रकृतीका क्षय करनेकूं प्रवर्तना सो भाव रौद्र रस है ॥५॥ देहके अशुचीका विचार करना सो भाव बीभत्स रस है ॥ ६ ॥ जन्म मरणके दुःखका विचार करना सो भाव भय रस है ॥७॥ आत्माके अनंत शक्तीका विचार करना सो भाव अद्भुत रस है ॥ ८ ॥ राग द्वेषकूं निवारिके वैराग्य निश्चल धारण करना सो भाव शांत रस है ॥ ९ ॥ जब हृदयमें सुबुद्धी प्रगट होय तब ही नव भाव रसकके विलासका प्रकाश होय है ॥ ६ ॥

चौ०—जब सुबोध घटमें प्रकाशे। तब रस विरस विषमता नासे ॥
नव रस लखे एक रस मांही। ताते विरस भाव मिटि जांही ॥ ७ ॥

अर्थ—जब हृदयमें सुबुद्धीका प्रकाश होय तब ये रस है अर ये विरस है ऐसी जो विषमता (विपरीतता) है सो नाश पावे। अर नव रस है सो एक शांत रसमे है सो ही दीखे है ताते विरसके भाव सहज मिटे अर एक शांत रसमें आत्माका ठहरना होय ॥ ७ ॥ दोहा ॥—

सब रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ। जाके सुनत प्रमाण जिय, समुझे पंथ कुपंथ ॥८॥

अर्थ—एक शांत रसमें सब रसका गर्भित समावेश हुवा ऐसा यह समयसार नाटक ग्रंथ कुंदकुंदाचार्यजीने कह्यो है। इस ग्रंथके सुनतेही जीवकूं सुपंथ अर कुपंथ समझे है ॥ ८ ॥

चौ॰—वरते ग्रंथ जगत हित काजा। प्रगटे अमृतचंद्र मुनिराजा॥
तव तिन ग्रंथ जानि अति नीका। रची वनाई संस्कृत टीका॥ ९॥ दो॰ ॥—
सर्व विशुद्धि द्वारलों, आये करत वखान। तव आचार भक्तिसों, करे ग्रंथ गुण गान ॥१०॥

अर्थ—ऐसे जगतके जीवका हितकारक यह ग्रंथ प्रसिद्ध भया। इस ग्रंथको अति श्रेष्ठ जानि अमृतचंद्र मुनिराजने संस्कृत टीका वनाई ॥ ९ ॥ सर्व विशुद्धी द्वारपर्यंत संस्कृत व्याख्यान कीया। अर भक्तिसे इस ग्रंथका गुणानुवाद गाया ॥ १० ॥

॥ इति श्रीकुंदकुंदाचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

अथ श्रीसमयसार नाटकको एकादशमो स्याद्वाद द्वार प्रारंभ ॥११॥

॥ अब श्रीअमृतचंद्र मुनिराज आपना हेतु कहे है ॥ चौपाई ॥—

अद्भुत ग्रंथ अध्यातम वाणी । समुझे कोई विरला प्राणी ॥
यामें स्यादवाद अधिकारा । ताको जो कीजे विसतारा ॥ १ ॥
तोजु ग्रंथ अति शोभा पावे । वह मंदिर यह कलश कहावे ॥
तब चित अमृत वचन गढ खोले । अमृतचंद्र आचारज बोले ॥ २ ॥

अर्थ—समयसार नाटक अध्यात्मवाणी अद्भुत ग्रंथ है इसिका मर्म कोई विरला ज्ञानी समझे । इस ग्रंथमे गर्भित स्याद्वादका कथन है पण तिसकूं विस्तारसे वर्णन करिये तो ॥ १ ॥ ये ग्रंथ विशेष शोभा पावे जैसे वह मंदिर अर यह कलश कहावेगा । ऐसे चित्तमे गंभीर अर अमृत समान वचनका विचार करि अमृतचंद्र आचार्य बोले ॥ २ ॥

कुंदकुंद नाटक विषें, कह्यो द्रव्य अधिकार । स्याद्वाद नै साधि मैं, कहूं अवस्था द्वार ॥ ३ ॥
कहूं मुक्ति पदकी कथा, कहूं मुक्तिको पंथ । जैसे घृत कारिज जहां, तहां कारण दधि मंथ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीकुंदकुंदाचार्यकृत समयसार नाटकमें जीव-अर-अजीव द्रव्यका स्वरूप कह्यो । अब मैं स्याद्वाद नय द्वार अर साध्य साधक-अवस्था द्वार ऐसे दोय द्वार कहूंहूं ॥ ३ ॥ स्याद्वाद द्वारमें चतुर्दश नयका अर साध्य साधक द्वारमें मुक्तिपद (साध्य) का अर मुक्तिपथ (साधक) का कथन कहूंहूं । जैसे घृत कार्य वास्ते दधि मंथनका कारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

॥ अव एकांत वादीका अर स्याद्वादीका लक्षण कहे है चौपाई ॥ दोहा ॥—

अमृतचंद्र बोले मृदुवाणी । स्यादवादकी सुनो कहानी ॥
कोऊ कहे जीव जग मांही । कोऊ कहे जीव है नांही ॥ ५ ॥

एकरूप कोऊ कहे, कोऊ अगणित अंग । क्षणभंगुर कोऊ कहे, कोऊ कहे अभंग ॥ ६ ॥
नय अनंत इहविधि है, मिले न काहूं कोइ । जो सब नय साधन करे, स्याद्वाद है सोइ ॥ ७ ॥

अर्थ—अमृतचंद्र मुनिराज कोमल वचनसे बोले, मैं स्याद्वादका कथन कहूंहूं सो सुनो । कोई अस्तिवादी कहे जगतमें जीव है अर कोई नास्तिवादी कहे जीव जगतमें नही है ॥ ५ ॥ कोई अद्वैतवादी कहे जीव एक ब्रह्मरूप है अर कोई नैयायिकवादी कहे जीवके अगणित स्वरूप हैं । कोई बौद्धमती कहे जीव क्षणभंगुर विनाशिक है अर सांख्यमती कहें जीव सर्वथा शाश्वत है ॥ ६ ॥ अर्थ समजवेके मार्गकूं नय कहते है ते समजवेके मार्ग अनंत हैं ताते नयहूं अनंत हैं, तिस नयमें कोई नय काहूं नयसे मिले नही (विरोधी) है अर जे सब नयकूं साधन करे (सब नयकूं साचा साधिके दिखावे) सो स्याद्वाद है ॥ ७ ॥

॥ अव जैनका मूल स्याद्वादमत है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

स्याद्वाद अधिकार अब, कहूं जैनका मूल । जाके जाने जगत जन, लहे जगत जलकूल ॥ ८ ॥

अर्थ—अब स्याद्वाद अधिकार कहूंहूं सो जिनशास्त्रका मूल है । स्याद्वादका स्वरूप जाननेसे जगतके जन है सो संसार जलधिते पार होय है ॥ ८ ॥

॥ अव नयके जालते शिष्यकूं संदेह उपजे तिसकूं गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकी पराधीन, जीव एक है कीधो अनेक मानि लीजिये ॥
जीव है सदीवकी नांही है जगत मांहि, जीव अविनश्वरकी विनश्वर कहीजिये ॥
सद्गुरु कहे जीव है सदैव निजाधीन, एक अविनश्वर दरव द्रिष्टि दीजिये ॥
जीव पराधीन क्षणभंगुर अनेक रूप, नांहि जहां तहां पर्याय प्रमाण कीजिये ॥ ९ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे हे स्वामी? जीव स्वाधीन है की पराधीन है, जीव एक है की अनेक है। जीव जगतमें सदैव है की नही है, जीव अविनाशिक है कि विनाशिक है। तव सद्गुरु कहे हे शिष्य? जीव है सो द्रव्यदृष्टीते स्वाधीन है, लक्षणते एक है, सदैव है, अविनाशी है। अर पर्याय दृष्टीते कर्मके अपेक्षा पराधीन है, परिणामके अपेक्षा क्षणभंगुर है, गत्यादिकके अपेक्षा अनेक है, शरीरअपेक्षा नाशिवंत है ऐसे द्रव्यदृष्टी अर पर्यायदृष्टी दोनूं नयहूं प्रमाण करना ॥ ९ ॥

॥ अव द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव अपेक्षा अस्ति नास्ति स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारों भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये ॥
परके चतुष्क वस्तु नअस्ति नियत अंग, ताको भेद द्रव्य परयाय मध्य जानिये ॥
दरव जो वस्तु क्षेत्र सत्ता भूमि काल चाल, स्वभाव सहज मूल शकति वखानिये ॥
याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना, व्यवहार दृष्टि अंश भेद परमानिये ॥१०॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ये चतुष्टय (चार भेद) सर्व वस्तुमें रहे है, निश्चय नयते अपने स्वचतुष्टय अपेक्षासे वस्तु अस्तिरूप है जैसे स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल अर स्वभाव इनके अपे-

क्षासें विचार करियें तो सर्व वस्तु अस्तिरूप है। अर परके चतुष्टय अपेक्षासे वस्तुकूं नास्तिरूप निपजे है, जैसे परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अर परभाव अपेक्षासे सर्व वस्तु नास्तिरूप है ये निश्चय नयते अस्ति अर नास्ति कह्या तिनका भेद द्रव्यमें अर पर्यायमें जाना जाय है। द्रव्यकूं वस्तु कहिये अर वस्तुके सत्ताकूं क्षेत्र कहिये अर वस्तुके परिणमनकूं काल कहिये, अर वस्तुके मूल शक्तीकूं स्वभाव कहिये। इस प्रकार बुद्धीसे स्वद्रव्य अर परद्रव्यकूं क्षेत्रादिककी कल्पना करना, सो व्यवहार नय भेद है ॥१०॥

है नांहि नांहिसु है, है है नांहि नांहि। ये सर्वंगी नय धनी, सब माने सब मांहि ॥ ११ ॥

अर्थ—ये वस्तु है ऐसे कहें सो स्वद्रव्यका अस्तिपणा ममजना ॥ १ ॥ ये वस्तु नांही ऐसे कहे सो परद्रव्यका नास्तिपणा समजना ॥ २ ॥ वस्तु है नांहि ऐसे कहे तो प्रथम अस्ति नंतर नास्ति समजना ॥ ३ ॥ ये वस्तु नांहि है ऐसे कहे तो प्रथम नास्ति नंतर अस्ति समजना ॥ ४ ॥ ये वस्तु है है ऐसे कहे तो स्वद्रव्य अर पर द्रव्य अस्ति समजना ॥ ५ ॥ ये वस्तु नांहि नांहि ऐसे कहे तो स्वद्रव्य अर परद्रव्य नास्ति समजना ॥ ६ ॥ ये वस्तु कथंचित् है नांही ऐसे कहे तो प्रथम कथंचित् अस्ति नंतर कथंचित् नास्ति समजना ॥ ७ ॥ ऐसे सांत भाग होय है सो सांत भाग सर्वांग नयका धनी (स्यांद्वादी) सर्व वस्तुमें मानें है ॥ ११ ॥

॥ अब चतुर्दश (१४) नयके नाम कहे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

ज्ञानको कारण ज्ञेय आतमा त्रिलोक मय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है ॥
जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व द्रव्यमें विज्ञान, ज्ञेय क्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥
देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अंश मांही है ॥

जीव क्षण भंगुर अज्ञेयक स्वरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकांत अवस्था मूढ पांही है ॥ १२ ॥

१ ज्ञेय नय—ज्ञान उपजनेका कारण ज्ञेय (वस्तु) है ताते ज्ञेय यह एक नय है.

२ त्रैलोक्यात्म नय—आत्मा त्रैलोक्य प्रमाण है ताते त्रैलोक्यात्म यह एक नय है.

३ वहुज्ञान नय—जैसे वस्तु अनेक है तैसे ज्ञानहूं अनेक है ताते वहुज्ञान यह एक नय है.

४ ज्ञेय प्रतिबिंव नय—ज्ञानमें वस्तु प्रतिबिंबित होय है ताते ज्ञेय प्रातिबिंब यह एक नय है.

५ ज्ञेय काल नय—जबलग ज्ञेय है तवलग ज्ञान है ताते ज्ञेयकाल यह एक नय है.

६ द्रव्यमय ज्ञान नय—सर्वद्रव्यकूं आत्मा जाने है ताते द्रव्यमय ज्ञान यह एक नय है.

७ क्षेत्रयुत ज्ञान नय—ज्ञेयके क्षेत्र प्रमाण ज्ञान है ताते क्षेत्रयुतज्ञान यह एक नय है.

८ नास्तिजीव नय—जीवमें जीव है जगतमें जीव नही ताते नास्ति जीव यह एक नये है.

९ जीवोद्घात नय—देहका नाश होते जीव देहते निकसे ताते जीवोद्घात यह एक नय है.

१० जीवोत्पाद नय—देह उपजे तव देहमें जीव उपजे ताते जीवोत्पादनामे एक नय है.

११ आत्मा अचेतन नय—ज्ञान अचेतन है ताते आत्मा अचेतन यह एक नय है.

१२ सत्तांश नय—सत्तांशमय जीव है ताते सत्तांश यह एक नय है.

१३ क्षणभंगुर नय—जीव क्षणक्षणमें परिणमें है ताते क्षणभंगुर यह एक नय है.

१४ अज्ञायक ज्ञान नय—ज्ञान है सो ज्ञायक स्वरूप नही है ताते अज्ञायक ज्ञान यह एक नय है.

ऐसे नय है इसिमें जो कोई एक नयकूं ग्रहण करे अर वाकीके नयकूं छोडे सो एकांती मूढ है ॥१२॥

॥ अब ज्ञानका कारण ज्ञेय है इस प्रथम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम सवारि भीति, पीछे ताके उपरि सुचित्र आछयो लेखिये ॥
तैसे मूल कारण प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञानरूप कारिज विसेखिये ॥
ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसाही स्वभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये ॥
कारण कारिज दोउ एकहीमें निश्चय पै, तेरो मत साचो व्यवहार दृष्टि देखिये ॥ १३ ॥

अर्थ—कोई (मीमांसक) एक नयका ग्राही अज्ञानी कहे कि-प्रथम भीतकूं सुधारिये, पीछे तिस भीत उपर आच्छा चित्र निकले अर खराब भीत उपर खराब चित्र निकले। तैसे ज्ञान उपजनेका मूल कारण ज्ञेय (घट पटादिक वस्तु) है, जैसे जैसे पदार्थ ज्ञानके सन्मुख होय तैसे तैसे ज्ञान जाननेका कार्य करे है। तिस एकांतीकूं स्याद्वादी ज्ञानी कहे जैसी वस्तु होय तिसका तैसाही स्वभाव होय है, ज्ञानका स्वभाव जाननेका है अर ज्ञेयका स्वभाव अज्ञान जड है ताते ज्ञान अर ज्ञेय भिन्न भिन्न पद जानना। निश्चय नयते कारण अर कार्य ये दोउ एकमें है, पण व्यवहार नयते देखिये तो कारण विना कार्य होय नही ताते तेरा मत (अभिप्राय) साचा है ॥ १३ ॥

॥ अब आत्मा त्रैलोक्यमय है इस द्वितीय नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है ॥
याहीते स्वछंद भयो डोले मुखहू न बोले, कहे या जगतमें हमारोहि परव है ॥
तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न है पैं, जगसों विकाशी तोही याहीते गरव है ॥
जो वस्तु सो वस्तु पररूपसों निराली सदा, निहचे प्रमाण स्यादवादमें सरव है ॥ १४ ॥

अर्थ—कोई (नैयायिक) एक नयका ग्राही कहे कि ज्ञान लोकालोक व्याप्य है, अर आत्मद्रव्य त्रैलोक्य प्रमाण है। ऐसे मानि स्वच्छंद क्रिया रहित होय डोले है अर मुखते किसीसे बोलेहूं नहि है, तथा कहे जगतमें हमारीही महिमा है। तिसकूं ज्ञाता कहे—ये जीव है सो जगतसे भिन्न है, पण जीवके ज्ञान स्वभावमें जगतका विस्तार दीखे है इह तुझे गर्व है। निश्चय नयसे जीववस्तु है सो जीव वस्तुमें है अर पर वस्तुसे सदा निराली रहे है, ऐसे सर्वस्वी स्याद्वादका मत प्रमाण है ॥ १४ ॥

॥ अब ज्ञेय अनेक है तैसे ज्ञानहूं अनेक है इस तृतीय नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि, ज्ञेयको आकार नानारूप विसतऱ्यो है ॥
ताहिको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकांत पक्ष लोकनिसो लऱ्यो है ॥
ताको भ्रम भंजिवेकों ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निरावाध रस भऱ्यो है ॥
ज्ञायक स्वभाव परयायसों अनेक भयो, यद्यपि तथापि एकतासों नहिं टऱ्यो है ॥ १५ ॥

अर्थ—कोई अज्ञानी है सो ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि कहे की, जैसे ज्ञेयके आकार नानाप्रकार विस्ताररूप है। तैसा ज्ञानहूं नानाप्रकार विस्ताररूप होय है ताते ज्ञानकी सत्ता अनेक है, ऐसे एकांत पक्ष धारण करि लोकनिस्यो लऱ्यो है। तिसका भ्रम नाश करनेकूं ज्ञानवंत कहे, ज्ञान है सो अगम्य अगाध वस्तु है सो निराबाध गुणते भरी है। यद्यपि ज्ञानका स्वभाव अनेक ज्ञेय (वस्तु) जाननेका होय है, तथापि ज्ञान अर जानपणा एकही हैं अपने एकतासों कदापि नहि टले है ॥१५॥

॥ अब ज्ञानमें ज्ञेयका प्रतिविंब है इस चतुर्थ नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार, प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोइये ॥

जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइ ये ॥
तासों स्यादवादी कहे ज्ञानको स्वभाव यहै, ज्ञेयको आकार वस्तु मांहि कहां खोइये ॥
जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखे, यद्यपि तथापि आरसी विमल जोइजे ॥१६॥

अर्थ—कोई कुबुद्धिवाला कहे की ? ज्ञानमें जो ज्ञेयके आकार प्रतिबिंबित होय है, सो शुद्ध ज्ञानकूं कलंक है तिस कलंककूं धोइये। अर जब ध्यान जलसे ज्ञानका कलंक धोइके निर्मल कीजे, तब ज्ञान शुद्ध निराकार होय है। तिस कुबुद्धीवालेकूं स्याद्वादी ज्ञानी कहे—ज्ञानको स्वभाव यह है की, तिसमें ज्ञेयके आकार सदा झलकेही है सो ज्ञेयके आकार दूर करनेका क्या मतलब है। जैसे आरसीमें नाना प्रकारकेरूप प्रतिबिंबित होय है, तथापि आरसी निर्मलही दीखे है आरसीकूं कोई प्रकारे प्रतिबिंबका कलंक दीखे नही ॥ १६ ॥

॥ अब जबतक ज्ञेय है तबतक ज्ञान है इस पंचम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिणाम, जोलों विद्यमान तोलों ज्ञान परगट है ॥
ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनाश होय, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अटल है ॥
तासूं समकीतवंत कहे अनुभौ कहानि, पर्याय प्रमाण ज्ञान नानाकार नट है ॥
निरविकलप अविनश्वर दरवरूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है ॥ १७ ॥

अर्थ—कोई अज्ञ कहे—जबतक ज्ञानका परिणमन ज्ञेयके आकार विद्यमान है, तबतक ज्ञान प्रगट रहे है। अर ज्ञेयके विनाश होते ज्ञानकाभी विनाश होय है, ऐसी वाके हृदयमें मिथ्यात्वकी अट है। तिनसूं भेदज्ञानी परिचयका दृष्टांत कहे, जैसे नट बहुत प्रकारका सोंग धरे पण नट एकही है

तैसे ज्ञानहूं पर्याय माफक बहुत रूप धरे तोहूं ज्ञान एकही है। ज्ञान है सो निर्विकल्प अर आत्मद्रव्यके समान अविनाशी है, तथा ज्ञानमें ज्ञेय नाहि व्यापे है ॥ १७ ॥

॥ अब सर्व द्रव्यमय ब्रह्म है इस षष्ठम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मंद कहे धर्म अधर्म आकाश काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें ॥
जानेन मरम निज माने आपा पर वस्तु, बांधे दृढ करम धरम खोवे डगमें ॥
समकिती जीव शुद्ध अनुभौ अभ्यासे ताते, परको ममत्व त्यागि करे पगपगमें ॥
अपने स्वभावमें मगन रहे आठो जाम, धारावाही पंथिक कहावे मोक्ष मगमें ॥ १८ ॥

अर्थ—कोई (ब्रह्मअद्वैतवादी) कहे– धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल अर जीव ये समस्त जगतमें ब्रह्मरूप है। ऐसे मंदबुद्धी आत्म स्वरूपके मर्मकूं जाने नही अर जड वस्तुकूं आत्मा माने है, ताते दृढ कर्म बांधि अपनो ज्ञान स्वभावकूं क्षणोक्षणीं खोवे है। अर सम्यक्ती जीव है सो शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है ताते, पुद्गलका ममत्व पगपगमें त्यागे है। अर अपने आत्मस्वभावमें आंठो पहर मग्न रहे है, सो मोक्षमार्गका धारावाही पथिक कहावे है ॥ १८ ॥

॥ अब ज्ञेयके क्षेत्र प्रमाण ज्ञान है इस सप्तम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परमाण, तेतो ज्ञान ताते कछु अधिक न और है ॥
तिहुं कालपरक्षेत्र व्यापि परणम्यो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्यादृग दोर है ॥
जैनमती कहे जीव सत्ता परमाण ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिरमोर है ॥
ज्ञानके प्रभामें प्रतिबिंबित अनेक ज्ञेय, यद्यपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठोर है॥१९॥

अर्थ—कोई मूढ कहे की वस्तु जितनी छोटि अथवा बडी होय, तिस वस्तुके क्षेत्र प्रमाणही ज्ञान परिणमे है कछु कम अथवा ज्यादा ज्ञान होय नही। ऐसे ज्ञानकूं तीन काल पर क्षेत्रसे व्याप्य अर परद्रव्यसे परिणमे (ज्ञेय अर ज्ञान एकरूप हुवो) माने है, पण ज्ञान आत्मरूप जाने नही ऐसी मिथ्या-दृष्टीकी दौड है। तिसकूं जैनमती स्याद्वादी कहे की जीवकी सत्ता त्रैलोक्य प्रमाण है तितनी ज्ञानकी सत्ता है, सो सत्ता पर द्रव्यसे अव्यापक अर जगतमें श्रेष्ठ है। यद्यपि ज्ञानके प्रभामें अनेक ज्ञेय प्रतिबिंबित होय है, तथापि ज्ञेयमें ज्ञान मिले नही दोनूकी स्थिति न्यारी न्यारी है ॥ १९ ॥

॥ अब जीवमें जीव है जगमें जीव नही इस अष्टम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शुन्यवादी कहे ज्ञेयके विनाश होत, ज्ञानको विनाश होय कहो कैसे जीजिये ॥
ताते जीवितव्य ताकी थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिणामनिको नाश कीजिये ॥
सत्यवादी कहे भैया हूजे नांहि खेद खिन्न, ज्ञेयसो विरचि ज्ञानभिन्न मानि लीजिये ॥
ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजिये ॥२०॥

अर्थ—कोई शुन्य (नास्तिक) वादी कहे की ज्ञेयका नाश होते ज्ञानका नाश होय, ज्ञान अर जीव एक है सो ज्ञानका नाश होते जीवका पण नाश होय है तो फेर कैसो जगना होयगा। ताते जीव शाश्वत रहनेके अर्थी, ज्ञानमें ज्ञेयके आकार परिणमे है तिसका नाश करिये तो जीवकी स्थिरता होयगी। तिसकूं सत्यवादी कहे हे भाई? तुम खेद खिन्न मत होहूं, तुमने ज्ञान अर ज्ञेय एक माना है सो भिन्न भिन्न मानो। अर ज्ञानकी ज्ञायक शक्ति साधन करिके आत्मानुभवका अभ्यास करो, तथा कर्मका क्षय करिके मोक्षपद पावो तहां अनंत ज्ञानरूप अमृत रस सदा पीवो ॥ २० ॥

॥ अब देहका नाश होते जीवका नाश होय इस नवम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

कोउ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसेगी तबही जीव मरेगो ॥
छाया कोसो छल कीधो माया कोसो परपंच, कायामें समाइ फिरि कायाकों न धरेगो ॥
सुधी कहे देहसों अव्यापक सदैव जीव, समैपाय परको ममत्व परिहरेगो ॥
अपने स्वभाव आइ धारणा धरामें धाइ, आपमें मगन व्हैके आपशुद्ध करेगो ॥२१॥
ज्यों तन कंचुकि त्यागसे, विनसे नांहि भुजंग। त्यों शरीरके नाशते, अलख अखंडित अंग ॥२२॥

अर्थ—कोई क्रूर (चार्वाकमति) कहेकी देह अर जीव एक पिंड है, ताते जब देहका नाश होय तब जीवहूं मरे है। जैसे वृक्षका नाश होते वृक्षके छायाका नाश होय है अथवा इंद्रजालवत् प्रपंच है, जीव मरे जब देहमेंही समाइ जाय अर फेर देह नहीं धरेगा दीपक समान बुझ जायगा। तिसकूं बुद्धिमान कहे जीव सदा देहसे अव्यापक है, सो जब पुद्गलादिकका ममत्व छोडेगा। तब अपने ज्ञान स्वभावकूं धारण करके, स्थीरतारूप होय आत्मस्वरूपमें मग्न होयके आत्माकूं कर्म रहित करेगा ॥ २१ ॥ जैसे सर्पके शरीर ऊपर कांचली आवे, तिस कांचलीकूं त्यजनेसे सर्पका नाश नहि होय है। तैसे शरीरका नाश होते, जीवका नाश नही होय है जीव अखंडित रहे है ॥ २१ ॥ २२ ॥

॥ अब देहके उपजत जीव उपजे इस दशम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो है जब आइके ॥
जोलों देह तोलों देह धारी फिर देह नसे, रहेगो अलख ज्योतिमें ज्योति समाइके ॥
सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देहधारि, जब ज्ञानी होयगो कबही काल पाइके ॥
तबहीसों पर तजि अपनो स्वरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसाइके ॥ २३ ॥

अर्थ—कोई दुर्बुद्धीवाला कहे पहिले जीव नही था, सो जब आकाश पृथ्वी जल अग्नि अर वायु इन पंच तत्त्वसे देह ऊपजे तब तिस देहमें ज्ञान शक्तिरूप जीव आय ऊपजे है। अर जबतक देह रहे तबतक देहधारी जीव कहावे है, फेर जब देहका नाश होयगा तब जीव ज्योतिरूपी है सो ज्योतिमें जोत मिल जायगी। तिसकूं सुबुद्धीवाला कहे ये जीव अनादिका देह धारी है नवीन नहि उपज्या है, अर जीवकूं जब शुद्धज्ञान प्राप्त होयगा। तब परका ममत्व त्यागिके अपने आत्मस्वरूपकूं जानेगा, अर अष्ट कर्मका क्षय करिके मोक्षस्थान पावेगा ॥ २३ ॥

॥ अब आत्मा अचेतन है इस ग्यारवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिणयो ज्ञान ताते चेतना असत है ॥
ज्ञेयके नसत चेतनाको नाश ता कारण, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥
पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत है ॥
चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रमाण जीव सत है ॥ २४ ॥

अर्थ—कोई पक्षपाती कहे—ज्ञान है सो ज्ञेयके आकाररूप होय है, ताते ज्ञानचेतना असत है। अर ज्ञेयका नाश होते ज्ञानचेतनाका नाश होय है, ताते आत्मा सदा ज्ञान रहित अचेतन है ऐसे मेरें मत है। तिस एकांत पक्षपातीकूं पंडित कहे ये ज्ञान है सो स्वभावतेही अखंडित है, अर ज्ञेयके आकारकूं धारे है तोहूं ज्ञेयसे भिन्न है। जो ज्ञानचेतनाका नाश मानिये तो जीवके सत्ताका नाश होयगा, ताते ज्ञानचेतना युक्तही जीवतत्त्व प्रमाण है ॥ २४ ॥

॥ अब सत्ताके अंशमें जीव है इस बारवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ महा मूरख कहत एक पिंड मांहि, जहांलों अचित चित्त अंग लह लहे है ॥
जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप, जेते भेद करमके तेते जीव कहे है ॥
मतिमान कहे एक पिंड मांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंश फैलि रहे है ॥
पुद्गलसों भिन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता स्वभाव गहे है ॥२५॥

अर्थ—कोई महा मूढ कहें—एक देहमें, जबतक चेतन अर अचेतन पदार्थके विकल्प (तरंग) ऊठे है। तबतक जोगरूप परिणमे सो जोगी जीव अर भोगरूप परिणमे सो भोगी जीव ऐसे नाना प्रकार ज्ञेयरूप जितने क्रियाके भेद होय है, तितने जीवके भेद एक देहमें उपजे है। तिनकूं मतिमान कहे एक देहमें एकही जीव है, पण तिस जीवके ज्ञान परिणामकरि अनंत भावरूप अंश फैले है। ये जीव देहसों भिन्न है अर कर्मयोगसे रहित है, तिस जीवमें सदा अनंतभाव उपजे है अर अनंत भाव विनसे है परंतु जीव तो सदा स्थीर स्वभावही धारण करे है ॥ २५ ॥

॥ अब जीव क्षणभंगुर है इस तेरवे नयका स्वरूप कहे है ॥ ३१ सा ॥—

कोउ एक क्षणवादी कहे एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसत है ॥
जाही समै अंतर नवीन उतपति होय, ताही समै प्रथम पुरातन वसत है ॥
सरवांगवादी कहे जैसे जल वस्तु एक, सोही जल विविध तरंगण लसत है ॥
तैसे एक आतम दरव गुण पर्यायसे, अनेक भयो पैं एकरूप दरसत है ॥ २६ ॥

अर्थ—कोईयेक क्षणीकवादी कहे—एक देहमें एक जीव उपजे है, अर एक जीव विनसे है। जब देहमें नवीन जीवकी उत्पत्ति होय, तब पहला जीव किनसे है। तिनकूं स्याद्वादी कहे—जैसे जल एकरूप है, पण सोही जल पवनके संयोगते नानाप्रकार तरंगरूप भिन्न भिन्न दीखे है। तैसे एक आत्मद्रव्य है सो गुण अर पर्यायसे, अनेक रूप होय है पण निश्चयसे एक रूपही दीसे है ॥ २६ ॥

॥ अब ज्ञायकशक्ति विना ज्ञान है इस चौदहवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ बालबुद्धि कहे ज्ञायक शकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्ये जानिये ॥
ज्ञायक शकति कालपाय मिटिजाय जब, तब अविरोध बोध विमल वखानिये ॥
परम प्रवीण कहे ऐसी तो न बने बात, जैसे विन परकाश सूरज न मानिये ॥
तैसे विन ज्ञायक शकति न कहावे ज्ञान, यह तो न पक्ष परतक्ष परमानिये ॥ २७ ॥

अर्थ—कोई अज्ञान बुद्धिवाला कहे—जबतक ज्ञानमें ज्ञायक (जाणपणा) की शक्ती है, तबतक ते ज्ञान जगतमें अशुद्ध कहवाय है कारण की ज्ञानमें ज्ञायकपणा है सो ज्ञानकूं दोष है। अर जब कालपाय ज्ञायकशक्ति मिटि जाय, तब अविरोध ज्ञान निर्मल कहिये। तिनकूं स्याद्वादी प्रवीण कहे—तुम ज्ञायकपणाकूं अशुद्ध मानोहो ये बात बनेही नही, जैसे प्रकाश विना सूर्य माने न जाय। तैसे ज्ञायकशक्ति विना ज्ञान न कहावे, यह तो पक्षसे कहे नही है प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ २७ ॥

॥ अब जिसने चौदह एकांत नयकूं हटाव्यो तिस स्याद्वादकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

इहि विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परमाण। जाके वचन विचारसों, मूरख होय सुजान॥२८॥
स्यादवाद आतम दशा, ता कारण बलवान। शिव साधकबाधा रहित, अखै अखंडित आन ॥२९॥

अर्थ—ऐसे स्याद्वादमत प्रमाणते आत्मज्ञानका हित है। इसिका वचन सुननेसे वा अध्ययन करनेसे अज्ञानी होय तो पण पूर्ण ज्ञानी होय है ॥ २८ ॥ स्याद्वादते आत्मस्वरूपका जाणपणा होय है ताते स्याद्वाद महा बलवान है। मोक्षका साधक है कोई युक्ति प्रयुक्तीसे भागे नही ऐसे बाधा रहित अक्षय है अर सर्व नयमें फैलि रह्या है ताते अखंडित आज्ञा है ॥ २९ ॥

॥ अब साध्य पदका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अभोगी अमूरतीक परदेशवंत है ॥
उतपत्तिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतन त्रयादिगुण भेदसों अनंत है ॥
सोई जीव दरव प्रमाण सदा एक रूप, ऐसे शुद्ध निश्चय स्वभाव विरतंत है ॥
स्यादवाद मांहि साध्यपद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेको साधक सिद्धंत है ॥३०॥

अर्थ—जो इह जीव वस्तु है सो अस्ति प्रमेय अगुरुलघु अभोगी अमूर्त्तीक अर प्रदेशवंत है, जिसका नाश नही ताते अस्ति कहिये, प्रमाण है ताते प्रमेय कहिये, देह नही ताते अगुरु लघु कहिये इत्यादि गुणयुक्त है। अर गुणसे ध्रुवरूप है तथा गुणके पर्यायसे उत्पत्तीरूप अर विनाशरूप है, रत्नत्रयादिक गुणके भेदसे अनंतपणा लीये वर्त्ते है। सोई जीवद्रव्य एकरूपज सदा प्रमाण है, ऐसा निश्चय नयसे जीवके स्वभावका वृत्तांत है सो साध्यपद कहिये। इसिका वर्णन स्याद्वाद द्वारमें कह्या ॥३०॥

स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार। अमृतचंद्र मुनिवर कहे, साधक साध्य दुवार ॥३१॥

अर्थ—ऐसे स्याद्वाद द्वार कह्यो। अब अमृतचंद्र मुनिराज, साध्य अर साधक द्वार कहे है ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको ग्यारमो स्याद्वाद नयद्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको बारमो साध्य साधक द्वार प्रारंभ ॥१२॥

॥ अब साध्य अर साधिवे योग्य साधक पदका सिद्धांत कहे है ॥ दोहा ॥—

साध्य शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत । साधक अविरत आदि बुध, क्षीण मोह परयंत ॥१॥

अर्थ—केवलज्ञानीकूं अथवा सिद्धपरमेष्ठीकूं, साध्यपद कहिये । अर चौथे अविरत गुणस्थानसे बारवे क्षीणमोह गुणस्थान पर्यंत, नव गुणस्थानके धनी जे ज्ञानी हैं तिन सबकूं साधकपद कहिये ॥ १ ॥

॥ अब अविरतादिक साधकपदका सिद्धांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ सोरठा ॥—

जाको आधो अपूरव अनिवृत्ति करणको, भयो लाभ हुई गुरु वचनकी बोहनी ॥
जाको अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी ॥
सातों परकति क्षपि किंवा उमशमी जाके, जगि उर मांहि समकित कला सोहनी ॥
सोई मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शकति गुण स्थानक आरोहनी ॥२॥

सो०—जाके मुक्ति समीप, भई भवस्थिति घट गई । ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुक्ता वचन ॥३॥

अर्थ—जिस जीवकूं अधो करण अपूर्व करण अर अनिवृत्ति करणका लाभ भया है अर सत्यगुरूका उपदेश मिला है । ताते जिसकूं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अर लोभ, तथा अनादि मिथ्यात्व मोहनी, मिश्रमोहनी, सम्यक् प्रकृति मोहनी, इन सात प्रकृतीका क्षय अथवा उपशम होके, हृदयमें शोभनीक सम्यक्तकी कला जागी है । सोई सम्यक्तीजीव मोक्ष मार्गको साधनारो साधक कहावे है, तिसके अंतर अर बाह्य सर्व अंगमें गुणस्थान चढनेकी शक्ति प्राप्त होय है ॥ २ ॥

जिसके भव भ्रमणकी स्थिति घट गई ताते मुक्ति समीप भई है। तिस जीवके मनरूप सीपमें सुगुरूके वचनरूप मेघके जलसे अमोलीक मोती होय है भावार्थ—तिसही जीवकूं गुरूके वचन रुचे है ॥ ३ ॥

॥ अव सद्गुरूकूं मेघकी उपमा देके प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

ज्यों वर्षे वर्षा समें, मेघ अखंडित धार। त्यों सद्गुरु वाणी खिरे, जगत जीव हितकर ॥४॥

अर्थ—जैसे वर्षाऋतुमें मेघ अखंडित धारा वर्षे है । तैसे सद्गुरु होय ते जगतके जीवकूं हित कारक अमृत वाणीका उपदेश करे है ॥ ४ ॥

॥ अव सद्गुरु आक्षेपिणी धर्म कथाका उपदेश करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

चेतनजी तुम जागि विलोकहुं, लागि रहे कहां मायाके तांई ॥
आये कहीसों कही तुम जाहुंगे, माया रहेगि जहाके तहांई ॥
माया तुमारी न जाति न पाति न, वंशकि वेलि न अंशकि झांई ॥
दासि किये विन लातनि मारत, ऐसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ ५ ॥

अर्थ—अहो चेतनजी ? तुम मोहनिद्रा छांडि जाग्रत होके अपना स्वरूप देखो, मायारूप संपदाके पीछे क्यों लगे हो । तुम कहांसे आये हो अर कहां जानेवाले हो ये कुछ विचार करो, इह संपदा जहांकी तहांही रहेगी । इह तुमारे जातीवंशकी अर संवंधी नही है, तथा इसिमें तुमारा अंशहूं नही है । दासी किये (ज्ञान संपादन कीये) विना तिसकूं लात मारते (त्याग करते) हो, सो हे महंत ऐसी अनीति न कीजिये भावार्थ—ज्ञान संपादन करके फेर संपदादिका त्याग करना ॥ ५ ॥

माया छाया एक हैं, घटे बढे छिन मांहि, इनके संगति जे लगे, तिन्हे कहुं सुख नांहि ॥ ६ ॥

अर्थ—माया (लक्ष्मी) अर छाया एक सरखी है, क्षणमें घटे है अर क्षणमें बढे है। जो इनके संगतीकूं लगे है तिनकूं कहांभी सुख नहि ॥ ६ ॥

॥ अव स्त्री पुत्रादिकका अर आत्माका संवध नही सो दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥ सोरठा ॥—

लोकनिसों कछु नांतो न तेरो न, तोसों कछु इह लोकको नांतो ॥
ये तो रहे रमि स्वारथके रस, तूं परमारथके रस मांतो ॥
ये तनसों तनमै तनसे जड, चेतन तूं तनसों निति हांतो ॥
होहु सुखी अपनो बल फेरिके, तोरिके राग विरोधको तांतो ॥ ७ ॥
जे दुर्बुद्धी जीव, ते उत्तंग पदवी चहे। जे सम रसी सदीव, तिनकों कछु न चाहिये ॥ ८ ॥

अर्थ—हे चेतन ? स्त्री पुत्रादिकूं तूं अपना जाने है सो इनसे तेरा कछु नाता नही अर इनकाहूं तेरेसे कछु नाता नही। ये अपने स्वार्थके कारण तेरेसाथ रमि रहे है अर तूं परमार्थ (आत्महित)-कूं छोडि बैठा है। ये तेरे शरीरपर मोहित है पण शरीर जड है अर तूं चेतन है सो तूं शरीरते सदा भिन्न है। ताते राग द्वेष अर मोहका संबंध तोडिके अपने आत्मानुभवकूं प्रगट करि सुखी होहुं ॥७॥ जिस जीवकी राग द्वेष अर मोहसे दुर्बुद्धी हुई है ते इंद्रादिक संसार संपदाकी उंच पदवी चहे है। अर जिन्होने राग द्वेषादिककूं छोडिके आत्मानुभव कीया है ते समरसी जीव कदापीहूं संसारसंबंधी उंच पदकी कछु इच्छाही नहि करे है ॥ ८ ॥

॥ अव सुखका ठिकाणा एक समरस भाव है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

हांसीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता ॥

शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता ॥
रोग वसे भोगमें संयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरव वसे सेवा मांहि दीनता ॥
और जग रीत जेति गर्भित असता तेति, साताकी सहेलि है अकेलि उदासीनता ॥ ९ ॥

अर्थ—हे चेतन ? हांसीमें सुख मानोहो पण इसमें विषादका भय वसे है अर विद्यामें सुख मानोहो पण इसमें विवादका भय वसे है, देहमें सुख मानोहो पण इसमें मरणका भय वसे है अर बडाई पणामें सुख मानोहो पण इसमें हीनताका भय वसे है। शरीर शुची करनेमें सुख मानोहो पण इसमें ग्लानिका भय वसे है अर प्राप्तिमें सुख मानोहो पण इसमें हानीका भय वसे है, जयमें सुख मानोहो पण इसमें हारीका भय वसे है अर यौवनपणामें सुख मानोहो पण यामें वृद्धपणाका भय वसे है। भोगमें सुख मानोहो पण इसमें रोगका भय वसे है अर इष्टके संयोगमें सुख मानेहो पण इसमें वियोगका भय वसे है, गुणमें सुख मानोहो पण यामें गर्वका भय वसे है अर सेवामें सुख मानोहो पण इसमें दीनताका भय वसे है। और जगतमें जितने कार्य सुखके दीसे है तिन सबके गर्भित दुखहूं भरा है, ताते सुखका ठिकाणा एक उदासीनता (समरस भाव) ही है ॥ ९ ॥ दोहा ॥—

जो उत्तंग चढि फिर पतन, नहि उत्तंग वह कूप। जो सुख अंतर भय वसे, सो सुख है दुखरूप ॥१०॥
जो विलसे सुख संपदा, गये तहां दुख होय। जो धरती वहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥ ११ ॥
शब्दमांहि सुद्गुरु कहे, प्रगटरूप निजधर्म। सुनत विचक्षण श्रद्दहे, मूढ न जाने मर्म ॥ १२ ॥

अर्थ—जो उंच स्थान चढि फिर पडना होयतो, ते उंच स्थान नही, कूप समान नीच है। तैसे जिस सुखके गर्भित भय वसे है, ते सुख नही, दुखही है ॥ १० ॥ कुटुंबादिक संपदा कोईकाल पण

विनसे है अर तिसका नाश होते दुःख होय । जैसे बहु तृणवाली धर्त्ती होय सोही अग्निसे जली जाय पण विना तृणकी धरती कोई रीतीसे जले नही ॥ ११ ॥ सद्गुरु है सो उपदेशमें प्रत्यक्ष आत्मानुभवका स्वरूप कहे है । तिसकूं सुनिके बुद्धिमान है सो धारण करे है अर मूढ है सो उपदेशके मर्मकूं जानेही नाहि ॥ १२ ॥

॥ अव गुरूका उपदेश कोईकूं रुचे अर कोईकूं न रुचे तिसका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको ॥
दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिकको पूछे पंथ पुरको ॥
सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको ॥
एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥१३॥

अर्थ—जैसे कोई नगरके निवासी दोय मनुष्य रातकूं आपने नगरके पास आय मार्ग भूले, तिसमें एक मनुष्य सुबुद्धीका था अर एक मनुष्य कुबुद्धीका था । ऐसे दोनूं मनुष्य नगरके समीप कुवटमें परे अर कोई पथीककूं नगरका मार्ग पूछने लगे । सो पथिक कहे तुमारो नगर यह समीप पासही है, ऐसे नगरका मार्ग समझायके दिखावे । तब तिस मार्गकूं सुष्ट पहिचाने पण दुष्ट नाहि माने है, तैसे गुरूका उपदेशहूं श्रोतेका जैसे हृदय होयगा तैसे तो प्रमाण करेगा ॥ १३ ॥

जैसे काहू जंगलमें पावसकि समें पाइ, अपने सुभाय महा मेघ वरखत है ॥
आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर क्षार, तैसा रस वाढे जहां जैसा दरखत है ॥
तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको वखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है ॥

वोही धूनि सूनि कोउ गहे कोउ रहे सोइ, काहूकों विषाद होइ कोउ हरखत है ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसे कोई बनमें वर्षा समय पायके, अपने स्वभावतेही महा मेघकी वर्षा होय है। पण तिस बनमें आमली बबूल निंब मिरच मधुर अर क्षार जहां जैसा जैसा वृक्ष वा स्थान है, तहां तैसा तैसा रस वर्षावके संयोगते बढे है। तैसे ज्ञानवंत मनुष्य आत्महितका धर्मोपदेश करे है तब, यह मेरा श्रोता है अर यह मेरा श्रोता नही ऐसा राग अर द्वेष नही धरे है परंतु कोई श्रोता उपदेश सुनि परमार्थकूं ग्रहण करे है अर कोई श्रोता निद्रा लेय रहे है, कोई मिथ्यात्वी श्रोता द्वेष करे है अर कोई सम्यक्ती श्रोता हर्षायमान होय है ॥ १४ ॥

गुरु उपदेश कहां करे, दुराराध्य संसार। वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ १५ ॥

अर्थ—गुरूका उपदेश क्या करेगा ? दुराराध्य संसारी जीवकूं आत्माका हित समझना कठीण है। इस संसारमें सदाकाल पांच प्रकारके जीव रहे है तिन्हके नाम कहे हैं ॥ १५ ॥

डुंघां प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूंचक शुद्ध। ऊंघा दुर्बुद्धी विकल, घूंगा घोर अबुद्ध ॥ १६ ॥

अर्थ—डूंघा जीव प्रभु है, चुंघा जीव चतुर है, सूंघा जीव शुद्ध रुचिवंत है, ऊंघा जीव दुर्बुद्धी है, अर घूंघा जीव घोर अज्ञानी है, ॥ १६ ॥

॥ अब डूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ १ ॥ दोहा ॥—

जाके परम दशा विषे, कर्म कलंक न होय। डूंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोय ॥१७॥

अर्थ—जिसके आत्मामें कर्म कलंक नही अर जिसके अगम्य अगाध पद (मोक्ष स्थान) है। तिस मोक्षवासी सिद्ध जीवकूं डूंघा जीव कह्या है सो वचन अगोचर है ॥ १७ ॥

॥ अव चूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ २ ॥ दोहा ॥—

जो उदास व्है जगतसों, गहे परम रस प्रेम। सो चूंघा गुरूके वचन, चूंघे बालक जेम॥१८॥

अर्थ—जो जीव जगतसे उदास होयके आत्मानुभवका प्रेम रस ग्रहण करे है। अर जो गुरूके वचन बालक समान चूखे है सो चूंघा जीव है ॥ १८ ॥

॥ अव सूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ३ ॥ दोहा ॥—

जो सुवचन रुचिसों सुने, हिये दुष्टता नांहि। परमारथ समुझे नही, सो सूंघा जगमांहि ॥१९॥

अर्थ—जिसके हृदयमें दुष्टता नही अर जो शास्त्र उपदेश रुचिसे सुने है। पण परमार्थ (आत्मतत्त्व) समझे नही सो सूंघा जीव है ॥ १९ ॥

॥ अव ऊंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ४ ॥ दोहा ॥—

जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट। सो विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥ २० ॥

अर्थ—जिसको शास्त्रका उपदेश रुचे नही अर कुकथा प्रिय लगे है। ऐसा ऊंघा जीव है सो विषयाभिलाषी द्वेषी क्रोधी अर पापकर्मी है ॥ २० ॥

॥ अव घूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ५ ॥ दोहा ॥—

जाके वचन श्रवण नही, नहि मन सुरति विराम। जडतासो जडवत भयो, घूंघा ताको नाम ॥२१॥

अर्थ—जिसकूं वचन नाहि ते एक इंद्रिय स्थावर जीव है अर जिसकूं श्रवण नही ते दोय इंद्रिय, तीन इंद्रिय, अर चार इंद्रिय जीव है तथा जिसकूं मनकी स्मृति नही ते असंज्ञी पंचेंद्री जीव है। अर जे विरति नही, अज्ञानरूप जडतासे जडवत भये है तिसका नाम घूंघा जीव है ॥ २१ ॥

॥ अव पांचों जीवका वर्णन कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ । सूंघा ऊंधा मूरख दोऊ ॥
घूंघा घोर विकल संसारी । चूंघा जीव मोक्ष अधिकारी ॥ २२ ॥

चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नाश । लहे पोष संतोषसों, वरनों लक्षण तास ॥ २३ ॥

अर्थ—डूंघा जीवकूं सब कोई सिद्ध कहे है, सूंघा अर ऊंघा ये दोऊ प्रकारके जीव अज्ञानी है । घूंघा जीव विकल घोर संसारी है, अर चूंघा जीव मोक्षका अधिकारी है ॥ २२ ॥ चूंघा जीव मोक्षका साधक है, सो दोष अर दुःखकूं नाश करे है । तथा संतोषसे सुखकी पुष्टता लहे है ॥ २३ ॥

अव चूंघा जीव मोक्षका साधक है तिसका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग । ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग॥२४॥

अर्थ—दया, मंद कषाय, धर्मानुराग, इंद्रिय दमन, देव गुरु अर शास्त्रकी श्रद्धा, तथा वैराग्य । इत्यादि लक्षण जिसके हृदयमें है अर सप्त व्यसनका त्याग करे है सो मोक्षका साधक है ॥ २४ ॥

॥ अव सप्त व्यसनके नाम कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

जूवा अमिष मदिरा दारी । आखेटक चोरी परनारी ॥
येई सप्त व्यसन दुखदाई । दुरित मूल दुर्गतिके भाई ॥ २५ ॥

दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुख धाम । भावित अंतर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥२६॥

अर्थ—जूवा, मांस भक्षण, मदिरा पान, वेश्या संग, शिकार, चोरी, परस्त्रीसंग, ये सात व्यसन है। ते महादुख देनेवाले है, पापका मूल अर दुर्गतीका भाई है ॥ २५ ॥ ऐसे सप्त व्यसन देहसे प्रत्यक्ष

करना सो द्रव्य व्यसन है ते दुराचरणका घर है। अर मनमें मोह परिणामका वृथा चिंतवन करते रहना सो भाव व्यसन है॥ २६ ॥

॥ अब सात भाव व्यसनके स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्युत कर्म, देहकी मगन ताई यहै मांस भखिवो ॥
मोहकी गहलसों अजान यहै सुरा पान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो ॥
निर्दय व्हे प्राण घात करवो यहै सिकार, पर नारी संग पर बुद्धिको परखिवो ॥
प्यारसों पराई सोंज गहीवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो ॥२७॥

अर्थ—अशुभ कर्मके उदयकूं हारि अर शुभ कर्मके उदयकूं जीत मानना सो भाव द्युत कर्म है, देह ऊपर मग्न रहना सो भाव मांस भक्षण है। मोहसे मूर्छित होके स्व तथा परका अजाणपणा सो भाव मदिरा प्राशन है, कुबुद्धीका विचार करना सो भाव वेश्यासंग है। निर्दय परिणाम राखना सो भाव सिकार है, देहमें आत्मपणाकी बुद्धी माननी सो भाव परस्त्री संग है। धन संपदादिकमें प्रीति रखके अति मिलनेकी इच्छा करना सो भाव चोरी है, ऐसे भाव सात व्यसन है सो छोडनेसे ब्रह्म (आत्मा) का स्वरूप देख्याजाय है ॥ २७ ॥

॥ अब मोक्षके साधकका पुरुपार्थ कहे है ॥ दोहा ॥—

व्यसन भाव जामें नही; पौरुष अगम अपार। किये प्रगट घट सिंधुमें, चौदह रत्न उदार ॥२८॥

अर्थ—जिसके चित्तमें सातों भाव व्यसन नही अर अगम्य अपार पुरुषार्थ [अनुभव] करे है। सो मोक्षका साधक अपने चित्तरूप समुद्र मथन करिके चौदह अमोल्य भाव रत्न प्रगट करे है ॥२८॥

॥ अब चौदा भाव रत्नका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

लछमी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मणि, वैराग्य कलप वृक्ष शंख सु वचन है ॥
ऐरावति उद्यम प्रतीति रंभा उदै विष; कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥
ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य, शुद्ध भाव चंद्रमा तुरंगरूप मन है ॥
चौदह रतन ये प्रगट होय जहां तहां, ज्ञानके उद्योत घट सिंधुको मथन है ॥ २९॥

अर्थ—सुबुद्धि है ते लक्ष्मी रत्न है, आत्मानुभव है ते कौस्तुभ मणि रत्न है, वैराग्य है ते कल्प-वृक्ष रत्न है, सत्य वचन है ते शंख रत्न है, उद्यम है ते ऐरावती रत्न है, श्रद्धा है ते रंभा रत्न है, कर्मो-दय है ते विष रत्न है, निर्जरा है ते कामधेनु रत्न है, आनन्द है ते अमृत रत्न है, ध्यान है ते चाप रत्न है, प्रेम है ते मद्य रत्न है, विवेक है ते वैद्य रत्न है, शुद्धभाव है ते चंद्र रत्न है, मन है ते तुरंग रत्न है, ऐसे चौदह भाव रत्न जहां ज्ञानके उद्योतते चित्तरूप समुद्रको मथन है तहां प्रगट होय है ॥ २९ ॥

॥ अब चौदा भाव रत्नका हेय अर उपादेय स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

किये अवस्थामें प्रगट, चौदह रत्न रसाल । कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल॥३०॥
रमा शंक विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय । मणि शंक गज कलप तरु, सुधा सोम आदेय ॥३१॥
इह विधि जो परभाव विष, वमे रमे निजरूप । सो साधक शिव पंथको, चिद्विवेक चिद्रूप॥३२॥

अर्थ—ऐसे साधक अवस्थामें ये चौदह भाव रत्न रसाल उपजे है ते प्रगट कहे । अब तिसमें कछु त्याज्य है अर कछु ग्राह्य है सो विधि निषेधकी रीत कहे है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी, शंख, विष, धनुष्य, मदिरा, वैद्य, धेनु, अर घोडा, ये आठ रत्न अस्थिर है ताते त्यागने योग्य है । अर मणि, रंभा, हत्ती;

कल्पवृक्ष, अमृत, चंद्र, ये छह रत्न स्थिर है ताते ग्रहण करने योग्य है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कर्मादिकके जे भाव है ते विष है तिस भावकूं जो वमन करे है अर आत्म स्वरूपके जे चिद्विवेक-चिद्रूप (ज्ञान अर ज्ञायक) भाव है तिसमें जो रमे है । सोही मोक्ष मार्गका साधक है ॥ ३२ ॥

टीपः—सात भाव व्यसन अर चौदा भाव रत्न कहे सो विचार पं० बनारसीदासकृत है.

॥ अब मोक्षपदका साधक जो ज्ञानदृष्टी है तिनकी व्यवस्था कहे है ॥ कवित्त ॥—

ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ॥
जिन्हके सहज रूप दिनदिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥
जे केवली प्रणित मारग मुख, चित्त चरण राखे ठहराय ॥
ते प्रवीण करि क्षीण मोह मल, अविचल होहि परम पद पाय ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो ज्ञान दृष्टीते अपने चित्तमें द्रव्यके गुणकूं अर पर्यायकूं अवलोकन करे है। अर स्वमेव दिनदिन प्रति स्याद्वादके साधनते द्रव्यका स्वरूप अधिक अधिक जाने है। अर जो केवली प्रणित (उपदेश्या धर्म) मार्ग है तिसकी श्रद्धा करके तिस मुजब आचरण करे है। सो प्रवीण मनुष्य मोह कर्मरूप मलका नाश करि मोक्षपद पाय अविचल होय है ॥ ३३ ॥

॥ अब मोक्षपदका क्रम अर मिथ्यात्वीकी व्यवस्था कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन्हे सम्यक्त मिथ्यात्व नाश करिके ॥
निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनि जिन्हे, कीनि मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिके ॥
सोहि शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनासी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके ॥

मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनंत काल भरिके ॥ ३४ ॥

अर्थ—संसारमें चाक समान फिरता फिरता जिसके संसारका अंत निकट आया है, अर मिथ्यात्वकूं नाश करिके जिसने सम्यक्त पाया है। अर जिसने राग द्वेष छोडिके मन रूप सुभूमि साध लीनी है, तथा विचार करिके अपने आत्मस्वरूपकूं पछानि मोक्ष पदके कारणरूप कीनी है। सोही सम्यक्ती शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है ताते तिसका कर्मरूप भ्रम रोग गलि जाय है, अर अविनाशी मोक्षपद प्राप्त होय है। अर मिथ्यात्वी है सो आत्म स्वरूप पिछयाने नाहि है, ताते अनंतकाल पर्यंत जगत जालमें डोले (जन्म मरण करते) फिरे है ॥ ३४ ॥

॥ अब जिसने आत्म स्वरूपका अनुभव पाया है तिसका विलास कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे जीव दरवरूप तथा परयायरूप, दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है ॥
जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा, विषैसों विमुख व्है विरागता वहत है ॥
जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भाव दोउ भावनिकों, अनुभौ अभ्यास विषें एकता करत है ॥
तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोक्ष, मारगके साधक अबाधक महत है ॥ ३५ ॥

अर्थ—जे जीव–द्रव्यार्थिक नयते अर पर्यायार्थिक नयते वस्तु (आत्मा) का शुद्ध स्वरूप जाणे है। अर जे अशुद्ध भाव (राग अर द्वेष) कूं सर्वस्वी त्यागे है, अर जे पंचेंद्रीयके विषयसे परान्मुख होय वैराग्यतारूप प्रवर्ते है। अर ग्रहण करवे योग्य तथा त्यागवे योग्य इन दोनूं भावनिकूं अनुभवके अभ्यासमें पररूप जानि आत्मानुभवकी एकता करे है। तेही ज्ञानक्रिया (शुद्ध आत्मानुभव)के आराधक है, ताते स्वभावतेही मोक्षमार्गके साधक है तिनकूं फेरि कर्मबाधा नाहि होय ऐसे महिमावंत है ॥ ३५ ॥

॥ अब ज्ञानके क्रियाका स्वरूप कहे है दोहा ॥—

विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख। ता परणतिकों बुध कहे, ज्ञानक्रियासों मोख ॥३६॥

अर्थ—आत्मामें अनादिकालसे अज्ञानकी अशुद्धता है तिसका जहां नाश होय तहां ज्ञानकी शुद्धता पुष्ट होय। ऐसी आत्माकी शुद्ध परणती होय सो ज्ञानकी क्रिया है। तिस परणतीकूं बुधजन कहे है की इस ज्ञानक्रियासे मोक्ष होय ॥ ३६ ॥

॥ अब सम्यक्तसे क्रमक्रमे ज्ञानकी पूर्णता होय सो कहे है ॥ दोहा ॥—

जगी शुद्ध सम्यक् कला, बगी मोक्ष मग जोय। वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥३७॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम। जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारो धाम ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिसकूं शुद्ध सम्यक्तकी कला जगी है सो मोक्षमार्गकूं चले है। अर सोही क्रमे क्रमे कर्मका चूर्ण करिके पूर्ण परमात्मा होय है ॥ ३७ ॥ जैसे घरमें जो दीपक धरे तो उजियाला होयही हैं। जिसके हृदयमें ऐसी सम्यक्तदशा भई तिसका नाम साधक है ॥ ३८ ॥

॥ अब सम्यक्तकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको ॥
जाकि मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जाणे निज मरम अवाची भगवानको ॥
जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको ॥
ताहि सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥३९॥

अर्थ—जिसके हृदयमें अनादि कालका मिथ्यात्व अंधकार हुता सो गया है, अर शुद्ध सम्यक्तरूप

सूर्यका प्रकाश भया है। जिसकी मोह निद्रा घट गई है अर ममताकी पलक लगीथी सो खुल गई है, ताते अपने अवाची भगवान (आत्मा) का मर्म जान्या है। अर जिसकूं ज्ञानका प्रकाश हुवा है तिसते श्रेष्ठ उद्यम जाग्रत भया है, अर साम्यभावरसरूप अमृत पानका सुख पुष्ट भया है। तिस सम्यक्ती विचक्षणके संसारका अंत निकट आया है, तथा तिसनेही मोक्षका सुगम मार्ग पाया है॥ ३९ ॥

॥ अब ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमको अनुभौ प्रगट भयो है ॥
जाके संकलप विकलपके विकार मीटि, सदाकाल एक भाव रस परिणयो है ॥
जाते बंध विधि परिहार मोक्ष अंगिकार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दियो है॥
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति, सोहि भवसागर उलंघि पार गयो है ॥४०॥

अर्थ—जिसके हृदयमें स्याद्वाद स्वरूपके अभ्यासते, शुद्ध आत्माका अनुभव प्रगट हुवा है। अर जिसके संकल्प विकल्पके विकार मिटिके, सदाकाल एक ज्ञानभावका रस परिणम्या है। ताते कर्मबंध विधिका परिहार जो संवर तिस संवरकूं धर्‍या है, अर निस्पृह दशाते मोक्षके सुविचारका पक्ष अंगिकार कीया है फेर तिस पक्षकूंही छोडि दीया है। ऐसे जाके ज्ञानकी महिमा दिन दिन प्रती उद्योत हुई है, सोहि भव सागर उलंघी पार पोहोंचो ऐसे जानना ॥ ४० ॥

॥ अब अनुभवमें नयका पक्ष नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये ॥
दीसे एक नयकी प्रति पक्षी अपर दूजी, नैको न दीखाय वाद विवादमें रहिये ॥

थिरता न होय विकलपकी तरंगनीमें, चंचलता बढे अनुभौ दशा न लहिये ॥
ताते जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥४१॥

अर्थ—जीव है सो एक नयसे आस्तिरूप है, एक नयसे नास्तिरूप है, एक नयसे अनेक रूप है, एक नयसे एकरूप है, एक नयसे स्थिररूप है अर एक नयसे अस्थिररूप है, इत्यादि जीवका नाना-प्रकारका स्वरूप कहे है। एक नयकूं दुसरा नय प्रतिपक्षी (उलटा) दीसे है, तिस ऊपर दूजा नय नही दिखायेतो वादविवाद होजाय। ताते नय भेदते विकल्पके तरंग उठे अर विकल्पमें चेतन (जीव) की स्थीरता न होय, तथा चंचलता बढे है तब अनुभवदशा ग्रहि न जाय । ताते अनुभवमें नयका पक्ष छोडिके, जीवद्रव्य अचल है अबाधित है अखंड है अर एक है, ऐसे स्वरूपकूं साधिके समाधि (अनुभव) सुख ग्रहण करिये ॥ ४१ ॥

॥ अब द्रव्य क्षेत्र काल-अर भावते आत्माका अखंडितपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे एक पाको अम्र फल ताके चार अंश, रस जाली गुटलि छीलक जब मानिये ॥
येतो न बने पैं ऐसे बने जैसे वह फल, रूप रस गंध फास अखंड प्रमानिये ॥
तैसे एक जीवको दरव क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये ॥
द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप, चारो रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ४२ ॥

अर्थ—शिष्य कहे—जैसे एक पाके अंबके रस, जाली, गुटली, अर छाल, ये चार अंश है। तैसे जीवके द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ये चार अंश होयगे ? तिसकूं गुरू कहे हे शिष्य तूं अंशकूं खंड समझा सो द्रव्यमें खंड होय नही ताते तेरा दृष्टांततो न बना, पण जैसे एक आंब फलमें रूप रस

गंध अर स्पर्श ये भिन्न भिन्न नही अखंड है। तैसे जीवद्रव्यका द्रव्य क्षेत्र काल अर भावके भेदते भिन्नपणा नही अखंड है। द्रव्यरूपते आत्मा अखंड है, आत्माकी असंख्यात प्रदेश अवगाहना है ताते क्षेत्ररूपते आत्मा अखंड है, आत्मा कालरूपते पण त्रिकालवर्त्ती अखंड है, अर ज्ञायक भावरूपतेहूं आत्मा अखंड है, द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ऐसे चारी रूपसे आत्मा अखंड सत्तायुक्त है ॥४२॥

॥ अब ज्ञानका अर ज्ञेयका व्यवहारसे अर निश्चैसे स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञानतो हमारो रूप, ज्ञेय षट् द्रव्य सो हमारो रूप नांही है ॥
एक नै प्रमाण ऐसे दूजी अब कहूं जैंसे, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥
तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप शकति अनंत मुझ मांही है ॥
ता कारण वचनके भेद भेद कहे कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही है ॥४३॥

अर्थ—कोई ज्ञानवान कहे ज्ञान है सो आत्माका स्वरूप है, अर ज्ञेय (षट् द्रव्य) है सो आत्माका स्वरूप नही। ऐसे एक व्यवहारनयका प्रमाण कह्या अब दूजे निश्चयनयका प्रमाण कहूंहूं, जैसै वचन अक्षर अर अर्थ एक ठीकाणे है। तैसे ज्ञाता है सो आत्माका नाम है अर ज्ञान है सो चेतनाका प्रकार है, अर ते ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमे है सो शक्ती है ऐसे ज्ञेयरूप परिणमनेकी अनंतशक्ती आत्मामें है। ताते वचनके भेदते ज्ञानमें अर ज्ञेयमें भेद है ऐसा कोई भला कहो, परंतु निश्चयते ज्ञाताके ज्ञानका अर ज्ञेयका विलास एक आत्माके सत्तामेंही है ॥ ४३ ॥

चो०—स्वपर प्रकाशक शकति हमारी। ताते वचन भेद भ्रम भारी ॥
ज्ञेय दशा द्विविधा परकाशी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४४ ॥

निजरूप आतम शक्ति, पर रूप पर वस्त। जिन्ह लखिलीनो पेच यह,तिन्ह लखि लियो समस्त४५

अर्थ—आत्माकी ज्ञानशक्ती ऐसी है की सो आपनेकोहूं जाने अर पर देहादिककोंहूं जाने है, ताते ज्ञान अर ज्ञेय ये वचन भेद है ते भारी भ्रम उपजावे है पण वस्तु एक है। ज्ञेयकी दशा दो प्रकारकी कही, एक निज (आत्म) रूप अर एक पररूप ॥ ४४ ॥ निजरूप आत्मशक्ती है और सब पर वस्तु है। जिसने यह पेच जानलीया तिसने समस्त तत्त्व जान लीया ॥ ४५ ॥

॥ अब स्याद्वादते जीवका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करम अवस्थामें अशुद्ध सों विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है ॥
उभै नै प्रमाण समकाल शुद्धा शुद्धरूप, ऐसो परयाय धारी जीव नाना रंग है ॥
एकही समैमें त्रिधा रूप पैं तथापि याकि, अखंडित चेतना शकति सरवंग है ॥
यहै स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने, मूरख न माने जाको हियो दृग भंग है ॥ ४६॥

अर्थ—यह जीवकूं कार्माण देह अवस्थासे देखियेतो अशुद्ध दीखे है, अर कार्माण देहकूं छोडि केवल जीवकूं देखियेतो शुद्ध अंग दीखे है। अर येक कालमें इन दोनूं अवस्थासे देखियेतो शुद्ध तथा अशुद्धरूप दीखे है, ऐसे देहधारी जीवकी नाना प्रकार अवस्था है। एकही समयमें जीव त्रिधा रूप (अशुद्धरूप, शुद्धरूप, शुद्ध अशुद्धरूप,) दीखे है, पण तीनौ अवस्थामें जीवकी चेतनाशक्ति अखंडित सर्व अंगमें भरी रही है। यही स्याद्वाद है इसका स्वरूप जे स्याद्वादी ज्ञाता होय तेही जाणे है, अर जिसका हृदय सम्यग्दर्शन रहित है सो अज्ञानी स्याद्वादके स्वरूपकूं नाहि जाणे है ॥ ४६ ॥

निहचे दरव दृष्टि दीजे तव एक रूप, गुण परयाय भेद भावसों वहुत है ॥

असंख्य प्रदेश संयुगत सत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभासों लोकाऽलोकमान जुत है ॥
परजे तरंगनीके अंग छिन भंगुर है, चेतना शकति सों अखंडीत अचुत है ॥
सो है जीव जगत विनायक जगत सार, जाकि मौज महिमा अपार अदभुत है॥४७॥

अर्थ—निश्चय द्रव्यदृष्टीसे देखिये तो जीव एकरूप है, अर गुण परणतीके भेदभावसे देखियेतो जीव अनेक रूप है, प्रदेश प्रमाणसे देखियेतो जीवकी असंख्मात प्रदेश सत्ता है, अर ज्ञानके सत्तासे देखियेतो जीव लोकाऽलोक प्रमाण जाने है । पर्यायके विकल्पसे देखियेतो जीव क्षणक्षणमें पलटे है ताते क्षणभंगुर है, अर चेतनाके शक्तीसे देखियेतो जीव अखंडित अविनाशी है। ऐसा जीव है सो जगतमें मुख्य सार वस्तु है, जिसकी मोज अर महिमा अद्भुत है अर अपार है ॥ ४७ ॥

विभाव शकति परणतिसों विकल दीसे, शुद्ध चेतना विचारते सहज संत है ॥
करम संयोगसों कहावे गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा मुकत महंत है ॥
ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक परकासि, सत्ता परमाण सत्ता परकाशवंत है ॥
सो है जीव जानत जहांन कौतुक महान, जाकि कीरति कहान अनादि अनंत है॥४८॥

अर्थ—राग द्वेषादिक विभाव शक्तीके परणतीसों देखियेतो जीव विकल दीसे है, अर केवल चेतना शक्तीसे विचार करियेतो जीव स्वाभाविकही शांत दीसे है। कर्मके संयोगसे देखियेतो जीव चार गतिका अर चौऱ्यासी लक्ष योनिका निवासी कहावे है, अर निश्चय स्वरूपसे विचार करियेतो जीव सदा कर्मसे रहित मुक्तरूप महंत है। ज्ञायक स्वभावते विचार करियेतो यह जीव लोक अर अलोककूं देखन हारा है, अर सत्ताको विचार करियेतो जीवकी सत्ता प्रकाशवंत है। ऐसा जीव है सो जगतकूं

जाणे है सो महान महिमावंत है, तिसके पुरुषार्थकी कीर्ति अर कथा अनादिकालसे चालती आवे है अर ऐसेही अनंत काल पर्यंत रहेगी ॥ ४८ ॥ इति साधक स्वरूप ॥

॥ अव साध्यका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंच परकार ज्ञानावरणको नाश करि, प्रगटि प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है ॥
ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पैं एकताके रस पगी है ॥
याहि भांति रहेगी अनादिकाल परयंत, अनंत शकति फेरि अनंतसो लगी है ॥
नर देह देवलमें केवल स्वरूप शुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥४९॥

अर्थ—मोक्षका साधक है सो जब पंच प्रकार ज्ञानावरणी कर्मका नाश करें है, तब तिसकूं प्रसिद्ध केवलज्ञान [साध्य अवस्था] प्राप्त होयके तिसके प्रकाशमें जगत झगमगे है। सो ज्ञायक प्रकाश जगतके नाना प्रकार ज्ञेयकी अवस्था धरि अनेक रूप होय है, तथापि जाननेका स्वभाव नहि छोडे है। ऐसेही अनंतकाल पर्यंत रहें है, अर अनंत शक्ति धारण करि अनंत अवस्था पर्यंत रहसे। ऐसे मनुष्यके देहरूप देवलमें शुद्ध केवलज्ञानरूप ज्योतीकी शिखासमाधि प्राप्त होय है ॥४९॥ इति साध्य स्वरूप ॥

॥ अव अमृतचंद्र कलाके तीन अर्थ कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी ॥
अमल अबाधित अलख गुण गावना है, पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥
मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा, जैसे उभै जामलों किरण दीपे रविकी ॥
ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरे। अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ५० ॥

अर्थ—आत्माके अनुभवकी कला, टीकाकी कला, अर कविताकी कला, ये तीनूं कला सदाकाल अक्षर अर अर्थ (मोक्ष पदार्थ) से भरी है, अर काम धेनूके सेवा समान महा सुखदायक है। इसिमें निर्बाध शुद्ध परमात्माके गुणका वर्णन कह्या है, ताते परम पावन है सो भव्य जीवकूं इसिकी स्वाध्याय करना योग्य है। ये तीनूं कला मिथ्यात्वरूप अंधकारका नाश अर सम्यक्तकी वृद्धी करनहारी है, जैसे दोय प्रहर पर्यंत सूर्यका किरण चढता चढता बढे है। ऐसे अमृतचंद्र आचार्यकी कला त्रिधारूप (आत्माका अनुभव, ग्रंथकी टीका, अर काव्य कविता संबंधी वुद्धी,) धरे है ॥ ५० ॥

नाम साध्य साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक । समयसार नाटक सकल पूरण भयो सटीक ॥५१॥

अर्थ—ऐसे साधक अवस्था अर साध्य अवस्थाका बारमा अधिकार कह्या सो श्रीअमृतचंद्र आचार्यकृत समयसार नाटक ग्रंथकी संस्कृत कलशाबंध टीका है तिसके अनुसार भाषा अर वचनिका कही सो समस्त समाप्त भई ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको बारमा साध्य साधक द्वार बालबोध अर्थ सहित समाप्त भयो ॥ १२ ॥

॥ अब ग्रंथके अंतमें श्रीअमृतचंद्रआचार्य आलोचना करे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अब कवि पूरव दशा, कहे आपसों आप । सहज हर्ष मनमें धरे, करे न पश्चात्ताप ॥ १ ॥

अर्थ—अब अमृतचंद्र कवी है ते अपनी पूर्व स्थिति, आपसों आप कहे हें। अर आपना आत्म स्वरूप जाननेसे स्वाभाविक हर्ष मनमें धरे है, पण पश्चात्ताप करे नही ॥ १ ॥

जो मैं आपा छांडि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न वसेरो तहां जहां मेरा स्थल है ॥
भोगनिको भोगि व्हैं करमको करता भयो, हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥
ऐसे विपरीत चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरे क्रीयाकी ममता ताको फल है ॥
ज्ञानदृष्टि भासी भयो क्रीयासों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनकोसो छल है ॥ २ ॥

अर्थ—जो मैं आतीत कालमें आत्म स्वरूप नाहि जाना अर पर पुद्गलादिककूं अपना मानलिया, तथा आत्मा वसनेका जो अनुभव स्थान है तहां वास कीया नही। पंचेंद्रियोंके विषयोंका भोक्ता होयके कर्मका कर्त्ता भयो, अर हमारे हृदयमें राग द्वेष अर मोहमल सदा हुतो। ऐसे अतीत कालमें विपरीत कर्म कीये, तेतो मेरे कर्मके फल है। अब मेरेको ज्ञानदृष्टी प्रकाशी है ताते कर्मसे उदासी भयो है, अर पूर्व अवस्था ऐसी भासी मानूं वह मोहनिद्रामेंका स्वप्नकासा मिथ्या खेल हुवा ॥ २ ॥

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरण भयो गरंथ। समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ ॥३॥

अर्थ—अमृतचंद्र मुनीराजकृत, समयसार नाटक ग्रंथ परिपूर्ण हुवा। यह समयसार नाटक ग्रंथ है सो, पंचम गती (मोक्ष) का प्रसिद्ध मार्ग है ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीअमृतचंद्राचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

॥ अब पंडित बनारसीदासकृत प्रस्तावना ॥ चौपाई ॥—

जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे । सीस नमाइ बनारसि वंदे ॥
फिरि मन मांहि विचारी ऐसा । नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ १ ॥

॥ अथ चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥

इस अध्यायमें श्रावकके आचारकाभी वर्णन है.

परम तत्व परिचै इस मांही । गुण स्थानककी रचना नांही ॥
यामें गुण स्थानक रस आवे । तो गरंथ अति शोभा पावे ॥ २ ॥

॥ अथ श्रीबनारसीदासकृत चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥

॥ मंगला चरण ॥ जिनप्रतिमाजीको नमस्कार ॥ दोहा ॥—

जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमै बनारसि ताहि । जाके भक्ति प्रभावसो, कीनो ग्रंथ निवाहि ॥१॥

अर्थ—जिन प्रतिमा है सो जिनेश्वर समानहि निर्विकार मुद्रा है, तिस निर्विकार प्रतिमाकूं बनारसीदास नमस्कार करे है। जिनके भक्तिके प्रभावसे ग्रंथका गहनार्थहूं सुलभ हो गया है ॥ १ ॥

॥ अब जिनप्रतिमाके दर्शनका माहात्म्य कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके मुख दरससों भगतके नैन नीकों, थिरताकी बानी बढे चंचलता विनसी ॥
मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां, जाके आगे इंद्रकी विभूति दीसे तिनसी ॥
जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदेमें, सोइ शुद्ध मति होइ हुति जो मलिनसी ॥
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकि, सो है जिनकी छवि सु विद्यमान जिनसी ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीजिनप्रतिमाके मुखका दर्शन करनेसे, भक्तजनके नेत्रकी चंचलता मिटिके स्थिरता बानी बढे है। तथा पद्मासन दिगंबर मुद्राकूं देखते ही केवलीभगवानके स्वरूपकी याद आवे है, अर तिस निर्विकार दिगंबर स्वरूपके आगे इंद्रादिक देवताके शृंगार वैभवादिक शोभा तृणवत् दीसे है। केवली भगवानके गुणानुवाद (चौतीस अतीशय, आठ प्रातिहार्य, अर अनंत चतुष्टय) जपनेसे भक्तके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होय है, अर पूर्वे जो मलीन बुद्धी हुती सो शुद्ध होय है। बनारसीदास कहे है की जिनप्रतिमाकी ऐसी प्रत्यक्ष महिमा है, ताते जिनेंद्रकी प्रतिमा साक्षात जिनेश्वरके समान है ॥ २ ॥

॥ अब जिनप्रतिमाके भक्तका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहर लसि, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी ममारखी ॥
सैलि जिन शासनकी फैलि जाके घट भयो, गरवको त्यागि षट दरवको पारखी ॥
आगमके अक्षर परे है जाके श्रवणमें, हिरदे भंडारमें समानि वाणि आरखी ॥
कहत बनारसी अलप भव थीति जाकि, सोइ जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सम्यग्दर्शनकी लहेर लगी है, अर मिथ्यात्वमोहरूप निद्राकी मूर्छा विनाश हुई है। अर जिसके हृदयमें जिनशासनकी सैलि (सत्यार्थ देव, शास्त्र अर गुरूकी प्रतीति) फैली है, अर जो अष्ट गर्वको त्यागीके षट् द्रव्यका पारखी हुवा है । अर जिसके श्रवणमें सिद्धांत शास्त्रका उपदेश पडा है, ताते हृदयरूप भंडारमें ऋषेश्वरकी वाणी समाय रही है। अर तैसेही जिसकी भवस्थिति अल्प रही है, सोही निकट भव्यजीव जिन प्रतिमाकूं साक्षात जिनेश्वरके समान माने है ऐसे बनारसीदास कहे है ॥ ३ ॥

अब प्रस्तावनाके दोय चौपाईका अर्थ कहे है ॥—

अर्थ—जिनप्रतिमा है सो मनुष्यजनका मिथ्यात्व नाश करनेकूं कारण है, तिस जिनप्रतिमाकूं बनारसीदास मस्तक नमायके वंदना करे है, । अर फिर मनमें ऐसा विचार करे की, समयसार ग्रंथमें जैसे आत्मतत्व है तैसे कह्या है ॥ ४ ॥ अर इस ग्रंथमें आत्मतत्वका परिचै है, परंतु आत्माके गुण स्थानककी रचना नही है। ताते इसिमें गुण स्थानकका रस आवेतो, ग्रंथ अति शोभा पावेगा ॥ ५ ॥

॥ अब गुणस्थानका स्वरूप वर्णन करे है ॥ दोहा ॥—

यह विचारि संक्षेपसों, गुण स्थानक रस चोज । वर्णन करे बनारसी, कारण शिव पथ खोज ॥६॥

नियत एक व्यवहारसों, जीव चतुर्दश भेद । रंग योग बहु विधि भयो, ज्यों पट सहज सुपेद ॥ ७॥

अर्थ—ऐसे विचार करके, संक्षपते गुणस्थानके चीजकूं बनारसीदास वर्णन करे है। ते वर्णन मोक्ष मार्गका कारण अर मोक्ष मार्गकी खोज (पिछान) है ॥ ६ ॥ निश्चयते जीव एकरूप है, अर व्यवहारते जीव चौदा भेदरूप है। जैसे वस्त्र स्वाभाविक सुपेद है परंतु रंगके संयोगते वहुत प्रकारके होय है ॥ ७ ॥

॥ अव जीवके जे चतुर्दश गुणस्थान है तिनके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथ अव्रत पंचमो व्रत रंच है ॥
छट्ठो परमत्त सातमो अपरमत्त नाम, आठमो अपूरव करण सुख संच है ॥
नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सूक्षम लोभ, एकादशमो सु उपशांत मोह वंच है ॥
द्वादशमो क्षीण मोह तेरहो संयोगी जिन, चौदमो अयोगी जाकी थीति अंक पंच है॥८॥

अर्थ—प्रथम गुणस्थानका नाम मिथ्यात्व है ॥ १ ॥ दूजे गुणस्थानका नाम सासादन है ॥ २ ॥ तीजे गुणस्थानका नाम मिश्र है ॥ ३ ॥ चौथे गुणस्थानका नाम अविरत है ॥ ४ ॥ पांचवें गुणस्थानका नाम अणुव्रत है ॥ ५ ॥ छट्टे गुणस्थानका नाम प्रमत्त (महाव्रत) है ॥ ६ ॥ सातवे गुणस्थानका नाम अप्रमत है ॥ ७ ॥ आठवे गुणस्थानका नाम अपूर्व करण सुख संचय है ॥ ८ ॥ नववे गुणस्थानका नाम अनिवृत्ति करण भाव है ॥ ९ ॥ दशवे गुणस्थानका नाम सूक्ष्म लोभ है ॥१०॥ ग्यारवे गुणस्थानका नाम उपशांत मोह है ॥ ११ ॥ बारवे गुणस्थानका नाम क्षीण मोह है ॥ १२॥ तेरवे गुणस्थानका नाम सयोगी जिन है ॥ १३ ॥ चौदवे गुणस्थानका नाम अयोगी जिन है ॥१४॥ इस चौदवे गुणस्थानकी स्थिति पंच ह्रस्व स्वर (अ इ उ ऋ ऌ) उच्चारवेकूं जितना समय लागे तितनी है ॥ ८ ॥

॥ अथ प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान प्रारंभ ॥ १ ॥ दोहा ॥—

वरने सब गुणस्थानके, नाम चतुर्दश सार । अब वरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसे चौदह गुणस्थानके, सार्थक नाम वर्णन करे । अब प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें पंच प्रकार (भेद) है तिनका वर्णन कहूंहूं ॥ ९ ॥

॥ अब मिथ्यात्व गुणस्थानमें पंच प्रकार है तिसके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात्व अभि ग्रहीक, दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है ॥
तीजो विनै मिथ्यात्व अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संशै जहां चित्त भोर कोसो पोत है ॥
पांचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप, जाके उदै चेतन अचेतनसा होत है ॥
येई पांचौं मिथ्यात्व जीवको जगमें भ्रमावे, इनको विनाश समकीतको उदोत है ॥१०॥

अर्थ—एकांत पक्षका ग्राही प्रथम मिथ्यात्व है तिसका नाम अभिग्रहिक है, विपरीत पक्षका ग्राही दूजा मिथ्यात्व है तिसका गोत (नाम) अभिनिवेशिक हैं । विनयपक्षका ग्राही तीजा मिथ्यात्व है तिसका नाम अनाभिग्रहिक है, भ्रमरूप चोथो मिथ्यात्व है तिसका नाम संशय मिथ्यात्व है। अज्ञान गहलरूप पांचवा मिथ्यात्व है तिसका नाम अनाभोगिक है, इस अज्ञान पणाते जीव बेशुद्ध होय हैं। ये पांचौं मिथ्यात्व जीवकूं जगतमें भ्रमावे है, इस पांचू मिथ्यात्वका नाश होय तब सम्यक्त प्राप्त होय है ॥१०॥

॥ अब पांचौं मिथ्यात्वका जुदा जुदा स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

जो एकांत नय पक्ष गहि, छके कहावे दक्ष । सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११ ॥
ग्रंथ उकति पथ उथपे, थापे कुमत स्वकीय । सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीति जीय ॥ १२ ॥

कुगुरु, गिने समानजु कोय। नमै भक्तिसु सवनकूं, विनै मिथ्यात्वी सोय ॥१३॥
जो नाना विकल्प गहे, रहे हिये हैरान। थिर व्है तत्व न सद्दहे, सो जिय संशयवान ॥ १४ ॥
जाको तन दुख दहलसें, सुरति होत नहि रंच। गहलरूप वर्ते सदा, सो अज्ञान तिर्यंच ॥ १५ ॥

अर्थ—सात नय है तिसमें कोइ एक नयका पक्ष ग्रहण करके आपके जानपणामें गर्क होय अर आपकूं तत्ववेत्ता कहवाय। सो मनुष्य प्रत्यक्ष एकांत मिथ्यात्वी है ॥ ११ ॥ जो सिद्धांत ग्रंथके वचन उथापन करके आप नवीन कुमतकूं स्थापे। अर अपके सुयश होनेके कारण आपकूं गुरुपणा माने सो विपरीत मिथ्यात्वी है ॥ १२ ॥ सुदेव अर कुदेवकूं तथा सुगुरु अर कुगुरुकूं जो कोई समान समझे है। अर तिन सबकूं नमै है भक्ति करे है सो विनय मिथ्यात्वी है ॥ १३ ॥ जो अनेक संशय ग्रहण करके हैराण होय रहें है। अर अपने चित्तकूं स्थिर करके तत्वकी श्रद्धा नहि करे सो संशय मिथ्यात्वी है ॥ १४ ॥ जो पर शरीरके दुःखकी रंच मात्रभी याद करेनही। अर जो सदा गहल (निर्दय) रूप वर्ते सो अज्ञान मिथ्यात्वी पशू समान है ॥ १५ ॥

॥ अव सादि मिथ्यात्वका अर अनादि मिथ्यात्वका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

पंच भेद मिथ्यात्वके, कहे जिनागम जोय। सादि अनादि स्वरूप अव, कहूं अवस्था दोय ॥१६॥
जो मिथ्यात्व दल उपसमें, ग्रंथि भेदि बुध होय। फिरि आवे मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्यात्वी सोय॥१७॥
जिन्हे ग्रंथि भेदी नही, ममता मगन सदीव। सो अनादि मिथ्यामती, विकल वहिर्मुखजीव॥१८॥
कह्या प्रथम गुणस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान। अल्परूप अव वर्णवुं, सासादन गुणस्थान ॥१९॥

अर्थ—ऐसे मिथ्यात्वके पांच भेद जिनशास्त्रानुसार देखिके कहे। अब सादि मिथ्यात्व अर अनादि

मिथ्यात्व इन दोय अवस्थाका स्वरूप कहूंहूं ॥ १६ ॥ जो मिथ्यात्वके दल (मिथ्यात्व, मिश्र मिथ्यात्व अर सम्यक्तु प्रकृति मिथ्यात्व, इन तीनू प्रकृती) कूं उमशम कराय मिथ्यात्वके ग्रंथीकूं भेदि (स्व अर परका स्वरूप जाननहार भेदज्ञान प्रगट होय)। फेर मिथ्यात्वमें आजाय सो सादि मिथ्यात्वी है ॥ १७ ॥ जिसने मिथ्यात्वकी ग्रंथी भेदी नही (स्व परका भेद जाना नही) सदाकाल देहमें आत्मपणाकी बुद्धि राखे है। ऐसा जो विकल आत्मस्वरूपते बहिर्मुख है सो अनादि मिथ्यात्वी है ॥ १८ ॥ ऐसे प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानका अभिधान (स्वरूप) कह्या सो समाप्त भया ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीय सासादन गुणस्थान प्रारंभ ॥ २ ॥ स० ३१ सा ॥—

जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीर खांड, वोन करे पीछेके लगार स्वाद पावे है ॥
तैसे चढि चौथे पांचे छट्ठे एक गुणस्थान, काहूं उपशमीकूं कषाय उदै आवे है ॥
ताहि समैं तहांसे गीरे प्रधान दशा त्यागि, मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्है धावे है ॥
बीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे, सोइ सासादन गुणस्थानक कहावे है ॥२०॥

अर्थ—जैसे कोई क्षुधावान मनुष्यने खीर शक्कर खाई, अर तिसकूं वमन होजायतो वमनके पीछेसे खीर शक्करका लगार स्वाद आवे है। तैसे कोई जीव उपशम सम्यक्त ग्रहण करके चौथे वा पांचवे वा छट्ठे इनमें कोई एक गुणस्थान चढजाय, अर तहां अनंतानुबंधी कषायका उदय आवेतो। उसही वक्त तिस गुणस्थानते गिरे अर सम्यक्तकूं त्यागिके, अधोमुख होय नीचे मिथ्यात्व गुणस्थानके तरफ धावे है। तब (सम्यक्त त्यागेबाद अर मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होनेतक बीचमें) एक समय काल प्रमाण रहे वा उत्कृष्ट छह आवली काल पर्यंत रहे, सो सासादन गुणस्थान कहावे है ॥ २० ॥

सासादन गुणस्थान यह, भयो समापत बीय। मिश्रनाम गुणस्थान अब, वर्णन करूं त्रितीय ॥२१॥

अर्थ—ऐसे दूजे सासादन नामा गुणस्थानका कथन समाप्त भया ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीय मिश्र गुणस्थान प्रारंभ ॥ ३ ॥ स० ३१ सा ॥—

उपशमि समकीति कैतो सादि मिथ्यामति, दुहूंनको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे हैं ॥
अनंतानुबंधी चोकरीको उदै नांहि जामें, मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहे हैं ॥
जहां सद्दहन सत्यासत्य रूप सम काल, ज्ञानभाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहे है ॥
याकि थीति अंतर मुहूरत उभयरूप, ऐसो मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥ २२ ॥

अर्थ—उपशम सम्यक्तीकूं मिश्र मिथ्यात्व प्रकृतीका उदय आजायतो सम्यक्तते छूटि तिसकूं मिश्र गुणस्थान प्राप्त होय है, अथवा सादि मिथ्यात्वी है सो मिथ्यात्व प्रकृतीका अभाव करे अर फेर जो मिश्रमिथ्यात्व प्रकृतीका उदय आजायतो तिसकूं मिश्र गुणस्थान होय है। इस मिश्र गुणस्थानमें अनंतानुबंधी चोकडीका तथा मिथ्यात्व प्रकृतीका तथा सम्यक् प्रकृती मिथ्यात्वका उदय नहीं, मात्र मिश्र मिथ्यात्व प्रकृतीका उदय है। यहां समकालमें सत्य अर असत्य दोनूंरूप श्रद्धान रहे है, अर ज्ञानभाव तथा मिथ्यात्वभाव इन दोनूंकी मिश्रधारा वहे है। इस गुणस्थानकी जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है, [जघन्य स्थिति एक समयकी है, ऐसा एक प्रतीमें लिखा है.] ऐसे मिश्र गुणस्थानका स्वरूप आचार्यजीने कह्यो है ॥ २२ ॥

मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भाखि। अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहूं जिनागम साखि २३

अर्थ—ऐसे तीजे मिश्र गुणस्थानका कथन यथामति कह्या सो समाप्त भया ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ सम्यक्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ४ ॥ स० ३१ सा ॥—

केई जीव समकीत पाई अर्ध पुदगल, परावर्तकाल तांई चोखे होई चित्तके ॥
केई एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोक्ष वित्तके ॥
ताते अंतर महूरतसों अर्ध पुद्गललों, जेते समै होहि तेते भेद समकितके ॥
जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तबहीसों गुण गहे दोष दहे इतके ॥ २४ ॥

अर्थ—केई जीव सम्यक्त ग्रहण करके अर्द्ध पुद्गल परावर्तन कालपर्यंत चित्तके शुद्ध होय मोक्षकौं जाय है । अर केई जीव मिथ्यात्व गाठीकूं भेदे है अर सम्यक्त ग्रहण करके अंतर्मुहूर्तमें चारों गतीका मार्ग उलंघी मोक्षरूप वित्तका सुख भोगे है । ताते सम्यक्त ग्रहण करेबाद संसारके भ्रमणकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है, उत्कृष्ट स्थिति अर्ध पुद्गल परावर्तनकी है, अर अर्ध पुद्गल परावर्तनकें जितने समय है तितने सम्यक्तके भेद होय है पण मोक्ष जानेके काल अपेक्षेसे होय है सो एक एक समयकी वृद्धी करता जितने भेद होय है सो सब मध्यम स्थितिके भेद है। भावार्थ—जीव जब सम्यक्त ग्रहण करे तबसे आत्मगुण धारण करने लगजाय अर संसारके दोष क्षय करने लगजाय है ॥ २४ ॥

॥ अब सम्यक्त उत्पत्तीकूं अंतरंग कारण आत्माके शुद्ध परिणाम है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय। मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥

अर्थ—अधःकरण (आत्माके शुद्ध परिणाम) अपूर्व करण (पूर्वे नहि हुवे ऐसे शुद्ध परिणाम) अर अनिवृत्ति करण (नहि पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम) इन तीन करणरूप जो कोई परिणाम करे । तब तिसकी मिथ्यात्वरूप गांठ विदारण होयके आत्मानुभव गुण प्रगटे सोही सम्यक्त है ॥ २५ ॥

॥ अब सम्यक्तके अष्ट स्वरूप है तिनके नाम कहे है॥ दोहा ॥—

समकित उतपति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश। अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणो विवरण तास॥

अर्थ—सम्यक्त, उत्पत्ति, चिन्ह, गुण, भूषख, दोष, नाश, अतिचार, ये आठ स्वरूप है ॥ २६ ॥

॥ अब सम्यक्त, उत्पत्ति, चिन्ह, अर गुण इनका स्वरूप कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिन दिन रीति गहे समताकी ॥
छिन छिन करे सत्यको साको। समकित नाम कहावे ताको ॥ २७ ॥

कैतो सहज स्वभावके, उपदेशे गुरु कोय। चहुगति सैनी जीवको, सम्यक्‌ दर्शन होय ॥२८॥
आपा परिचै विषें, उपजे नहि संदेह। सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ २९ ॥
करुणा वत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ। समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥३०॥

अर्थ—जिसकूं आत्माकी सत्य प्रतीति उपजे है, अर दिन दिन प्रती ज्यादा ज्यादा समता धारे है। अर जो क्षणक्षणमें न पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम करे है, तिसका नाम सम्यक्त है ॥ २७ ॥ कोईकूं सहज स्वभावसे सम्यक्त उपजे है अर कोईकूं गुरुके उपदेशसे सम्यक्त उपजे है। ऐसे चारौं गतीमें सैनी (मन) है तिस जीवकूं सम्यग्दर्शन होय है ॥ २८ ॥ आत्म अनुभवमें संशय नहि उपजे। अर कपट रहित वैराग्य अवस्था होय ये सम्यक्तके लक्षण है ॥ २९ ॥ करुणा, मैत्री, सज्जनता, स्वलघुता, साम्यभाव, श्रद्धा, उदासीनता, धर्मप्रेम, ये सम्यक्तके आठ गुण है ॥ ३० ॥

॥ अब सम्यक्तके पांच भूषण अर पंचवीस दूषण है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

चित्त प्रभावना भावयुत, हेय उपादे वाणि। धीरज हरष प्रवीणता, भूषण पंच वखाणि ॥ ३१ ॥

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष। तीन मूढता संयुकत, दोष पचीस एष ॥ ३२ ॥

अर्थ—ज्ञानकी वृद्धि करना, ज्ञानवंत होके हेय अर उपादेयरूप उपदेश देना, दुःखमें धैर्य धरना, सदा संतोषी रहना, तत्वमें प्रवीण होना, ये सम्यक्तके पांच भूषण है ॥३१॥ आठ महा मद है, आठ मल है, छह आयतन विशेष है, तीन मूढता है, ऐसे पंचवीस दोष है ॥ ३२ ॥

॥ अव आठ मद अर आठ मल कहे है ॥ दोहा ॥—

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार। इनको गर्वजु कीजिये, यह मद अष्टप्रकार ॥ ३३ ॥

चो॰—अशंका अस्थिरता वंछा। ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ॥

वत्सल रहित दोष पर भाखे। चित्त प्रभावना मांहि न राखे ॥ ३४ ॥

अर्थ—जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार, इनका गर्व करना यह आठ महा मद है ॥ ३३ ॥ शास्त्रमें संशय, धर्ममें अस्थिरता, विषयकी वांछा, देहमें ममत्व, अशुभकी ग्लानि, ज्ञानीका द्वेष, परकी निंदा, ज्ञानका निषेध, ये आठ मल है ॥ ३४ ॥

॥ अव षट आयतन अर तीन मूढता कहे है ॥ दोहा ॥—

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म। इनकी करे सराहना, इह षडायतन कर्म ॥ ३५ ॥

देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष। आठ आठ षद् तीन मिलि, ये पचीस सव दोष ॥३६॥

अर्थ—कुगुरु, कुदेव, अर कुधर्म, इन तीनौंकी अर तीनौंके भक्तकी प्रशंसा करना सो छह आयतन है ॥ ३५ ॥ सुदेव कैसा है अर कुदेव कैंसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य देवमूढ है, सुगुरु कैसा है अर कुगुरु कैसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य गुरुमूढ है, धर्म कैसा है अर अधर्म

कैसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य धर्ममूढ है, ये तीन मूढ है सो मिथ्यात्वकूं पुष्ट करनेवाले है। आठ गर्व, आठ मल, छह आयतन, अर तीन मूढ ऐसे सब मिलके पंचवीस दोप है ते सम्यक्तकूं क्षय करनेवाले है तातै इनकूं त्याग करना योग्य है ॥ ३६ ॥

॥ अब सम्यक्तके नाशक पांच दशा अर पांच अतिचार है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञानगर्व मति मंदता, निठुर वचन उदगार। रुद्रभाव आलस दशा, नाश पंच परकार ॥३७॥
लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव। मिथ्या आगमकी भगती, मृपा दर्शनी सेव॥३८॥

चो०—अतीचार ये पंच प्रकारा। समल करहि समकितकी धारा ॥
दूषण भूषण गति अनुसरनी। दशा आठ समकितकी वरनी॥ ३९ ॥

अर्थ—ज्ञानका गर्व, मतीकी मंदता, निर्दय वचन, क्रोधी परिणाम, अर आळस, इन पांचौं दशासे सम्यक्तका नाश होय है ॥ ३७ ॥ मेरे सम्यक्त प्रवृत्तिकूं लोक हास्य करेंगे ऐसा भय राखना, पंच इंद्रियोंके भोगकी रुचि राखना, आगे कैसे होयगा ऐसी चिंता करना, मिथ्या शास्त्रकी भक्ती करना, अर मिथ्या देवकी सेवा (नमस्कार वा पूजा) करना, ये पांच अतिचार दोष है ॥ ३८ ॥ इन पांच अतिचार दोषोंते सम्यक्तकी उज्जल धारा मलीन होय है। ऐसे सम्यक्तके अष्ट स्वरूपका वर्णन कीया सो जिसकी जैसी गती होनेवाली है तैसा दूषण अथवा भूषण अर गुण अंगीकार करेगा ॥ ३९ ॥

॥ अब मोहनी कर्मके सात प्रकृतीका क्षय वा उपशम होय तब सम्यक्त उपजे है सो कहे है॥दोहा ॥ ३१ सा॥—

प्रकृति सात मोहकी, कहूं जिनागम जोय। जिन्हका उदै निवारिके, सम्यक् दर्शन होय ॥ ४० ॥
चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुवंधी कोहनी ॥

बीजी महा मान रस भीजी मायामयी तीजि, चौथे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी ॥
पांचवी मिथ्यातमति छट्ठी मिश्र परणति, सातवी समै प्रकृति समकित मोहनी ॥
येई षट विंग वनितासी एक कुतियासि, सातो मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ ४१ ॥

अर्थ—अब मोहनीय कर्मकी सात प्रकृति जिनागमकूं देखिके कहूंहूं । जिसका उदय निवारनेसे सम्यग्दर्शन प्रगट होय है ॥ ३९ ॥ चारित्र मोहनीयकी पंचवीस अर दर्शन मोहनीयकी तीन ऐसे मोहनीय कर्मकी अठाईस प्रकृती है परंतु तिसिमें चारित्र मोहनीयकी चार अर दर्शन मोहनीयकी तीन ये सात प्रकृती है सो सम्यक्तका नाश करनेवाली है, तिनमें प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी (सत्यवस्तुके अजानपणा विषयी) महा क्रोध है। दूजी प्रकृती महा मान है तथा तीजी प्रकृती महा माया है। चौथी प्रकृती महा लोभ है सो परिग्रहकूं पुष्ट करनेवाली है। पांचवी प्रकृती मिथ्यात्वबुद्धि करनेवाली है अर छट्ठि प्रकृति सत्य अर असत्य इन दोनूंकी मिश्रबुद्धि करनेवाली है, अर सातवी प्रकृति सम्यक्त मोहनीयकी है । इसिमें पहली छह प्रकृती व्याघ्रिणी है सो पहिले छहूं प्रकृतीकूं छोडनेवाली समान (सम्यक्तकूं भक्षण करे) है अर सातवी प्रकृति कुतिया समान डरावे (सम्यक्तकूं मलीन करे) है इसिका पण भरोसा नही, मोहनीयकी सातूं हूं प्रकृति आत्माके सद्भाव (ज्ञान) कूं रोके है ॥ ४१ ॥

॥ अब मोहके सात प्रकृतीसे सम्यक्तमें भेद होय है सो कहै है ॥ छपै छंद ॥—

सात प्रकृति उपशमहि, जासु सो उपशम मंडित । सात प्रकृति क्षय करन हार,
क्षायिक अखंडित । सात मांहि कछु क्षपे, कछु उपशम करि रक्खे । सो क्षय
उपशमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे । षट्ट प्रकृति उपशमे वा क्षपे, अथवा

क्षय उपशम करे। सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरे॥ ४२॥

अर्थ—ऊपरके कवित्तमें कही है तिस मोहनीयके सात प्रकृतीका उपशम जिसके होय सो उपशम सम्यक्त है। अर सात प्रकृतीका क्षय करे सो क्षायक सम्यक्त अक्षय है। अर सात प्रकृतीमें कछु प्रकृतीका क्षय अर कछु प्रकृतीका उपशम कर राखे है। सो क्षयोपशम सम्यक्त है ते मिश्ररूप सम्यक्तके रसकूं आस्वादे है। अर छह प्रकृतीका उपशप करे अथवा क्षय करें अथवा क्षयोपशम करे अर एक प्रकृतीका उदय होय सो वेदक सम्यक्त है॥ ४२॥

॥ अव सम्यक्तके नव भेद है सो कहे है॥ दोहा॥ सोरठा॥—

क्षयोपशम वर्ते त्रिविधि, वेदक चार प्रकार। क्षायक उपशम जुगल युत, नौधा समकित धार॥४३॥
चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय। क्षै पट् उपशम एकयों, क्षयोपशम त्रिक होय॥४४॥
जहां चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम इक वेद। क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥४५॥
पंच क्षपे इक उपशमे, इक वेदे जिह ठोर। सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह ओर॥४६॥
क्षय षट् वेदे इक जो, क्षायक वेदक सोय,। पट् उपशम इकविदे, उपशम वेदक होय॥४७॥

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्तके तीन भेद, वेदक सम्यक्तके चार भेद, क्षायक सम्यक्तका एक भेद अर उपशम सम्यक्तका एक भेद, ऐसे सम्यक्तके नव भेद है॥ ४३॥ अब क्षयोपशमके तीन भेद कहे है—अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति क्षय करे अर दर्शन मोहकी तीन प्रकृती उपशम करे सो प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त है॥१॥ अनंतानुवंधीकी चार अर मिथ्यात्वकी एक ऐसे पांच प्रकृतीका क्षय करे अर दर्शन मोहके दोय प्रकृतीका उपशम करे सो द्वितीय क्षयोपशम सम्यक्त है॥ २॥ अनंतानुबंधकी चार

मिथ्यात्वकी एक अर मिश्र मिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका क्षय करे अर दर्शन मोहनीयके एक प्रकृतीका उपशम करे सो तृतीय क्षयोपशम सम्यक्त है ॥३॥४४॥ अब वेदक सम्यक्तके चार भेद कहे है—अनंतानुबंधीकी चार प्रकृती क्षय करे अर मिथ्यात्व तथा मिश्र मिथ्यात्व इन दोय प्रकृतीका उपशम करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो प्रथम क्षयोपशम वेदक सम्यक्त है ॥१॥४५॥ अनंतानुबंधीकी चार अर मिथ्यात्वकी एक ऐसे पांच प्रकृतीका क्षय करे अर मिश्र मिथ्यात्वके एक प्रकृतीका उपशम करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो द्वितिय क्षयोपशम वेदके सम्यक्त है ॥२॥४६॥ अनंतानुबंधीकी चार मिथ्यात्वकी एक अर मिश्र मिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका क्षय करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो क्षायक वेदक सम्यक्त है ॥ ३ ॥ अनंतानुबंधी चार, मिथ्यात्वकी एक अर मिश्रमिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका उपशम अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो उपशम वेदक सम्यक्त है ॥ ४ ॥ ४७ ॥

उपशम क्षायककी दशा, पूरव षट् पद मांहि। कहि अव पुन रुक्तिके, कारण वरणी नांहि ॥४८॥

अर्थ—उपशम सम्यक्तका अर क्षायक सम्यक्तका स्वरूप ४२ वे छपैयामें कह्या है ॥ ४८ ॥

क्षयोपशम वेदक क्षै, उपशम समकित चार। तीन चार इक इक मिलत, सव नव भेद विचार ॥४९॥
अब निश्चै व्यवहार, सामान्य अर विशेष विधि। कहूं चार परकार, रचना समकित भूमिकी ॥५०॥

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्त, वेदक सम्यक्त, क्षायक सम्यक्त, अर उपशम सम्यक्त, ऐसे मूल सम्यक्तके चार भेद है। अर क्षयोपशम सम्यक्तके तीन भेद, वेदक सम्यक्तके चार भेद, क्षायक सम्यक्तका एक भेद, अर उपशम सम्यक्तका एक भेद, ऐसे सब मिलिके सम्यक्तके उत्तर भेद नव है ॥ ४९ ॥

॥ अव निश्चै, व्यवहार, सामान्य, अर विशेप, ऐसे सम्यक्तके चार प्रकार है सो कहे है ॥ ३१ सा ॥ सोरठा ॥—

मिथ्यामति गंठि भेदिं जगी निरमल ज्योति। जोगसों अतीत सो तो निहचै प्रमानिये ॥
वहै दुंद दशासों कहावे जोग मुद्रा धारि। मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥
चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते सामान्य वखानिये ॥
करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

अर्थ—मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अर अंतराय इन चार घातिया कर्मका क्षय करि जिसकूं निर्मल आत्मज्योति जगी होय, अर मन वचन काय इनिके योगसे रहित होय सो (केवलज्ञानी) निश्चय सम्यक्त है। अर दिगंबर दीक्षा धारण करके जो आत्मध्यानहूं धरे अर आहारादिककी इच्छाभी करे ऐसे द्वंद्व दशाकूं वर्त्ते है, सो मति अर श्रुति ज्ञानका भेद जो पर्यंत है तो पर्यंत व्यवहार सम्यक्त है। अर जो आत्मस्वरूप पहचाने पण पुद्गल है कर्मके सुख अर दुःखकूं वेदे है, अर चारित्र मोहनी कर्मके उदते अल्प पुरुषार्थ (अणुव्रत) धरे वा अविरति रहे सो सामान्य सम्यक्त है। अर आत्मा गुणी है ज्ञान गुण है ऐसे भेदाभेदका जो विस्ताररूप विचार करे, अर त्यागने योग्य वस्तुकू त्यागे तथा ग्रहण करने योग्य वस्तुकूं ग्रहण करे सो विशेष सम्यक्त है ॥५१॥

तिथि सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक वा। अविरत समकित रीत, यह चतुर्थ गुणस्थान इति ॥५२॥

अर्थ—चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है ॥ ५२ ॥ ऐसे चौथे अविरत गुणस्थानका कथन समाप्त भया ॥ ४ ॥

॥१३८॥

॥ अथ पंचम अणुव्रत गुणस्थान प्रारंभ ॥ ५ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानके प्रारंभमें श्रावकके इकवीस गुण कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अब वरनूं इकवीस गुण, अर बावीस अभक्ष। जिन्हके संग्रह त्यागसों, शोभे श्रावक पक्ष ॥५२॥

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत, पर दोषकों ढकैया पर उपकारी है ॥
सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥
विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ॥
सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है ॥५३॥

अर्थ—अब इकवीस गुणका अर बावीस अभक्षका वर्णन करूंहूं। ते इकवीस गुण ग्रहण करनेसे अर बावीस अभक्ष त्याग करनेसे श्रावकके पांचवे गुणस्थान शोभे है ॥ ५२ ॥ लज्जावंत, दयावंत, क्षमावंत, श्रद्धावंत, परके दोषकूं ढाकणहार, परोपकारी, सौम्यदृष्टी, गुणग्राही, सज्जन, सबको इष्ट, सत्यपक्षी, मिष्टवचनी, दीर्घ विचारी, विशेष ज्ञानी, शास्त्रका मर्मी, प्रत्युपकारी, तत्वदर्शी, धर्मात्मा, न दीन न अभिमानी, विनयवान, पाप क्रियासे रहित, ऐसा पवित्र इकवीस गुण श्रावक धरे है ॥ ५३ ॥

॥ अब बावीस अभक्षके नाम कहे है ॥ कवित्त छंद ॥—

ओरा घोरवरा निशि भोजन, वहु बीजा वैंगण संधान ॥
पीपर वर उंबर कठुंबर, पाकर जो फल होय अजान ॥
कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान ॥
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस, जिनमत ये बावीस अखान ॥ ५४ ॥

अर्थ—तीन मकार- मांस, दारु, अर मध, पंच उंबरोंके फल—उंबरके फल, बडके फल, पिंपळके फल, कठुंबर (पिपरण) के फल, पाकर (नांद्रुक) के फळ, [ये आठ वस्तु नहि भक्षण करना सो सम्यक्तके आठ मूळ गुण है] कंद मूल, अगालित जल, रात्रि भोजन, बहुबीज, बैंगण, संधाणा, वीष, माटी, सूक्ष्म फल, अजाण फल, पत्र उपरका तुषार, चलित रस, माखण, बिदल, ये बाईस वस्तु खाने योग्य नही ऐसे जिनमतमें कह्या है ॥ ५४ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानमें ग्यारह भेद है तिनके नाम कहे है ॥ दोहा ॥ ३१ सा ॥—

अब पंचम गुणस्थानकी, रचना वरणु अल्प । जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥५५॥

दर्शन विशुद्ध कारी बारह वरत धारि । सामाइक चारी पर्व प्रोषध विधि वहे ॥
सचित्तको परहारी दिवा अपरस नारि, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी व्है रहे ॥
पाप परिग्रह छंडे पापकी न सिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त करेसो वस्तु न गहे ॥
येते देशव्रतके धरैया समकीति जीव, ग्यारह प्रतिमा तिने भगवंतजी कहे ॥ ५६ ॥

अर्थ—पंचम गुणस्थानमें ग्यारह प्रतिमा है सो चारित्रके भेदते है तिनके नाम कहे है ॥ ५५ ॥ दर्शन विशुद्धि प्रतिमा ॥ १ ॥ व्रत प्रतिमा ॥ २ ॥ सामायिक प्रतिमा ॥ ३ ॥ प्रोषध प्रतिमा ॥ ४ ॥ साचित्त त्याग प्रतिमा ॥ ५ ॥ दिवा मैथुन त्याग रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥ ७ ॥ आरंभ त्याग प्रतिमा ॥ ८ ॥ पापका परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ९ ॥ पापका उपदेश त्याग प्रतिमा ॥ १० ॥ अगांतुक भोजन प्रतिमा ॥ ११ ॥ ऐसे देशव्रत (पंचअणुव्रत) के धारक सम्यक्ती जीवकी ग्यारह प्रतिमा (प्रतिज्ञा) भगवंतजीने कही है ॥ ५६ ॥

॥ अब पहिले, दुसरे अर तिसरे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

संयम अंश जगे जहां, भोग अरुचि परिणाम। उदै प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताका नाम ॥५७॥
आठ मूल गुण संग्रहे, कु व्यसन क्रिया नहि होय। दर्शन गुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोय॥५८॥
पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाल। शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥५९॥
द्रव्य भाव विधि संयुकत, हिये प्रतिज्ञा टेक। तजि ममता समता गहे, अंतर्मुहूरत एक ॥६०॥

चौ०—जो अरि मित्र समान विचारे। आरत रौद्र कुध्यान निवारे ॥
संयम संहित भावना भावे। सो सामाइकवंत कहावे ॥ ६१ ॥

अर्थ—जहां संयमका अंश जगे अर भोगमें अरुचिके परिणाम हुवे। तहां कोई प्रतिज्ञा धारण करनेका उदय होय सो तिसका नाम प्रतिमा है ॥ ५७ ॥ जो आठ मूल गुण धारण करे अर सप्त व्यसनकी क्रिया नही होय। ऐसे सम्यक्त गुण निर्मल करे सो पहली दर्शन प्रतिमा है ॥ १ ॥ ५८ ॥ जो पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, अर चार शिक्षा व्रत धारण करे। सो दूजी व्रत प्रतिमा है ॥२॥५९॥ जो चित्तमें प्रतिज्ञा करके अंतर्मुहूर्त पर्यंत द्रव्य (देह अर वचन) स्थिर करे अर भाव (मन)स्थिर करे। तथा ममताकूं त्यागि समता धारण करके ॥ ६० ॥ शत्रू मित्रकूं समान गिणे अर रौद्र ध्यान त्याग करे। तथा संयम सहित बारह भावनाका चिंतवन करे सो तीजी सामायिक प्रतिमा है ॥३॥६१॥

॥ अब चौथे पांचवे अर छठे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

सामायिककी दशा, चार पहरलों होय। अथवा आठ पहरलों, पोसह प्रतिमा सोय ॥ ६२ ॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर। सो सचित त्यागि पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥६३ ॥

चो०—जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तिथि आये निशि दिवस संभाले ॥
गहि नव वाडि करे व्रत रख्या । सो षट् प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो पर्व दिनमें सामायिक समान चार प्रहर अथवा आठ प्रहर पर्यंत समता भाव धारण करे । सो चौथी प्रोषध प्रतिमा है ॥ ४ ॥ ६२ ॥ जो प्रासुक भोजन अर प्रासुक जल लेवे । सो पांचवी सचित्त त्याग प्रतिज्ञा है ॥ ५ ॥ ६३ ॥ जो नित्य दिनमें ब्रह्मचर्य व्रत पाले अर पर्व दिनोंमें रात्रंदिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तथा नव वाडीते शीलकी रक्षा करे सो छठी दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा है ॥६॥६४॥

॥ अब सातवे प्रतिमाका अर नव वाडीका स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥ कवित्त ॥—

जो नव वाडि सहित विधि साधे । निशि दिनि ब्रह्मचर्य आराधे ॥
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता । सील शिरोमणि जगत विख्याता ॥ ६५ ॥
तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीछ भाखे मधु वैन ॥
पूरव भोग केलि रस चिंतन । गरुव आहार लेत चित चैन ॥
करि सुचि तन सिंगार वनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥
मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव वाडि कहे जिन वैन ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो नव वाडिते शीलकी रक्षा करे अर रात्रंदिन ब्रह्मचर्य व्रतकूं पाले है । सो सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी ज्ञानी जगतमें विख्यात शील शिरोमणी है ॥७॥६५॥ स्त्रीकेपास एकांतमें बैठणा, स्त्रीकूं प्रेमसे देखना, स्त्रीकूं काम दृष्टीते देख मधुर वचन बोलना, पीछेके भोग क्रीडाका स्मरण करना, पौष्टीक आहार

लेना, नटवेरूप श्रृंगार करना, स्त्रीके शय्याउपर सुखसे सोवना, कामरूप मन्मथ गीत सुनना, अती आहार सेवन करना; ए नव प्रकार नहि करना सो शीलकी नव वाडी जैनशास्त्रमें कही है ॥ ६६ ॥

॥ अब आठवे नववे अर दशवे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ । सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रणथंभ ॥६७॥

जो दशधा परिग्रहको त्यागी । सुख संतोष सहित वैरागी ॥

सम रस संचित किंचित ग्राही । सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६८ ॥

परकों पापारंभको, जो न देइ उपदेश । सो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥६९॥

अर्थ—जो सदा विवेक विचारसे सावधान रहे अर पाप आरंभ (कृषी, वाणिज्य अर सेवादिक) करे नही । सो कुगतीके विजयका रणथंभ आठवे पापारंभ त्याग प्रतिमाका धनी है ॥ ८ ॥ ६७ ॥ जो द्रव्यादिक दश प्रकारकें परिग्रहका त्याग करे अर सुख संतोषसे वैरागी रहे । तथा साम्य भाव धारण करके शरीर रक्षणार्थ किंचित् वस्त्र पात्र राखे सो नववी पाप परिग्रह त्याग प्रतिमाका धारण करणहारा श्रावक है ॥ ९ ॥ ६८ ॥ जो पुत्रादिककों पापारंभ करनेका उपदेश देवे नही । सो दशवे पापोपदेश त्याग प्रतिमाका श्रावक क्लेश (पाप) रहित है ॥ १० ॥ ६९ ॥

॥ अब ग्यारवी प्रतिमा अर प्रतिमाके उत्तम मध्यम जघन्य भेद कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा । मठ मंडपमें करे वसेरा ॥

उचित आहार उदंड विहारी । सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७० ॥

एकादश प्रतिमा दशा, कहीं देशव्रत मांहि । वही अनुक्रम मूलसों, गहीसु छूटे नांहि ॥७१॥

षट प्रतिमा तांई जघन्य, मध्यम नव पर्यंत। उत्कृष्ट दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥७२॥

अर्थ—जो घर कुटुंबादिककूं छोडके स्वछंद वर्ते अर मठमें वा आरण्यमें वास करे। तथा भिक्षासे योग्य आहार लेय भोजन करे सो क्षुल्लक वा एलक ग्यारवी प्रतिमाधारी है ॥ ७० ॥ ऐसे ग्यारह प्रतिमाके भेद पांचवे देशव्रत गुणस्थानमें कहे। सो मूलसे अनुक्रमे ग्रहण करते करते आगे जाय अर जो ग्रहण करे सो छोडे नही ऐसे इसिकी विधि है ॥ ७१ ॥ छठि प्रतिमा पर्यंत जघन्य प्रतिमा है अर सातवी आठवी तथा नवमी मध्यम प्रतिमा है। दशवी अर ग्यारवी उत्तम प्रतिमा है ॥ ७२ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानका काल कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

एक कोटि पूरव गणि लीजे। तामें आठ वरष घटि दीजे ॥
यह उत्कृष्ट काल स्थिति जाकी। अंतर्मुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

सत्तर लाख किरोड मित, छप्पन सहज किरोड। येते वर्ष मिलायके, पूरव संख्या जोड ॥७४॥
अंतर्मुहूरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकिष्ट। एक समय एकावली, अंतर्मुहूर्त कनिष्ट ॥ ७५ ॥
यह पंचम गुणस्थानकी, रचना कही विचित्र। अब छठे गुणस्थानकी, दशा कहुं सुन मित्र ॥७६॥

अर्थ—पांचवे गुणस्थानका उत्कृष्ट स्थितिकाल आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्वका है। अर जघन्य स्थितिकाल अंतर्मुहूर्तका है ॥ ७३ ॥ सत्तर लाख कोटि वर्ष अर छप्पन हजार कोटि वर्ष ७०,५६,०००००००००० । इह दोनूं संख्या मिलाइये तव एक पूर्वकी संख्या होय है ॥ ७४ ॥ दोय घडीमें कछु कमी सो उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है अर एक आवली उपर एक समय सो जघन्य अंतर्मुहूर्त है ॥७५॥ ऐसे पांचवे देशव्रत (अणुव्रतके) गुणस्थानकी विचित्र रचना कही सो समाप्त भई ॥ ७६ ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठ प्रमत्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ६ ॥ दोहा ॥—

पंच प्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुणवान । स्थविर कल्प जिन कल्प युत, है प्रमत्त गुणस्थान॥७७॥
धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय । पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥७८॥

अर्थ—जो मुनी अट्ठावीस मूल गुण पाले अर पांच प्रमाद अवस्थाकूं धरे । सो छठे प्रमत्त गुणस्थान है । इस गुणस्थानमें स्थविर कल्प अर जिन कल्प ऐसे दोय प्रकारके मुनी रहे है ॥ ७७ ॥ धर्म ऊपर प्रेम राखे, धर्मोपदेश करे, निद्रा लेवे, भोजन करे, कषाय करे, ऐसे पांच प्रमादकी अवस्था सहित है ते प्रमादी मुनीराज है ॥ ७८ ॥

॥ अव मुनीके अठावीस मूल गुण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगि चित चैनको ॥
षट आवश्यक क्रिया दर्वीत भावीत साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको ॥
मंजन न करे केश लुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पैं सुगंध श्वास वैनको ॥
ठाडो करसे आहार लघु भुंजी एक वार, अठाइस मूल गुण धारी जती जैनको ॥ ७९ ॥

अर्थ—पांच महाव्रत पाले, पांच सुमती संभाले, अर पांच इंद्रियोंकूं जीतके इनके विषय सेवनेकूं चित्तमें रुचि नहि राखे। अर छह आवश्यक क्रिया द्रव्यते तथा भावते साधे, [ऐसे इकईस गुण भये] अर प्रासुक भूमीपे बैठे वा शयन करे, स्नान नहि करे, केश हातसे लोच करे, नग्न रहें, दंत नहि धोवे, खडे खडे कर पात्रमें आहार ले, दिनमें एकवार एक ठिकाणें अल्प खाय, ऐसे अठावीस मूल गुण धरे सो जैनका यती है ॥ ७९ ॥

॥ अब पंच महा व्रत, पंच सुमति अर छह आवश्यक इनका स्वरूप कहे है॥ दोहा ॥—

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज । किंचित त्यागी अणुव्रती, सब त्यागी मुनिराज॥८०॥
चले निरखि भाखे उचित, भखे अदोष अहार। लेइ निरखि डारे निरखि, सुमति पंच परकार॥८१॥
समता वंदन स्तुति करन, पडकोनो स्वाध्याय। काउसर्ग मुद्रा धरन, ए षडावश्यक भाय ॥८२॥

अर्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, अर परिग्रह संचय करना, यह पांच पाप है। इनका किंचित् त्याग करे सो अणुव्रती श्रावक है अर सर्वस्वी त्याग करे सो महाव्रती मुनिराज है ॥ ८० ॥ रस्ता देख जीव जंतुका बचाव करि चाले सो इर्या सुमति है, हितरूप योग्य वचन बोले सो भाषा सुमति है, निर्दोष आहार लेय सो एषणा सुमति है, शरीर कमंडलु अर शास्त्रादिक पिंछीसे झाडकर लेय वा रखे सो आदान निक्षेपणा सुमिति है, अर निर्जंतु स्थान देखि मल मूत्र वा श्लेष्मादिक टाके सो प्रतिष्टावना सुमिति है, ऐसे पंच प्रकारे सुमिति है ॥ ८१ ॥ समता धरना, चौवीस तीर्थंकरोंकों नमस्कार करना चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करना, प्रतिक्रमण (स्वदोषका पश्चात्ताप) करना, सिद्धांत शास्त्रका स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग (शरीरका ममत्व छोडि) ध्यान धरना, ए छह आवश्यक क्रिया है ॥ ८२ ॥

॥ अब स्थविरकल्प अर जिनकल्प मुनीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

थविर कलपि जिन कलपि दुवीध मुनि, दोउ वनवासि दोउ नगन रहत है ॥
दोउ अठावीस मूल गुणके धरैया दोउ, सरवस्वि त्यागि व्है विरागता गहत है ॥
थविर कलपि ते जिन्हके शिष्य शाखा संग, बैठिके सभामें धर्म देशना कहत है ॥
एकाकी सहज जिन कलपि तपस्वी घोर, उदैकी मरोरसों परिसह सहत है ॥ ८३ ॥

अर्थ—स्थविर कल्पि अर जिनकल्पी ऐसे दोय प्रकारके मुनी है, ते दोहूं नग्न अर वनमें रहें है। दोऊंहूं अठावीस मूलगुण पाले है, तथा दोऊंहूं सर्व परिग्रहका त्यागी होय वैराग्यता धरे है। परंतु जे स्थविर कल्पी मुनि है ते शिष्य शाखा संगमे रखकर, सभामें बैठिके धर्मोपदेश करे है। अर जे जिनकल्पी मुनी है ते शिष्यशाखा छोडि निर्भय सहज एकटे फिरे है अर महातपश्चरण करे है, तथा कर्मके उदयते आये घोर २२ परीसह सहन करे है ॥ ८३ ॥

॥ अब वेदनी कर्मके उदैते ग्यारा परीसह आवे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ग्रीषममें धूपथित सीतमें अकंप चित्त, भूख धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ॥
डंस मसकादिसों न डरे भूमि सैन करे, वध बंध विथामें अडोल व्है रहत है ॥
चर्या दुख भरे तिण फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलानि न गहत है ॥
रोगनिको करें न इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ये परिसह सहत है ॥८४॥

अर्थ—उष्ण कालमें धूपमें खडे रहें, शीत कालमें शीत सहे डरे नही, भूख लगेतो धीर धरे, तृषा लगे तो जल चाहे नही, डांस मच्छरादिक काटे तो भय नहि करे, भूमी उपर सयन करे, वध बंधादिकमें अडोल स्थीर रहे है, चलनेका दुःख सहे, चलनेमें तृण कंटकसे डरे नही, शरीर उपरके मलकी ग्लानी करे नहि, रोगकूं विलाज नहि करे, ऐसें ग्यारह परिसह वेदनीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८४ ॥

॥ अब चारित्र कर्मके उदयते सात परिसह आवे है सो कहे है ॥ कुंडली छंद ॥—

येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत। लज्जा संकुच दुख धरे,
नगन दिगंबर होत। गगन दिगंबर होत, श्रोत्र रति स्वाद न सेवे।
त्रिय सनमुख दृग रोक, मान अपमान न वेवे। थिर व्है निर्भय रहे,
सहे कुवचन जग जेते। भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट येते ॥ ८५ ॥

अर्थ—दिगंबर होय तब नग्नकी लज्जाका दुःख उपजे सो सहन करे, कर्ण इंद्रियके विषयका स्वाद नाहि सेवे, स्त्रीके हावभावकूं मन भूले नही, मान अपमान देखे नही, कोई भय आवेतो ध्यानासनछोडि भागे नही, जगतके कुवचन सहे, अर भिक्षा याचनाका दुःख माने नही, ऐसे सात परिसह (संकट) चारित्र मोहनीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८५ ॥

॥ अब ज्ञानावर्णीयके २ दर्शनमोहनीयका १ अर अंतराय का १ ऐसे ४ परिसह कहे है ॥ दोहा ॥—

अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उत्कर्ष विलोय। ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ॥ ८६ ॥
सहे अदर्शन दुर्दशा, दर्शन मोह उदोत। रोके उमंग अलाभकी, अंतरायके होत ॥ ८७ ॥

अर्थ—अल्प ज्ञान होयतो लघुता सहन करे, अर बहु ज्ञान होयतो गर्व नाहि करे। ऐसे अज्ञान अर प्रज्ञा (गर्व) ये दोय परिसह ज्ञानावर्णीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८६ ॥ दर्शन मोहनीय कर्मके उदयते सम्यग्दर्शनकूं संकट आवेतो सम्यग्दर्शन छोडे नही, अर अंतराय कर्मके उदयते अलाभ होयतो लाभकी इच्छा करे नही, ऐसे दर्शन मोहनीय कर्मका एक अर अंतराय कर्मका एक ये दोय परिसह मुनिराज सहन करे है ॥ ८७ ॥

॥ अव बावीस परिसहका विवरण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरणीकी दोय एक अंतरायकी ॥
दर्शन मोहकी एक द्वाविंशति बाधा सब, केई मनसाकि केई वाक्य केई कायकी ॥
काहुकों अलप काहु बहूत उनीस ताइ, एकहि समैमें उदै आवे असहायकी ॥
चर्या थिति सज्या मांहि एक शीत उष्ण मांहि, एक दोय होहि तीन नांहि समुदायकी ॥८८॥

अर्थ—वेदनीय कर्मके ग्यारा परिसह है अर चारित्र मोहनीय कर्मके सात परिसह है, ज्ञानावरण कर्मके दोय परिसह है अर अंतरायकर्मका एक परिसह है। तथा दर्शन मोहनीय कर्मका एक परिसह है ऐसे सब बावीस परिसह हैं, तिस बाईस परिसहमें कित्येक परिसह मनके अर कित्येक परिसह वचनके तथा कित्येक परिसह शरीरके होय है। कोई मुनीकूं एक परिसह होय है, अर कोई मुनीकूं बहूत होयतो एक समैमें उगणीस परिसह पर्यंत होय है। गमन, बैठना, अर शयन, इन तीन परिसहमें कोई एक परिसह उदयकूं आवे अर दोय परिसह उदयकूं नहि आवे, तैसेही सीत अर उष्ण इन दोय परिसहमें कोई एक परिसह उदयकूं आवे अर एक परिसह उदयकूं नहि आवे, ऐसे पांच परिसहमें दोय परिसह उदयकूं आवे अर तीन परिसह उदयकूं नही आवे, बाकीके उगणीस परिसह उदयकूं आवे है ॥ इति परिसह वर्णन ॥-८८ ॥

॥ अव थविर कल्पकी अर जिन कल्पकी समानता दिखावे हे ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

नाना विधि संकट दशा, सहि साधे शिव पंथ। थविर कल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ॥८९॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविर कल्प सो जान। एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प वखान॥९०॥

थविर कल्प धर कछुक सरागी । जिन कल्पी महान वैरागी ॥
इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी । पूरण भई जथारथ वरनी ॥ ९१ ॥

अर्थ—ऐसे नाना प्रकारके परिषह सहन करके मोक्ष मार्ग साधे है ताते स्थविर कल्पी अर जिन-कल्पी दोऊ प्रकारके निग्रंथ मुनीकी समानता है ॥ ८९ ॥ जो मुनी शिष्य शाखामें रहे सो स्थविर कल्पी किंचित् सरागी है । अर जो मुनी येकल विहारी होय विछरे है सो जिनकल्पी महान वैरागी है ॥ ९० ॥ ऐसे छठे प्रमत्त गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ७ ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

अब वरणो सप्तम विसरामा । अपरमत्त गुणस्थानक नामा ॥
जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे । धरम ध्यान स्थिरता परकासे ॥ ९२ ॥
प्रथम करण चारित्रको, जासु अंत पद होय । जहां आहार विहार नही, अप्रमत्त है सोय ॥९३॥

अर्थ—सातवा अप्रमत्त गुणस्थान है सो विश्राम (स्थिरता)का स्थान है तिसका अब वर्णन करूंहूं—जो मुनी छठे गुणस्थानके अंतमे पंच प्रमादकी क्रियाकूं छोडे है अर स्थिरतासे धर्मध्यानका प्रकाश करे है ॥ ९२ ॥ सो मुनी प्रमत्त गुणस्थानके अंतमें चारित्र मोहनी कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा चारित्रका प्रथम करण जो अधःकरण (परिणामकी अत्यंत शुद्धि) करे है । तब आहार विहारादि रहित होय धर्म ध्यानमें स्थिर होय है सो सातवा अप्रमत्त गुणस्थान है ॥ ९३ ॥ ऐसे सातवे अप्रमत्त गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम अपूर्व करण गुणस्थान प्रारंभ ॥ ८ ॥ चौपई ॥—

अब वरणूं अष्टम गुणस्थाना । नाम अपूरव करण वखाना ॥
कछुक मोह उपशम करि राखे । अथवा किंचित क्षय करि नाखे ॥ ९३ ॥
जे परिणाम भये नहि कबही । तिनको उदै देखिये जबही ॥
तब अष्टम गुणस्थानक होई । चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो चारित्र मोहनीय कर्मका कछुक उपशम करे सो उपशम श्रेणी चढे अर कछुक क्षय करे सो क्षायक श्रेणी चढे ऐसे सातवे गुणस्थानके अंतमें दोय मार्ग है ॥ ९३ ॥ जिस मुनीका सातवे अप्रमत्त गुणस्थानके अंतमें चारित्र मोहनीय कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा चारित्रका जो द्वितीय अपूर्व करण (कबही शुद्ध परिणाम नहि भये ऐसे शुद्ध परिणाम) का उदय होवे तब आठवा अपूर्व करण गुणस्थान होय ॥ ९४ ॥ ऐसे आठवे अपूर्व करण गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम अनिवृत्ति करण गुणस्थान प्रारंभ ॥ ९ ॥ चौपई ॥—

अब अनिवृत्ति करण सुनि भाई । जहां भाव स्थिरता अधिकाई ॥
पूरव भाव चलाचल जे ते । सहज अडोल भये सब ते ते ॥ ९५ ॥
जहां न भाव उलट अधि आवे । सो नवमो गुणस्थान कहावे ॥
चारित्र मोह जहां बहु छीजा । सो है चरण करण पद तीजा ॥ ९६ ॥

अर्थ—जब परिणाम अधिकाधिक शुद्ध करे । तब पूर्वे जे कषायके उदयते परिणाम चलाचल होते थे ते सब सहज स्थिर हो जाय है ॥ ९५ ॥ जो मुनी आठवे अपूर्व करण गुणस्थानके अंतमें

चारित्र मोहनीय कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा जो चारित्रका तृतीय अनिवृत्ति करण (शुद्ध परिणामकी स्थिरता) करे जब चारित्र मोहनीय कर्मका बहुत क्षय होय, तब परिणामते चढे पण उलट नीचेके गुणस्थान नहि आवे सो नवमो अनिवृत्ति करण गुणस्थान है ॥ ९६ ॥ ऐसे नववें अनिवृत्ति करण गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान प्रारंभ ॥ १० ॥ चौपई ॥—

कहूं दशम गुणस्थान दु शाखा । जहां सूक्षम शिवकी अभिलाखा ॥
सूक्षम लोभ दशा जहां लहिये । सूक्षम सांपराय सो कहिये ॥ ९७ ॥

अर्थ—आठवे गुणस्थानमें जैसी उपशम अर क्षपक श्रेणी है तैशी नववे अर दशवे गुणस्थानमेंहूं दोय दोय श्रेणी हे । जिस मुनीका चारित्र मोहनीय कर्मका बहुतसा क्षय हुवा है अर सूक्ष्म लोभ (मोक्ष पदकी इच्छा) है सो दशवा सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान है ॥ ९७ ॥ ऐसे दशवे सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ १० ॥

॥ अथ एकादशम उपशांत मोह गुणस्थान प्रारंभ ॥ ११ ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

अब उपशांत मोह गुणठाना । कहों तासु प्रभुता परमाना ॥
जहां मोह उपसममें न भासे । यथाख्यात चारित परकासे ॥ ९८ ॥
जहां स्पर्शके जीव गिर, परे करे गुण रद्द । सो एकादशमी दशा, उपसमकी सरहद्द ॥ ९९ ॥

अर्थ—अब ग्यारवे उपशांत मोह गुणस्थानका पराक्रम कहूंहूं । जो मुनी यथाख्यात चारित्र धारे है ताते सर्व मोहनी कर्म उपशमी जाय अर उदयमें नहि दीसे है ॥ ९८ ॥ सो मुनी उपशमश्रेणी

चढे परंतु उपशमश्रेणीका स्पर्श होतेही जीव तहांसे अवश्य गिर पडे अर जे गुण प्रगटेथे ते सर्व रद्द करे । सो ग्यारवा उपशांत मोह गुणस्थान है इहां पर्यंत उपशमकी सरहद्द है ॥ ९९ ॥ ऐसे एकादशवे उपशांत मोह गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशम क्षीणमोह गुणस्थान प्रारंभ ॥ १२ ॥ चौपई ॥—

केवलज्ञान निकट जहां आवे । तहां जीव सब मोह क्षपावे ॥
प्रगटे यथाख्यात परधाना । सो द्वादशम क्षीण गुण ठाना ॥ १०० ॥

अर्थ—जो मुनी सर्व मोहनीय कर्मका क्षय करे । अर जहां यथाख्यात चारित्र प्रगटे है तथा केवलज्ञान अंतर्मुहूर्तमें होनेवाला है सो बारवा क्षीणमोह गुणस्थान है ॥ १०० ॥

॥ अब छठेते बारवे गुणस्थान पर्यंत उपशमकी तथा क्षायककी स्थिति कहे है ॥ दोहा ॥—

षट साते आठे नवे, दश एकादश थान । अंतर्मुहूरत एकवा, एक समै थिति जान ॥ १०१ ॥
क्षपक श्रेणी आठे नवे, दश अर वलि बार । थिति उत्कृष्ट जघन्यभी, अंतर्मुहूरत काल ॥१०२॥
क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चित चाल । अब संयोग गुणस्थानकी, वरणूं दशा रसाल ॥१०३॥

अर्थ—छठे, सातवे, आठवे, नववे, दशवे, अर ग्यारवे, इन ६ गुणस्थानकी उपसमश्रेणीके अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है । अर जघन्य स्थिती एक समयकी है ॥ १०१ ॥ आठवे, नववे, दशवे, ग्यारवे, अर बारवे, इन ५ गुणस्थानकी क्षायक श्रेणीके अपेक्षा उत्कृष्ट अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है ॥ १०२ ॥ ऐसे मोहमय जे चित्तकी चाल (वृत्ती) है तिस चित्त वृत्तीका चूर्ण करके बारवे क्षीणमोह गुणस्थानका वर्णन संपूर्ण भया ॥ १२ ॥

॥ अथ त्रयोदशम सयोग केवली गुणस्थान प्रारंभ ॥ १३ ॥ ३१ ॥ सा ॥—

जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनश गई, चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है ॥
प्रगटे तब अनंत दर्शन अनंत ज्ञान, वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है ॥
जाके आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति ऐसि, इक्यासि चौऱ्यासि वा पच्यासि परमान है ॥
सोहै जिन केवली जगतवासी भगवान, ताकि ज्यो अवस्था सो सयोग गुणथान है ॥१०४॥

अर्थ—जिस मुनीने आत्माके गुणका घात करनेवाले दुःखदाता चार घातिया (मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अर अंतराय,) कर्मका क्षय कीया है, अर आत्माके गुणका न घात करनेवाले चार अघातिया (आयु, नाम, गोत्र, अर वेदनी,) कर्म रह्या है सोहूं जरी जेवरी समान रह्या है। मोहनीय कर्मका नाश होनेसे अनंत सुखसत्ता समाधानी (सम्यक्त) प्रगटे है, ज्ञानावरणीय कर्मका नाश होनेसे अनंत ज्ञान प्रगटे है, दर्शनावरणीय कर्मका नाश होनेसे अनंत दर्शन प्रगटे है, अर अंतराय कर्मका नाश होनेसे अनंत शक्ती प्रगटे है। कोई केवलज्ञानी मुनीकूं चार अघातिया कर्मकी ८५ प्रकृती रहे है, कोई केवलज्ञानी मुनीकूं आहारक चतुष्क (आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघात, आहारक बंधन,) अर जिननाम, इन ५ प्रकृती विना ८० प्रकृती रहे, कोई केवलज्ञानी मुनीकूं आहारक चतुष्क विना ८१ प्रकृती रहे है, अर कोई केवलज्ञानी मुनीकूं १ जिननाम प्रकृती विना ८४ प्रकृती रहे है, ऐसे गुणका जो है सो जिन है, केवली है, वा जगतका भगवान् है, तिसकी जो अवस्था सो तेरवा सयोग केवली गुणस्थान है ॥ १०४ ॥

॥ अब केवलज्ञानीकी मुद्रा अर स्थिति कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु काउसर्ग मुद्रा थिर पाल है ॥
क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृतीके उदे आये, विना डग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल है ॥
जाकी थिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि, अंतर मुहूरत जघन्य जग जाल है ॥
सोहै देव अठारह दूषण रहित ताकों, बनारसि कहे मेरी बंदना त्रिकाल है ॥१०५॥

अर्थ—केवलज्ञानीभगवान् अडोलपणे सर्व प्रकारें पर्यंकमुद्रा (अर्धपद्मासन) बैठे है अथवा कायोत्सर्गमुद्रा स्थीरपणे पाले है । अर नामकर्मके क्षेत्रस्पर्श प्रकृतीका उदय आवे तब केवलज्ञानी विहार (गमन) करे है सो अन्य पुरुषके समान चाले नही, डग भरे विना अर अंतरिक्ष (अधर) गमन करे है । इस सयोगी गुणस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष न्यून पूर्वकोटी वर्षकी है, [जन्मसे आठ वर्षकी उमरतक केवलज्ञान उपजे नही] अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकीहै, केवलज्ञानी जगतमें इतना काल रहते है फेर मुक्त होते है । ऐसे केवली भगवान् देवाधिदेव अठारा दूषण रहित है, बनारसीदास कहे है की तिनकौ मेरी त्रिकाल बंदना है ॥ १०५ ॥

॥ अब केवली भगवानकूं अठारा दोष न होय तिनके नाम कहे है ॥ कुंडली छंद ॥—

दूषण अठारह रहित, सो केवली संयोग । जनम मरण जाके नही,
नहि निद्रा भय रोग । नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति ।
जरा खेद पर स्वेद, नांहि मद वैर विषै रति । चिंता नांहि सनेह नांहि,
जहां प्यास न भूख न । थिर समाधि सुख, रहित अठारह दूषण ॥ १०६ ॥

अर्थ—जे मुनी अठारह दूषण रहित है ते सयोग केवली कहिए। जिन्हकूं जन्म नही, मरण नही, निद्रा नही, भय नही, रोग नही, शोक नही, विस्मय नही, मोहमति नही, जरा नही, खेद नही, पसेव नही, मद नही, वैर नही, विषयप्रीति नही, चिंता नही, स्नेह नही, तृषा लागे नही, भूख लागे नही, ऐसे अठारह दूषण रहित है ताते समाधि सुख सहित स्थिररूप होय है ॥ १०६ ॥

॥ अब केवलज्ञानीके परम औदारिक देहके अतिशय गुण कहे है ॥ कुंडली ॥ दोहा ॥—

वानी जहां निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि। केश रोम नख नहि वढे,
परम औदारिक मांहि, परम औदारिक मांहि, जहां इंद्रिय विकार नसि।
यथाख्यात चारित्र प्रधान, थिर शुकल ध्यान ससि। लोकाऽलोक प्रकाश,
करन केवल रजधानी। सो तेरम गुणस्थान, जहां अतिशयमय वानी ॥ १०७ ॥
यह सयोग गुणथानकी, रचना कही अनूप। अब अयोग केवल दशा, कहूं यथारथरूप ॥१०८॥

अर्थ—केवलज्ञानीकी वाणी मस्तकमेंसे ॐकार ध्वनीरूप निरक्षरी निकले है, अर केवलीके परम-औदारिक शरीरमें सप्त धातु नही तथा मल अर मूत्र होय नही। अर केश, नखकी वृद्धि होय नही, अर जहां इंद्रियोंका विकार (विषय) क्षय हूवा है। अर उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट भया है, तथा जहां शुक्ल ध्यानरूप चंद्रमा स्थिररूप हुवा है। अर जहां लोकालोकका प्रकाश करनहारी केवलज्ञानरूप राजधानी विराजमान रही है। सो तेरवा सयोग गुणस्थान कहिए, तहां अतिशययुक्त वानी है ॥ १०७ ॥ ऐसे तेरवे सयोग गुणस्थानका अनुपम्य वर्णन कह्या सो समाप्त भया ॥ १३ ॥

टीपः—केवलीकूं मन वचन अर कायके योग है ताते इनकूं सयोग केवली कहिए.

॥ अथ चतुर्दशम अयोग केवली गुणस्थान प्रारंभ ॥ १४ ॥ ३१ सा ॥—

जहां काहूं जीवकों असाता उदै साता नांहि, काहूंकों असाता नांहि साता उदै पाईये ॥
मन वच कायासों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाईये ॥
जामें कर्म प्रकृतीकि सत्ता जोगि जिनकीसि, अंतकाल द्वै समैमें सकल खपाईये ॥
जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रमाण सोइ, चौदहो अयोगी गुणठाना ठहराईये ॥१०९॥

अर्थ—कोई केवलज्ञानी मुनीकूं असाता वेदनी कर्मका उदय रहे अर साता वेदनी कर्मका उदय नही रहे पण सत्तामें तिष्ठे है, तथा कोई केवलज्ञानी मुनीकूं साता वेदनी कर्मका उदय रहे अर असाता वेदनी कर्मका उदय नही रहे पण सत्तामें तिष्ठे है। अर जीव जहां मनयोग, वचन योग, अर कायायोगसे रहित भया है, ताते इनकूं अयोग केवली कहिए, जिसके जसका वर्णन जगतके जीतवेरूप गाइये है। अर जिसमें सयोग केवलीवत् अघातिया कर्मके प्रकृतीकी सत्ता रही है सो अंतकालके दोय समयमें ८५ (पहिले समयमें ७२ अर दुसरे समयमें १३) प्रकृतीका नाश करके मोक्ष पधारे है। सोही चौदहवो अयोग केवली गुणस्थान है, इस गुणस्थानकी स्थिती लघु पंच स्वर (अ इ उ ऋ ऌ) के उच्चारवेकूं जितना काल लागे तितनी है ॥ १०९ ॥

॥ ऐसे चौदहवे अयोग केवली गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ १४ ॥

॥ अब बंधका मूल आश्रव है अर मोक्षका मूल संवर है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल। आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥११०॥

अर्थ—जगतवासी जीव अशुद्धता (अज्ञानता) से भूलमें पड्यो है तिसकी ए चौदह गुणस्थानकी चौदह दशा होय है, यहां तत्व दृष्टीसे देखेतो आश्रव है सो बंधका मुल है अर संवर है सो मोक्षका मूल है ॥ ११० ॥

॥ अब आश्रवकी अर संवरकी जुदी जुदी व्यवस्था कहे है ॥ चौपई ॥—

आश्रव संवर परणति जोलों । जगवासी चेतन तोलों ॥
आश्रव संवर विधि व्यवहारा । दोउ भवपथ शिवपथ धारा ॥ १११ ॥
आश्रवरूप बंध उतपाता । संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता ॥
जा संवरसों आश्रव छीजे । ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११२ ॥

अर्थ—जबतक आश्रवके अर संवरके परिणाम परिणमे है तबतक चेतनरूप ईश्वर जगत निवासी होय रहे है । यहां आश्रवका विधि है सो व्यवहारमें है अर संवरका विधि है सो पण व्यवहारमें है, ये दोय व्यवहार मार्ग है – आश्रव विधि है सो संसारमार्गकी धारा है अर संवराविधि है सो मोक्षमार्गकी धारा है ॥ १११ ॥ संसारमें जे आश्रवरूप अज्ञान है सो कर्मबंधकों उत्पाद (उपजावे) है, अर संवररूप ज्ञान है सो मोक्षपदका दाता है । जिस संवररूप ज्ञानसे आश्रवरूप अज्ञानका क्षय होय है, तिस संवररूप ज्ञानकूं अब नमस्कार करे है ॥ ११२ ॥

॥ अब ग्रंथके अंतमें संवररूप ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगतके प्राणि जीति व्है रह्यो गुमानि ऐसो, आश्रव असुर दुखदानि महाभीम है ॥
ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है ॥
जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम है ॥
संवरको रूप धरे साधे शिव राह ऐसो, ज्ञान पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ११३ ॥

अर्थ—जगतके सब प्राणींकूं जीतिके गुमानी हो रह्या है, ऐसा आश्रव (अज्ञानरूप) राक्षस है सो महा भयानक दुख देनेवाला है। तिसका प्रताप खंडण करनेकूं अर धर्म धारण करनेकूं प्रत्यक्ष संवररूप ज्ञानअधिपति है, सो कर्मरूप महा रोगका नाश करनेकूं बडा हकीम है। तिस संवररूप ज्ञानके प्रभाव आगे समस्त काम क्रोधादिकके अर राग द्वेषादिक कर्मके प्रभाव भागे है, अर नागर (चतुर) तथा अनादि कालसे न पायो ऐसो वे सुखरूप समुद्रकी सीमा है। संवररूपको धरनहार अर मोक्षमार्गको साधनहार, ऐसा जो ज्ञानरूप बादशाह है तिसकूं मेरी तसलीम (बंदना) है ॥ ११३ ॥

॥ इति श्रीबनारसीदासकृत चतुर्दश गुणस्थानाधिकार समाप्त ॥

॥ अत्र ग्रंथ समाप्तीकी अंतिम प्रशस्ती ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

भयो ग्रंथ संपूरण भाखा । वरणी गुणस्थानककी शाखा ॥
वरणन और कहांलों कहिये । जथा शक्ति कही चुप व्है रहिये ॥ १ ॥
लहिए पार न ग्रंथ उदधिका । ज्योंज्यों कहिये त्योंत्यों अधिका ॥
ताते नाटक अगम अपारा । अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ २ ॥
समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होय । ताते कहत वनारसी, पूरण कथै न कोय ॥३॥

॥ अत्र कवी अपनी लघुता कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केहि भांति चक्री कटकसों लरनो ॥
जैसे कोउ परवीण तारू भुज भारू नर, तिरे कैसे स्वयंभू रमण सिंधु तरनो ॥
जैसे कोउ उद्यमी उछाह मन मांहि धरे, करे कैसे कारिज विधाता कोसो करनो ॥
तैसे तुच्छ मति मेरी तामें कविकला थोरि, नाटक अपार मैं कहांलों यांहि वरनो ॥ ४ ॥

॥ अव जीव नटकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे वट वृक्ष एक तामें फल है अनेक, फल फल वहु वीज वीज वीज वट है ॥
वट मांहि फल फल मांहि वीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥
तैसे एक सत्तामें अनंत गुण परयाय, पर्यामें अनंत नृत्य तामेंऽनंत ठट है ॥
ठटमें अनंत कला कलामें अनंत रूप, रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५ ॥
ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उडे सुमति खग होय । यथा शक्ति उद्यम करे, पार न पावे कोय ॥ ६ ॥

चौ०—ब्रह्मज्ञान नभ अंत न पावे । सुमति परोक्ष कहांलों धावे ॥
जिहि विधि समयसार जिनि कीनो । तिनके नाम कहूं अब तीनो ॥ ७ ॥

॥ अब त्रय कवीके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम श्रीकुंदकुंदाऽचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥
ताहीके परंपरा अमृतचंद्र भये तिन्हे, संसकृत कलसा समारि सुख लयो है ॥
प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोयो है ॥
शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहीको भयो है ॥ ८ ॥

॥ अब सुकविका लक्षण कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥ —

अब कछुं कहूं जथारथ बानी । सुकवि कुकवि कथा कहानी ॥
प्रथमहि सुकवि कहावे सोई । परमारथ रस वरणे जोई ॥ ९ ॥
कलपित बात हीए नहि आने । गुरु परंपरा रीत वखाने ॥
सत्यारथ सैली नहि छंडे । मृषा वादसों प्रीत न मंडे ॥ १० ॥
छंद शब्द अक्षर अर्थ, कहे सिद्धांत प्रमान । जो इहविधि रचना रचे, सो है कविसु जान ॥ ११ ॥

॥ अब कुकविका लक्षण कहे है ॥ चौपई ॥—

अब सुनु कुकवि कहों है जैसा । अपराधि हिय अंध अनेसा ॥
मृषा भाव रस वरणे हितसों । नई उकति जे उपजे चितसों ॥ १२ ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आने । परमारथ पथ भेद न जाने ॥

वानी जीव एक करि बूझे । जाको चित जड ग्रंथ न सूझे ॥ १३ ॥
वानी लीन भयो जग डोले । वानी ममता त्यागि न वोले ॥
है अनादि वानी जगमांही । कुकवि वात यह समुझे नांही ॥ १४ ॥

॥ अब वाणीकी व्याख्या कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहू देशमें सलील धारा कारंजकि, नदीसों निकसि फिर नदीमें समानी है ॥
नगरमें ठोर ठोर फैली रहि चहुं ओर । जाके ढिग वहे सोई कहे मेरा पानी है ॥
त्योंहि घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी है ॥
करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनि ऐसो मूढ प्राणी है ॥ १५ ॥
ऐसे कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर । रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और ॥ १६ ॥
वस्तु स्वरूप लखे नही, वाहिज दृष्टि प्रमान । मृषा विलास विलोकिके, करे मृषा गुण गान ॥ १७ ॥

॥ अब मृषा गुण गान कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहे, कहे मुख चंद जो सलेषमाको घरु है ॥
हाडके सदन यांहि हीरा मोती कहे तांहि, मांसके अधर ऊठ कहे विंव फरु है ॥
हाड दंड भुजा कहे कोल नाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ॥
योंहि झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, येते पर कहे हमे शारदाको वरु है ॥ १८ ॥
चौ०—मिथ्यामति कुकवि जे प्राणी । मिथ्या तिनकी भाषित वाणी ॥
मिथ्यामति सुकवि जो होई । वचन प्रमाण करे सब कोई ॥ १९ ॥

वचन प्रमाण करे सुकवि, पुरुष हिये परमान । दोऊ अंग प्रमाण जो, सोहे सहज सुजान ॥२०॥

॥ अब समयसार नाटककी व्यवस्था कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

अब यह बात कहूंहूं जैसे । नाटक भाषा भयो सु ऐसे ॥
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता । अमृतचंद्र टीकाके करता ॥ २१ ॥
समैसार नाटक सुखदानी । टीका सहित संस्कृत वानी ॥
पंडित पढे अरु दिढमति बूझे । अलप मतीको अरथ न सूझे ॥ २२ ॥
पांडे राजमल्ल जिनधर्मी । समयसार नाटकके मर्मी ॥
तिन्हे गरंथकी टीका कीनी । बालबोध सुगम करि दीनी ॥ २३ ॥
इहविधि बोध वचनिका फैली । समै पाइ अध्यातम सैली ॥
प्रगटी जगमांहि जिनवानी । घरघर नाटक कथा वखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरे मांहि विख्याता । कारण पाइ भये बहुज्ञाता ॥
पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने । निसिदिन ज्ञान कथा रस भीने ॥ २५ ॥

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम । तृतिय भगोतिदास नर, कोरपाल गुण धाम ॥२६॥
धर्मदास ये पंच जन, मिलि बैठहि इक ठोर । परमारथ चरचा करे, इनके कथा न और ॥२७॥
कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धंत । कबहूं बिंग बनायके, कहे बोध विरतंत ॥२८॥

॥ अब बिंग विगत कथन ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

चिंतचकोर अर धर्म धुर, सुमति भगौतीदास । चतुर भाव थिरता भये, रूपचंद परकास ॥२९॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारंभ ॥ ४ ॥

कर्त्ता क्रिया कर्मको, प्रगट वखान्यो मूल। अब वरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥१॥

अर्थ—कर्त्ता क्रिया अर कर्म इनिके मूल (रहस्य) का व्याख्यान प्रगट कीयो। अब पाप अर पुण्य ये दोऊ समान् है तिसका अधिकार वर्णन करूं हूं ॥ १ ॥

॥ अव पापपुण्य द्वारविषें प्रथम ज्ञानरूप चंद्रके कलाकूं नमस्कार करे है ॥ कवित्त ॥—

जाके उदै होत घट अंतर, विनसे मोह महा तम रोक ॥
शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक थोक ॥
जाकी कला होत संपूरण, प्रति भासे सब लोक अलोक ॥
सो प्रतिबोध शशि निरखि, बनारसि सीस नमाइ देत पग धोक ॥ २ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानरूप चंद्रमाका उदय होते हृदयमें जो मोहरूप महा अंधकार है, तिस अंधकारका नाश होय है। इस अंधकारका नाश होनेसे शुभकर्म भला है अर अशुभकर्म भला नही ऐसी जो द्विधा है सो सहज मिटि जाय है, अर ये शुभ अशुभकर्म आत्माकूं कर्मबंध करनेवाले है ऐसे एकरूप दीखे है। अर इस ज्ञानरूप चंद्रमाकी कला जब संपूर्ण प्रगट होय है, तब समस्त लोकालोक प्रगट दीसे है। ऐसो प्रबोध केवलज्ञानरूप चंद्रमाकूं अवलोकन करि, बनारसीदास मस्तक नमाइके तिनके चरणकूं प्रणाम करे है ॥ २ ॥

॥ अब मोहते शुभ अर अशुभ कर्मकी द्विधा दीखे है सो एकरूप दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा—

जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन, एक दीयो वामनकूं एक घर राख्यो है ॥
बामन कहायो तिन मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन मद्यमांस चाख्यो है ॥
तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुन्य नाम भिन्न भाख्यो है ॥
दुहूं मांहि दोर धूप दोऊ कर्म बंध रूप, याते ज्ञानवंत कोउ नांहि अभिलाख्यो है ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे कोई चांडालके स्त्रीकूं दोय पुत्र हुये, तिने एक पुत्र ब्राम्हणकूं दीया अर एक पुत्र अपने घरमें राख्या है। जो ब्राह्मणकूं दीया तिसकूं ब्राह्मण कहवायो सो पुत्र मद्य मांस खानेका त्याग करे है, अर जो चांडालके घरमें रहा तिस पुत्रकूं चांडाल कहवायो सो मद्यमांस भक्षण करे है। तैसे एक वेदनीय कर्मके दोय पुत्र है, तिसमें एक पाप अर एक पुन्य ऐसे नाम मात्र जुदा जुदा कह्या है परंतु दोनूंमें वेदनाकी सत्ता (खेदसंताप) है अर दोनूंकाहूं कर्मबंध करनेका स्वभाव है, तातैं ज्ञानवंत मनुष्य पाप अर पुन्य इन दोनूंकाहूं अभिलाष (इच्छा) नहि करे है ॥ ३ ॥

॥ अब गुरुने पाप अर पुन्यको समान् कह्यो तिस ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥ चौपाई ॥—

कोऊ शिष्य कहे गुरु पाही। पाप पुन्य दोऊ सम नाही ॥
कारण रस स्वभाव फल न्यारो। एक अनिष्ट लगे इक प्यारो ॥ ४ ॥

अर्थ—कोई शिष्य गुरुकूं पूछे की हे स्वामी ? आपने पाप अर पुन्य दोनूंको समान् कह्या परंतु ते समान् तो दीखेही नही है। दोनूके कारण, रस, स्वभाव, अर फल च्यारोहूं न्यारे न्यारे है अर दोनूंमें एक अनिष्ट (अप्रिय) है तथा एक इष्ट (प्रिय) है सो दोनूं एक कैसे होय ॥ ४ ॥

॥ अब शिष्य पापपुन्यके कारण, रस, स्वभाव, अर फल, जुदे जुदे कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

संकलेश परिणामनिसों पाप बंध होय, विशुद्धसों पुन्य बंध हेतु भेद मानिये ॥
पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदै साता मिष्ट रस भेद जानिये ॥
पाप संकलेश रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दुहुंको स्वभाव भिन्न भेद यों वखानिये ॥
पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय, ऐसो फल भेद परतक्ष परमानिये ॥ ५ ॥

अर्थ—संक्लेश (तीव्र कषाय) के परिणामते पापबंध होय है, अर विशुद्ध (मंद कषाय) के परिणामते पुन्यबंध होय है ऐसे पापका कारण (हेतू) जुदा है तथा पुन्यका कारण भी जुदा है । पापका उदय होते असाता उत्पन्न होय तिसका रस कटुक (दुःख) होय है, अर पुन्यका उदय होते साता उत्पन्न होय तिसका रस मिष्ट (सुख) होय है ऐसे पापका रस जूदा है तथा पुन्यका रसभी जुदा है । पापका स्वभाव तीव्र कषाय है अर पुण्यका स्वभाव मंद कषाय है, ऐसे पाप अर पुन्यका स्वभाव जुदा जुदा है । पापते नरकपश्वादि कुगतीमें जन्म होय है अर पुन्यते स्वर्गमनुष्यादि सुगतीमें जन्म होय है, ऐसे पापकर्मका तथा पुन्यकर्मका फलभी जुदा जुदा है इस प्रकार कारण, रस, स्वभाव अर फल ये च्यार भेद पाप पुन्यमें प्रत्यक्ष प्रमाण जुदे जुदे दीखे है सो एक कैसा होय ? ॥ ५ ॥

॥ अब शिष्यके प्रश्नकूं गुरु उत्तर कहे है पापपुन्य एकत्व करण ॥ सवैया ३१ ॥—

पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये ॥
संकलेश विशुद्धि सहज दोउ कर्मचाल, कुगति सुगति जग जालमें विसेखिये ॥

कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात मांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये ॥
दोउ महा अंध कूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहुंको विनाश मोक्ष मारगमें देखिये ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसा पापका बंध होय है तैसाही पुन्यका पण बंध होय है अर जहां बंध है तहां मुक्ति नही अर मुक्ति मार्ग रोकनेको कारण दोऊ बंध है ताते पाप पुन्यको कारणभी समान् है, तथा जे दुःख रस पाप अर सुख रस पुन्य ये दोऊ रस पुद्गलकेही है ताते पाप अर पुन्य इन दोऊके रसभी एक समान् है। संक्लेश स्वभाव पाप है तथा विशुद्धि स्वभाव पुन्य है दोऊकेहूं स्वभाव कर्मकी वृद्धि करानेवाले है तातै दोऊका स्वभावभी एक समान् है, पापका फल कुगति है अर पुन्यका फल सुगति है तथा पापपुन्यते कर्मका क्षय नहि होय है जगत स्थिर करानेवाले जाल है ताते पापपुन्यका फलभी एक समान् है। गुरु कहे है हे शिष्य ? तुझै जे पापपुन्यमें (कारण, रस, स्वभाव, फल,) भेद दीखे है सो अज्ञानपणा ते दीखे है, अर जब अज्ञानभाव दूर करि ज्ञानदृष्टीते देखिये तब पापपुन्यमें द्वैतभाव दीखेही नही ये आत्माके एक बाधक बंधही है। इन दोऊते आत्माका अवलोकन नही होय ताते ये महा अंध कूप है तथा ये दोनूंहूं कर्म है ते बंधरूप है, अर मोक्षमार्गमें इन दोऊका त्याग कह्या है ताते ये दोऊ समान् है ॥ ६ ॥

॥ अब मोक्ष मार्गमें पापपुन्यका त्याग कह्या तिस मोक्ष पद्धतीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

सील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है ॥
कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥

ऐसी बंध पद्धति वखानी वीतराग देव, आतम धरममें करत त्याग जोग है ॥
भौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया महा, मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य, तप, पंच इंद्रिय निग्रह, व्रत, दान, पूजादिक, इह पुन्य बंधके कारण है, अर अब्रह्म, (कुशील) प्रमाद, इंद्रियपुष्टता, अव्रत, लोभ कषाय, विषयभोग, इह पापके कारण है। इन दोऊमें एक शुभरूप कर्म है अर अशुभरूपकर्म है, पण आत्माके हितका मूल विचार करिये तो दोऊही कर्मरूप रोग है। ऐसे बंधके परिपाठीमें वीतराग देवनें कह्या है, ताते आत्मीक धर्ममें (मोक्षमार्गके पद्धत्तीमें) पुन्य अर पाप दोनूंहूं कर्म त्यागने योग्य है। अर संसार समुद्रसे तारनेवाला रागद्वेषकूं हरनेवाला तथा महा मोक्षके सुखकूं देनेवाला एक शुद्धोपयोग (आत्मानुभव) है सो ग्रहण करणे योग्य है ॥ ७ ॥

॥ अब अर्धा सवैयामें शिष्य प्रश्नकरे अर अर्धा सवैयामें गुरु उत्तर कहे है ॥ ३१ सा ॥—

शिष्य कहे स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषेध मेरे संशे मन मांहि है ॥
मोक्षके सधैया ज्ञाता देश विरती मुनीश, तिनकी अवस्था तो निरावलंब नांहि है ॥
कहे गुरु करमको नाश अनुभौ अभ्यास, ऐसो अवलंब उनहीको उन मांहि है ॥
निरुपाधि आतम समाधि सोई शिव रूप, और दौर धूप पुदगल पर छांही है ॥ ८ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे है की हे स्वामी ? आप मोक्ष मार्गमें शुभ अर अशुभ (पुन्य अर पाप) के दोनूं क्रियाका निषेध कीया सो, तिसका मेरे मनमें संशय है। मोक्षमार्गके साधन करनेवाले ज्ञाता जे अणुव्रती श्रावक तथा महाव्रती मुनी है, सो निरावलंब नही है ते तो क्षमादिक वा तपादिक शुभक्रिया करे ही है अर आप उस शुभ क्रियाका निषेध कैसे कीया ?। तब गुरू उत्तर कहे है की

ज्ञानी जो शुभक्रिया करे है सो बाह्य देखनेमें मात्र आवे है परंतु कर्मका नाश होना है सो आत्मानुभवके अभ्यासतेही होय है, ताते ऐसा आत्मानुभवका अभ्यास ज्ञानी अपने ज्ञानमें निरंतर करे है सो बाह्य दीखनेमें नहि आवे है। आत्मानुभवमें उपाधि (राग, द्वेष, अर इच्छा) नही है आत्माकी समाधि (स्थिरपणा) है सोही मोक्ष स्वरूप है, और पाप पुन्य तो पुद्गलकी छाया है सो खेद संता है ॥ ८ ॥

॥ अब शुभक्रियामें बंध तथा मोक्ष ये दोनूं है सो स्वरूप बतावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

मोक्ष स्वरूप सदा चिन्मूरति, बंध महि करतूति कही है ॥
जावत काल वसे जह चेतन, तावत सो रस रीति गही है ॥
आतमको अनुभौ जबलों तबलों, शिवरूप दशा निवही है ॥
अंध भयो करनी जब ठाणत, बंध, विथा तब फैलि रही है ॥ ९ ॥

अर्थ—चिन्मूरति (आत्मा) हैं सो सदा मोक्षस्वरूप (अबंध) है, परंतु क्रिया सदा बंध करनेवाली है। आत्मा जितने कालतक जहां वसे है, तितने कालतक तहां तैसाही रस ग्रहण करे हे। चेतन जहांतक आत्मानुभवमें रहे, तहांतक शुभ क्रिया करे तोहूं मोक्ष स्वरूपमें रहे अर अबंध कहवाय है। अर जब आत्मस्वरूपकूं भूलि अंध होय क्रिया करे है, तब क्रियाके रस (बंध) का फैलाव होय है॥९॥

॥ अब मोक्ष प्राप्तीका कारण अंतर दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा ॥—

अंतर दृष्टि लखाव, अर स्वरूपको आचरण। ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥१०॥

अर्थ—जो पर स्वरूपमें आत्मपणाका विचार है सो त्याग कर अंतर ज्ञान दृष्टिते आत्माकूं देखना अर अपने ज्ञान तथा दर्शन स्वरूपमें स्थिर रहना। यही परमात्माका स्वभाव है, सो येही परमात्माका स्वभाव मोक्षप्राप्तिका सदा कारण (उपाय) है ॥ १० ॥

॥ अब बंध होनेका कारण बाह्य दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा ॥—

कर्म शुभाशुभ दोय, पुद्गलपिंड विभाव मल। इनसों मुक्ति न होय, नांही केवल पाइये॥ ११ ॥

अर्थ—शुभकर्म अर अशुभकर्म ये दोऊ कर्म है ते द्रव्यकर्म है, अर राग द्वेषादिक है ते भावकर्म है। द्रव्यकर्म अर भावकर्म जबतक है तबतक आत्माकूं मुक्ति नही होय अर केवलज्ञान प्राप्त होय नही ॥ ११ ॥

॥ अब ये बात ऊपर शिष्य प्रश्न करे अर गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शिष्य कहे स्वामी अशुभक्रिया अशुद्ध, शुभक्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी ॥
गुरु कहे जबलों क्रियाके परिणाम रहे, तबलों चपल उपयोग जोग धरनी ॥
थिरता न आवे तौलों शुद्ध अनुभौ न होय, याते दोउ क्रिया मोक्ष पंथकी कतरनी ॥
बंधकी कैरया दोउ दुहूमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२ ॥

अर्थ—कोऊ शिष्य गुरूकूं पूछे हे स्वामी ? आप–हिंसादिक पापकूं अशुभ क्रिया कही सो तिसकूं अशुद्ध क्रिया क्यों न कही, अर दयादिक पुन्यकूं शुभ क्रिया कही सो तिसकूं शुद्ध क्रिया क्यों न कही। तब गुरु कहे है हे शिष्य ? जबतक क्रियाके परिणाम रहे है, तबतक आत्माके ज्ञान अर दर्शन उपयोग तथा मन वचन अर कायाके योग चंचल रहे है। अर जबतक उपयोग अर योग स्थिर नहि रहे है तबतक आत्माका शुद्ध अनुभव नहि होय है, ताते पाप अर पुन्यके क्रियाको अशुभ अर शुभ कही अशुद्ध तथा शुद्ध नहि कही ये दोनूंही क्रिया मोक्षमार्गकूं कतरनी समान् कतरनहारी है। अर दोनूंही क्रिया कर्मबंध करनहारी है ताते दोनूंमें एकहूं भली नही है, [जो संसारमें कर्मबंध

करे सो काहेकी भली है] ये दोनूंहूं क्रिया मोक्षमार्गके विचारमें बाधक है याते दोनूंहूं क्रियाका निषेध कीया ॥ १२ ॥

॥ अव ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मुकतिके साधककों बाधक करम सव, आतमा अनादिको करम मांहि लुक्यो है ॥
येतेपरि कहे जो कि पापबुरो पुन्यभलो, सोइ महा मूढ मोक्ष मारगसों चुक्यो है ॥
सम्यक् स्वभाव लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमंगि चल्यो काहूंपैं न रुक्यो है ॥
आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप व्हैके कारिजको ढूक्यो है ॥ १३ ॥

अर्थ—आतमा मुक्तिका साधक है तिसको सब कर्म बाधक (घातक) है, ताते आत्मा अनादि कालते कर्ममें दबि रह्या है। ऐसे होतेहूं जो कोई कहे पाप बुरा है अर पुन्य भला है, सो महा मूढ है मोक्ष मार्गसे चूक्या है। अर जब कोई जीवके सम्यक्तकी प्राप्ति होय हृदयमें ज्ञान प्रगट होय है, तब सो जीव उर्ध्व गमन करे है कोई कर्मादिकते रुके रहें नही है। अर आरसी समान् उज्जल ऐसा केवलज्ञान कारण प्राप्त होय, सिद्धरूप कार्यकूं आपही करें है ऐसे बनारसीदास कहे है ॥ १३ ॥

॥ अव ज्ञानका अर कर्मका व्यवरा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोलों अष्ट कर्मको विनाश नांही सरवथा, तोलों अंतरातमामें धारा दोई वरनी ॥
एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥
इतनो विशेषजु करम धारा वंध रूप, पराधीन शकति विविध वंध करनी ॥
ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

अर्थ—इस जीवके जबतक अष्ट कर्मका नाश सर्वस्वी नहि होय है, तबतक मोक्ष नहि होय अर अंतरात्मामें दोय धारा प्रवर्ते है। एक ज्ञानकी धारा है अर एक शुभ अशुभ कर्मकी धारा है, इस दोऊ धाराकी प्रकृति (स्वभाव) न्यारी न्यारी है तथा इसका स्थान पण न्यारा न्यारा है। इसमें इतना विशेष भेद है की जो कर्मकी धारा है सो बंधन रूप है, अर शक्तीकूं पराधीन करनेवाली है तथा प्रकृतिबंध स्थितिबंध प्रदेशबंध अर अनुभागबंध ऐसे नाना प्रकारका अगाने बंध करानेवाली है। अर जो ज्ञान धारा है सो मोक्ष स्वरूप है ते मोक्षकी करनहारी है, तथा कर्म दोष मात्रकूं हरनहारी अर भवरूप समुद्रकूं तरनहारी नाव समान् है ॥ १४ ॥

॥ अव मोक्ष प्राप्ति ज्ञान अर क्रिया ते होय ऐसा जो स्याद्वाद है तिनकी प्रशंसा करे है ॥ २१ सा ॥—

समुझे न ज्ञान कहे करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ॥
ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ डूबे है चहलमें ॥
जथा योग्य करम करे पैं ममता न धरे, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें ॥
तेई भव सागरके उपर व्है तरे जीव, जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें ॥१५॥

अर्थ—जे क्रियावादी है ते कहे है की ज्ञान भला नही जिसमें संशय उपजे है अर संशयसे जीव न इधर न उधर ऐसी अवस्था बने है ताते क्रियाके करनेसेही मोक्ष होय है, ऐसे ज्ञान विना क्रियासे मोक्षप्राप्ति माननेवाले जीव मिथ्यात्वके गहलसे विकल भया संसारमें भ्रमे है। अर जे ज्ञान-वादी है ते ज्ञानका पक्ष ग्रहण कर कहे की बंध तथा मोक्ष प्रकृतिमेंही है अर आत्मा सदा अबंध है, ऐसे क्रिया विना ज्ञानसे मोक्षप्राप्ति माननेवाले जीव क्रियाहीन होय स्वच्छंद (मर्जी माफक) प्रवर्ते है

तेहूं संसाररूप कर्दममें डूबे है। अर स्याद्वादी (जैन सिद्धांत शास्त्रके पारगामी) है सो अपने पदस्थके अनुसार क्रिया करे है पण क्रियामें आतमपणाकी बुद्धि नहि धरे है, ज्ञान अर आत्मविचारमें सावधान रहे है। तेही जीव भव संसार रूप सागरसे तरे है, जे स्याद्वादके महलमें रहे है ते ॥ १५ ॥

॥ अब मूढके क्रियाका तथा विचक्षणके क्रियाका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे मतवारो कोउ कहे और करे और, तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरत है ॥
अशुभ करम बंध कारण वखाने माने, मुकतीके हेतु शुभ रीति आचरत है ॥
अंतर सुदृष्टि भई मूढता विसर गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरत है ॥
करणीसों भिन्न रहे आतम स्वरूप गहे, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करत है ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे कोई मदिरा प्राशन करनेते मनुष्य बोले और अर करे तो और, तैसे मूढ प्राणी विपरीत (उलटे) स्वभावकूं धरे है। अशुभ क्रियाकूं तो कर्मबंधका कारण समझे है, अर मुक्ति होनेके कारण कर्मबंध करनेवाली शुभ क्रियाकूं करे है। अर ज्ञानीके अंतरंगमें सम्यक्दृष्टी प्रगट हुई है ताते मूढपणा जाय है, अर ज्ञानके उद्योतसे भ्रम (मिथ्यात्व) रूप अंधकारकूं हरे है। अर शुभ क्रियासे भिन्न होकर आत्मस्वरूपको ग्रहण करके, आत्मानुभवके आरंभ रूप रसमें रमे (क्रिडा करे) है ॥१६॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ४ ॥

॥ अथ समयसार नाटकको पंचम आश्रवद्वार प्रारंभ ॥ ५ ॥

पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप। अव आश्रव अधिकार कछु, कहूं अध्यातम रूप ॥१॥

अर्थ—पाप पुन्यकी एकता है सो अगम अर अनुपम है तिसका वर्णन कीया। अव आश्रवका अर अध्यात्म स्वरूपका अधिकार कछुक कहूंहूं ॥ १ ॥

॥ अव आश्रव सुभटको नाश करनहार ज्ञान सुभट है तिस ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ ३१ सा ॥—

जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे वल तोरिके ॥
महा अभिमानी ऐसो आश्रव आगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाडो भयो मूछ मोरिके ॥
आयो तिहि थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभठ सवायो वल फेरिके ॥
आश्रव पछाऱ्यो रणथंव तोडि डाऱ्यो ताहि, निरखी वनारसी नमत कर जोरिके ॥ २ ॥

अर्थ—जे जे जगतमें रहणार त्रस तथा थावर लहान मोठे जीव है, ते ते समस्तके वलकूं तोडिके आश्रव जोद्धाने आपने वश करि राख्या है। ऐसा महा अभिमानी आश्रवरूपी अगाध जोद्धा है, सो जोद्धा जगतमें रणथंभकूं रोपि मूछ मरोडि ठाडो भयो है अर जगत्रयमें मोकूं जीतनेवाला कोऊ नहि ऐसा कहे है। कोई काल पाय तिस स्थानकमें अचानक महा तेजस्वी ऐसा, ज्ञान नामा सुभट (आश्रवका प्रतिपक्षि) सवायो वल फेरिके आश्रवसे युद्ध करनेकूं आयो। अर आवत प्रमाणही आश्रवकूं पछाड्यो तथा रणथंभ तोड डाऱ्यो, ऐसे ज्ञानरूप सुभटको देखिके वनारसीदास हाथ जोडिके नमस्कार करे है ॥ २ ॥

॥ अव द्रव्यआश्रवका भावआश्रवका अर सम्यक्ज्ञानका लक्षण कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं, पुद्गल जीव प्रदेश गरासै ॥
भावित आश्रव सो कहिये जहिं, राग विमोह विरोध विकासे ॥
सम्यक् पद्धति सो कहिये जहिं, दर्वित भावित आश्रव नासे ॥
ज्ञानकला प्रगटे तिहि स्थानक, अंतर बाहिर और न भासे ॥ ३ ॥

अर्थ—जहां जीवके सर्व प्रदेशकूं पुद्गलद्रव्य आच्छादित करे सो द्रव्य आश्रव कहिये । जहां द्रव्य आश्रवके प्रसंगते आत्मामें रागद्वेष अर मोह उत्पन्न होय सो भाव आश्रव कहिये । जहां द्रव्य आश्रवका अर भाव आश्रवका अभाव होय सो आत्माका सम्यक् स्वरूप कहिये । जहां आत्मामें ज्ञान कला उपजे तहां अंतर अर बाहिर ज्ञान शिवाय अन्य कोई भासेही नही ॥ ३ ॥

॥ अव ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

जो द्रव्याश्रव रूप न होई । जहां भावाश्रव भाव न कोई ॥
जाकी दशा ज्ञानमय लहिये । सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ४ ॥

अर्थ—जो द्रव्याश्रवरूप होय नही अर जहां भावाश्रवका परिणाम पण कोऊ होय नहि अर जिसकी दशा ज्ञानमय होय सोही ज्ञाता (ज्ञानी) जीव आश्रव रहित कहिये ॥ ४ ॥

॥ अव ज्ञाताका सामर्थ्य (निराश्रवपणा) कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिणामनकी ममता हरतु है ॥
मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव, तिनके विनाशवेको उद्यम धरतु है ॥

याही भांति पर परणतिको पतन करे, मोक्षको जतन करे भौजल तरतु है ॥
ऐसे ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावे सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५ ॥

अर्थ—मन प्रत्यक्ष जाने ऐसे बुद्धिपूर्वक उपजे जे वर्तमान कालके रागादिक अशुद्ध परिणाम, तिस परिणामकी ममता छोडे (तिस परिणामकूं आत्मपणा नहि माने) है। अर मन नहि जाने तथा बुद्धिसे ग्रहण करने नहि आवे ऐसे अशुद्ध परिणामकूं अनागत कालमें नहि होने देवे सावधान रहे, अर अतीत कालके हुवे अशुद्ध परिणामका नाश करनेकूं उद्यम करे है। इस प्रकार पर वस्तूके परिणामकूं छोडे है, तिसते छूटनेका यत्न करे है ते भवसंसार समुद्रसे तरे है। ऐसे जे ज्ञानवंत है ते सदा निराश्रवी है, तिस ज्ञानीकी प्रशंसा प्रवीण मनुष्य निरंतर करे है ॥ ५ ॥

॥ अब गुरूने ज्ञानीकूं निराश्रवी कह्या ते ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों जगमें विचरे मतिमंद, स्वछंद सदा वरते बुध तैसे ॥
चंचल चित्त असंजम वैन, शरीर सनेह यथावत जैसे ॥
भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करे जहां ऐसे ॥
पूछत शिष्य आचारजकों यह, सम्यकवंत निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे जगतमें अज्ञानी जन स्वच्छंद (मरजी मुजब) वर्तन करे है तैसे ज्ञानीजन पण सदाकाल वर्तन करे है। सो—चित्तकी चंचलता, असंयम वचन, अर शरीरमें स्नेह, अज्ञानीके समान् ज्ञानी हूं करे है। तथा भोगमें संयोग, परिग्रहका संग्रह, अर परमें मोह विलास, (ममता भाव) ये

समस्त ज्ञानीकेहूं अज्ञानीके समान् है ऐसा ज्ञानीका अर अज्ञानीका एकसार वर्तन देख । शिष्य गुरूकूं पूछे है हे स्वामी, सम्यक्तवंतकूं निराश्रवी आप कैसे कह्यां ॥ ६ ॥

॥ अब शिष्यके प्रश्नकूं गुरू उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पूरव अवस्था जे करम बंध कीने अब, तेई उदै आई नाना भांति रस देत हैं ॥
केई शुभ साता केई अशुभ असाता रूप, दुहूंमें न राग न विरोध समचेत हैं ॥
यथायोग्य क्रियाकरे फलकी न इच्छाधरे, जीवन मुकतिको बिरद गहि लेत हैं ॥
यातें ज्ञानवंतको न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये शुद्धता समेत हैं ॥ ७ ॥

अर्थ—पूर्व कालमें अज्ञान अवस्थाविषें जे जे कर्मबंध कीया होय, अब ते ते कर्म वर्तमान् कालमें उदयकूं आय नाना प्रकार रस (फल) देवे है। तिसमें कित्येक कर्म शुभ है ते सुख देवे है अर कित्येक कर्म अशुभ है ते दुःख देवे है, परंतु इन दोनूं जातके कर्ममें ज्ञानीकी प्रीति अर द्वेष नहि है समान् चित्त राखे है। अर ज्ञानी अपने पदस्थ योग्य क्रिया करे है पण तिस क्रियाके फलकी इच्छा नहि धरे है, संसारमें है तोहूं मुक्त जीवके समान् देहादिकतें अलिप्त रहे है ऐसा बिरद संभाले है। ताते ज्ञानवंतको तो कोऊही आश्रव कहे नही, अर ज्ञानवंत है सो मूढता रहित तथा आत्म अनुभवकी शुद्धता सहित वर्तें है ॥ ७ ॥

॥ अब राग द्वेप मोह अर ज्ञानका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

जो हित भावसु राग है, अहित भाव विरोध। भ्रमभाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥८॥

अर्थ—जो हितरूप परिणाम सो राग (प्रीति) है अर जो अहितरूप परिणाम सो विरोध (द्वेष) है। पर पदार्थमें आत्मपणाका भ्रमरूप परिणाम सो मोह है अर राग द्वेष तथा मोहमल रहित निर्मल परिणाम ते सम्यक्ज्ञान है ॥ ८ ॥

॥ अब राग द्वेष अर मोहका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल। येई कर्म बढाइके, करे धरमकी भूल ॥ ९ ॥

अर्थ—राग द्वेष अर मोह है सो आत्माकूं मल (दोष) है अर ये दोष आश्रवका मूल है। अर येई आश्रव कर्मको बंधाइ करि धर्म (आत्मस्वरूप) को भुलाइ देवे है ॥ ९ ॥

॥ अब ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे हैं ॥ दोहा ॥—

जहां न रागादिक दशा सो सम्यक् परिणाम। याते सम्यक्वंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥१०॥

अर्थ—जहां राग द्वेष अर मोह अवस्था नाहि है सो सम्यक् परिणाम है। यातें सम्यक्वंतको निराश्रव नाम कह्या है ॥ १० ॥

॥ अब ज्ञाता निराश्रवपणामें विलास करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे कोई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणये हैं ॥
जिन्हके सुदृष्टीमें न राग द्वेष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनूं जीति लये हैं ॥
तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं ॥
तेई बंध पद्धति विडारि पर संग झारि, आपमें मगन व्हे के आपरूप भये हैं ॥११॥

अर्थ—जे कोई निकट भव्यराशिके जीव है, ते मिथ्यात्व बुद्धिकूं भेदि करि स्वस्वरूप (ज्ञान स्वभाव) में परिणमें है। जिन्हके ज्ञानरूपी दृष्टीमें राग द्वेष अर मोह ये होय नहि, अर आत्मस्वरूप आवलोकनतें तीनोंकूं जीति लिया है। अर पंधरा प्रमाद तजि अपने देहकूं शुद्ध कर मन वचन अर देहके योगकूं रोके है, तथा शुद्धोपयोग (दर्शन अर ज्ञान उपयोग) में मिलि गये है। तेई सम्यक्‌ज्ञानी कर्मबंधके मार्गकूं नाश कर पर वस्तुके संगकूं छांडे है, अर आत्मस्वरूपमें मग्न होयके आत्मरूप होय है ऐसे सम्यग्ज्ञानीका विलास है ॥ ११ ॥

॥ अब ज्ञाताके क्षयोपशम भावते तथा उपशम भावते चंचलपणा है सो कहे है॥ २१ ॥ सा—

जेते जीव पंडित क्षयोपशमी उपशमी, इनकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है ॥
खिण आगिमांहि खिण पाणिमांहि तैसे येउ, खिणमें मिथ्यात खिण ज्ञानकला भासी है ॥
जोलों ज्ञान रहे तोलों सिथल चरण मोह, जैसे कीले नागकी शकति गति नासी है ॥
आवत मिथ्यात तव नानारूप बंध करे, जेउ कीले नागकी शकति परगासी है ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षयोपशम भावते अर उपशम भावते, ज्ञानी जीवकी अवस्था लुहारकी सांडसी समान् होय है। जैसे लुहारकी सांडसी लोहकूं ग्रहण करि गरम करवा क्षणमें अग्निमें प्रवर्ते है अर लोहकूं ठंडो करवा क्षणमें पाणीमें प्रवर्ते है, तैसे ये क्षयोपशमी अर उपशमी जीवकूं क्षणमें मिथ्यात्व भाव प्रगट होय अर क्षणमें ज्ञानकला प्रकाशमान् रहे है। जबतक ज्ञानकला प्रकाशमान् रहे है तबतक चारित्र मोह कर्मकी पचीस प्रकृति सिथल होय रहे है, जैसे मंत्रते वा वनस्पत्यादि जडीते सर्पकी

शक्ति अर गति सिथल होय है। अर जब मिथ्यात्व भावका उदय आवे है तब नाना प्रकार कर्मबंध करे है, जैसे सर्पके उपरका मंत्र निकालनेसे शक्ति अर गति फेर प्राप्त होय है तैसे जानना॥ १२ ॥

॥ अब ज्ञानके शुद्धपणाकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

यह निचोर या ग्रंथको, यहे परम रस पोख। तजे शुद्धनय वंध है, गहे शुद्धनय मोख ॥१३॥

अर्थ—इस समयसार नाटक ग्रंथका येही रहस्य (भावार्थ) है अर येही उत्कृष्ट रसका पुष्ट करनेवाला है की। जो शुद्ध नयकी रीत छोडे तो बंध है अर शुद्ध नयकी रीत ग्रहण करे तो मोक्ष है ॥ १३ ॥

॥ अब जीवके बाह्य विलास अर अंतर विलास बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, व्है रह्यो वहिरमुख व्यापत विषमता ॥
अंतर सुमति आई विमल वडाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता ॥
शुद्धनै निवास कीनो अनुभौ अभ्यास लीनो, भ्रमभाव छांडि दीनो भीनोचित्त समता ॥
अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलंबि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

अर्थ—त्रैलोक्यमें कर्मरूप चक्र (शैन्य) फिरे है तिसमें जगवासी जीव पण फिर रह्यो है, ताते बहिर्मुख (बाह्य देह विषय भोगके सुख दुखका ग्राहक) होय अंतर दृष्टीसे आत्माका स्वरूप न जाण्यो अर कहां इष्ट संयोग तथा कहां अनिष्ट संयोग इनसे जीवमें विषमता (अशुद्धता) व्याप्त हुई है। अर जब अंतरंगमें सुमति आय आत्मस्वरूपके निर्मल प्रभुताकूं प्राप्त होय है, तब देहकी प्रीति तूटे है तथा राग द्वेष छूटे है। जैसा शुद्ध नयसे आत्म स्वरूप कह्या तैसा आत्मस्वरूपमें उपयोग

लगावे अर आत्मानुभवका अभ्यास करे है, ताते मिथ्यात्व भाव छूटे है अर चित्त समतामें लीन होय है। अर अनादि अनंत काल सूधी जिस स्वरूपमें दूजा विकल्प नहि पावे ऐसा, अचल पद अवलंबन करि अपने आत्म स्वरूपमें रमनेवाला जो रमता राम (आत्मा) है ताकूं अवलोके है ॥ १४ ॥

॥ अब आत्माका शुद्धपणा सम्यक्‌दर्शन है तिसकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके परकाशमें न दीसे राग द्वेष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है ॥
तिहुं काल जामें प्रतिबिंबित अनंतरूप, आपहूं अनंत सत्ता अनंततें सरस है ॥
भावश्रुत ज्ञान परमाण जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां वाणीको परस है ॥
अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐसो सम्यक् दरस है ॥ १५ ॥

अर्थ—शुद्ध आत्माके प्रकाशमें राग द्वेष अर मोह तो नही दीसे है, अर आश्रव मिटे है तथा बंधका त्रास पण नहि होय है। अर शुद्ध आत्माके प्रकाशमें तीन काल संबंधी पदार्थोंका अनंत स्वरूप प्रतिबिंबित होय है, तथा आपहू अनंत स्वरूप है अर सत्ता (ज्ञान) हूं अनंतते सरस (अधिक) है तिस ज्ञानके जे अनंत पर्याय है ते सर्व धर्म (गुण) है । अर आत्मवस्तुकूं भावश्रुतज्ञान प्रमाणते विचार करिये तो अनुभव गोचर है, परंतु द्रव्यश्रुत (अक्षर रूप वाणी) ते आत्मवस्तु अनुभवमें नहि आवे है। अर आत्मवस्तु अतुल अखंड अचल अविनाशी अर ज्ञानज्योतिका निधान है, तथा चिदानंद (ईश्वर) स्वरूप है ऐसा सम्यक् दर्शन है सो जानना॥ १५ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको पंचम आश्रव द्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ ५ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको छठो संवर द्वार प्रारंभ ॥ ६ ॥

॥ दोहा—आश्रवको अधिकार यह, कह्या जथावत् जेम ।
अब संवर वर्णन करूं, सुनहु भविक धरि प्रेम ॥ १ ॥

अर्थ—अब आश्रवके अधिका स्वरूप यथावत (जैसा है तैसा) कह्या । अब संवरका स्वरूप कहूंहूं सो भविजन हो तुम प्रेम धरिके श्रवण करो ॥ १ ॥

॥ अब संवर द्वारके आदिमें, ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आश्रव महातम अखंड अंडवत है ॥
ताको विसतार गिलिवेकों परगट भयो, ब्रहमंडको विकाश ब्रहमंडवत है ॥
जामें सब रूप जो सबमें सब रूपसों पैं, सबनिसों अलिप्त आकाश खंडवत है ॥
सोहै ज्ञानभान शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत है ॥२॥

अर्थ—आत्माका अहित करनेवाला अर आत्म स्वरूप रहित ऐसे, आश्रवरूप महा अंधःकारने अखंड अंडाके समान् जगतके सर्व आत्माकूं सब तरफते घेर राख्या है। तिस अंधःकारकें विस्तारका नाश करनेकूं प्रत्यक्ष ज्ञानका प्रकाश ब्रह्मांड (सूर्य) वत् है, सो समस्त ब्रम्हांड (त्रैलोक्य) कूं प्रकाश करनेवाला है। तिस ज्ञानमें समस्त पदार्थोंके आकार झलके है अर आपहूं सब पदार्थोंके आकाररूप होय रहे है, तथापि समस्त पदार्थोंसे आकाशके प्रदेश समान् अलिप्त है। सो ज्ञानरूप सूर्य शुद्ध संवरको भेष धरे है, तिसके प्रकाशकूं हमारो दंडवत है ॥ २ ॥

॥ अब ज्ञानसे जड अर चेतनका भेद समझे तथा संवर होय है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ २३ सा ॥—

शुद्ध सुछंद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा ॥
अंतर भेद स्वभाव विभाव, करे जड चेतन रूप दुफारा ॥
सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचे तिन्हको परसंग सहारा ॥
आतमको अनुभौ करि ते, हरखे परखे परमातम धारा ॥ ३ ॥

अर्थ—यो ज्ञान है सो शुद्ध कहिये पर स्वभाव रहित है अर स्वछंद कहिये आपका स्वरूप बतावनहार है अर अभेद कहिये एकरूप है इसमें कोई दुसरा रूप नहि है अर अबाधित कहिये प्रमाणते अर नयते बाधा नहि पावे ऐसा अखंडित है, तिस भेद ज्ञानकूं कमोतके समान् तीक्ष्णा आरा है। तिस आराते स्वस्वभावका अर परस्वभावका भेद होय है, तथा अनादि कालते मिल्या हुवा देह अर आत्मा तिनका दुफारा करे है । ऐसा भेद करनहारा ज्ञान जिसके हृदयमें उपज्या है, तिसकूं देहादिक पर वस्तुके संगका साह्य नहि रुचे है। सोही जीव आत्मानुभवके रुचि करि हर्षित होय है, तथा परमात्माके धारा (स्वरूप) की परिक्षा करे हैं ॥ ३ ॥

॥ अब सम्यक्तके सामर्थ्यते सम्यग्ज्ञानकी अर आतमस्वरूपकी प्राप्ति होय है सो कहे है ॥ २३ सा ॥—

जो कबहूं यह जीव पदारथ, औसर पाय मिथ्यात मिटावे ॥
सम्यक् धार प्रवाह वहे गुण, ज्ञान उदै मुख ऊरध धावे ॥
तो अभिअंतर दर्वित भावित, कर्म कलेश प्रवेश न पावे ॥
आतम साधि अध्यातमके पथ, पूरण व्है परब्रह्म कहावे ॥ ४ ॥

अर्थ—जो कबहूं यह जीव काललब्धि पाय द्रव्य मिथ्यात्वकूं अर भाव मिथ्यात्वकूं मिटावे है तथा सम्यक्तरूप जलकी धारामें प्रवाहरूप वहे है तब ज्ञान गुण उदय (प्राप्त) होय उर्ध्व लोक (मुक्ति) के सन्मुख गमन करे है। तिस ज्ञानके प्रभाव करि अभ्यंतर द्रव्यकर्मके अर भावकर्मके क्लेशका प्रवेश नहि होय है। ताते आत्माकी शुद्धि होनेका साधन समभाव धारण कर आत्मानुभवका अभ्यास करे है तब आत्म स्वरूपकी परिपूर्ण प्राप्ति होय परब्रह्म कहावे है ॥ ४ ॥

॥ अब संवरका कारण सम्यक्त्व है ताते सम्यक्दृष्टिकी महिमा कहे है ॥ २३ सा ॥—

भेदि मिथ्यात्वसु वेदि महा रस, भेद विज्ञान कला जिनि पाई ॥
जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों जु पराई ॥
उद्धत रीत वसे जिनिके घट, होत निरंतर ज्योति सवाई ॥
ते मतिमान सुवर्ण समान्, लगे तिनकों न शुभाशुभ काई ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मिथ्यात्वकूं नाश करके उपशमके महारसके उदयते भेदज्ञान कलाकूं प्राप्त हुवा है। अर जो भेदज्ञानतें आत्मस्वरूपकी प्राप्ति करके ज्ञान दर्शन अर चारित्ररूप महिमाकूं धारण करे है तथा हृदयमेंसे देहादिकके ममताका त्याग करे है। अर देशव्रत तथा महाव्रत संयमव्रत उंची क्रिया स्फुरायमान् होय निरंतर तप करके आत्मज्ञान ज्योति सवाई प्रगट हुई है। सो भेदज्ञानी जीव सुवर्ण समान् निःकलंक है तिनको शुभ अर अशुभ कर्मका कलंक काई नहि लगे है ताते सहज संवर होय है ॥५॥

॥ अब भेदज्ञान है सो संवरको तथा मोक्षको कारण है ताते भेदज्ञानकी महिमा कहे है ॥ अडिल्ल ॥—

भेदज्ञान संवर निदान निरदोष है। संवर सो निरजरा अनुक्रम मोक्ष है ॥

भेदज्ञान शिव मूल जगत महि मानिये। जदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥ ६ ॥

अर्थ—भेदज्ञान है सो निर्दोष है तथा संवरको मूल कारण है, अर संवर है सो निर्जराका कारण है अर निर्जरा है सो मोक्षका कारण है । इस अनुक्रम प्रमाणे मोक्षका कारण परंपराते भेदज्ञानही जगतमें है, यद्यपि शुद्ध आत्मस्वरूपकी अपेक्षासे भेदज्ञान हेय (त्यागने योग्य) है तद्यपि जबतक निर्विकल्प शुद्ध आत्म स्वरूपकी प्राप्ति नहि होय है तबतक नय अपेक्षासे उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है सो जानना ॥ ६ ॥

॥ अब आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होय तब भेदज्ञान त्यागने योग्य है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

भेदज्ञान तबलौं भलो, जबलौं मुक्ति न होय।
परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥ ७ ॥

अर्थ—भेदज्ञान तबतकहूं भला है की, जबतक मुक्ति न होय है। अर जहां परम ज्योति (शक्ति) प्रगट होय है, तहां कोई विकल्प रहे नही, तो भेदज्ञान कैसे रह शके ॥ ७ ॥

॥ अब मुक्तिको उपाय भेदज्ञान है तातै भेदज्ञानकी महिमा कहे है ॥ चौपाई ॥—

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेदज्ञान जिन्हके घट नांही। ते जड जीव बंधे घट मांही ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस जीवकूं भेदज्ञान रूप संवरकी प्राप्ति भई, तेही जीव शिव (मुक्त) रूप कहावे है जाकूं मुक्त हुवाही समझना। अर जिसके हृदयमें भेदज्ञान नही, ते मूर्ख देहपिंडमेंही बंधायलो रहे है ॥ ८ ॥

॥ अव भेदज्ञानसे आत्माकी महिमा वढे है सो कहे है ॥ दोहा—

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर । धोवी अंतर आतमा, धोवे निजगुण चीर ॥ ९ ॥

अर्थ—भेदज्ञान जे है सो साबू है अर समताभाव है सो निर्मल नीर है अर अंतर (सम्यक्ती) आत्मा है सो धोबी है सो धोबी आत्माके गुणरूप वस्त्रकूं सदा धोवे है ॥ ९ ॥

॥ अव भेदज्ञानकी जो किया (कर्तव्यता) है सो दृष्टांत ते कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे रज सोधा रज सोधिके दरव काढे, पावक कनक काढे दाहत उपल को ॥
पंकके गरभमें ज्यो डारिये कुतक फल, नीर करे उज्जल नितोरि डारे मलको ॥
दधिके मथैया मथि काढे जैसे माखनको, राजहंस जैसे दूधपीवे त्यागि जलको ॥
तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञानकी शकति साधि, वेदे निज संपत्ति उछेदेपर दलको ॥ १० ॥

अर्थ—जैसे रजका शोधनेवाला झारेकरि रजकूं शोधि सोना रूपादिक द्रव्य न्यारा न्यारा काढे है, अथवा जैसे अग्नि पाषाणकूं दग्धकरि सुवर्ण न्यारा काढे है । अथवा जैसे कर्दममें कुतल फल डारेहे, तब नीरकूं उज्जल करे है अर मलकूं निचोर डारे है । अथवा जैसे दहीके मथनहार दहीकूं मथन करि माखण न्यारा काढे है, अथवा जैसे मिल्या हुवा जल अर दुधकूं राजहंसपक्षी जलकूं छांडि दूध पीवे है । तैसे (उपरके ५ दृष्टांत माफिक) जे ज्ञानवंत है ते भेदज्ञानके शक्तिते आत्माके ज्ञान संपत्तीको ग्रहण करे है, अर पुद्गलके दल जे राग तथा द्वेषादिक है तिनको त्याग करे है ॥ १० ॥

॥ अव मोक्षका मूल भेदज्ञान है सो कहे है ॥ छपै छंद ॥—

प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुण जाने । पर परणति परित्याग, शुद्ध अनुभौ थिति ठाने । करि अनुभौ अभ्यास, सहज संवर परकासे । आश्रव द्वार निरोधि,

कर्मघन तिमिर विनासे। क्षय करि विभाव समभाव भजि, निरविकल्प निज
पद गहे। निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, परम अतींद्रिय सुखलहे ॥ ११ ॥

अर्थ—भेदज्ञान है सो प्रत्यक्ष आत्माके गुण अर देहादिकके गुण जाने है। अर देहादिकमें पूर्वे जो आत्मपणा माना था ताकूं त्याग कर शुद्ध आत्मानुभवमें स्थिर रहे है। फेरि अनुभवका अभ्यास करे है ताते सहजही संवरका प्रकाश होय है। अर संवरका प्रकाश होते आश्रवके द्वार जे ५ मिथ्यात्व १२ अविरत २५ कषाय १५ प्रमाद अर १५ योग है तिनका निरोध करे है, ताते कर्मरूप महा अंधकारका क्षय होय है। अर राग द्वेष तथा मोह इस परस्वभावका क्षय करि साम्यभावका अवलंबन कर निर्विकल्प आपने निजपद (मोक्ष) कूं धारण करे है। तहां निर्मल शुद्ध अनंत अर स्थिर ऐसे परम अतिंद्रिय सुख लहे है ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको छट्ठो संवरद्वार बालबोध सहित समास भयो ॥ ६ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको सप्तम निर्जरा द्वार प्रारंभ ॥ ७ ॥

॥ अव ज्ञानभाव को नमस्कार निर्जराका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥ चौपई ॥—

वरणी संवरकीदशा, यथा युक्ति परमाण । मुक्ति वितरणी निर्जरा, सुनो भविक धरि कान ॥
जो संवर पद पाइ अनंदे । सो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥
जो अफंद व्है वहुरि न फंदे । सो निर्जरा वनारसि वंदे ॥ १ ॥

अर्थ—जो ज्ञान संवररूप अवस्था धारण कर आनंद करे है, अर जो पूर्वे अज्ञान अवस्थामें बांधे कर्मकूं जड सहित उखाडे है । तथा जो रागद्वेषादिक भावकर्मके फंदकूं छोडि फेर तिस फंदमें नहि फसे है तिसका नाम निर्जरा है, तिस ज्ञानरूप निर्जरा भावकूं वनारसीदास वंदना करे है ॥ १ ॥

॥ अव निर्जराका कारण सम्यक्ज्ञान है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥ सोरठा ॥—

महिमा सम्यक्ज्ञानकी, अरु विराग वलजोय ॥
क्रिया करत फल भुंजते, कर्मवँध नहि होय ॥ २ ॥
पूर्व उदै संवंध, विषय भोगवे समकिती ॥
करे न नूतन वंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्यक् ज्ञानते जे कर्म तूटे है तिस कर्मका फेर वंध नहि होय है यह सम्यक्ज्ञानकी महिमा है, अर सम्यक्ज्ञानके साथ साथही वैराग्यका वल उत्पन्न होय है । तिस कारणते सम्यक्ज्ञानी शुभ अर अशुभ क्रिया करे तोहूं तथा पूर्वकृत कर्मका दीया शुभ अर अशुभ फल (विषय) भोगवे है तोहूं, ज्ञानीकूं कर्मका नवा बंध नहि होय है यह सम्यक्ज्ञानके वैराग्यकी महिमा है ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ अव सम्यक्ज्ञानी भोग भोगवे है तोहूं तिसकूं कर्मका कलंक नहि लगे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म, कौतूकि कहावे तासो कोन कहे रंक है ॥
जैसे व्यभिचारिणी विचारे व्यभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित्त बंक है ॥
जैसे धाई बालक चुंघाई करे लालपाल, जाने तांहि औरको जदपि वाके अंक है ॥
तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठाने, कीरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥४॥

अर्थ—कोई राजा ठठ्ठा मस्करीते भाट सारिखा स्वांग धरे तो, तिस राजाकूं कौतुकी कहवाय पण कोई रंक नही कहे है। अथवा जैसे व्यभिचारिणी स्त्री भर्तारके पास रहे पण तिसका चित्त व्यभिचार करनेमें रहे है, ताते व्यभिचारिणी स्त्रीका जारसे प्रेम रहें अर भर्त्तासे अरुचि रहे है। अथवा जैसे कोई धाई स्त्री होय सो पराया बालककूं स्तनपान अर लालन पालन करे तथा गोदमें लेके बैसे है, पण तिस बालककूं परकाही माने है। तैसे (इन तीन दृष्टांतके समान्) सम्यक्ज्ञानीहूं नाना प्रकारकी शुभ अर अशुभ क्रिया कर्मके उदय माफिक करे है परंतु तिस समस्त क्रियाकूं आपने आत्म स्वभावसें भिन्न पुद्गलरूप माने है ताते ज्ञानीकूं कर्मका कलंक नहि लगे है ॥ ४ ॥ पुनः ॥—

जैसे निशि वासर कमल रहे पंकहीमें, पंकज कहावे पैं न वाके ढीग पंक है ॥
जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी शकति वाके विना विष डंक है ॥
जैसे जीभ गहे चिकनाइ रहे रूखे अंग, पानीमें कनक जैसे कायसे अटंक है ॥
तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठाने, कीरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥५॥

अर्थ—जैसे कमल रात्रदिन पंक (चीकड) में रहे है, अर पंकते उत्पन्न होय है ताते पंकज कहावे है तो पण कमलकूं चिकड लगे नही है । अथवा जैसे मंत्रवादी गारुडी होय सो आपने हातसे सर्पकूं पकड कर चवावे है, पण मंत्रके शक्तीसे सर्पका विष गारूडीके शरीरकूं लगे नही है । अथवा जैसे जीभ घृत दुग्धादिक चिकण पदार्थ भक्षण करे है पण जीभकूं चिकणाई लगे नही है, अथवा जैसे सुवर्ण बहुत दिनपर्यंत पानीमें रखे तोहूं सोनेकूं कीड लगे नही है । तैसे सम्यक्ज्ञानीहूं नाना प्रकारकी शुभ अर अशुभ क्रिया कर्मके उदय माफिक करे है, परंतु तिस समस्त क्रियाकूं आपने आत्म स्वभावते भिन्न पुद्गलरूप माने है ताते ज्ञानीकूं कर्मका कलंक नहि लगे है ॥ ५ ॥

॥ अव सम्यक्ती है सो ज्ञान अर वैराग्यकूं साधे है सो कहे है ॥ सवैया २३ ॥—

सम्यक्वंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुण धारे ॥
जासु प्रभाव लखे निज लक्षण, जीव अजीव दशा निरवारे ॥
आतमको अनुभौ करि स्थिर, आप तरे अर औरनि तारे ॥
साधि स्वद्रव्य लहे शिव सर्मसों, कर्म उपाधि व्यथा वमि डारे ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यक्ती है सो सदाकाल अपने अंतःकरणमें ज्ञान अर वैराग्य इस दोनूं गुणकूं धारण करे है । तिस गुणके प्रभावते अपने ज्ञानचेतना लक्षणकूं देखे है अर ये जीव अनादि कालसे देहादिक पर वस्तुकूं अपना मानि रह्याथा तिस हठकूं छोडे है अर पृथक् जाने है । तथा आत्माका अनुभव करि स्वस्वरूपमें स्थिर होय संसार समुद्रते आप तिरे हैं अर सत्य उपदेश देय औरनिकूंहूं तारे है । ऐसे आत्मतत्वकूं साधि कर्मके उपाधिका क्षय कर सम्यक्ती मोक्षके सुखकूं लहे हैं ॥ ६ ॥

॥ अब विषयके अरुचि विना चारित्रका वल निष्फल है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जो नर सम्यक्त्वंत कहावत, सम्यक्ज्ञान कला नहि जागी ॥
आतम अंग अबंध विचारत, धारत संग कहे हम त्यागी ॥
भेष धरे मुनिराज पटंतर, अंतर मोह महा नल दागी ॥
सून्य हिये करतूति करे परि, सो सठ जीव न होय विरागी ॥ ७ ॥

अर्थ—जो मनुष्य आपकूं सम्यक्ती कहावे है, पण तिसकूं सम्यक्तका अर ज्ञानका गुण प्राप्तही हुवा नही है। सो मनुष्य निश्चय नयका पक्ष ग्रहण करि आपकूं अबंध (बंध रहित) माने है, अर देहादिक पर वस्तूमें ममत्व राखे है अर कहे है हम त्यागि है। मुनिराज समान् भेषहूं धारण करे है, पण अंतरंगमें मोहरूप महा अग्नि धगधगी रही है। सो जीव हृदय सून्य (ज्ञान रहित) हुवा मुनिराज समान क्रिया करे है, तथापि तो मूढ विषयसे वैरागी नहि होय है ताते तिनकूं द्रव्यलिंगी मुनीही कहीये है ॥ ७ ॥

॥ अब भेदज्ञान विना समस्त क्रिया (चारित्र) असार है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ग्रंथ रचे चरचे शुभ पंथ, लखे जगमें विवहार सुपत्ता ॥
साधि संतोष अराधि निरंजन, देइ सुशीख न लेइ अदत्ता ॥
नंग धरंग फिरे तजि संग, छके सरवंग मुधा रस मत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पैं, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ८ ॥

अर्थ—ग्रंथकी रचना करे धर्मकी चरचा करे अर शुभ अशुभ क्रियाकूंहूं जान है, तथा जगतमें

व्यवहार साचा रखे है। संतोष समाधानीसे रहे अर निरंजन (सर्वज्ञ वीतराग देव) की भक्ति करे, अन्य जीवोंको भला उपदेशहूं देवे है तथा अदत्तका धन नहि लेवे है। समस्त परिग्रहकूं छोडि नंग (दिगंबर) होय फिरे है, आत्मानुभव विना देहको कष्ट सहे है। ऐसी ऐसी क्रिया करे है परंतु, अनात्मसत्ता (राग द्वेष अर मोह) तथा आत्मसत्ता (शुद्धज्ञान चैतन्य) इन दोनूकूं भिन्न भिन्न नहि समुझे है ताते मूढ कहवाय ॥ ८ ॥

ध्यान धरे करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिने निज नत्ता ॥
त्यागि विभूति विभूति मढे तन, जोग गहे भवभोग विरत्ता ॥
मौन रहे लहि मंद कषाय, सहे वध वंधन होइ न तत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पैं, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ९ ॥

अर्थ—नाना प्रकारका आसन लगाय ध्यान धरे है तथा इंद्रिय दमन करे है अर देहके प्रीतिका नाता छोडदे है। धन संपदका त्याग करे तथा स्नान करे नहि ताते शरीरकूं धूल लिप्त हो रही है, त्रिकाल प्राणायामादि योग साधन करे है तथा संसार देह भागते विरक्त हो रहे है। मौन धारण करि कषाय मंद करे है, अर वध बंधनकूं सहन करे है पण अंतरंगमें तप्त नहि होय है। ऐसी ऐसी क्रिया करे है परंतु, अनात्मसत्ता अर आत्मसत्ता भिन्न भिन्न नहि समुझे है ताते मूढ कहवाय ॥ ९ ॥

चौ०—जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहे। जो विन क्रिया मोक्षपद चाहे ॥
जो विन मोक्ष कहे मैं सुखिया। सो अजान मूढनिमें मुखिया ॥ १० ॥

अर्थ—जे जीव मिथ्यात्व छोडे विना सम्यक्तकी इच्छा करे अर सम्यक्त विना ज्ञानकी प्राप्ति माने है। अथवा ज्ञानविना चारित्र धारण करे तथा चारित्र विना मोक्ष पद चाहें अर मोक्ष विना आपकूं सुखी कहे है ते जीव मूढमें मुख्य महामूढ है ॥ १० ॥

॥ अब गुरु उपदेश करे पण मूढ नही माने तिस ऊपर चित्रका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश करे, तुह्मे इहां सोवत अनंत काल वीते है ॥
जागो ह्वै सचेत चित्त समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्ष रस जीते है ॥
आवो मेरे निकट बताउं मैं तिंहारे गुण, परम सुरस भरे करमसों रीते है ॥
ऐसे बैन कहे गुरु तोउ ते न धरे उर, मित्र कैसे पुत्र किधो चित्र कैसे चीते है ॥ ११ ॥

अर्थ—जगवासी जीवनिकूं सद्गुरु उपदेश करे है, अहो संसारी जीव हो ? तुह्मै अनंतकाल हो गये इस जगतमें मोह निद्राविषै सूते हो। अबतो जागो अर चित्तमें सचेत होयके समतासे केवली भगवान्का हितकर उपदेश सुनो, तिसमें आत्मानुभवका मोक्षोपदेश है। हे भव्य ? तुम मेरे पास आवो तुमकौ मैं परम रसते भरे अर कर्मते रहित ऐसे आत्माके गुण बताउंहूं, इस प्रकार सद्गुरु कहे तोहूं संसारी जीव चित्तमें धरे नही, मित्रके पुत्र समान अथवा चित्रके मनुष्य समान कार्य करनेमें असमर्थ होय है ॥ ११ ॥

ऐतेपर पुनः सद्गुरु, बोले वचन रसाल। शैन दशा जाग्रत दशा, कहे दुहूंकी चाल ॥१२॥

अर्थ—पुनः सद्गुरु दयाल होके बोले हे शिष्य ? तुमकूं शयन दशाका अर जाग्रत दशाका स्वरूप कहूंहूं ॥ १२ ॥

॥ अब जीवके शयन दशाका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

काया चित्र शालामें करम परजंक भारि, मायाकि सवारि सेज चादर कलपना ॥
शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर, विषै सुख कारीजकि दोर यहै सपना ॥
ऐसे मूढ दशामें मगन रहे तिहुं काल, धावे भ्रम जालमें न पावे रूप अपना ॥१३॥

अर्थ—देहरूप महल है तिसमें कर्मरूप विस्तीर्ण पलंग है, तिस ऊपर मायारूप सेज (गद्दी) पसारी है अर मनकी कल्पनारूप चादर है । ऐसे गहन सामग्रीमें आत्मा शयन करे है तहां स्वस्वरूपकी भूलरूप नींद लेय है, तिस नींदमें मोहरूप लोचनका ढकना है । अर पूर्व कर्मके उदयका बलरूप श्वासका घोरना है, तथा विषय सुखके कार्योंकूं दौडना येही स्वप्न है । देहरूप महलसे विषय सौख्यरूप स्वप्न पर्यंत जो स्थिति कही इसीकाही नाम शयन दशा अथवा मूढ दशा है हे शिष्य ? संसारी जीव है सो ऐसे मूढ दशामें तिहुं काल मग्न हो रहा है, अर भ्रम जालमें दौडता फिरे है परंतु अपने आत्माके स्वरूपकूं नाहि देखे है ॥ १३ ॥

॥ अब जीवके जाग्रत दशाका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चित्रशाला न्यारि परजंक न्यारी सेज न्यारि, चादरभि न्यारि इहां झुठी मेरी थपना ॥
अतीत अवस्था सैन निद्रा वाहि कोउ पैं, न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥
श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझे सब अंग लखि आतम दरपना ॥
त्यागि भयो चेतन अचेतनता भाव छोडि, भाले दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—हे शिष्य ? आत्माकूं जब सम्यक्ज्ञान पावे है तब देहरूप मंदिर, कर्मरूप पलंग, मायारूप शैय्या, कल्पनारूप चादर अर आत्माका शयन ये सर्व न्यारो तथा झूठ दीखने लग जाय है। अर अतीत कालमें शयन दशामें निद्रा लेनेवाला कोई दूजा रूप में मैं था, पण अब वर्तमान कालमें एक पलकभी इस निद्रामें नांहि छिपूगा। कर्मके उदयका बलरूप श्वासका घोर अर विषयसौख्यरूप स्वप्न येही स्वस्वरूपके भूलरूप नींदके संयोगते दीखे है, अब मेरेकूं सम्यक्ज्ञान भया है ताते ज्ञानरूप आरसेमें आत्माके समस्त गुणरूप अंग दीखे है। ऐसे अचेतनरूप निद्राकूं आत्मा छोडे है, तब ज्ञानरूप दृष्टि खोलिके अपने आत्माके स्वरूपकूं देखे है ॥ १४ ॥

॥ अब शयन दशाका अर जाग्रत दशाका फल कहे है ॥ दोहा ॥—

इहविधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव। जे सोवहि संसारमें, ते जगवासी जीव ॥ १५ ॥
जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप। जिहि पद परसत और पद, लगे आपदा रूप ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसे जे जीव आत्मानुभव करके जाग्रत भये है, ते सदा मोक्ष स्वरूपी ही है। अर जे अचेत होके संसारमें सोवे है, ते जगतमें सदा जन्म मरण करते फिरे है ॥ १५ ॥ आत्मानुभव पद है ते संसारपदके भय हरे है, सो अनुपम आत्मानुभव पद सेवन करहूं। तिस पदका स्पर्श होतेही, अन्य समस्त इंद्रादिकपद आपदा (भय) रूप लागे है ॥ १६ ॥

॥ अब संसारपदका भय तथा झूटपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जब जीव सोवे तब समझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागे जब जागे नींद खोइके ॥
जागे कहे यह मेरो तन यह मेरी सोज, ताहुं झूठ मानत मरण थिति जोइके ॥

जाने निज मरम मरण तब सूझे झूठ, बूझें जब और अवतार रूप होइके ॥
वाही अवतारकि दशामें फिर यहै पेच, याहि भांति झूठो जग देखे हम ढोइके ॥१७॥

अर्थ—जब जीव सूतो होय तब स्वप्न लगे तिस तिस स्वप्नकूं नींदमे सत्य समझे अर नींदसे जागो होय तब वो स्वप्न झूठा माने है। अर देहादिक सकल सामग्रीकूं मेरी मेरी कहे है, परंतु अपने मरणका विचार सूजे तव देहादिक सकल सामग्रीकूं हूं झूठ माने है। अर आत्मस्वरूपका मर्म जाने तब मरण पण झूठ दीखे है और दुसरा जन्म लेय तब फेर ऐसेही जाने है। सूता–जागता, साचा–झूठा इत्यादि पेच आगली रीतेज लागे रहे है, ऐसे वारवार जन्म लेना अर मरणा है सो चौकसी करि देख्या तो सब जगत झूठाही झूठा दीखे है ॥ १७ ॥

॥ अव ज्ञाता कैसी क्रिया करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि, दुंदुज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ॥
मति श्रुति अवधि इत्यादि विकलप मेटि, नीरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥
इंद्रिय जनीत सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमके रूप व्है करम निर्जरतु है ॥
सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १८ ॥

अर्थ—पंडितजन है सो भेदज्ञानते आत्माकी ऐक्यता राखे है, अर प्रथम अज्ञान अवस्थामें देहादिककूं आत्मरूप जाननेकी द्वंददशा (अनेकता) थी ताकूं दूर करे है। तथा मति श्रुति अवधि इत्यादि ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशम जानित विकल्पकूं मिटावे है, अर निर्विकल्प केवलज्ञानकूं मनमें धारण करे है। इंद्रिय जनित सुखदुःखसे विमुख होयहै, अर शुद्ध आत्मानुभवते कर्मकी निर्जरा करे

है। सोही आत्मध्यानकी सहज समाधि साधि कर्म जनित उपाधी (राग द्वेष अर मोह) कूं छोडे है, अर आत्माकी आराधना कर परमात्मरूप होय है ॥ १८ ॥

॥ अब ज्ञानते परमात्माकी प्राप्ति होय है तिस ज्ञानकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ ॥ सा ॥—

जाके उर अंतर निरंतर अनंत द्रव्य, भाव भासि रहे पैं स्वभाव न टरत है ॥
निर्मलसों निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करत है ॥
जाने मति श्रुति औधि मनपर्यें केवलसु, पंचधा तरंगनि उमंगि उछरत है ॥
सो है ज्ञान उदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरत है ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानरूप समुद्रमें अनंत द्रव्यके स्वभाव (गुण अर पर्याय) भासे है, तोहूं पण तिस द्रव्यके स्वभावरूप आप होय नही अर आपने जानपणाके स्वभावकूं छोडे नही है। अर ज्ञान-समुद्रमें सबते निर्मल आत्म द्रव्य प्रत्यक्ष है, अर अक्षीण आत्मरस क्रीडा करे है। अर जिसमें मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, अर केवल ये पांच ज्ञान है, इनके तरंग उछलि रहे है। ऐसा ज्ञानरूप समुद्र है सो उदार अर अपार महिमावान् है, तथा कोईके आधार नही है एकरूप है तथापि ज्ञातापणामें अनेकता धरे है ॥ १९ ॥

॥ अब ज्ञान विना मोक्षप्राप्ति नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

केई क्रूर कष्ट सहे तपसों शरीर दहे, धूम्रपान करे अधोमुख व्हैके झूले है ॥
केई महा व्रत गहे क्रियामें मगन रहे, वहे मुनिभार पैं पयार कैसे पूले है ॥

इत्यादिक जीवनिकों सर्वथा मुकति नांहि, फीरे जगमांहि ज्यों वयारके वघूले है ॥
जीन्हके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरवाण, करमके करतार भरममें भूले हैं ॥ २० ॥

अर्थ—केई क्रूरपरिणामी शरीरकूं नाना प्रकार कष्ट सहन करे है अर पंचाग्नि तप करिके शरीरकूं दग्ध करे है, तथा केई धूम्रपान करे है अर केई नीचा मुख ऊपर पग करि झूले है। केई पंचमहाव्रत धारण करि तपश्चरणादिक क्रियामें मग्न रहे है, तथा परिषहादिक सहन करे है परंतु ज्ञान विना परालके घासके पूले समान निःसार है। इत्यादिककूं ज्ञानविना सर्वथा मुक्ति नहि है, ते अज्ञानी जगतमें चतुःगतीविषै जन्म मरण करते फिरे है जैसे पवनका बभूला नीचा उंचा फिरे है कहां ठिकाणा नही पावे तैसे। अर जिन्हके हृदयमें सम्यक्ज्ञान है तिन्हहीकूं निर्वाण है, अर जे केवळ क्रिया करणहारे है ते भ्रममें भूले है ॥ २० ॥

लीन भयो व्यवहारमें, उक्ति न उपजे कोय। दीन भयो प्रभुपद जपे, मुक्ति कहाते होय ॥२१॥
प्रभु सुमरो पूजा पढो, करो विविध व्यवहार। मोक्ष स्वरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥२२॥

अर्थ—जो क्रियामें मग्न हुवा है तिसकूं निज परका भेदरूप ज्ञान नहि होय है। अर दीन होय प्रभुपद (मुक्तिपद) की इच्छा करे है पण आत्मानुभव विना मुक्ति कहाते होय ? ॥ २१ ॥ प्रभूका स्मरण करो, पूजा करो, स्तुति पढो अथवा औरहूं नाना प्रकार चारित्र करो। परंतु मोक्ष स्वरूपी आत्माका अनुभव ज्ञानके आधीन है ॥ २२ ॥

॥ सवैया २३ सा ॥—

काजविना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण मांहि न झूझे ॥
डील विना न सधे परमारथ, सील विना सतसो न अरूझे ॥

नेम विना न लहे निहचे पद, प्रेम विना रस रीति न बूझे ॥
ध्यान विना न थंभे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझे ॥ २३ ॥

अर्थ—अब इहां दृष्टांत बतावे है की जैसे कार्य विना संसारी जीव उद्यम करे नही, अर लोक लाज विना रण संग्राममें कोई झूंझे नही। मनुष्यदेह धारण करे विना मोक्षमार्ग सधे नही अर शील स्वभाव धरे विना सत्यका मिलाप होय नही। संयम (दीक्षा) धारे विना मोक्षपद मिले नही, अर प्रेम विना आनंद रस उपजे नही। ध्यान विना मनकी गति थंभे नही, तैसे ज्ञान विना मोक्षमार्ग (आत्मानुभव) सूझे नही ॥ २३ ॥

॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्ञान उदे जिन्हके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत न मैली ॥
बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यानकला विधि फैली ॥
जे जड चेतन भिन्न लखेसों, विवेक लिये परखे गुण थैली ॥
ते जगमें परमारथ जानि, गहे रुचि मानि अध्यातम सैली ॥२४॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें सम्यग्ज्ञानका उदय हुवा है, तिन्हकी आत्मज्योती जाग्रत रहके बुद्धि मलीन नहि होय है। तथा तिनका देहसे ममत्व छूटके हृदयमें आत्मध्यानका विस्तार होय है। ज्ञानी है ते देहकूं अर चेतनकूं भिन्नाभिन्न जाने है अर देहके तथा चेतनके गुणकी परीक्षा करे है। अर रत्नत्रयकूं जानि तिनकूं रुचिसे अंगिकार करे है तथा अध्यात्म सैली (आत्मानुभव)कूं मान्यता करे है ऐसे ज्ञानकी महिमा है ॥ २४ ॥

॥ अब ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥—

बहुविधि क्रिया कलापसों, शिवपद लहे न कोय । ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय॥२५॥
ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार । निजनिज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार॥२६॥

अर्थ—नाना प्रकार बाह्य क्रियाके क्लेशते मोक्षपद मिले नही, अर सम्यग्ज्ञान कलाके प्रकाशते सहज (विना क्लेशते) मोक्षपद मिले है ॥ २५ ॥ ज्ञानकला तो समस्त जीवके घटघटमें वसे है पण मन वचन अर देह इनते अगम्य है । ताते अपनी अपनी ज्ञानकला आपही जाग्रत करके जन्ममरणते मुक्त होहु ऐसा समस्त जीवकूं सद्गुरुका उपदेश है ॥ २६ ॥

॥ अब अनुभवते मोक्ष होय है ताते अनुभवकी प्रशंसा करे है ॥ कुंडलीया छंद ॥—

अनुभव चिंतामणि रतन, जाके हिये परकास ॥ सो पुनीत शिवपद
लहे, दहे चतुर्गति वास ॥ दहे चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मंडे ॥
नूतन बंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहंडे ॥ ताके न गिणु विकार, न गिणु
बहु भार न गिणु भव ॥ जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामणि अनुभव ॥२७॥

अर्थ—जिसके हृदयमें अनुभव चिंतामणी रत्नका प्रकाश हुवा है । सो पवित्र जीव चतुर्गतीका नाश करके मोक्षपदकूं लहे है । अनुभवी है सो इच्छा रहित चारित्र पाले है तिनते नवीन कर्मके बंधकूं रोकि पूर्वकृत कर्मकी निर्जरा करे है । ताते हे भव्य ? अनुभवी जीवके रागादिककूं तथा परिग्रहके भारकूं दोष मत्गिणो ॥ २७ ॥

॥ अब अनुभवी ज्ञानीका सामर्थ्य कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके हियेमें सत्य सूरज उद्योत भयो, फैलि मति कीरण मिथ्यात तम नष्ट है ॥
जिन्हके सुदृष्टीमें न परचे विषमतासों, समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है ॥
जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधे, सघन निरोध जाके तनको न कष्ट है ॥
तिन्हके करमकी किलोल यह है समाधि, डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥२८॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें अनुभवरूप सत्य सूर्यका उदय हुवा है, सो उदय सुबुद्धिरूप किर्णका फैलाव करके मिथ्यात्वरूप अंधकारकूं नाश करे है। जिन्हके सुदृष्टीमें विषमता (राग अर द्वेष) का परिचय नहि रहे, अर समतासों प्रीति रहे तथा मोहममताकी प्रीति छोडे है। जिन्हको पलकमें मोक्षमार्ग सधे है, अर देहके कष्टविना सघन (मन) कूं जीते है तिन्ह अनुभवीका विषयभोग है सो समाधि है, रागद्वेषमें डोले है सो जोगासन है अर बोले है तो पण मौन्यव्रती है ऐसा अनुभवका सामर्थ्य है ॥२८॥

॥ अब सामान्य परिग्रहका अर विशेष परिग्रहका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आतम स्वभाव परभावकी न शुद्धि ताकों, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है ॥
ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलौं समुच्चैरूप कह्यो है ॥
अब निज पर भ्रम दूर करिवेको काज, बहुरी सुगुरु उपदेशको उमह्यो है ॥
परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है ॥ २९ ॥

अर्थ—जिसका मन परिग्रहमें मग्न हो रह्या है, तिसकूं आत्मस्वभावकी तथा पुद्गल स्वभावकी शुद्धि (स्मरण) नही रहे है। ऐसे अविवेकका निधान परिग्रहकी प्रीति है, तिस प्रीतिका समुच्चै त्याग

करना सो सामान्य परिग्रह त्याग कह्या है । अब स्व स्वरूपका अर पर स्वरूपका भ्रम दूर करनेके अर्थि, सद्गुरु उपदेश करनेको उमगी रह्या है। सो परिग्रह तथा परिग्रहके विशेष अंग कहे है अर शिष्य सचेत होके सुननेको लहलह्यो है ॥ २९ ॥

त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार। विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ३०

अर्थ—जितनी पर वस्तु है तितनी समस्त त्यागने योग्य है यह सामान्य परिग्रह त्यागका विचार है। अर अनेक प्रकारकी वस्तु है तिसकूं नाना प्रकार करि विरति (त्याग) करना यह विशेष विस्तार-रूप परिग्रह त्यागका विचार है ॥ ३० ॥

॥ अब परिग्रह होताहूं ज्ञाताकी परिग्रह ऊपर अलिप्तता रहे सो कहे है ॥ चौपई ॥—

पूरव करम उदै रस भुंजे। ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे ॥
मनमें उदासीनता लहिये। यों बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो ज्ञानमें तत्पर है सो पूर्वे बांध्या कर्मके उदय माफिक जैसा शुभ अथवा अशुभ कर्मका रस उपजे तैसा भोगवे है, पण तिस भोगमें तल्लिन होके प्रीति करे नही। तथा परिग्रहादिक भोगके संयोगमें अर वियोगमें हर्ष विषाद करे नही अर मनमें उदासीनतासे रहे है, ऐसे ज्ञानीकूं परिग्रहवंत नही कहिये ॥ ३१ ॥

॥ अब ज्ञानीका अवांछक गुण दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे जे मन वंछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब राखे न रहत है ॥
और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, ते ते विनासीक धाररूप व्है वहत है ॥

एकता न दुहो मांहि ताते वांछा फूरे नांहि, ऐसे भ्रम कारीजको मूरख चहत है ॥
सतत रहे सचेत परेसों न करे हेत, याते ज्ञानवंतको अवंछक कहत है ॥ ३२ ॥

अर्थ—जगतमें मन वांछित विलास करने योग्य जे जे भोग सामग्री है, ते ते समस्त नाशिवंत है अपने राखे नहि रहे है । अर भोगके अभिलाषरूप जे जे मनके परिणाम है, ते तेहू चंचलरूप धारावाही नाशिवंत है । ए भोग अर भोगके परिणाम इन दोनूंसें एकता नहीं है अर विनश्वरपणा है ताते ज्ञानीकी भोगविषें इच्छा नहि होय है, ऐसे भ्रमरूप कार्यकू तो मूर्ख होय सो चाहे है । ज्ञानी तो निरंतर अपने आत्मस्वरूपमें सावधान रहे है अर पर वस्तुकी इच्छा नहि करे है, तातें ज्ञानवंतको निर्वांछक कहे है ॥ ३२ ॥

॥ अब सम्यक्ती परिग्रहते अलिप्त कैसा कहवाय ताका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे फिटकडि लोद हरडेकि पुट विना, स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें ॥
भीग्या रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नहि अंतर सुपेदी रहे चीरमें ॥
तैसे समकीतवंत राग द्वेष मोह विन, रहे निशि वासर परिग्रहकी भीरमें ॥
पूरव करम हरे नूतन न बंध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे स्वेतवस्त्र मजीठ रंगके नीरमें चिरकाल भिज्या रहे तोहूं । लोद फटकडी अर हरडे ये कषायले द्रव्य है इनका पूट दीये विना वस्त्र लाल होय नही, वस्त्रके अंतर रंग भेदे नहीं सुपेदही रहे । तैसे सम्यग्दृष्टी रात्रंदिन परिग्रहके भीरमें रहे, परंतु राग द्वेष अर मोह विना रहे हैं । तातें

तिनकूं नवीन कर्मका बंध होय नहीं अर पूर्वकर्मकी निर्जरा होय है, अर विषयसुखकी इच्छा नहि करे तथा शरीरमें मोह रखे नहीं तिस कारणते ज्ञानी परिग्रहते अलिप्त कहवाय ॥ ३३ ॥

॥ अव सम्यक्तीकूं संसारीक सुख दुःखकी उपाधि नहि लगे ताका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहु देसको वसैया बलवंत नर, जंगलमें जाई मधु छत्ताकों गहत है ॥
वाकों लपटाय चहु ओर मधु मच्छिका पैं, कंबलकि ओटसों अडंकीत रहत है ॥
तैसे समकीति शीव सत्ताको स्वरूप साधे, उदेके उपाधीको समाधीसि कहत है ॥
पहिरे सहजको सनाह मनमें उच्छाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहत है ॥ ३४ ॥

अर्थ—जैसे कोई सशक्त मनुष्य जंगलमें जाय मधु छत्ताकूं निकाले है। तब चारि तरफ मक्षिका लपटाइ जाय है, परंतु कंबल वोढि राख्या है तातें तिसकूं मक्षिकाका डंक लगे नही। तैसे सम्यक्ती जीव मोक्षमार्गकूं साधे है, तब कर्मोदयकी अनेक सुख दुःखादि उपाधि आय लागे है, परंतु सम्यक्ती ज्ञान बकतर पहिरे है अर कर्मकी निर्जरा करनेका उच्छाह मनमें धारे है, ऐसे अनंत सुखमें तिष्ठे है ताते सम्यक्तीकूं उपाधीका खेद नहि होय है समाधीसी लागे है ॥ ३४ ॥

॥ अव ज्ञाताका अवंधपणा वतावे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोइ। चित्त उदास करणी करे, कर्मवंध नहिं होइ ॥३५॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास। मुक्ति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥३६॥

अर्थ—ज्ञानी है सो ज्ञानमें मग्न रहे है, तथा राग द्वेष अर मोहादिक दोषकूं छोड देवे है। अर जे जे संसारीक भोगोपभोगके कार्य है ते सब चित्तमें उदासीनरूप होय करे है, ताते ज्ञानीकूं कर्म-

बंध नहि होय है ॥ ३५ ॥ कैसा है ज्ञान? मोहरूप महा अंधकारकूं तो हरे है, अर सुबुद्धीक प्रकाश करके, मोक्षमार्गकूं प्रत्यक्ष बतावे है, ऐसे ज्ञानरूप दीपकका विलास है ॥ ३६ ॥

॥ अब ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जामें धूमको न लेश वातको न परवेश, करम पतंगनिकों नाश करे पलमें ॥
दशाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारकों वियोग जाके थलमें ॥
जामें न तताइ नहि राग रकताइ रंच, लह लहे समता समाधि जोग जलमें ॥
ऐसे ज्ञान दीपकी सिखा जगि अभंगरूप, निराधार फूरि पैं दूरि है पुदगलमें ॥३७॥

अर्थ—ज्ञानदीपकमें धूमका तो लेशही नही है अर जिसकूं बुझावनेकूं कोई पवन पण प्रवेश करे नहि, अर कर्मरूप पतंगका नाश एक पलमें करे है। जिसमें बत्तीका तथा घृत तैलादिकका प्रयोजन नही लगे है, मात्र जहां ज्ञानरूप दीपक है तहांही मोहरूप अंधकारका वियोग होय है। ज्ञान-दीपकमें तप्तपणा तथा ललाई रंचमात्रही नही, अर समता समाधि अर ध्यान लह लहाट करे है। ऐसा जो ज्ञानरूप दीपक है तिसकी जोती सदा अभंग जाग्रत रहे है, सो जोती सर्व पदार्थोंका ज्ञान करनेकूं आधार है अर आप निराधार स्वयंसिद्ध आत्मामें स्फुरायमान है देहमें नही है ॥ ३७ ॥

॥ अब शंखका दृष्टांत देके ज्ञानकी स्वच्छता दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसो जो दरवतामें तैसाही स्वभाव सधे, कोउ द्रव्य काहूको स्वभाव न गहत है ॥
जैसे शंख उज्जल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसा न दीसे नित उज्जल रहत है ॥
तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहत है ॥
ज्ञानकला दूनी होइ द्वंददशा सूनी होइ, ऊनि होइ भौ थीति बनारसि कहत है ॥३८॥

अर्थ—जो जैसा द्रव्य है तिसमें तैसाही स्वभाव स्वयं सिद्ध है, कोई द्रव्य काहू अन्य द्रव्यका स्वभाव नहि ग्रहण करे है। जैसे शंख उज्जल है सो नाना प्रकारकी माटी भक्षण करे है, परंतु शंख माटी सदृश नहि होय है सदा उज्जलही रहे है। तैसे ज्ञानवंतहूं परिग्रहके संयोगते नाना प्रकारके भोग भोगे है, परंतु अज्ञानता नहि लहे है। ज्ञानीके ज्ञानकलाकी तो सदा वृद्धीही होय है अर भ्रमदशा दूर होय है, तथा भव स्थीति कमति होके अल्प कालमें संसारते मुक्त होय है ऐसे बनारसीदास कहे है ॥ ३८ ॥

॥ अब सद्गुरु मोक्षका उपदेश करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोलों ज्ञानको उद्योत तोलों नहि बंध होत, वरते मिथ्यात्व तव नाना बंध होहि है ॥
ऐसो भेद सुनीके लग्यो तूं विषै भोगनीसुं, जोगनीसुं उद्यमकि रीति तैं विछोहि है ॥
सूनो भैया संत तूं कहे मैं समकीतवंत, यहु तो एकंत परमेश्वरका द्रोहि है ॥
विषैसुं विमुख होहि अनुभौ दशा आरोहि, मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोहि है ॥३९॥

अर्थ—जबतक सम्यग्ज्ञानका उद्योत है तबतक कर्मबंध नहि होय है, अर जब मिथ्यात्व (अज्ञान) भावका उद्योत होय है तब नाना प्रकारका कर्मबंध होय है। ऐसे ज्ञानके महिमाका भेद कह्या सो सुनीके तूं [अथवा कोई] विषय भोगने लग जाय है, अर संयम ध्यानादिककूं तथा चारित्रकूं छोडे है। अर कहे है मैं सम्यक्ती है, सो हे भव्य ? यह तुम्हारा कहना एकांत मिथ्यात्वरूप है अर आत्माका द्रोही (अहित करणारा) है। ताते अब मेरी बात सुनो तुम विषय सुखते पराङ्मुख होके आत्माका अनुभव करी मोक्षका सुख देखो, ऐसी बुद्धि करना तुमको शोभे है ॥ ३९ ॥

॥ अब नेत्रका दृष्टांत देके ज्ञानकी अर वैराग्यकी युगपत् उत्पत्ती दिखावे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

ज्ञानकला जिसके घटजागी । ते जगमांहि सहज वैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुखमांही । यह विपरीत संभवे नांही ॥ ४० ॥

ज्ञानशक्ति वैराग्य बल, शिव साधे समकाल। ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखे दोऊ ताल ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सम्यग्ज्ञानके कलाका उद्योत भया है, ते तो जगतसे सहज वैरागी होय है। अर ज्ञानी होके विषयसुखमें मग्न रहे हैं, यह विपरीत बात संभवे नही ॥ ४० ॥ ज्ञान अर वैराग्य ए दोनूवस्तू एक कालमें उपजे है, अर इनके बलते मोक्ष साधे है । जैसे दोनूं नेत्र न्यारे न्यारे रहें है, तोहू पदार्थका देखना दोनू नेत्रते एक कालमेंही होय है ॥ ४१ ॥

॥ अब कीटकका दृष्टांत देके अज्ञानीके तथा ज्ञानीके कर्मबंधका विचार कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

मूढ कर्मको कर्त्ता होवे । फल अभिलाष धरे फल जोवे ॥
ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी । लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥ ४२ ॥

बंधे कर्मसों मूढ ज्यों, पाट कीट तन पेम । खुले कर्मसों समकिती, गोरख धंदा जेम ॥ ४३ ॥

अर्थ—मूढ है सो भोगकी इच्छा धरे है, फल जोवे है, ताते कर्मबंधका कर्ता होवे है । अर ज्ञानी है सो भोग भोगे है, पण उदासीनतासे भोगे है ताते तिनकूं नवीन कर्मका लेप होवे नही अर कृतकर्म खपी जाय है ॥ ४२ ॥ मूढ मिथ्यात्वी है सो नवीन नवीन कर्मका बंध करे है, जैसे रेशमका कीडा अपने मुखते तार काढि अपने शरीर उपर वेष्टन करे है । अर सम्यक्ती भेदज्ञानी है सो कर्मबंधते खुले है, जैसे गोरखधंदा नामका कीडा है सो अपने जालीकूं फोडके निकले है ॥ ४३ ॥

॥ अब ज्ञानी है सो कर्मका कर्ता नही सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे ॥
जे दुखमें न विलाप करे, निर वैर हिये तन ताप सहेंगे ॥
है जिनके दृढ आतम ज्ञान, क्रिया करिके फलको न चहेंगे ॥
ते सु विचक्षण ज्ञायक है, तिनको करता हमतो न कहेंगे ॥ ४४ ॥

अर्थ—अपने पूर्व संचित कीये कर्मके उदयमाफिक सुख दुःख आवे है, तब जे जीव तिस सुखकूं भोगे है पण प्रीति नाहि करे है उदास रहे है। अर तिस दुःखकूं सहे है पण विलाप नहि करे है तथा अन्य जीवने अपनेकूं कष्ट दीया तो सहन करे है तिस ऊपर वैर नाहि धरे है। अर जिन्हकूं भेदज्ञान अत्यंत दृढ हुवा है, तथा शुभ क्रिया करे तिस क्रियाका फल स्वर्ग वा राज्य वैभवादिक नहि चाहे है। तेही मनुष्य ज्ञानी है, सो संसारभोग भोगे है तोहूं तिसकूं कर्मका कर्त्ता हमतो नहिं कहेंगे ॥४४॥

॥ अब ज्ञानीका आचार विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा—

जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हको आचार सु विचार शुभ ध्यान है ॥
स्वारथको त्यागि जे लगे है परमारथको, जिन्हके वनीजमें न नफा है न ज्यान है ॥
जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानीयत, धानकोसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है ॥
पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है ॥४५॥

अर्थ—जिन्हके ज्ञानदृष्टिमें इष्ट वस्तु अर अनिष्ट वस्तु दोनू समान दीखे है, जिन्हको आचार तथा विचार एक शुभ ध्यान प्रातीमें रहे है। जे विषयसुखको छोडिके आत्मध्यानरूप परमार्थ मार्गकूं

लागे है, जिन्हके वचन व्यवहारमें एककूं तोटा अर एककूं नफा ऐसा पक्षपात नही है। जे शरीरकूं ऐसा माने है जैसा धान्यके ऊपरका छीलका अथवा तरवारके ऊपरका म्यान है। जे जीव तथा अजीव पदार्थके पारखी है अर पांच मिथ्यात्वमें भ्रमका भारत (युद्ध) चालि रह्या है तिसके साक्षीदार है, (पूछनेके स्थानक है) सोही साधू है अर तिन्हहीकूं सत्यार्थ ज्ञान है ॥ ४५ ॥

॥ अब ज्ञानीका निर्भयपणा वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जमकोसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहत है ॥
सुरगनिवासि भूमीवासि औ पतालवासि, सबहीको तन मन कंपत रहत है ॥
ऊरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसे, डोलत निशंक भयो आनंद लहत है ॥
सहज सुवीर जाको सास्वत शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहत है ॥ ४६ ॥

अर्थ—यह असाता कर्म है सो महा दुःख देनेवाला है मानू जमको भाई है, इस असाता कर्मका जब उदय आवे है तब मूर्खजन साहस नहि धारे है। स्वर्गनिवासी देव अर भूमिनिवासी मनुष्य तथा पशू अर पातालनिवासी देवता तथा नारकी, इन सब जीवोंका तन अर मन अशाता वेदनी कर्मके उदयते भयभीत कंपायमान होय है। अर जिसके हृदयमें ज्ञानका उजारा है सो सप्त भयते अपने आत्माकूं न्यारा देखे है अर निशंक होय आनंदसे डोलत फिरे है। जिसकूं अपने आत्माका वीरपणा सोही शाश्वत ज्ञानरूपी शरीर है ताको भय काहेका है, ऐसे सप्तभय रहित जो ज्ञानी है सो आर्य (पवित्र) है ऐसे आचार्य कहते है ॥ ४६ ॥

॥ अब सप्त भयके नाम कहे है ॥ दोहा ॥—

इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात। अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

अर्थ—इसभवका भय, परभवका भय, मरणका भय, वेदनाका भय, अनरक्षा भय, अनगुप्त भय, अकस्मात् भय, ये सात भयके नाम है ॥ ४७ ॥

॥ अब सात भयके जुदेजुदे स्वरूप कहे है ॥सवैया ३१ सा ॥—

दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानीये ॥
प्राणनिको हरण मरण भै कहावै सोइ, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानीये ॥
रक्षक हमारो कोउ नांही अनरक्षा भय, चोर भै विचार अनगुप्त मन आनीये ॥
अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधो होय, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानीये ॥ ४८ ॥

अर्थ—धन धान्यादि दश प्रकारके परिग्रहका वियोग होनेकी चिंता करना सो इसभवका भय है ॥ १ ॥ दुर्गतिमें जन्म होनेकी चिंता करना सो परभवका भय है ॥२॥ प्राण जानेकी चिंता करना सो मरणका भय है ॥ ३ ॥ रोगादिकके कष्ट होनेकी चिंता करना सो वेदनाका भय है ॥ ४ ॥ हमारी रक्षा करनेवाला कोई नही है ऐसी चिंता करना सो अनरक्षक भय है ॥ ५ ॥ चोर वा दुश्मन आवे तो कैसे बचेंगे ऐसी चिंता करना सो अनगुप्त भय है ॥६॥ संसारमें अचानक कुछ दगा होयगा क्या? ऐसी चिंता करना सो अकस्मात भय है ॥ ७ ॥ ऐसे जगतमें सात प्रकारका भय है सो जानना ॥४८॥

॥ अब इसभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ १ ॥ छपै छंद ॥—

नख शिख मित परमाण, ज्ञान अवगाह निरक्षत। आतम अंग अभंग संग, पर
धन इम अक्षत। छिन भंगुर संसार विभव, परिवार भार जसु। जहां उतपति

तहां प्रलय, जासु संयोग वियोग तसु । परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इहभव भय
उपजे न चित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ४९ ॥

अर्थ—नखशिखा पर्यंत समस्त देहमें, अभंग आत्मा है सो ज्ञानते देखे । अर ज्ञान है सो आत्माका अंग है, अर आत्माके संग जे शरीरादिक है सो पर पदार्थ है ऐसा निश्चय करे । संसारका वैभव परिवार अर परिग्रहका भार है सो, क्षणभंगुर है। जिसकी उत्पत्ती तिसका नाश है, अर जिसका संयोग तिसका वियोग होय है । ऐसे परिग्रहका प्रपञ्च (कपट) है तिस कपटकूं परखिये तो, चित्तमें इसभवका भय नहि उपजे है । इस प्रकार ज्ञानी है सो विचार करके परिग्रहके वियोगकी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ४९ ॥

॥ अब परभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ २ ॥ छपै छंद ॥—

ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख । इतर लोक मम नांहि नांहि,
जिसमांहि दोष दुख । पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुख दायक ।
दोउ खंडित खानि, मैं अखंडित शिव नायक । इहविधि विचार परलोक भय,
नहि व्यापत वरते सुखित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५०॥

अर्थ—ज्ञानचक्र विस्तार है सो मेरा लोक है, जिसमें मोक्षसुखका अवलोकन होय है । इतर स्वर्गलोक नरक लोक अर मनुष्य लोक यह लोक मेरा नही है, इसीमें अनेक दोष तथा दुःखके स्थान है । पुन्य सुगतीका देनेवाला है, अर पाप दुर्गतीका देनेवाला है । ये पाप अर पुन्य दोनूंहू विनाशीक है, पण मेरा आत्मा अखंडित अर मोक्षका नायक है । इसि प्रकार विचार करिये तो, परलोकका भय

नहि उपजे है अर सुख होय है। ज्ञानी है सो परलोककी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५० ॥

॥ अव मरणके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ३ ॥ छपै छंद ॥—

फरस जीभ नाशिका, नयन अरु श्रवण अक्ष इति । मन वच तन बल तीन, स्वास
उस्वास आयु थिति । ये दश प्राण विनाश, ताहि जग मरण कहीजे । ज्ञान प्राण
संयुक्त, जीव तिहुं काल न छीजे । यह चित करत नहि मरण भय, नय प्रमाण
जिनवर कथित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५१ ॥

अर्थ—१ स्पर्श १ जीभ १ नाक १ नेत्र १ कान ये पांच इंद्रियप्राण है । १ मन १ वचन १ देह ये तीन बलप्राण है, १ श्वासोच्छ्वास प्राण १ अर आयुष्य प्राण । ऐसे दश प्राण है, इनिके विनाशकूं जगतमें मरण कहते है । अर जीव है सो भाव (ज्ञान) प्राण संयुक्त है, तिस भावप्राणका तीन कालमें नाश नहीं होय है । जिनेंद्रभगवानने देह अपेक्षासे मरण कह्या है पण जीवकूं मरण नही, इस प्रकार चिंतवन करनेसे मरणका भय नहि उपजे है । ज्ञानी है सो मरणकी चिंता नहि करे निशंक रहे, अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५१ ॥

॥ अव वेदनाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ४ ॥ छपै छंद ॥—

वेदनहारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय, । यह वेदना अभंग, सो तो मम अंग
नांहि विय । करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख । दोउ मोह विकार,

पुद्गलाकार बहिर्मुख । जब यह विवेक मनमें धरत, तव न वेदना भय
विदित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५२ ॥

अर्थ—जीव है सो ज्ञानी है अर ज्ञान है सो जीवका अभंग अंग है । इस ज्ञानरूप मेरे अभंग अंगमें जडकर्मकी वेदना नहि व्यापे है । कर्मकी वेदना दोय प्रकारकी है एक सुखमय वेदना अर एक दुखमय वेदना । इह दोनूंहू वेदना मोहका विकार अर जड पुद्गलाकार है सो आत्माते बाह्य है । जब ऐसा विवेक मनमें धरे है तब वेदनाका भय चितमें नहि उपजे है । ज्ञानी है सो वेदनाकी चिंता नहि करे निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माकूं सदा अवलोकन करे ॥ ५२ ॥

॥ अव अनरक्षाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ५ ॥ छपै छंद ॥—

जो स्ववस्तु सत्ता स्वरूप, जगमांहि त्रिकाल गत । तास विनाश न होय, सहज
निश्चय प्रमाण मत । सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर । तिहि
कारण रक्षक न होय, भक्षक न कोय पर । जब यह प्रकार निरधार किय, तव
अनरक्षा भय नसित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५३॥

अर्थ—जो सत्तारूप आत्मवस्तु है, सो जगतमें तीनकालमें व्याप्त रहे है । तिस आत्मवस्तुका कदापि नाश नहि होय, यह स्वरूप निश्चय नयके प्रमाणते है । ऐसे मेरा आत्मानामा पदार्थहू सर्वथा कोईकी साह्यता नहि धरे है । ताते इस आत्माका कोई रक्षक नही अर कोई भक्षक पर नही । जब इस प्रकार निश्चयरूपका निर्धार करे तब अनरक्षाका भय नाश होजाय है । ज्ञानी है सो निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे है ॥ ५३ ॥

॥ अब चोरभय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ६ ॥ छपै छंद ॥—

परम रूप परतच्छ, जासु लच्छन चित मंडित। पर परवेश तहां नांहि, महि-
माहि अगम अखंडित। सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन। तांहि
चोर किम गहे, ठोर नहि लहे और जन। चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब
अगुप्त भय उपशमित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ५४ ॥

अर्थ—आत्मा परमरूप प्रत्यक्ष है, अर ज्ञान लक्षणते भूपित है। तिस आत्मस्वरूपमें परका प्रवेश नहि होय है, तिस आत्मस्वरूपकी महिमा इंद्रियते अगम्य है अर अखंडित है। तैसेही मेरा अनुपम्य आत्मरूप धन है, सो किसीका कीया नही है अटूट अर अविनाशी है। ते धन चोर कैसे हरण करेगा ? अन्य जनके धसनेकूं तहां ठोरही नही है। जब ऐसे ध्यान देके आत्म स्वरूपका विचार करे है, तब अगुप्त (चोरका) भय नहि उपजे है। इस प्रकार ज्ञानी है सो चोरभयकी चिंता नाहि करे है, निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे ॥ ५४ ॥

॥ अब अकस्मात्के भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ ७ ॥ छपै छंद ॥—

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम। अलख अनादि अनंत, अतुल
अविचल स्वरूप मम। चिदविलास परकाश, वीत विकलप सुख थानक। जहां
दुविधा नहि कोइ, होइ तहां कछु न अचानक। जब यह विचार उपजंत तब,
अकस्मात भय नहि उदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५५॥

अर्थ—आत्म वस्तु है सो शुद्ध ज्ञानमय है, अविरोधी है, अर सिद्धसमान ऋद्धिवंत है । अगम्य है अनादि है, अनंत है, अतुल अर अविचल है ऐसाही मेरा स्वरूप है । सो ज्ञान विलासते प्रकाश युक्त है, अर विकल्प रहित सुखका स्थान है । जिसमें कोई प्रकारकी द्विधा नही, तिसमें कोई प्रकारका अचानकभय पण कछु नही होयसके । जब ऐसा विचार करे तब अकस्मातभय नहि उपजे । ज्ञानी है सो, निशंक रहे अर कलंक रहित अपने ज्ञानरूप आत्माका सदा अवलोकन करे ॥ ५५ ॥

॥ अव निःशंकितादि अष्टांगसम्यक्तीकी महिमा कहे है ॥ छपै छंद ॥—

जो परगुण त्यागंत, शुद्ध निज गुण गहंत ध्रुव । विमल ज्ञान अंकुरा,
जास घटमांहि प्रकाश हुव । जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धारि वहावत ।
जो नव बंध निरोधि, मोक्ष मारग मुख धावत । निःशंकितादि जस अष्ट गुण,
अष्ट कर्म अरि संहरत । सो पुरुष विचक्षण तासु पद, वनारसी वंदन करत ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो पुद्गलके गुणोकूं त्याग करके आत्माके गुणोकूं ग्रहण करे है । जिसके हृदयमें सम्यग् ज्ञानके अंकुराका प्रकाश हुवा है । जो पूर्वीके कृतकर्मकूं निर्जराके धारामें वहावे है । अर नवीन बंधकूं निरोध करिके मोक्षमार्गके सन्मुख दौडे है । अर जो निःशंकितादि अष्ट गुणते अष्ट कर्मरूप वैरीका संहार करे है । सोही सम्यग्ज्ञानी पुरुष है तिसके चरणनकौं बनारसीदास वंदना करे है ॥ ५६ ॥

॥ अव निःशंकितादि अष्ट अंगके (गुणके) नाम कहे है ॥ सोरठा ॥—

प्रथम निसंशै जानि, द्वितीय अवंछित परिणमन ।
तृतीय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुण ॥ ५७ ॥

पंच अकथ परदोष, थिरी करण छट्ठम सहज ।
सप्तम वत्सल पोष, अष्टम अंग प्रभावना ॥ ५८ ॥

अर्थ—निःसंशय अंग ॥१॥ निःकांक्षित अंग ॥२॥ निर्विचिकित्सित अंग ॥३॥ अमूढदृष्टि अंग ॥४॥ उपगूहन अंग ॥ ५ ॥ स्थितीकरण अंग ॥६॥ वात्सल्य अंग ॥७॥ प्रभावना अंग ॥ ८ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

॥ अव सम्यक्तके अष्ट अंगका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धर्ममें न संशै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभकों देखि न गिलानि आणे चित्तमें ॥
साचि दृष्टि राखे काहू प्राणीको न दोष भाखे, चंचलता भानि थीति ठाणे बोध वित्तमें ॥
प्यार निज रूपसों उच्छाहकी तरंग ऊठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें ॥
ताहि समकितकों धरे सो समकीत वंत, वेहि मोक्ष पावे वो न आवे फीर इतमें ॥५९॥

अर्थ—धर्ममें संदेह न करना सो निःशंकित अंग है ॥ १ ॥ शुभक्रिया करिके तिसके फलकी इच्छा नहि करना सो निःकांक्षित अंग है ॥ २ ॥ अशुभवस्तु देखि अपने चित्तमें ग्लानि नहि करना सो निर्विचिकित्सित अंग है ॥ ३ ॥ मूढपणा त्यागि सत्य तत्वमें प्रीति रखना सो अमूढदृष्टी अंग है ॥ ४ ॥ धार्मिकके दोष प्रसिद्ध न करना सो उपगूहन अंग है ॥ ५ ॥ चंचलता त्यागि ज्ञानमें स्थिरता रखना सो स्थितिकरण अंग है ॥ ६ ॥ धार्मिक ऊपर तथा आत्मस्वरूपमें प्रेम रखना सो वात्सल्य अंग है ॥ ७ ॥ ज्ञानकी प्रसिद्धीमें तथा आत्मस्वरूपके साधनमें उत्साहका तरंग ऊठना सो प्रभावना अंग है ॥८॥ ये आठ अंग जब सम्यक्तमें जाग्रत होय है तब ताको सम्यक्ती कहिये है । तिस सम्यक्तकूं धरनहारो सम्यक्तवंतही मोक्षकूं जावे है, सो फेर जगमें नहि आवे है ॥ ५९ ॥

॥ अब अष्टांगसम्यक्तीके चैतन्यका निर्जरारूप नाटक बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पूर्व बंध नासे सो तो संगीत कला प्रकासे, नव बंध रोधि ताल तोरत उछरिके ॥
निशंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरि, समता अलाप चारि करे स्वर भरिके ॥
निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग बाजे, छक्यो महानंदमें समाधि रीझि करिके ॥
सत्ता रंगभूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्धदृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६० ॥

अर्थ—सम्यक्ती पूर्वीके कृतकर्मका नाश करे है सो- संगीत कलाका प्रकाश है, अर नवीन कर्मकूं रोके है सो- उछलि उछलिकरि ताल तोरे है। सम्यक्ती निःशंकितादि अष्ट अंग पाले है सो- संग साथीदार जोडी है, अर समता धारे है सो—स्वर धरिके आलापसे गाना है। सम्यक्ती कर्मकी निर्जरा करे है सो—वाद्य वाजिंत्रका नाद हो रहा है अर आत्मानुभवरूप ध्यान धरे है सो—मृदंग बाजे है, अर रत्नत्रयरूप समाधीमें तल्लीन होय है सो—गायनमें तन्मय होना है। आत्मसत्ता है सो— रंगभूमी है ऐसा सम्यग्दृष्टीनट ज्ञानरूप स्वांग धरि, मुक्त होनेके वास्ते तिहूं काल नाचे है ॥ ६० ॥

कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधन हार। अब कछु बंध प्रबंधको, कहूं अल्प विचार ॥६१॥

अर्थ—ऐसे मोक्षमार्ग साधनहारा निर्जराका स्वरूप कह्या। अब बंधद्वारका अल्प स्वरूप कहूंहूं ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको सप्तम निर्जराद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ७ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकका अष्टम बंधद्वार प्रारंभ ॥ ८ ॥

॥ अब सम्यक्ती [भेदज्ञानी] कूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मोह मद पाइ जिन्हे संसारी विकल कीने, याहिते अजानवान बिरद वहत है ॥
ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहत है ॥
ताको बल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्दिम महत है ॥
सो है समकीत सूर आनंद अंकूर ताहि, नीरखि बनारसी नमोनमो कहत है ॥ १ ॥

अर्थ—इस बंधरूप सुभटनें मोहरूप मदिराका पान करवाय समस्त संसारी जीवकूं विकल करि राख्या है, ताते अज्ञानी होय बंध करनेके बिरद (पक्ष) कू निरंतर वहे है। ऐसो विकराल यह बंधरूप सुभट है सो जगतके जीवकूं महा जाल समान है, अर ज्ञानके प्रकाशकूं मंद करनेवाला है जैसे चंद्रमाके प्रकाशकूं राहु मंद करे है। तिस बंधका बल तोडवेकूं जिसके हृदयमें सम्यक्त प्रगट भया है, सोही बंधकूं विदारण करनेकूं उद्धत (बलाढ्य) उदार अर महा उद्यमी है। ऐसे सूरवीर सम्यक्तरूप आनंदअंकूरकूं देखिके, बनारसीदास वारंवार नमस्कार करे है ॥ १ ॥

॥ अब ज्ञानचेतनाका अर कर्मचेतनाका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जहां परमातम कलाको परकाश तहां, धरम धरामें सत्य सूरजकी धूप है ॥
जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है ॥
फेली फिरे घटासी छटासी घन घटा बीचि, चेतनकी चेतना दुहूंधा गुपचूप है ॥
बुद्धीसों न गही जाय बैनसों न कही जाय, पानिकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है ॥ २ ॥

अर्थ—जहां आत्मामें ज्ञानकलाका प्रकाश है, तहां धर्मरूप धरतीमें सत्यरूप सूर्यका तेज है। अर जहां शुभ तथा अशुभ कर्ममें आत्मा बुलाइ रहा है, तहां मोहका विलासरूप घोर अंधेरका कूप है। ऐसे आत्माकी चेतना दोनूं तरफ गुपचुप हो रही है सो, शरीररूप मेघमें बीजली माफक फैलि फिर रहे है। ये चेतना बुद्धीसे ग्रही न जाय अर वचनसे कही न जाय, जैसे पानीकी तरंग पानीमें गुप्प होय है ॥२॥

॥ अब कर्मबंधका कारण रागादिक अशुद्ध उपयोग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कर्मजाल वर्गणासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों ॥
चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों ॥
कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासो अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों ॥
इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपयोगसों ॥ ३ ॥

अर्थ—जगतमें कर्मजाल पुद्गलकी वर्गणा अनंतानंत भरी है परंतु जीवकूं बंध होनेका कारण कर्मवर्गणासें भऱ्या जगत नही है, तथा मन वचन अर कायके योगसे कदापि कर्मबंध नहि होय है। चेतन वा अचेतनके हिंसाते कर्मबंध नहि होय है, अर पंच इंद्रीयोंके विषय सेवन करनेसे अलख (आत्मा) कूं कर्मबंध नहि होय है। जो कर्मवर्गणाका भऱ्या जगत बंधकूं कारण होताती सिद्ध—भगवान् जगतमें है अर तिनकूं बंध नही है तथा मन वचन अर कायके योग बंधकूं कारण होतेतो जिनभगवान्कूं योग है अर तिनकूं बंध नही है, अर हिंसाही बंधकूं कारण होतीतो साधूसे अकारित हिंसा होय है। अर तिनकूं बंध नही है तथा इंद्रीयके विषय बंधकूं कारण होतेतो ज्ञाता विषय भोगवै

है अर तिनकूं बंध नही है। इत्यादिक कर्मवर्गणाके प्रमुख वस्तुके मिलापसे आत्माकूं कर्मबंध नाहि होय है, परंतु एक अशुद्ध उपयोग (राग द्वेष अर मोह) से जीव कर्मबंधकूं प्राप्त होय है ॥ ३ ॥

॥ अब कर्मबंधका कारण अशुद्ध उपयोग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कर्मजाल वर्गणाको वास लोकाकाश मांहि, मनवच कायको निवास गति आयुमें ॥
चेतन अचेतनकी हिंसा वसे पुद्गलमें, विषै भोग वरते उदैके उर ज्ञायमें ॥
रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकि, यहै उपादान हेतु बंधके वढावमें ॥
याहिते विचक्षण अबंध कह्यो तिहूं काल, राग द्वेष मोहनांहि सम्यक स्वभावमें ॥ ४ ॥

अर्थ—कर्मजाल वर्गणाका निवास लोकाकाशमें है, [आत्मामें नही है] मन वचन अर कायके योग चारी गतीमें वा चारी आयुष्यमें है [आत्मामें नही है] चेतन वा अचेतनकी हिंसा पुद्गलमें है, [आत्मामें नही है] इंद्रियके विषयभोग कर्मके उदय माफिक होवे है। [आत्मामें नही है ताते यह आत्माकूं कर्मबंधके कारण नही है] अर राग द्वेष तथा मोहते आत्मा मूढ होय देहादिक परवस्तूकूं आपना माने है सो अशुद्ध उपयोग है, ताते ये अशुद्ध उपयोगही बंध बढानेकूं मुख्य उपादान कारण है। अर सम्यक स्वभावमें राग द्वेष अर मोह नही है, ताते सम्यग्ज्ञानीकूं तीनकाल अबंध कह्या है ॥ ४ ॥

॥ अब ज्ञाताकूं अबंध कह्या पण उद्यमी होय क्रिया करनेकूं कह्या है ॥ सवैया ३१ सा—

कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे है, तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन वैनमें ॥
ज्ञानदृष्टि देत विषै भोगनिसों हेत दोउ, क्रिया एक खेत यों तो बने नांहि जैनमें ॥

उदै बल उद्यम गहै पै फलको न चहै, निरदै दशा न होइ हिरदेके नैनमें ॥
आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यांत मांहि, जहां न संभारे जीव मोह निंद सैनमें ॥ ५ ॥

अर्थ—यद्यपि ज्ञानी है सो—कर्मजाल योग हिंसा अर विषय भोगसे कर्मबंधकूं नही बंधे है, तथापि ज्ञानीकूं उद्यम (पुरषार्थ.) करनेकूं जैन शास्त्रमें कह्या है। ज्ञानमें तत्परता अर विषयभोगमें इच्छा इन दोनूं बातोंकातो विरोध है, सो ये दोनूं क्रिया एक स्थानमें नहि होय। ज्ञानी है सो शरीरादिकके शक्तिप्रमाण अर अपने पदस्थके योग्य पुरषार्थ (क्रिया) करे है परंतु तिस क्रियाके फलकूं नहि चाहे, हृदयमें सदा दया परिणाम राखे है। आलस अर निरुद्यमीका स्थानतो मिथ्यात्व है, मिथ्यात्वीजीव मोहरूप नींदमें शयन करे है सो आत्मस्वरूपकूं नहि जाने है ॥ ५ ॥

॥ अब कर्म उदयके बलका वर्णन कहे है ॥ दोहा ॥—

जब जाकों जैसे उदै, तब सो है तिहि थान। शक्ति मरोरी जीवकी, उदै महा बलवान ॥६॥

अर्थ—जब जिस जीवकों जैसे कर्मका उदय आवे है, तब सो जीव तिस उदय माफक प्रवर्त्ते है। कर्मका उदय जीवके शक्तीकूं मोडिके आपरूप करे है, ऐसा कर्मका उदय बडा बलवान है ॥ ६ ॥

॥ अब हाथीका अर मच्छका दृष्टांत देके कर्मका उदैबल कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे गजराज पर्‍यो कर्दमके कुंडबीच, उद्दिम अरूढे पै न छूटे दुःख दंदसों ॥
जैसे लोह कंटककी कोरसों उरझ्यो मीन, चेतन असाता लहे साता लहे संदसों ॥
जैसे महाताप सिरवाहिसो गरास्यो नर, तके निज काज उठिशके न सु छंदसों ॥
तैसे ज्ञानवंत सब जाने न बसाय कछु, बंध्यो फिरे पूरव करम फल फंदसों ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसे कर्दमके कुंडमें पड्या हाथी निकलनेकूं उद्यम करे है परंतु तो दुःखमेंसे छूटे नही। अथवा जैसे धीवरके डाऱ्या लोहके कांटेसे फसा मच्छ दुःख सहे पण छूटतो नही। अथवा जैसे महा तापसे मस्तक पीड्या नर ग्रहकार्य करनेकूं उठशके नही। तैसे ज्ञानवंत हित अर अहित सब जाने परंतु तिसके स्वाधीन कछु नहीहै पूर्व कर्मके उदयरूप फंदसे बंध्यो फिरे है ॥ ७ ॥

॥ अब आलसीका अर उद्यमीका स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥—

जे जीव मोह नींदमें सोवे। ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना। तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ८ ॥

अर्थ—जे जीव मिथ्यात्वरूप मोह नींदमें सोवे है ते आलसी तथा निरुद्यमी होवे है। अर जे जीव ज्ञान दृष्टि खोलिके जाग्रत भये है तिनोंने आलस तजिके पुरुषार्थ कीया है ॥ ८ ॥

॥ अब आलसीकी अर उद्यमीकी क्रिया कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

काच बांधे शिरसों सुमणि बांधे पायनीसों, जाने न गवार कैसा मणि कैसा काच है ॥
योंहि मूढ झूठमें मगन झूठहीकों दोरे, झूठ बात माने पै न जाने कहां साच है ॥
मणिको परखि जाने जोहरी जगत मांहि, साचकी समझ ज्ञान लोचनकी जाच है ॥
जहांको जुवासी सोतो तहांको परम जाने, जाको जैसो स्वांगताको तैसे रूप नाच है ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे दिवाना होय सो काचकूं मस्तक उपर बांधे अर रत्नकूं पाय ऊपर बांधे, काचकी अर रत्नकी क्या कीमत रहती है सो जाने नही। तैसेही अज्ञानी है सो झूटमें मग्न रहे अर झूठकाम करनेकूं दौरे है, तथा झूठकूं साच माने पण इसमें क्या साच है सो जाने नही। अर जैसे जगतमें

झवेरी होय सो नेत्रते काचकी अर रत्नकी परिक्षा करे है तथा कीमत जाने है, तैसेही ज्ञानी है सो ज्ञानरूपी नेत्रते सत्य अर असत्यकी कीमत जाने है अर परीक्षा करे है। मिथ्यात्वी मिथ्यात्वकूं साच माने है अर सम्यक्ती सम्यक्तकूं साच माने है, जो जैसा स्वांग धरे है सो तैसाही नाच नाचे है ॥ ९ ॥

॥ अब जे जैसी क्रिया करे ते तैसे फल पावे है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

बंध बढावे अंध व्है, ते आलसी आजान। मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यम वान ॥१०॥

अर्थ—अज्ञानी है ते आळसी होके अंध होय है अर कर्मका बंध बढावे है। अर मुक्तिके कारण जे क्रिया करे है ते मनुष्य उद्यमवान है ॥ १० ॥

॥ अब जबलग ज्ञान है तबलग वैराग्य है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जबलग जीव शुद्धवस्तुकों विचारे ध्यावे, तबलग भोगसों उदासी सरवंग है ॥
भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नांहि, भोग अभिलाषकि दशा मिथ्यात अंग है ॥
ताते विषै भोगमें मगनसों मिथ्याति जीव, भोगसों उदासिसों समकीति अभंग है ॥
ऐसे जानि भोगसों उदासि व्है सुगति साधे, यह मन चंगतो कठोठी मांहि गंग है ॥ ११ ॥

अर्थ—जबलग जीव शुद्धवस्तुके विचारमें दौडे है, तबलग सर्व अंगमें भोगसे उदासीनपणा रहे है। अर जब भोगमें मग्न होय तब ज्ञानकी जाग्रती नही होय अर अंगमे भोगकी इच्छारूप अज्ञान-अवस्था रहे है। ताते विषयभोगमें मग्न है सो मिथ्यात्वीजीव है, अर भोगसे उदासीन है सो अभंग सम्यग्दृष्टी है। ऐसे जानि हे भव्य? भोगसे उदासीन होके मुक्तिका साधन करो, जिसका मन शुद्ध है तिसका कठोटीमें न्हाना है सो गंगास्नानवत है ॥ ११ ॥

॥ अव मुक्तिके साधनार्थ चार पुरुषार्थ कहे है ॥ दोहा ॥—

धर्म अर्थ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग। कुधी कल्पना गहि रहे, सुधी गहे सरवंग ॥१२॥

अर्थ—धर्म धन काम अर मोक्ष ये पुरुषार्थके च्यार अंग है। पण कुबुद्धीवाला है सो अपने मनमाने तैसा अंग ग्रहण करे है अर सुबुद्धीवाला है सो नयते संर्वागकूं ग्रहण करे हे ॥ १२ ॥

॥ अव चार पुरुषार्थ उपर ज्ञानीका अर अज्ञानीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुलको विचार ताहि मूरख धरम कहे, पंडित धरम कहे वस्तुके स्वभावकों ॥
खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहे, ज्ञानी कहे अरथ दरव दरसावकों ॥
दंपत्तिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहे, सुधि काम कहे अभिलाष चित्त चावकों ॥
इंद्रलोक थानकों अजान लोक कहे मोक्ष, सुधि मोक्ष कहे एक बंधके अभावकों ॥१३॥

अर्थ—अज्ञानी है सो अपने कुलाचार (स्नान सोच चौकादिक) कूं धर्म कहे है, अर ज्ञानी है सो वस्तुके स्वभावकूं धर्म कहे है। अज्ञानी है सो पृथ्वीके खजाने (सोना रूपा वगैरे) कूं द्रव्य कहे है, अर ज्ञानी है सो तत्व अवलोकनकूं द्रव्य कहे है। अज्ञानी है सो स्त्री पुरुषके संभोगकूं काम कहे है, अर ज्ञानी है सो चित्तके अभिलाषकूं काम कहे है। अज्ञानी है सो इंद्रलोक (स्वर्ग) कूं मोक्ष कहे है, अर ज्ञानी है सो कर्मबंधके क्षयकूं मोक्ष कहे है ॥ १३ ॥

॥ अव आत्मरूप साधनके चार पुरुषार्थ कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धरमको साधन जो वस्तुको स्वभाव साधे, अरथको साधन विलक्ष द्रव्य षटमें ॥
यहे काम साधन जो संग्रहे निराशपद, सहज स्वरूप मोक्ष शुद्धता प्रगटमें ॥

अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोके बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घटमें ॥
साधन आराधनकी सोंज रहे जाके संग, भूल्यो फिरे मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ १४ ॥

अर्थ—वस्तुके स्वभावकूं यथार्थपणे जानना सो धर्मका साधन है, अर षट्द्रव्यकूं भिन्न भिन्न जानना सो अर्थका साधन है। आशा रहित निराश पद (निस्पृहता) कूं ग्रहण करणा सो कामका साधन है, अर आत्मस्वरूपकी शुद्धता प्रगट करना सो मोक्षका साधन है। ऐसे धर्म अर्थ काम अर मोक्ष ये चारु पुरुषार्थ है सो, ज्ञानी अपने हृदयमें अंतर्दृष्टीसे देखे है। अर अज्ञानी है सो चार पुरुषार्थ साधनकी अर आराधनकी सामग्री अपने संग होतेहूं तिसकूं देखे नही अर मिथ्यात्वके अलटमें बाहेर धूंडता फिरे है ॥ १४ ॥

॥ अब वस्तूका सत्य स्वरूप अर मूढका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

तिहुं लोकमांहि तिहुं काल सब जीवनिको, पूरव करम उदै आय रस देत हैं ॥
कोउ दीरघायु धरे कोउ अल्प आयु मरे, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेत है ॥
याहि मैं जिवाऊ याहि मारूं याहि सुखी करुं, याहि दुखी करु ऐसे मूढ मान लेत है ॥
याहि अहं बुद्धिसों न विनसे भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम वंध हेत है ॥१५॥

अर्थ—तीन कालमें तीन लोकके सब जीवनिकूं, पूर्व कृतकर्म उदय आय फल देवे है। तिस कर्मफलते कोई दीर्घ आयुष्यी होय है अर कोई अल्प आयुष्य भोगि मरे है, कोई दुःखी है कोई सुखी है अर कोई समचित्ती है। ऐसे होतेहू कोई मूढ प्राणी कहे मैं इसिकूं जिवाउं, मैं इसिकूं मारूं,

मैं इसिकूं सुखी करूं, मैं इसिकूं दुखी करूंहूं ऐसे अज्ञानी मानिलेत है। इसही अहंबुद्धीसे भ्रमरूप भूल नहि विनसे है, अर येही मिथ्याधर्म है सो मूढकूं कर्मबंधका कारण होय है ॥ १५ ॥ पुनः—

जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबे असहाय कोउ काहुको न धनी है ॥
जैसे जैसे पूरव करम सत्ता बांधि जिन्हे, तैसे तैसे उदैमें अवस्था आइ बनी है ॥
एतेपरि जो कोउ कहे कि मैं जिवाउ मारूं, इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है ॥
सोतो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहुं काल, डोले निज आतम शकति तिन्ह हनीहै ॥ १६ ॥

अर्थ—जबलग जीव जगतमें रहे है, तबलग असाहायपणे रहे है कोई काहूका धनी नही है। जिसने जैसे जैसे पूर्व कालमें कर्मकी सत्ता बांधी है, तैसे तैसे जीवकूं उदय आय फल देवे है तिस कर्मके फलकूं कम जादा करनेकूं कोउ समर्थ नही है। ऐसे होतेहू कोऊ कहे मैं याकूं जिवाऊं अर मैं याकूं मारूं, इत्यादि अनेक प्रकारके बातका विकल्प करे है। ताते इस अहंबुद्धीसे विकल होय तीन कालमें डोले है, अर स्व आत्माके ज्ञानशक्तीकूं हने है ॥ १६ ॥

॥ अब उत्तम मध्यम अधम अधमाधम इन जीवके स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

उत्तम पुरुषकी दशा ज्यौं किसमिस द्राख, बाहिर अभिंतर विरागी मृदु अंग है ॥
मध्यम पुरुष नालियर कीसि भांति लीये, बाहिज कठिण हिए कोमल तरंग है ॥
अधम पुरुष बदरी फल समान जाके, बाहिरसों दीखे नरमाई दिल संग है ॥
अधमसों अधम पुरुष पूंगी फल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है ॥ १७ ॥

अर्थ—उत्तम मनुष्यका स्वभाव किसमिस(द्राक्षा)समान अंतरहू कोमल अर बाहिरहू कोमल

(दयारूप) है । अर मध्यम मनुष्यका स्वभाव नालियर समान बाहिर कठोर (अभिमानी) अर अंतर कोमल है । अधम (कनिष्ट) मनुष्यका स्वभाव बोरफल समान अंतर कठोर अर बाहिर कोमल है । अधमसे अधम मनुष्यका स्वभाव सुपारी समान अंतर कठोर अर बाहिरहू कठोर है ॥१७॥

॥ अब उत्तम मनुष्यका स्वभाव कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कांचसों कनक जाके नीचसों नरेश पद, मीचसि मित्ताइ गुरुवाई जाके गारसी ॥
जहरसी जोग जाति कहरसि करामति, हहरसि हौंस पुदगल छबि छारसी ॥
जालसों जग विलास भालसों भुवन वास, कालसों कुटुंब काज लोक लाज लारसी ॥
सीठसों सुजस जाने वीठसों वखत माने, ऐसि जाकि रीत ताहि वंदत बनारसी ॥ १८ ॥

अर्थ—जो सुवर्णकूं कीचडसमान आत्माकूं मलीन करनेवाला जानेहै अर राज्यपदकूं नीच समान मद बधाय नरककूं पोचावनेवाला माने है, लोकके मित्राइकूं मरण समान अचेतपणा करणारा समझे है अर अपनी कोई बढाई करे तिसकूं जो गाली समान माने है । जो रसकूपादिक जोग जातीकूं जहर पीवने समान अर मंत्रादिकके करामतीकूं तीव्र वेदनाके दुःखसमान जाने है, जगतके माया-रूप विलासकूं जाल समान अर घरवासकूं बाणकी टोक समान समझे है, हौसकूं अनर्थकारी अर शरीरके कांतिकूं राख समान देखे है । संसार कार्यकूं काल समान अर लोक लाजकूं मुखके लाळ-समान जाने है । अपने सुयशकूं नाशिकाके मल समान अर भाग्योदयकूं विष्टा समान समझे है, ऐसी जाकी रीत है तिनकूं बनारसीदास वंदना करे है ॥ १८ ॥

॥ अव मध्यम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ सुभट स्वभाव ठग मूर खाई, चेरा भयो ठगनके घेरामें रहत है ॥
ठगोरि उतर गइ तबै ताहि शुद्धि भइ, पऱ्यो परवस नाना संकट सहत है ॥
तैसेहि अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोले आठो जाम विसराम न गहत है ॥
ज्ञानकला भासी तब अंतर उदासि भयो, पै उदय व्याधिसों समाधि न लहत है ॥१९॥

अर्थ—जैसे सुभटकूं कोई ठगने जडीकी मुळी खुवायदीनी, ताते सो सुभट तिस ठगका चेला होय हुकुममें रहे है। अर मूळीका अमल उतर जाय तब सुभट अपने शुद्धिमें आवे है अर ठगकूं दुर्जन जाने है, परंतु ठगके वस हुवा है ताते नाना प्रकारके संकट सहे है। तैसेही अनादि कालका मिथ्यात्वीजीव है सो मिथ्यात्व स्वभावते अचेत होय, आठौ प्रहर संसारमें डोले है विश्राम लेय नही। अर भेदज्ञान होय तब अंतरंगमें उदासी रहेहै, परंतु कर्मोदयके व्याधीसे समाधानपणा नहि पावे सो मध्यम पुरुष है ॥ १९ ॥

॥ अव अधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे रंक पुरुषके भावे कानी कौडी धन, उलूवाके भावे जैसे संझाही विहान है ॥
कूकरके भावे ज्यों पिडोर जिरवानी मठा, सूकरके भावे ज्यों पुरीष पकवान है ॥
वायसके भावे जैसे नींबकी निंबोरी द्राख, बालकके भावे दंत कथा ज्यों पुरान है ॥
हिंसकके भावे जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भावे शुभ बंध निरवान है ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे दरिद्री मनुष्यकूं कानी कौडी धनसमान प्रीय लागे है, अथवा जैसे घुवडकूं प्रभात-

समान संध्या समय लागे है। अथवा जैसे कुत्तेकूं दहीके मठ्ठे समान वमन प्रिय लागे है, अथवा जैसे शुकरकूं पकान्न समान विष्टा प्रिय लागे है। अथवा जैसे काकपक्षीकूं द्राक्ष समान नींबकी निंबोली प्रिय लागे है, अथवा जैसे बालककूं पुराणसमान दंत कथा प्रिय लागे है, अथवा जैसे हिंसककूं हिंसा धर्मसमान प्रिय लागे है, तैसे अज्ञानीकूं पुण्यबंध मोक्षसमान प्रिय लागे है ॥ २० ॥

॥ अब अधमाधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुंजरकों देखि जैसे रोष करि भुंके स्वान, रोष करे निर्धन विलोकि धनवंतकों ॥
रैनके जगैय्याकों विलोकि चोर रोष करे, मिथ्यामति रोष करे सुनत सिद्धांतकों ॥
हंसकों विलोकि जैसे काग मन रोष करे, अभिमानि रोष करे देखत महंतकों ॥
सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करे, त्योंहि दुरजन रोष करे देखि संतकों ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे हाथीकूं देखि रोष करि श्वान भुंके है, अथवा जैसे धनवंतकूं देखि दरिद्री मनमें रोष करे है। अथवा जैसे रात्रिके जगैयाकूं देखिके चोर रोष करे है, अथवा सिद्धांत शास्त्रकूं सुनिके मिथ्यात्वी मनमें रोष करे है। अथवा जैसे हंसकूं देखि काकपक्षी रोष करे है, अथवा जैसे महंत पुरुषकूं देखि अभिमानी मनमें रोष करे है। अथवा जैसे सुकविकूं देखि कुकवि रोष करे है, तैसे सत्पुरुषकूं देखि दुर्जन मनुष्य मनमें रोष करे है ॥ २१ ॥ पुनः—

सरलकों सठ कहे वकताकों धीठ कहे, विनै करे तासों कहे धनको आधीन है ॥
क्षमीकों निबल कहें दमीकों अदत्ति कहे, मधुर वचन बोले तासों कहे दीन है ॥

धरमीकों दंभि निसप्रहीकों गुमानि कहे, तृपणा घटावे तासों कहे भाग्यहीन है ॥
जहां साधुगुण देखे तिनकों लगावे दोप; ऐसो कछु दुर्जनको हिरदो मलीन है ॥२२॥

अर्थ—सरल परिणाम राखे तिसकूं कहे ये मूर्ख है अर वोलनेमें जो हुपार है तिसकूं कहे ये धीठ है, विनय करे तिसकूं कहे ये धनके आधीन है। क्षमा करे तिसकूं कहे ये निर्वल है अर इंद्रिय दमन करे तिसकूं कहे ये कृपण है, मधुर वचन वोले तिसकूं कहे ये गरीव है। धर्मात्मा है तिसकूं कहे ये दंभी (कपटी) है अर निस्पृही है तिसकूं कहे ये अभिमानी है, परिग्रह छोडे है तिसकूं कहे ये भाग्यहीन है। जहां सद्गुण देखे तहां दोप लगावे है, ऐसा दुर्जनका हृदय मलीन है ॥ २२ ॥

॥ अव मिथ्यादृष्टीके अहंबुद्धीका वर्णन करे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मैं करता मैं कीन्ही कैसी। अव यों करो कहे जो ऐसी ॥
ए विपरीत भाव है जामें। सो वरते मिथ्यात्व दशामें ॥ २३ ॥
अहंबुद्धि मिथ्यादशा, धरे सो मिथ्यावंत। विकल भयो संसारमें, करे विलाप अनंत ॥२४॥

अर्थ—मैं कर्त्ता मनुष्यहू देखो हमने यह कैसा काम कीया है ऐसा काम दुसरेसे नाहि वनसके, अवहू हम जैसा कहेंगे तैसाही करेंगे। ऐसा जिसमें अहंकारके वशते विपरीत भाव है, सो मिथ्यात्व अवस्था है ॥२३॥ ऐसे अहंबुद्धि मिथ्यात्वअवस्थाकों जो धारण करे है सो मिथ्यात्वीजीव है। सो संसारमें विकल होय भटके है अर अनंत दुःख सहता विलाप करे है ॥ २४ ॥

रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटत है ॥
कालके ग्रसत छिन छिन होत छिन तन, आरेके चलत मानो काठ ज्यों कटत है ॥

एतेपरि मूरख न खोजे परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटत है ॥
लग्योफिरे लोकनिसों पग्योपरे जोगनीसों, विषैरस भोगनिसों नेक न हटत है ॥ २५ ॥

अर्थ—जैसे अंजुलीमेंका पाणी घटे है, तैसे दिन दिन प्रति सूर्यका उदय अस्त होते मनुष्यका
आयुष्य घटे है । अर जैसे करोतके खैचनेते लकडी कटे है, तैसे छिन छिनमें शरीर क्षीण होय है ।
ऐसे आयुष्य अर देह छिन छिनमें क्षीण होतेहूं, मूर्खजन परमार्थकूं नहि धूंडे है, अपने संसारस्वार्थके
कारण भ्रमका बोझा उठावे है । अर कामक्रोधादिकके साथे लगि फिरे है तथा शरीर संयोगमें मिलि
रहे हैं, ताते विषय सुखके भोगते किंचितहूं नहि हटे है ॥ २५ ॥

॥ अब मृगजलका अर अंधका दृष्टांत देके संसारीमूढका भ्रम दिखावे है ॥ ३१ सा ॥—

जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपति मांहि, तृषावंत मृषाजल कारण अटत है ॥
तैसे भववासी मायाहीसों हित मानिमानि, ठानि २ भ्रम भूमि नाटक नटत है ॥
आगेकों दुकत धाइ पाछे बछरा चवाई, जैसे द्रग हीन नर जेवरी वटत है ॥
तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करे, रोवत हसत फल खोवत खटत है ॥ २६ ॥

अर्थ—जैसे जेष्ट महिनेमें सूर्यका बहुत ताप पडे है, तब मत्त मृग तृषातुर होय मृषाजलकूं जल
जानि पीवनेकेअर्थी दौडे है पण तहां जल नही है । तैसे संसारी जीवहूं माया जालमें हित मानि मानि,
भ्रमरूप भूमिकामें नटके समान नाचे है । अथवा जैसे कोऊ अंधमनुष्य आगे जेवरी (डोरी) वटत
जाय है, अर पीछे गऊका बछडा जेवरीकूं चावी नाखे है सो अंध जाने नही ताते तिसकी मेहनत व्यर्थ
जाय है । तैसे मूढ जीव पुण्योपार्जनकी क्रिया करे है, परंतु पूर्वकालके अशुभकर्मका उदय आवे तब रोवे है
अर शुभकर्मका उदय आवे तब हासे है ताते इस राग द्वेषसें सुकृत क्रियाका फल नाश होवे है ॥२६॥

॥ अव मूढजीव कर्मबंधसे कैसे निकसे नही सो लोटण कवूतरका दृष्टांत देके कहे है ॥ ३१ सा ॥—

लीये दृढ पेच फिरे लोटण कबूतरसों, उलटो अनादिको न कहूं सुलटत है ॥
जाको फल दुःख ताहि सातासों कहत सुख, सहत लपेटि असि धारासी चटत है ॥
ऐसे मूढजन निज संपत्ति न लखे कोंहि, योंहि मेरी २ निशिवासर रटत है ॥
याहि ममतासों परमारथ विनसि जाइ, कांजिको फरस पाइ दूध ज्यों फटत है ॥ २७ ॥

अर्थ—जैसे लोटण कवूतरके पंखकूं दृढ पेंच देके छोड देवेतो उलटही फिरे है, तैसे संसारीप्राणी अनादिकालका कर्मबंधके पेंचतें उलटही फिरे है पण कोईरीते सुलट मार्ग धरतो नही । अर जैसे मध लपेटी तरवारके धारकूं चाटेतो तिससें मिठांश थोडा अर दुःख बहुत है । तैसे जिसका फल दुःख है ऐसे विषय भोगसे किंचित् साता उपजे तिसकूं सुख माने है, ऐसे मूढ प्राणी शरीरादिक पर वस्तुकूं रात्रंदिन मेरी मेरी कर रह्यो है, पण अपने ज्ञानादिक संपत्तीकूं देखतो नही । इसही ममतासे परमार्थ (आत्म कल्याण) बिगडी जाय है, जैसे कांजी (लूणके पाणी) का स्पर्श होते दूध फटिजाय है ॥२७॥

॥ अव नाकका अर काकका दृष्टांत देके मूढके अहंबुद्धीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

रूपकी न झांक हिये करमको डांक पीये, ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक जैसे घनमें ॥
लोचनकि ढांकसों न मानें सदगुरु हांक, डोले मूढ रंकसों निशंक तिहूं पनमें ॥
टांक एक मांसकी डलीसि तामें तीन फांक, तीन कोसो अंक लिखि राख्यो काहूं तनमें ॥
तासों कहे नांक ताके राखवेको करे कांक, वांकसों खडग वांधिवांधि धरे मनमें ॥२८॥

अर्थ—मूढके हृदयमें ज्ञानरूप दृष्टी नही ताते कर्मका उदय होय तैसे बन जात है, तिस कारणते आत्मस्वरूप जे शुद्धज्ञान है सो दबि रहे है जैसे बादलमें चंद्र दबि जाय है तैसे। अर ज्ञानरूप दृष्टि दबनेसे अज्ञानी होय सद्गुरुकी हाक (आज्ञा) नहि माने है, ताते बाल तरुण अर वृद्ध इन तीनौं अवस्थामें बोधरहित दरिद्री होय निशंक डोले है। अर अपना नाक (अहंकार) राखनेके कारण मनमें बांकरूप खड्ग बांधि बांधि लरे है। नाक है सो शरीरका एक मांसका भाग है तिसमें तीन फांक है, तिस नाकका आकार तीनके (३) अंक समान है ऐसे कवि नाककूं अलंकार देवे है ॥ २८ ॥

॥ अब कुत्तेका दृष्टांत देके मूढका विषयमें मग्नपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनकि कोर चहुवोर चूभे मुखमें ॥
गाल तालु रसनासों मूखनिको मांस फांटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥
तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, तामें चित्त साने हित माने खेद दुःखमें ॥
देखे परतक्ष वल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग रुखमें ॥ २९ ॥

अर्थ—जैसे कोई भुकित कुत्ता सूके हाड चावे, तिस हाडकी कोर मुखमें चहुंवोर टोचे है। ताते गाल तालू अर जीभ फटिके मुखमेते रक्त निकसे है, सो अपने रक्तकूं आप चाटि स्वाद सुखमें मग्न होय है। तैसेही मूढमनुष्य कामभोगकी क्रीडा करे है, तब तिसमें मनसा राखे है अर तिसते खेद तथा दुःख उपजे तोहूं तिसकूं अपना हित माने है। स्त्रीभोगमें शक्तिकी हानी अर मल मूत्रकी खानि प्रत्यक्ष दीखे है, तथापि तिसकी ग्लानि नहि करे है उलट तिसमें रात्रदिन प्रेमही राखे है ॥ २९ ॥

॥ अब जिसकूं मोहकी विकलता नही ते साधु है सो कहे है ॥ छंद अडिल्ल ॥—

सदा मोहसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥
करे विकल्प अनंत, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥३०॥

अर्थ—निश्चय नयते आत्मा मोहसे भिन्न है, पण व्यवहार नयते मोहकर्मकरि विकलता (आत्मस्वरूपमें भ्रम) मानि मिथ्यात्वी हो रह्या है । ताते अहंबुद्धि धरिके मनमें अनंत विकल्प करे है अर जो अहंबुद्धिकूं निवारण करिके आत्मस्वरूपमें स्थिर होय है सो मुनी है ॥ ३० ॥

॥ अब सम्यक्ती आत्मस्वरूपमें कैसे स्थिर होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

असंख्यात लोक परमाण जे मिथ्यात्व भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है ॥
जिन्हके मिथ्यात्व गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन व्यवहारसों मुकत है ॥
निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुण मोक्ष पंथकों ढुकत है ॥
तेई जीव परम दशामें थिर रूप व्हैके, धरममें धुके न करमसों रुकत है ॥ ३१ ॥

अर्थ—लोकके असंख्यात प्रदेश है तिस असंख्यात प्रदेशरूप भाव होना सो मिथ्यात्व भाव है तेही व्यवहारमिथ्यात्वके असंख्यात भाव है ऐसे केवलीभगवानका भाष्य है । जिसका मिथ्यात्व गया अर सम्यक्त प्राप्त भया है, ते निश्चयमें लीन है अर व्यवहारते मुक्त (रहित) है । अर व्यवहारते मुक्त होय जे विकल्प अर उपाधि रहित आत्मानुभव करे है, तथा ज्ञानते मोक्षमार्गकूं देखे है । तेही जीव आत्मस्वरूपमें स्थिररूप होयके, मोक्षकूं जाय है कर्मसे रूके नहि ॥ ३१ ॥

॥ अब शिष्य कर्मबंधका कारण पूछे है ॥ कवित्त ॥—

जे जे मोह कर्मकी परणति, बंध निदान कही तुम सव्व ॥
संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हको मूल हेतू कहु अव्व ॥
कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल दव्व ॥
सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहे सुगुरु उत्तर सुनि भव्व ॥ ३२ ॥

अर्थ—मोहकर्मकी जे जे राग द्वेषादिक परणति है ते ते सर्व कर्मबंधका कारण है ऐसे आपने कह्या। परंतु मोह परणति तो शुद्ध आत्मासे सदा भिन्न है, सो बंधका कारण कैसा होय? ये कर्मबंध है सो स्वाभाविक जीवके कौतुकते होय है कि, पुद्गल द्रव्यके निमित्तते होय है। इनका मूल हेतु अब कहो ऐसे मस्तक नवाइके शिष्य पूछे है ॥ ३२ ॥

॥ अब कर्मबंधका कारण सद्गुरु कहे है सो हे भव्य तुम सुनो ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे नाना वरण पुरी बनाइ दीजे हेठ, उज्जल विमल मणि सूरज करांति है ॥
उज्जलता भासे जब वस्तुको विचार कीजे, पूरिकी झलकसों वरण भांति भांति है ॥
तैसे जीव दरवको पुद्गल निमित्तरूप, ताकि ममतासों मोह मदिराकि मांति है ॥
भेदज्ञान दृष्टिसों स्वभाव साधि लीजे तहां, साचि शुद्ध चेतना अवाचि सुखशांति है ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे काश्मिरी सफेत पाषाण (स्फटिक) के मणीमें नाना प्रकार रंगका पुड दीजे, तब तो मणी सूर्यकांतिके मणि समान नानारंगरूप दीखे है। जब मूल वस्तूका विचार कीजे तो मणि उज्जल भासे है, परंतु पुडके निमित्तसे तद्द्वेवार देखाय है। तैसे जीवद्रव्यकूं अशुद्ध दशाका निमित्त

पुद्गलद्रव्य है, तिन पुद्गलके ममतासे मोहरूप मदिराका उन्मत्तपणा होय है। अर जब भेदज्ञान दृष्टीसे मूल जीववस्तुका विचार कीजे तो, अवाच्य (वचन गोचन नही ऐसे) सत्यार्थ सुखशांतिरूप शुद्ध आत्माही भासे है ॥ ३३ ॥

॥ अब वस्तुके संगतसे स्वभावमें फेर पडे सो नदीके प्रवाहका दृष्टांत देयके कहे है ॥ २१ सा ॥—

जैसे महि मंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहिमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है ॥
पाथरको जोर तहां धारकी मरोर होत, कांकरकी खानि तहां झागकी झरनि है ॥
पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग ऊंठे, भूमिकी निचान तहां भोरकी परनि है ॥
ऐसे एक आतमा अनंत रस पुदगल, दूहुके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥ ३४ ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी उपर नदीका प्रवाह एकरूप है, पण उस प्रवाहमें पाणीका बहना अनेक प्रकार है। जहां मोठा मोठा पाषाण आडो होय तहां पाणीके धारकूं मोड पडे है, अर जहां कांकरी बहुत होय तहां पाणीमें झागकी भभकी ऊठे है। जहां पवनकी झकोर लाग है तहां पाणीमें चंचल तरंग ऊठे है, अर जहां जमीन नीची है तहां भौंर फिरे है। तैसेही एक आत्मद्रव्य है परंतु अनंत रसरूप पुद्गलद्रव्य है, इन पुद्गलके संयोगते आत्मामें राग द्वेषादिक विभावकी भरणी होय है ॥ ३४ ॥

॥ अब आतमा अर देह एक हो रह्या है पण लक्षण जुदा जुदा है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

चेतन लक्षण आतमा, जड लक्षण तन जाल। तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥३५॥

अर्थ—आत्माका लक्षण चेतन है, अर शरीरका लक्षण जड है। ताते शरीरकी ममता छोडिके आत्माकी चाल जो शुद्ध ज्ञान है सो ग्रहण कर लीजे ॥ ३५ ॥

॥ अब आत्माकी शुद्ध चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

जो जगकी करणी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई ॥
देह प्रमाण पैं देहसुं दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई ॥
देह धरे प्रभु देहसुं भिन्न, रहे परछन्न लखे नहि कोई ॥
लक्षण वेदि विचक्षण बूझत, अक्षनसों परतक्ष न होई ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो इस जगतकी समस्त करणी (चतुर्गतीमें गमनादि) है सो करे है, अर जो जगतकूं जाणे है अर देखेहू है। जो अपने देह प्रमाण है परंतु देहते दूजा है, देह अचेतन (ज्ञानशून्य) है अर आत्मा है सो चेतन (ज्ञानवान) है। देह रूपी है अर प्रभू (आत्मा) अरूपी है, आत्मा देह धरे है परंतु देहसे भिन्न है ढकि रहे है इसकूं कोई देखे नही। इस आत्माके जे लक्षण हैं तिस लक्षणकूं जाणि ज्ञानी मनुष्य आत्माकूं ऊलखे है, पण नेत्र इंद्रियते प्रत्यक्ष दृग्गोचर नहि होय ॥ ३६ ॥

॥ अब देहकी चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेतकि क्यारी ॥
व्याधीकि पोट आराधीकि ओट, उपाधीकि जोट समाधिसों न्यारी ॥
रे जिय देह करे सुख हानि, इते पर ती तोहि लागत प्यारी ॥
देह तो तोहि तजेगि निदान पैं, तूंहि तजे क्युं न देहकि प्यारी ॥ ३७ ॥

अर्थ—देह है सो प्रेतवत् अचेतन है तथा रक्त अर रेतकी भरी गुफा है, अर मल मूत्र उपजनेकी खेतकी वाडी है। रोगकी पोटडी है अर आत्माकूं छुपावनेकूं आगळ है, क्लेशकी झुंड है असमाधानी-

पणाका स्थान है। अरे जीव ? ये देहतो सुखका नाश करे है, इतनेपर तुझे प्यारी लागत है। पण ये देहतो तुझको तजेगी, अरे जीव ? तूं क्युं इस देहकी प्यारी तजे नहीं ॥ ३७ ॥ दोहा ॥—

सुन प्राणि सद्गुरु कहे, देह खेहकी खानि। धरे सहज दुख पोषको, करे मोक्षकी हानि ॥३८॥

अर्थ—सद्गुरु कहें हे प्राणी ? ये देह है सो मट्टीकी खाण है। ये स्वभावतेही वात पित्त कफ वा क्षुधा तृषादिक दोषकूं पुष्ट करनेवाली अर मोक्षकी हानी करनेवाली है ताते इसिका ममत्व छोडो ॥३८॥

॥ अब देहका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

रेतकीसी गढी कीधो मढि है मसाण कीसि, अंदर अंधेरि जैसी कंदरा है सैलकी ॥
ऊपरकि चमक दमक पट भूषणकि, धोके लगे भलि जैसी कलि है कनैलकी ॥
औगुणकि उंडि महा भोंडि मोहकी कनोंडि, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी ॥
ऐसी देह याहीके सनेह याके संगतीसों, व्हे रहि हमारी मति कोलुकैसे बैलकी ॥ ३९ ॥

अर्थ—यह देह है सो रेतकी गठडी अथवा मसाण समान अपवित्र स्थान है, इस देहमें पर्वतके गुफा जैसा अंधेर है। देहके ऊपर चमक दमक दीखे है सो वस्त्राभरणकी शोभाते झूठा भबका भला लोग है, कनेल वृक्षके कली समान दुर्गंध है। औगुण रहनेकी उंडी बावडी है दगा देनेकूं महाकृतघ्नी अर मोहकी कांणी आख है, माया जालका मसूदा अर मैलकी पूतली है। इसके ममतासे अर स्नेहसे, हमारी मती है सो कोल्हूके घाणीके बैल समान सदा भ्रमण करे है ॥ ३९ ॥

ठौर ठौर रकतके कुंड केसनीके झुंड, हाडनीसों भरि जैसे थरि है चुरैलकी ॥
थोरेसे धकाके लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पूरि कीधो चादर है चैलकी ॥

ऐसीदेह याहीके सनेह याके संगतीसों, व्हैरहे हमारी मति कोल्हकैसे बैलकी ॥
सूचे भ्रम वानि ठानि मूढनीसों पहिचानि, करे सुख हानि अरु खानी वद फैलकी ॥ ४० ॥

अर्थ—इस देहमें जगे जगे रक्तके कुंड अर केशके झुंड है, अर इस देहमें हाडकी थडी चुडले जैसी रची है। इह देह जरासा धका लगेतो फटिजाय है, मानूं कागदकी पूतली है अथवा जुनी चादर है। इसीका ममत्व करनेसे भ्रम उपजे है पण मूढलोक इसका स्नेह करे है, यह देह सुखकी हानी करनेवाली अर वदफैली (काम क्रोध) की खाण है। इसीके ममतासे अर स्नेहसे, हमारी मती कोल्हूके घाणीके बैल समान सदा भ्रमण करे है ॥ ४० ॥

॥ अव संसारी जीवकी गति कोल्हूके बैल समान है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पाठी वांधी लोचनीसों संचुके दवोचनीसों, कोचनीके सोचसों निवेदे खेद तनको ॥
धाइवोही धंधा अरु कंधा मांहि लग्यो जोत, वार वार आर सहे कायर व्हे मनको ॥
भूख सहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहे छिनको ॥
पराधीन घूमे जैसे कोल्हूका कमेरा बैल, तैसाहि स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥४१॥

अर्थ—कैसा है कोल्हूका बैल ? जिसके नेत्र ऊपर ढकणा वांधे है अर गुह्य स्थानमें दवोचनीते टोचे है, ताते वेदना होय है तोहूं शरीरकूं थकवा देय नही। धंदेमें दौडता फिरे है अर खांदेपर जोत है तिनते निकसने नहि पावे, अर वार वार मार सहे है ताते मनमें कायर हो रह्या है। भूख प्यास अर दुर्जनका त्रास सहे है, पण क्षणभर उश्वास लेनेकूं स्थिरता नही है। ऐसे कोल्हूके घाणीका काम करनेवाला बैल पराधीन हुवा घूमे है, तैसाही जगवासी संसारी जीवका घूमनेका स्वभाव है ॥४१॥

जगतमें डोले जगवासी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कींधो रेत कैसे धूहे है ॥
दीसे पट भूषण आडंबरसों नीके फीरे, फीके छिन मांहि सांझ अंबर ज्यों सूहे है ॥
मोहके अनल दगे मायाकी मनीसों पगे, डाभकि अणीसों लगे ऊस कैसे फूहे है ॥
धरमकी बूझि नांहि उरझे भरम मांहि, नाचि नाचि मरिजाहि मरी कैसे चूहे है ॥ ४२ ॥

अर्थ—संसारी जीव है तें जगतमें मनुष्यका रूप धरि डोले है, पण ते प्रेतके दीपक समान जलदी बुझ जाय है अथवा रेतके धूवे समान इहांसे उडी उहां पैदा हो जाय है। मनुष्य देह वस्त्राभरणते शोभनीक दीखे है, परंतु क्षणमें सांझके आकाश समान फीके पडे है। सदा मोहरूप अग्नीसे दाहे है अर मायामें व्यापि रहे है, पण घास ऊपरके पाणीके बूंद समान क्षणमें विनाश हो जाय है। संसारी जीवकूं धर्मकी ओळखही नही अर विषयते भूलि मोहमें नाचि नाचि मरजाय है, जैसे मरी रोग (प्लेग) के उंदीर नाचि नाचि मरे है तैसे ॥ ४२ ॥

॥ अब जगवासी जीवके मोहका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जासूं तूं कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जैसे नाक सिनकी ॥
तासूं तूं कहत हम पुन्य जोग पाइ सो तो, नरककि साई है वढाई डेढ दिनकी ॥
घेरा मांहि पऱ्योतूं विचारे सुख आखिनिको, माखिनके चूटत मिठाई जैसे भिनकी ॥
एतेपरि होई न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी ॥४३॥

अर्थ—अरे संसारी प्राणी ? जिस संपदाकूं तूं आपनी कहे है, सो तिस संपदाकूं साधू लोकने नाकके मैल जैसी दूर फेक दीई है तिसकूं फेर नहि लेवे। अर ताकूं तूं कहे हम पुन्य जोगसे पाई है परंतु

इह संपदा नरकके जानेकूं साइ (इसार) है अर इसकी बढाई दीड दीनकी है। इस स्त्री पुत्रादिकके घेरेमें तूं पडा है अर आखीनकूं सुख दीखे है, परंतु तूं विचार कर? ये तेरी धन संपदा खानेकूं संग लगे है जैसे मिठाई खानेकूं मक्षिका चूटे है भिनभिनाट कर घेर राखे है। ऐसे होतेहू जगवासी जीव धनसंपदादिकते उदासीन होय नही सो बडा आश्चर्य है, विचार करिये तो इस जगतमें सदा दुःखही हैं सुख क्षणभरभी नही है ॥ ४३ ॥

॥ अब संसारी जीवकूं सद्गुरु समझावे है ॥ दोहा ॥—

यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज। तेरे घटमें जगवसे, तामें तेरो राज ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे भव्य? इह जगवासी लोकसे अर जगतसे तेरा संबंध राखनेका काम नही। तेरे घट पिंडमें ज्ञान स्वभावमय समस्त प्रकाशरूप ब्रह्मांड वसे है तहां तेरा अविनाशी राज्य है ॥ ४४ ॥

॥ अब जे पिंड ते ब्रह्मांड ये वात साची है ऐसे सिद्धकरी बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

याहि नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थीति, याहिमें त्रिविधि परिणामरूप सृष्टि है ॥
याहिमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुखवारीदकि वृष्टि है ॥
याहिमें करतार करतूति यामें विभूति, यामें भोग याहिमें वियोग यामें घृष्टि है ॥
याहिमें विलास सर्व गर्भित गुपतरूप; ताहिको प्रगट जाके अंतर सुदृष्टि है ॥४५॥

अर्थ—कटीके नीचे पाताल लोक अर नाभि है सो मध्य लोक अर नाभी ते ऊपर स्वर्गलोक ऐसे त्रिभुवनरूप स्थिति इस मनुष्य देहमें वसे है, अर इसहीमें कइक परिणाम उपजे है कइक नाश पावे है अर कइक स्थिर रहे है ऐसे परिणामरूप त्रिविध सृष्टि बन रही है। इस देहपिंडमें आत्माकूं

कर्मकी उपाधिरूप दुःखमय दावाग्नि है, अर इसहीमें आत्मध्यानरूप सुखकी मेघ वृष्टि है। इस देहपिंडमें कर्मका कर्त्ता पुरुष (आत्मा) है अर कर्त्ताकी क्रिया है अर इसिमें ज्ञानरूप संपदा है, इसिमें कर्मका भोग है अर त्रियोग है अर इसिमें शुभ तथा अशुभ गुण उपजे है। ऐसे इस देहपिंडमें गर्भित समस्त विलास गुप्तरूप है, पण जिसके हृदयमें सुदृष्टि (ज्ञान) का प्रकाश है तिसकूं सब विलास प्रत्यक्षपणे दीखे है ॥ ४५ ॥

॥ अब आतमाके विलास जाननेका उपदेश गुरु करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

रे रुचिवंत पचारि कहे गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही ॥
खोज हिये निज चेतन लक्षण, है निजमें निज गूझत नांही ॥
शुद्ध स्वच्छंद सदा अति उज्जल, मायाके फंद अरुझत नाही ॥
तेरो स्वरूप न दुंदकि दोहिमें, तोहिमें है तोहि सूझत नांही ॥ ४६ ॥

अर्थ—शिष्यकूं बुलाइके गुरु कहे, रे रुचिवंत भव्य ? तूं आपना स्वरूप वोलखतो नही। तूं आपना चेतन लक्षण हृदयमें धुंढ, तेरा लक्षण तेरे मांहि है, पण दृष्टिगोचर नही। तेरा स्वरूप सिद्ध समान है निज आधिन है अर कर्मरहित अति उज्जल है, पण मायाके फंदमें पड्या है तातें छूटि शकतो नही। तेरा स्वरूप क्लेश वा भ्रमजालके दुबिधामें नही है, तेरेमेंही है पण तोकूं सूझे नहि है ॥ ४६ ॥

॥ अब आतमस्वरूपकी ऊलख ज्ञानसे होय है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

केइ उदास रहे प्रभु कारण, केइ कहीं उठि जांहि कहींके ॥
केइ प्रणाम करे घडि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके ॥

ऋ-393 2300

केइ कहे असमानके ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेट जमींके ॥
मेरो धनी नहि दूर दिशान्तर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके ॥ ४७ ॥

अर्थ—कोई प्रभू (आत्मा) जाननेके कारण उदासीन होय बैठ रहे है, अर कोई केइ दूर क्षेत्रविषे यात्रा करनेकूं उठि जाय है। कोई परमेश्वरके घडी मूर्त्तिकूं प्रणाम करे है, अर कोई छीकेमें बैठीके पहाड चढे है। कोई कहे अस्मानके ऊपर परमेश्वर है अर कोई कहे जमीनके नीचे परमेश्वर है। [ऐसे अनेक लोकके अनेक मत है] पण ज्ञानी ऐसा विचार करे की मेरा धनी (परमेश्वर) तो कोई दूर देशांतरमें नही है, मेरे मांही है सो मुझकूं आच्छी रीतीसे सूझे (अनुभवमें आवे) है ॥ ४७ ॥

कहे सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ। सुथिर चित्त अनुभौ करे, प्रभुपद परसे सोइ॥४८॥

अर्थ—सद्गुरु कहे है की जो समकिती है, सो संसारते परम उदासीन होय है। अर मन स्थिर करके आत्माका अनुभव करे है, तब प्रभुपदका (आत्मस्वरूपका) अवलोकन होय है ॥ ४८ ॥

॥ अब मनका चंचलपणा बतावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

छिनमें प्रवीण छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्र है ॥
लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥
नट कोसो थार कीधों हार है रहाट कोसो, नदीकोसो भोरकि कुंभार कोसो चक्र है ॥
ऐसो मन भ्रामकसु थिर आज कैसे होइ, औरहीको चंचल अनादिहीको वक्र है ॥४९॥

अर्थ—ये मन है सो क्षणमें गर्वसे प्रवीण होय है अर क्षणमें मायासे मलीन बने है, क्षणमें विषयका वांछक होय दीन दशा धरे है, अर क्षणमें इंद्रसमान बनजात है। क्षणमें दौडादौड करे है

अर क्षणमें अनंतरूप धरे है जैसे दाधिका मथाणमें तक्र कोलाहल करे है। अथवा नटका फिराया थाल वा रहाटके घडेकी माल वा नदीके जलमेंका भ्रमर वा कुंभारका चक्र जैसे भ्रमण करे है। ऐसे मन भ्रमण करे है सो जातकाही चंचल है अर अनादिकालका वक्र है, सो मन आज स्थीर कैसे होय ॥४९॥

॥ अब मनका चंचलपणा स्थिर कैसे होयगा सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धायो सदा काल पै न पायो कहुं साचो सुख, रूपसों विमुख दुख कूपवास वसा है ॥
धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कुरापाति जाकी संनिपात कीसि दसा है ॥
मायाकों झपटि गहे कायासों लपटि रहे, भूल्यो भ्रम भीरमें बहीर कोसो ससा है ॥
ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचल सु, ज्ञानके जगेसे निरवाण पंथ धसा है ॥५०॥

अर्थ—यह मन सुखके वास्ते सदाकाल दौडता फिरे है पण साचो सुख कहांहूं नहि मिले है, अर अपने आत्मरूपसे पराङ्मुख होय भोगके आकुलतारूप कूपमें बसे है। अर धर्मका घाती है तथा अधर्मके संघाती है, ऐसे महा कुरापाती है जिसकी दशा तो कोई मनुष्य शनिपात तापतैं शुद्धिरहित होय है तैसी है। कपटकूं अर इच्छाकूं झट ग्रहण करे है तथा देहके ममतामें लपट रहे है, अर भ्रमजालमें पडके भूल्यो है जैसे शीकारी लोकके भीडते शुसा जनावर आय जालमें पडे है अर भ्रमतो फिरे है। ऐसे यह मन चंचल है सो पताकाके छेडासमान क्षणभरभी स्थीर नहि रहे है, परंतु जब सम्यक्ज्ञान जाग्रत होय है तब मोक्षमार्गमें प्रवेश करै है ॥ ५० ॥

॥ अब मन स्थिर करनेका उपाय कहे है ॥ दोहा ॥—

जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ। जो मन ध्यान विचारसों, रुकेसु अविचल होइ ॥५१॥

तातै विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वाणि। शुद्धातम अनुभौ विषें, कीजे अविचल आणि ॥५२॥

अर्थ—जो मन विषय अर कषायमें प्रवर्ते है सो चंचल है। अर जो मन ध्यानके विचारमें प्रवर्तें है सो अविचल है ॥ ५१ ॥ ताते मनके बाणीकूं विषय कषायते निकालो। अर शुद्ध आत्मानुभवमें लगायके अविचल करो ॥ ५२ ॥

॥ अव आत्मानुभवमें क्या विचार करना सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है ॥
नानारूप भेष धरे भेषको न लेश धरे, चेतन प्रदेश धरे चैतन्यका खंध है ॥
मोह धरे मोहीसो विराजे तामें तोहीसो, न मोहीसो न तोहीसों न रागी निरबंध है ॥
ऐसो चिदानंद याहि घटमें निकट तेरे, ताहि तूं विचार मन और सब धंध है ॥५३॥

अर्थ—यह आत्मा अलक्ष है अमूर्ति है अरूपी है अविनाशी है अर अजन्म है, निराधार है ज्ञानी है कर्मरहित है अर अखंड है। व्यवहारतें देखिये तो नाना प्रकारका भेप धरेहै पण निश्चयतें देखिये तो भेषका लेश नही है, चैतन्यके प्रदेशकूं धारण करे है तातें चैतन्यका पुंज है। अर यह आत्मा मोहकूं धरे जब मोही हो रहे है अर मनकूं धरे जब मनरूप होय है, पण निश्चयतें देखिये तो मोहरूप नही है अर मनरूपभी नही है ऐसा विरागी अर निर्बंध है। अरे मन? जहां तूं रहे है तहांही तेरे निकट ए आत्मा रहे है, अरे मन? तूं ऐसाही आत्माका विचार कर (सोही अनुभव है) और सब द्वंद (दूजारूप) है ॥ ५३ ॥

॥ अव आत्मानुभव करनेके विधिका क्रम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम सुदृष्टिसों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानीये ॥
अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न, ताहूमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानिये ॥
तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये ॥
वाहिको विचार करि वाहिमें मगन हूजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥५४॥

अर्थ—प्रथम भेदज्ञानते शरीरकूं भिन्न मानना, फेर शरीरमें जो सूक्ष्म तैजस शरीर है अर सूक्ष्म कार्माण शरीर है तिसकूं भिन्न मानना। फेर अष्ट कर्मके उपाधि (राग अर द्वेष) कूं भिन्न मानना, फेर कर्मते सुबुद्धीके विलास (भेद ज्ञान) कूं भिन्न मानना। तिस ज्ञानके विलासमें आत्मा अखंड वसे है, ऐसे श्रुत ज्ञानके प्रमाण अर नय निक्षेपते हृदयमें स्थापन करना। अरे मन ? तूं इस माफिक आत्माका विचार कर अर इस आत्मामेही मग्न हो, परमात्मपद (मोक्षपद) साधवेकूं येही आत्मानुभवकी विधि युक्त है सो निरंतर करना ॥ ५४ ॥

॥ अव आत्मानुभवते कर्मका वंधनहि होय है सो कहे है ॥ चौपई ॥ सवैया ३१ सा ॥—

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने ॥
तातें ज्ञानवंत जग मांही। करम बंधको करता नांही ॥ ५५ ॥

अर्थ—ऐसे आत्मस्वरूप जाने है अर रागद्वेषादिककूं पर माने है। तातैं भेदज्ञानी है सो जगतमें कर्मबंधकूं कर्ता नही है ॥ ५५ ॥

॥ अव अनुभवी जों भेदज्ञानी है तिसकी क्रिया कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानी भेदज्ञानसों विलक्ष पुदगल कर्म, आतमीक धर्मसों निरालो करि मानतो ॥
ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेकों शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो ॥
याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपमांहि आपनो स्वभाव गहि आनतो ॥
साधि शिवचाल निरबंध होत तीहुं काल, केवल विलोक पाई लोकालोक जानतो ॥ ५६ ॥

अर्थ—ज्ञानी है सो भेदज्ञानके प्रभावते पुद्गलकर्मकूं पररूप जाने है, आत्मीक धर्मसे जुदा करि माने है। अर पुद्गलीक कर्मबंधका मूल कारण जे अशुद्ध रागादिक भाव है, तिसका नाश करनेकूं शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है। अर पूर्वे ५४ वे कवित्तमें कह्या तैसे अनुक्रमते शरीरादिक वा रागादिक परद्रव्यके संबंधकूं त्यागे है अर अपनेमें अपने ज्ञान स्वभावकूं ग्रहण करे है। ऐसे मोक्षमार्गका त्रिकाल साधन करि कर्मबंधका नाश करे है अर केवलज्ञान पाय लोकालोककूं जाननेवाला होय है ॥ ५६ ॥

॥ अव अनुभवी (भेदज्ञानी) का पराक्रम अर वैभव कहै है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ मनुष्य अजान महाबलवान, खोदि मूल वृक्षको उखारे गहि बाहुसों ॥
तैसे मतिमान द्रव्यकर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दशाहुसों ॥
याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे जोति केवल प्रधान सविताहुसों ॥
चुके न शकतीसों लुके न पुदगल माहि, धुके मोक्ष थलकों रुके न फिरि काहुसों ॥ ५७ ॥

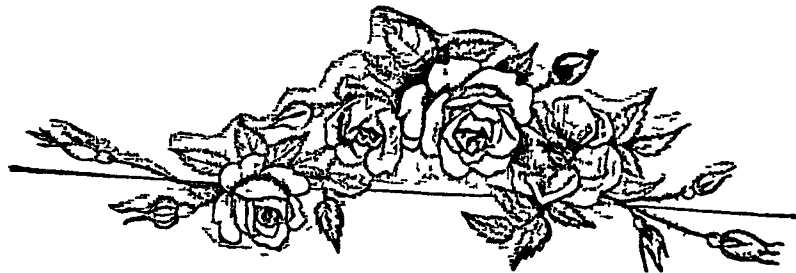
अर्थ—जैसे कोऊ मूढ मनुष्य महा बलवान होय सो, वृक्षके मूलकूं खोदि अपने बाहुसे उखाड डारे है। तैसे अनुभवी भेदज्ञानी है सो ज्ञानदशातें, द्रव्यकर्मकूं अर भावकर्मकूं त्यागिके कर्मरहित होय रहे

है। ऐसेही क्षणक्षणमें मोह अंधकार मिटावे है, तब सूर्यसे श्रेष्ठ अर सब ज्ञानमें प्रधान ऐसी केवलज्ञानकी ज्योति जाग्रत होय है। तथा अनंत शक्ति प्रगटे है सो फेर नाश नहि पावे अर कर्म नोकर्मसे छिपे नही है, सो अनंत शक्ती मोक्ष स्थानकूं पोहोचावे है ते काहूसे रुके नही ॥ ५७ ॥ दोहा ॥—

बंधद्वार पूरण भयो, जो दुख दोष निदान। अब वरणूं संक्षेपसे, मोक्षद्वार सुखथान ॥ ५८॥

अर्थ—दुःखका अर दोषका कारण ऐसा बंधद्वार पूर्ण भया। अब सुखका स्थान जो मोक्षद्वार है सो संक्षेपते वर्णन करूंहू ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको अष्टम बंधद्वार बालबोध सहित समाप्त भया ॥ ८ ॥



॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको नवमो मोक्षद्वारप्रारंभ ॥ ९ ॥

॥ अब आदिमें ज्ञानरूप विश्वनाथकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे ॥
अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे, करम भरमको खजानो खोलि खरचे ॥
योंहि मोक्ष मुख धावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि लहे परमकों परचे ॥
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे ॥१॥

अर्थ—ज्ञानी है सो भेदज्ञानरूप करोतसे आत्माकी अर कर्मकी दोय फाड करे है, अर दोनूं फाडाकूं जुदा जुदा जाने है। आत्मीक धारा (फाड) के अनुभवका अभ्यास कर शुद्ध समाधि ग्रहण करे, अर कर्म धाराका खजीना (सत्ता) खोलि निर्जरा करे है। ऐसे विधि कर मोक्षके सन्मुख धावे है ताते केवलज्ञान निकट आवे है, अर परिपूर्ण आत्म स्वरूपका परिचय होय पूर्ण निराकुलताकूं पावे है। सो भव भ्रमणके दोरकूं छांडि निरदोर होय है कछु करना बाकी न रहे है, ऐसो जो ज्ञानरूप विश्वनाथ है तिसकूं बनारसीदास वंदे है पूजे है ॥ १ ॥

॥ अब सुबुद्धीसे आत्म स्वरूप सधाय है सो मोक्ष अधिकार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धरम धरम सावधान व्है परम पैनि, ऐसि बुद्धि छैनी घटमांहि डार दीनी है ॥
पैठी नो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विभावताकी संधि शोधि लीनी है ॥
तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है ॥
मुधासों विरचि सुधा सिंधुमें मगन होय, येति सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है ॥ २ ॥

अर्थ—कोई धर्मात्मा मनुष्य धर्ममें सावधान होयके, बुद्धिरूप छेनी (शस्त्र) अपने हृदयमें डार देवे है। सो छैनी हृदयमें जाय नोकरमकूं अर द्रव्य कर्मकूं छेदे है, अर स्वभाव तथा परभाव ऐसे दोय संधी (फाडा) का शोध करे है। ज्ञानी पुरुष तिस संधिके मध्यपाती होय दोय फाडाकूं देखे है, तो तिसमें एक फाड कर्मरूपी अज्ञानमई दीखे है अर एक फाड ज्ञानरूप अमृतमई दीखे है। ज्ञानी अज्ञान फाडकूं छोड देय है अर ज्ञानरूप अमृत फाडामें मग्न होय है, ज्ञानी है सो इतनी सब क्रिया एक समयमें करे है ॥ २ ॥

जैसि छैनी लोहकी, करे एकसों दोय। जड चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होय ॥ ३॥

अर्थ—जैसे लोहकी छैनी है सो एकके दोय भाग करे। तैसे चेतनकी अर अचेतनकी एकता है सो भेद ज्ञानतेही होय है ॥ ३ ॥

॥ अब सुबुद्धिका विलास कहे है ॥ सर्व ह्रस्व अक्षर सवैया ३१ सा ॥—

धरत धरम फल हरत करम मल, मन वच तन बल करत समरपे ॥
भखत असन सित चखत रसन रित, लखत अमित वित कर चित दरपे ॥
कहत मरम धुर दहत भरम पुर, गहत परम गुर उर उपसरपे ॥
रहत जगत हित लहत भगति रित, चहत अगत गति यह मति परपे ॥ ४ ॥

अर्थ—सुबुद्धी है सो धर्मरूप फलकूं धरे है अर कर्मरूप मलकूं हरे है, तथा मन वचन अर देह इनके बलकूं ज्ञानमें लगावे है। निर्दोष भोजन करे पण जिव्हा इंद्रियके स्वादमें मग्न नहि होय

है, अर अपना ज्ञानरूप अपूर्व धन चित्तरूप दर्पणमें देखे है। आत्म स्वरूपका व्याख्यान कहे अर भ्रमरूप मिथ्यात्व नगरकूं दग्ध करे है, हृदयमें सुगुरका उपदेश धारण करे अर चित्तकूं स्थिरता राखे है। जगमें सर्व प्राणीका हित होय तैसे प्रवर्ते अर त्रैलोक्य पतीकी भक्ती (श्रद्धा) करे है, पुनः जन्म नहि होय तिस गती (मुक्ती) की इच्छा धरे है ऐसे सुबुद्धीका उत्कृष्ट विलास हैं ॥ ४ ॥

॥ अब ज्ञाताका विलास कहे है ॥ सर्व दीर्घ अक्षर सवैया ३१ सा ॥—

राणाकोसो बाणालीने आपासाधे थानाचीने, दानाअंगी नानारंगीखाना जंगी जोधा है ॥
मायावेली जेतीतेती रेतेमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोंसो लोधा है ॥
बाधासेती हांतालोरे राधासेती तांता जोरे, बांदीसेती नांता तोरे चांदीकोसो सोधा है ॥
जानेजाही ताहीनीके मानेराही पाहीपीके, ठानेबाते डाहीऐसो धारावाही बोधा है ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्ञाता है सो राजा सारिखा बाणा लिये है राजा तो आपना देश साधनेमें चित्त राखे अर ज्ञानी आपने आत्म साधनमें चित्त राखे, राजा तो शाम दाम दंडादि तथा खाना जंगी लढाई करि दुर्जनको हटावे अर ज्ञानी है सो राग द्वेषका त्यागि होय इंद्रिय दमनादि अनेक भेदरूप तपकरि कर्मकूं क्षपावे। अथवा लुहार जैसे रेतडीसे लोहेकूं घसि डारे तैसे ज्ञानी सुबुद्धीसे क्रोध मान माया अर लोभरूप वेलींकूं छेदिनाखे, अथवा किसाण (खेती करनेवाला) जैसे भूमीकूं खोदे धान्यमेका घास निकाले तैसे ज्ञानीहूं मिथ्यात्वकूं छोडे है। अर कर्मबंधके बाधाकूं जूदा करे तथा सुबुद्धिरूप स्त्रीसे स्नेह जोडे है, अर कुबुद्धीका नाता तोरे है तथा योग्य वस्तूकूं ग्रहण करे अर अयोग्य वस्तूकूं छोडे है जैसे सोना रूपा शोधनेवाला वस्तु शुद्ध कर सोना रूपा लेय अर केर कचरा फेकदे तैसे। अर

आत्माकूं तथा शरीरादिककूं नीके जानकर आत्माकूं माख मगज समान अर पुद्गलकूं तुक फोल समान माने हे, ऐसी ऐसी डाही बाता करे है सो सम्यक् धाराकूं वहनारा बोधा (ज्ञाता) है ॥ ५ ॥

॥ अव ज्ञाताका पराक्रम चक्रवर्त्तींसेहू अधिक है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हकेजु द्रव्य मिति साधत छखंड थीति, विनसे विभाव अरि पंकति पतन हैं ॥
जिन्हकेजु भक्तिको विधान एइ नौ निधान, त्रिगुणके भेद मानो चौदह रतन है ॥
जिन्हके सुबुद्धिराणी चूरे महा मोह वज्र, पूरे मंगलीक जे जे मोक्षके जतन है ॥
जिन्हके प्रणाम अंग सोहे चमूं चतुरंग, तेइ चक्रवार्ति तनु धरे ये अतन है ॥ ६ ॥

अर्थ—चक्रवर्ती राजा छह खंड पृथ्वी साध्य करे है अर ज्ञानीहू पृथ्वीतलके छह द्रव्यकूं प्रमाण अर नयते साध्य करे है, चक्रवर्ती शत्रुका क्षय करेहै तैसे ज्ञानीहू राग द्वेषका क्षय करे है। चक्रवर्त्तींकूं नव निधि अर चौदह रत्न है, तैसे ज्ञानीकूं नवधा भक्तिरूप नवनिधि अर रत्नत्रयरूप चौदह रत्न है। चक्रवर्तीकी पट राणी दिग्विजयके अवसर राज्याभिषेकके समयमें चक्रवर्तीके सन्मूख दो अंगुलीसे रत्नका चूर्ण करि मंगल चौक पूरे है, तैसे ज्ञानीके सुबुद्धीरूप स्त्रीहूं मोक्षके अर्थि निबड मोहकर्मका सहज चूर्ण करे है। चक्रवर्त्तींकूं हत्ती घोडे बैल अर पायदल चतुरंग सेना है तैसे ज्ञानीकूं प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण अर निक्षेप यह चतुरंग सेना है, चक्रवर्ती देह धरे है अर ज्ञानी है सो देहते विरक्त है ताते देह होतेहू देह रहित है ॥ ६ ॥

॥ अव ज्ञानी नव प्रकारे भक्ती करे है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

श्रवण कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान। लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमाण ॥७॥

अर्थ—ज्ञानी है सो–परमात्माके गुण श्रवण करे, गुणका व्याख्यान करे, गुणका चिंतवन करे, गुणका अध्ययन करे, गुणमें तल्लीन होय, गुणका स्मरण रखे, गुणका गर्व नहि करे, साम्यभाव धरे, अर आत्मस्वरूमें एक हो जाय (देहकूं पर माने) है, ऐसे नव प्रकारे भक्तीके भेद है सो ज्ञानी करे है ॥ ७ ॥

॥ अब जो ज्ञाता अनुभवी है ताके परिचयके वचन कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण विभेद भिन्न करमको जाल है ॥
जाने आप आपकोंजु आपकरी आपविखे, उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥
सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरें, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है ॥
मैंतो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारि, प्रभूता हमारि एकरूप तीहुं काल है ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्माका अनुभव हुवा सो अनुभवी जीव ऐसे कहे की, मेरे अनुभवमें लक्षण भेदते कर्मजाल भिन्न दीसवा लाग्यो है । अर आपकूं आपते आपमें जाने है की, उत्पाद विनाश अर ध्रुव ये तीन प्रबल धारा मेरेमें निरंतर वहे है सो विकल्प है मेरेते सर्वथा न्यारे है, ये तीन धारा व्यवहार नयकी चाल है । मैंतो शुद्ध स्वरूप अनंत ज्ञानका धरनेवाला है, ये मेरे ज्ञान चेतनकी प्रभूता तीन कालमें एकरूप अचल है ॥ ८ ॥

॥ अब आत्माके चेतना लक्षणका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निराकार चेतना कहावे दरशन गुण, साकार चेतना शुद्ध गुण ज्ञान सार है ॥
चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरव माहि, सामान्य विशेष सत्ताहीको विसतार है ॥

कोउ कहे चेतना चिह्न नांही आतमामें, चेतनाके नाश होत त्रिविधि विकार है ॥
लक्षणको नाश सत्ता नाश मूल वस्तु नाश, ताते जीव दरवको चेतना आधार है ॥९॥

अर्थ—आत्माका चेतना गुण है तिस चेतानाके दोय भेद है एक दर्शन चेतना अर एक ज्ञान चेतना तिसमें दर्शन चेतना निराकार है, अर ज्ञान चेतना साकार है। ऐसे चेतनाके दोय भेद है पण आत्म द्रव्यमें एकरूप रहे है, दर्शन सामान्य चेतना है अर ज्ञान विशेष चेतना है ऐसे सामान्य विशेषतें दोय भेद दीखे है पण एक आत्मसत्ताका विस्तार है। कोई मतवाले कहे की आत्मामें चेतना लक्षण नही है, परंतु ऐसे लक्षणका अभाव कहनेसे तीन दोष (मन, वचन, अर देहके विकार,) उपजे है। एकतो लक्षणका नाश माननेसे सत्ताका नाश होय अर सत्ताका नाश होते मूल वस्तूका नाश होय, ताते जीवद्रव्यके जाननेकूं चेतना येक आधार है ॥ ९ ॥ दोहा ॥—

चेतना लक्षण आतमा, आतम सत्ता मांहि। सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमें नांहि ॥१०॥

अर्थ—आत्माका चेतना लक्षण है, सो आत्माके सत्तामें है। अर सत्तायुक्त आत्म वस्तु है, पण द्रव्य अपेक्षाते देखिये तो तीनूमें भेद नही है एकरूप है ॥ १० ॥

॥ अब आत्माके चेतना लक्षणका शाश्वतपणा दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों कलधौत सुनारकि संगति, भूषण नाम कहे सब कोई ॥
कंचनता न मिटी तिहि हेतु, वहे फिरि औटिके कंचन होई ॥
त्यों यहजीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप हुवो नहि दोई ॥
चेतनता न गई कबहूं तिहि, कारण ब्रह्म कहावत सोई ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे सोनेकूं सोनार घडावे है, तब तिस घाटके संयोगसे सबलोक तिसकूं भूषण कहते है। तथापि तिसका सुवर्णपणा नहि जाय है, वह भूषण अटवावेतो फेर सुवर्णही होय है। तैसे जीव है सो कर्मके संयोगते चतुर्गतीमें अनेकरूप धारण करै है, पण यह जीव अन्यरूप नहि बने है। चेतनका अभाव कोई कालमें नहि होय है, ताते सब अवस्थामें जीवकूं ब्रह्म कहते है ॥ ११ ॥

॥ अब अनुभव है सो सुबुद्धि सखीकूं ब्रह्मका स्वरूप कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

देख सखी यह ब्रह्म विराजत, याकि दशा सब याहिको सोहै ॥
एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद्व लिये दुविधा महि दो है ॥
आप सभारि लखे अपनो पद, आप विसारिके आपहि मोहे ॥
व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कोन अज्ञानमें को है ॥ १२ ॥

अर्थ—अनुभव है सो सुबुद्धि सखीकूं कहे है की हे सखी देख ? यह अपना ईश्वर कैसा विराजे है, इसीका स्वरूप इसीकूंही शोभे है। आत्म सत्तामें देखिये तो एकरूप है पुद्गलमें देखिये तो अनेक रूप है, ज्ञानमें देखिये तो ज्ञानरूप है अर अज्ञानमें देखिये तो अज्ञानरूप है ऐसे दोय रूप आपही है। कबहू तो आपना स्वरूप आप सचेत होयके देखे है, अर कबहूतो आपना स्वरूप आप अचेत होके भूले है अर मोहमें पडे है। हे सखी ? ऐसाही ईश्वर घटके अंतर व्यापकरूप है ताते अपने समस्त अवस्थामें व्यापि रहे है, ज्ञानमें तथा अज्ञानमें एक आत्माराम है ॥ १२ ॥

॥ अब आत्मस्वरूपका अनुभव कब होय है सो दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटे जब कौतुक देखे ॥

नी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखे ॥
न राव, विभाव दशा धरि रूप विसेखे ॥
लखे अपनो पद, दुंद विचार दशानहि लेखे ॥ १३ ॥

नट बहुत प्रकारके सोंग धरे है, अर ते ते सोंगकी बतावणी जब करे है
है । तथा वह नटहू अपने अनेक सोंगके कर्तव्यकूं आप देखे है परंतु
-। स्वरूप भिन्न जाने है । तैसेही घटमें चेतनराव नट है सो रागादिक अनेक
रण करि बहुत रूप करे है । परंतु जब सुज्ञान दृष्टि खोलि अपना स्वरूप आप ऊलखे
रागादिक विभाव दशाकूं आपनी नहि जाने है ॥ १३ ॥

॥ अब चेतनके भाव ग्रहण करना औरके भाव त्यागना सो कहे है ॥ छंद अडिल्ल ॥—

जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है । और भाव जो धरे सो और कोइ है ॥
जो चिन मंडित भाव उपादे जानने । त्याग योग्य परभाव पराये मानने ॥ १४ ॥

अर्थ—जिसमें चेतन भाव है सोही चिदात्मा है, अर चेतन विना जे भाव है सो पुद्गलके भाव है । ताते चेतनायुक्त जे भाव है सो स्वभाव जानकर तिसकूं ग्रहण करनां योग्य है, अर चेतन विना अन्य जे भाव है सो परभाव मानकर तिसकूं त्याग करनां योग्य है ॥ १४ ॥

॥ अब भेदज्ञानी मोक्षमार्गका साधक है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके सुमति जागि भोगसों भये विरागि, परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें ॥
रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारि, कबहु मगन व्है न रहे धाम धनमें ॥

जे सदैव आपकों विचारे सरवांग शुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापे कहु मनमें ॥
तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावे रहो मंदिरमें भावे रहो वनमें ॥१५॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सुमति जागी है अर भोगसूं विरागी हुवा है, अर देहादिक पर संगके त्यागी त्रैलोक्यमें जे पुरुष है। अर जिसकी रहनी रागद्वेषादिकके भावसे रहित है, सो कबहू घरमें अर धनमें मग्न नहि रहे। अर जो निश्चयते सदा अपने आत्माकूं सर्वस्वी शुद्ध माने है, ताते तिनके मनमें कोई प्रकारे कबहू विकलता (भ्रम) नहि व्यापे है। ऐसे जे जीव हे तेही मोक्षमार्गके साधक कहावे है, पीछे ते चाहिये तो घरमें रहो अथवा चाहिये तो वनमें रहो तिनकी अवस्था सब ठेकाणें एक है ताते मोक्षमार्ग सधे है ॥ १५ ॥

॥ अब मोक्षमार्गके साधकका विचार कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ॥
राग विरोध विमोह दशा, समझे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥
भोग संयोग वियोग व्यथा, अवलोकि कहे यह कर्मजु घेरो ॥
है जिन्हकों अनुभौ इह भांति, सदा तिनकों परमारथ नेरो ॥ १६ ॥

अर्थ—जो आपने आत्मामें दृष्टि देयके विचारे की—मेरा अंग है सो चेतनायुक्त है अखंडित है, अर शुद्ध पवित्र पदार्थ है। अर जो राग द्वेष तथा मोहरूप अवस्था संसारमें दीखे है, ते सब पुद्गल कर्मकृत भ्रमरूप नाटक है। अर विषयभोगके संयोग तथा वियोगकी व्यथा है सो पूर्व कर्मका उदय है मेरेते बाह्य है। जिसीकूं सदाकाल ऐसा परिचय रहे है, तिसकूं परमार्थरूप मोक्ष नाजिक है ॥१६॥

॥ अब मोक्षके निकट है ते साहुकार है अर दूर है ते दरिद्री है सो कहे है दोहा ॥—

जो पुमान परधन हरे, सो अपराधी अज्ञ । जो अपने धन व्यवहरे, सो धनपति सर्वज्ञ ॥१७॥
परकी संगति जो रचे, बंध बढावे सोय । जो निज सत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होय ॥१८॥

अर्थ—जो पुद्गलके गुणरूप धनकूं धरे है, सो अपराधी (चोर) अज्ञ है । अर जो आपने ज्ञान गुणरूप धनते व्यवहार करे है सो ज्ञानी साहुकार है ॥ १७ ॥ जो पर संगतीमें राचे है, सो कर्म-बंधकूं बढावे है । अर जो आत्मसत्तामें मग्न है, सो सहज मुक्त (बंध रहित) होय है ॥ १८ ॥

॥ अब वस्तुका अर सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

उपजे विनसे थिर रहे, यहुतो वस्तु वखान । जो मर्यादा वस्तुकी, सो सत्ता परमाण ॥ १९ ॥

अर्थ—जो उपजे है विनसे है अर स्थिर रहे है, तिसकूं वस्तु (द्रव्य)कहिये है । अर जो द्रव्यकी मर्यादा (अचलपणा) है तिस गुणकूं सत्ता कहिये है ॥ १९ ॥

॥ अब षट्द्रव्यके सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

लोकालोक मान एक सत्ता हैं आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य एक सत्ता लोक परमीत है ॥
लोक परमान एक सत्ता है अधर्म द्रव्य, कालके अणु असंख्य सत्ता अगणीत है ॥
पुदगल शुद्ध परमाणुकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थीत है ॥
कोउ सत्ता काहुसों न मिले एकमेक होय, सबे असहाय यों अनादिहीकी रीत है॥२०॥

अर्थ—आकाश द्रव्यकी सत्ता (मर्यादा) लोक तथा अलोकपर्यंत एक है ॥ १ ॥ धर्म द्रव्यकी सत्ता लोकपर्यंत एक है ॥ २ ॥ अधर्म द्रव्यकी सत्ताहूं लोकपर्यंत एक है ॥ ३ ॥ काल द्रव्यके अणु

(प्रदेश) लोकाकाशके प्रदेश समान असंख्यात है ताते काल द्रव्यके अणूकी सत्ता असंख्यात है ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यमें पुद्गल द्रव्यके रूपी परमाणू अनंत है ताते पुद्गल द्रव्यके परमाणूकी सत्ता अनंत है ॥ ५ ॥ अर त्रैलोक्यमें जीव अनंत है तिस एक एक जीवकी सत्ता अनंत अनंत है सो न्यारी न्यारी है ॥ ७ ॥ ऐसे छह द्रव्यकी सत्ता कही सो किसी द्रव्यकी सत्ता अन्य दूसरे किसीहू द्रव्यमें एकमेक होय मिले नही है, सब असाह्य रहे है ऐसी अनादिकी रीत है ॥ २० ॥

एइ छह द्रव्य इनहीको है जगतजाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है ॥
काहुकी अनंत सत्ता काहुसों न मिले कोइ, एक एक सत्तामें अनंत गुण गान है ॥
एक एक सत्तामें अनंत परजाय फीरे, एकमें अनेक इहि भांति परमाण है ॥
यहै स्यादवाद यह संतनकी मरयाद, यहै सुख पोष यह मोक्षको निदान है ॥ २१ ॥

अर्थ—ये छह द्रव्य कहे इनसे जगत जाल भऱ्या है, तिसमें पांच द्रव्य जड (अज्ञान) है अर एक चेतन द्रव्य ज्ञानमय है। कोई द्रव्यकी अनंत सत्ता है पण सो दूसरे अन्य द्रव्यके सत्तामें मिले नही ऐसे जुदी जुदी अनंत सत्ता रहे है, अर एक एक सत्तामें अनंतगुण जाननेका ज्ञान है। अर एक एक सतामें अनंत अवस्था फिरे है, ऐसे एकमें अनेक भेद होय है ते प्रमाण है। यह स्याद्वादशमत है सो सत्पुरुषके अचल वचन है, यह वचन सुखका पोषक अर मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

॥ अब एक जीवद्रव्यके सत्ताका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

साधि दधि मथंनमें राधि रस पंथनमें, जहां तहां ग्रंथनमें सत्ताहीको सोर है ॥
ज्ञान भान सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताको दुरनि सांझ सत्ता मुख भोर है ॥

सत्ताको स्वरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष, सत्ताके उलंघे धूम धाम चहूं ओर है ॥
सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोई साहु, सत्तातें निकसि और गहे सोई चोर है ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसे दधि मंथनमें घृतकी सत्ता साधे है अथवा औषधीके क्रियामें रसकी सत्ता है, जहां तहां शास्त्रमें आत्मसत्ताहीका कथन है। ज्ञानरूपी सूर्यका उदय आत्मसत्तामें उपजे है तथा अमृत अर निधान पण सत्तामें उपजे है, अर आत्मसत्ताकूं छिपावना सो सांझका अंधेर है अर सत्ताकी मुख्यता है सो दिनकी प्रभात है। आत्मसत्ताका स्वरूप समझना मोक्षका मूल है अर आत्मसत्ताके स्वरूपकूं भूलना सो महा दोष (रागद्वेषका) कारण है, आत्मसत्ताकूं उलंघनेसे चहुओर धामधूम (चतुर्गतीमें भ्रमण) होय है। आत्मसत्ताके समाधिमें (अनुभवमें) रहे सो साहुकार है अर आत्मसत्ताकूं छोडके पर (पुद्गल) की सत्ता ग्रहण करे सो चोर है ॥ २२ ॥

॥ अब आत्मसत्ताके समाधीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जामें लोक वेदनांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नांहि करनी ॥
जामें राग द्वेष नांहि जामें बंध मोक्ष नांहि, जामें प्रभु दास न आकाश नांहि धरनी ॥
जामें कुल रीत नांहि जामें हार जीत नांहि, जामें गुरु शिष्य नांहि विष नांहि भरनी ॥
आश्रम वरण नांहि काहुका सरण नांहि, ऐसि शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥२३॥

अर्थ—आत्माके सत्तामें लौकिक सुख दुखकी वेदना नही अर स्थापना तथा उपस्थापना नहीं जिसमें पापका तथा पुन्यका खेद नही अर क्रिया करणी नही। जिसमें राग तथा द्वेश नही अर बंध तथा मोक्ष नहीं, जिसमें स्वामीपणा तथा दासपणा नही अर आकाश तथा धरणी नही। जिसमें

कुलकी रीत नही अर हारी तथा जीत नही, जिसमें गुरु तथा शिष्य नही अर हलन तथा चलन नही। जिसमें कोई आश्रम तथा जाति वर्ण नही अर काहू ईश्वरादिकका शरण नही, ऐसे आत्माके शुद्ध सत्ताके समाधिरूप भूमीका स्वरूप वर्णन कीया ॥ २३ ॥

॥ अव आत्मसत्ताकूं न जाने सो अपराधी है तिसका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

जाके घट समता नही, ममता मगन सदीव। रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदे हिरदे अंध। परको माने आतमा, करे करमको वंध ॥ २५ ॥
झूठी करणी आचरे, झूठे सुखकी आस। झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभूको दास ॥ २६ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें समता नही अर जो सदैव देहादिक पर वस्तुमें मग्न हो रहा है। अर जो अपने देहमें रमनेवाला आत्मारामकूं नहि जाने सो अपराधी जीव है ॥ २४ ॥ जो आत्मस्वरूपकूं जाने नही सो अपराधी मिथ्यात्वी है तिसका हृदय निर्दय अर अंध (ज्ञान रहित) है। ताते देहादिक परवस्तुकूं आत्मा मानि निरंतर कर्मबंध करे है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना क्रिया झूठी है, अर आत्मस्वरूप जाने विना मोक्षसुखकी आश झूठी है। श्रद्धा विना भक्ति झूठि है, अर प्रभूका (ईश्वरका) स्वरूप जाने विना सेवा करना सो झूठा दास है ॥ २६ ॥

॥ अव अपराधीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

माटी भूमि सैलकी सो संपदा वखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है ॥
अपना न रूप गहे ओरहीसों आपा कहे, साताता समाधि जाके असाता कहर है ॥

कोपको कृपान लिये मान मद पान कीये, मायाकी मयोर हिये लोभकी लहर है॥
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें वहर है॥ २७॥

अर्थ—भूमी पर्वतते सुवर्णादिक धातु पैदा होय है तिस सुवर्णादिककूं आपनी संपदा कहे, देहादिकके क्रियाते सिद्धि माने है अर ज्ञानकूं जहर जाने है। आत्मस्वरूपकूं तो ग्रहे नही अर देहादिककूं आपना कहे, सुखकूं समाधि अर दुःखकूं उपाधि समझे। सदा कोपरूप खड्ग लेय रहे है अर अहंकाररूप मद्य पान करे है, तथा हृदयमें कपटकी अर लोभकी लहर उठे है। ऐसे अचेतनकी संगतीसे चेतन है सो, सांचते परान्मुख होय झूठके बहरमें तत्पर हो रह्या है॥ २७॥ पुनः॥—

तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है॥
तासों कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरि, यह मेरोही परोई मेरोही पहर है॥
खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरा गेह, जहां वसे तासों कहे मेराही सहर है॥
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें वहर है॥ २८॥

अर्थ—जगतमें भूत भविष्य अर वर्तमान ऐसे तीन कालका परिवर्तन सदा हो रहा है। तिसकूं कहे यह मेरा दिन यह मेरी घडी है, अर यह मेरे बहरका पहर है। मट्टीका फत्तरका अर लकडीका ढिगला करे अर तासो कहे यह मेरा घर महेल है, जिस गांवमें रहे तिसकूं कहे यह मेरा सहेर है। ऐसे अचेतनकी संगतीसे चेतन है सो, साचते परान्मुख होय झूठके बहरमें तत्पर हो रह्या है॥ २८॥

॥ अब सम्यक्दृष्टी साहुकारका विचार कहे है ॥ दोहा॥—

जिन्हके मिथ्यामति नही, ज्ञानकला घट मांहि। परचे आतम रामसों, ते अपराधी नाहि॥२९॥

अर्थ—जिसके दुर्बुद्धीका नाश होय हृदयमें भेदज्ञान हुवा है। अर जिसने आत्मारामका अनुभव कीया है सो जीव अपराधी नही है, साहुकार है ॥ २९ ॥

॥ अब ज्ञानीका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसै मोह विभ्रम विरख तीनो वढे हैं ॥
जिन्हके चितौनि आगे उदै स्वान भुसि भागे, लागेन करम रज ज्ञान गज चढे हैं ॥
जिन्हके समझकि तरंग अंग आगमसे, आगममें निपुण अध्यातममें कढे हैं ॥
तेई परमारथी पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३० ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें धर्मध्यानरूप अग्नि प्रज्वलित हुवा है, तातै संशय मोह अर भ्रमरूप तीनों वृक्ष दग्ध हुये है। अर जिसके बार भावनाके चिंतवन आगे कर्मका उदयरूप कुत्ता भूंखि भूंखि भागे है, अर जे ज्ञानरूप गजेंद्र ऊपरि चढे है ताते तिनकूं कर्मरूप धूल लगे नही। अर जिसके समझकी तरंग शास्त्रअंगसे प्रमाण है, आगम आभ्यासमें निपुण है अर आत्माके अनुभव करानेवाले परिणाम जिसके सदा खडे है। अर जे आठौ प्रहर रामरसमें मग्न होय आत्मानुभवका पाठ पढे है, सोही सम्यक्दृष्टी मनुष्य परम पवित्र है ॥ ३० ॥

जिन्हके चिहुंटी चिमटासी गुण चूनवेकों, कुकथाके सुनिवेकों दोउ कान मढे हैं ॥
जिन्हके सरल चित्त कोमल वचन बोले, सौम्यदृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढे हैं ॥
जिन्हके सकति जगि अलख अराधिवेकों, परम समाधि साधिवेकों मन बढे हैं ॥
तेई परमारथ पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिसकी बुद्धि परके गुण चून लेनेकूं चिमटा जैसी है, अर जिनोंने कुकथा सुनवेकूं दोनूं कान बंद कर राखे हैं। जिन्हका चित्त निष्कपटी है अर जे कोमल वचन बोले है, तथा काम-क्रोधादि रहित सौम्यदृष्टीसे वर्तन करे है मानूं मोमके घढे है। अर जिन्हके सुमतीकी शक्ती आत्माका अनुभव करनेकूं जाग्रत हुई है, तथा परमात्मस्वरूपमें लीन होनेकूं जिन्हका मन बढगया है। तेही सम्यक्‌दृष्टि परम पवित्र पुरुष है, जे अष्ट प्रहर रामरसमें मग्न होय आत्मानुभवका पाठ पढै है ॥३१॥

॥ अब आत्मसमाधिका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुननकों दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहि कोइ ॥ ३२ ॥
नंदन वंदन थुति करन, श्रवण चिंतवन जाप।
पठन पठावन उपदिशन, बहुविधि क्रिया कलाप ॥ ३३ ॥
शुद्धातम अनुभव जहां, शुभाचार तिहि नांहि।
करम करम मारग विषें, शिव मारग शिव मांहि ॥ ३४ ॥

अर्थ—आत्माराम है सो रस है अर अनुभव है सो रसिक है, ये दोय भेद कहनेके सुननेके है। परंतु जब आत्मस्वरूपमें समाधि (तल्लीनता) होय है तब दुविधा (रस अर रसिक ये दोय भेद) नहि रहे ॥३२॥ आत्माराम जब रसिक अवस्था धारे तब आनंद पावे, वंदन करे, स्तुति करे, जाप जपे, शास्त्र श्रवण करे, शास्त्र चिंतवन करे, शास्त्र पठण करे, शास्त्र पठण करावे, अर धर्मोपदेश करे, ऐसे बहुत प्रकारकी उत्तम उत्तम शुभ क्रिया करे है ॥ ३३ ॥ पण जहां शुद्ध आत्माका अनुभव है,

तहां शुभ क्रिया नहि है। शुभ क्रिया है सो कर्मबंध है ते संसारका कारण है, अर शुद्ध आत्माका अनुभव है सो शुद्धोपयोग है ते मोक्षका कारण है ॥ ३४ ॥

॥ अव शुभ क्रिया करे ते प्रमादी कहावे है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी। कही जिनेंद्र कही मैं तैसी ॥
जे प्रमाद संयुत मुनिराजा। तिनके शुभाचारसों काजा ॥३५॥
जहां प्रमाद दशा नहि व्यापे। तहां अवलंवन आपो आपे ॥
ता कारण प्रमाद उतपाती। प्रगट मोक्ष मारगको घाती ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस प्रकार आत्मद्रव्यका स्वरूप जैसा जिनेंद्र कह्या है तैसाही मैं परमागमकूं देखि कह्या है। जे मुनि प्रमादी है ते शुभ क्रियामें प्रवर्ते है॥३५॥ अर जहां प्रमादकी दशा नहि व्यापे है तहां अपने आत्माका अनुभव आपही करे है। ताते प्रमादकी उत्पत्ति है सो प्रत्यक्ष मोक्षमार्गकी घातक है ॥३६॥

जे प्रमाद संयुक्त गुसांई। उठहि गिरहि गिंदुकके नांई ॥
जे प्रमाद तजि उद्धत होई। तिनको मोक्ष निकट द्रिग सोई ॥ ३७ ॥
घटमें है प्रमाद जब तांई। पराधीन प्राणी तव तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासे। तब प्रधान अनुभौ परकासे ॥ ३८ ॥

अर्थ—जे प्रमादयुक्त मुनि है ते गिदड समान उडे है अर पडे है। अर जे प्रमादकूं छोडकर शुद्ध आत्माका अनुभव करे है तिनके निकट मोक्ष है ॥ ३७ ॥ जबतक हृदयमें प्रमाद है तबतक प्राणी पराधीन है। अर जब प्रमाददशाकों छोडे है तब आत्माके अनुभवका प्रकाश होय है ॥ ३८ ॥

॥ अब प्रमादका अर अप्रमादका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

ता कारण जगपंथ इत, उत शिव मारग जोर। परमादीजगकूं ढुके, अपरमाद शिव ओर ॥ ३९॥
जे परमादी आळसी, जिन्हके विकलप भूर। होइ सिथल अनुभौविषे, तिन्हको शिवपथ दूर ॥४०॥
जे परमादी आळसी, ते अभिमानी जीव। जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥ ४१ ॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतनायुक्त। ते मुनिवर लघुकालमें, होइ करमसे मुक्त ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रमाद है सो संसारका मार्ग है, अर अप्रमाद है सो मोक्षका मार्ग है। ताते जे प्रमादी है ते संसारमार्गकूं चले है अर अप्रमादी है सो मोक्षमार्गकूं चले है ॥ ३९ ॥ जे प्रमादी आळसी है तिनकूं बहूत विकल्प (भ्रम) उपजे है। अर ते अनुभवविषे सिथिल होय है ताते तिनकूं मोक्षमार्ग अति दूर है ॥ ४० ॥ अर जे प्रमादी आळसी है ते अहंबुद्धी जीव है । अर जे विकल्प (प्रमाद) रहित आत्मानुभवी है ते समरसी जीव है ॥ ४१ ॥ जे विकल्परहित अर आत्मानुभवी है ते शुद्ध चेतना (ज्ञान अर दर्शन) युक्त है। सो रमरसी मुनी अल्प कालमें कर्मरहित होय मोक्षकूं जायहै ॥ ४२॥

॥ अब अहंबुद्धीका अर ज्ञानीका स्वरूप दृष्टांतसे कहे है ॥ कवित्त ॥—

जैसे पुरुष लखे पहाढ चढि, भूचर पुरुष तांहि लघु लग्गे ॥
भूचर पुरुष लखे ताको लघु, उतर मिले दुहूको भ्रम भग्गे ॥
तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीवको लघुपद दग्गे ॥
अभिमानीको कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समता रस जग्गे ॥ ४३ ॥

अर्थ—जैसे कोई पहाड ऊपर चढे मनुष्यकूं तलाटीका मनुष्य छोटासा दीखे है। अर तलाटीके

मनुष्यकूं पहाड ऊपरका मनुष्य छोटासा दीखे है। पण पहाड ऊपरका मनुष्य नीचे उतरि तलाटीवालेकूं मिले जब दोनूंकूं छोटेपणाका भ्रम उपजा है सो दूर होय है। तैसे अभिमानी मनुष्य अहंकारते अन्य सब जीवकूं तुच्छ माने है। अर जगतके सब लोक अभिमानीकूं तुच्छ माने है ऐसे परस्परके विचारमें विषमता रहे है पण जब ज्ञान जगे है तब विषमता मिटे है अर समता उपजे है ॥ ४३ ॥

॥ अब अहंबुद्धी (अभिमानी)का विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करमके भारी समुझे न गुणको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे है ॥
होइ न नरम चित्त गरम घरम हूते, चरमकि दृष्टिसों भरम भुलि रहे है ॥
आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नायेहू न डोले मानो पाथरके चहे है ॥
देखनके हाउ भव पंथके बढाउ ऐसे, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है ॥ ४४ ॥

अर्थ—अभीमानी है ते बहुत कर्म करे है—गुणका अर दुर्गुणका मर्म समजे नही, तथा महा अनीति अर अधर्मकी रीत ग्रहण करे। निर्दयपणामें अर क्रोधकषायमें अग्नीते गरम रहे, चरम दृष्टीते अहंकाररूप भ्रममें भूले है। हठ छोडे नहीं तथा गर्वते बोले नही, किसीने जुहार किया तो तिसकूं सिर नमावे नही मानू जैसे पथ्थरके चित्र है। दुसरेकूं डरावनेकूं बाऊ है अर दुराचरण बढावनेकूं तयार रहे, ऐसे कपट जालके गुंफनारे जे है ते अभिमानी जीव है ॥ ४४ ॥

॥ अब समरसी (ज्ञानी) जीवका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

धीरके धरैय्या भव नीरके तरैय्या भय, भीरके हरैय्या वर वीर ज्यों उमहे हैं ॥
मारके मरैय्या सुविचारके करैय्या सुख, ढारके ढरैय्या गुण लोसों लह लहे हैं ॥

रूपके रीझैय्या सब नैंके समझैय्या सब, हीके लघु भैय्या सबके कुबोल सहे हैं ॥
वामके वमैय्या दुख दामके दमैय्या ऐसे, रामके रमैय्या नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४५॥

अर्थ—ज्ञानी है ते—धैर्य धरे है अर भवसागर तरनेका उपाय करे है, निर्भय रहे है अर शूर समान इंद्रिय दमन करे है। कामके बाणकूं जीते है अर सुविचार करे है, समतारूप सुखके ढारमें वहे है अर आत्मगुणमें लह लहे है। आत्मस्वरूपमें तल्लीन होय है अर सब नयकूं जाने है, सबते छोटे भाई समान रहे अर सबके कुवचन सहे है। स्त्रीकी इच्छा छोडे है अर दुःखकूं सहन करे है, आत्मानुभवमें रमे है इत्यादि गुण ग्रहण करे है सो ज्ञानी जीव है ॥ ४५ ॥

॥ अब शुद्ध अनुभवी जीवकी प्रशंसा करे है ॥ चौपई ॥—

जे समकिती जीव समचेती । तिनकी कथा कहु तुमसेती ॥
जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई । निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥ ४६ ॥
परिग्रह त्याग जोग थिर तीनो । करम बंध नहि होय नवीनो ॥
जहां न राग द्वेष रस मोहे । प्रगट मोक्ष मारग मुख सोहे ॥ ४७ ॥

अर्थ—हे भव्य ? जे सम्यक्ती समचित्ती जीव है तिनके गुणकी कथा तुमसे कहूंहूं। जहां कोई प्रकारे प्रमादकी क्रिया नही है सो निर्विकल्प अनुभवका स्वरूप है ॥ ४६ ॥ अर जहां २४ प्रकारके परिग्रहका त्याग है तथा मन वचन अर देहके योग स्थिर है तहां नवीन कर्मका बंध नही होय है। अर जहां राग द्वेष तथा मोह रस नही है तहां प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग है ॥ ४७ ॥

पूरव बंध उदय नहि व्यापे । जहां न भेद पुन्न अरु पापे ॥

द्रव्य भाव गुण निर्मल धारा। बोध विधान विविध विस्तारा ॥ ४८ ॥
जिन्हके सहज अवस्था ऐसी । तिन्हके हिरदे दुविधा कैसी ॥
जे मुनि क्षपक श्रेणि चढि धाये। ते केवलि भगवान कहाये ॥ ४९ ॥
इह विधि जे पूरण भये, अष्टकर्म वन दाहि। तिन्हकी महिमा जे लखे, नमे बनारसि ताहि ॥५०॥

अर्थ—जहां पूर्व कालके कर्म बंधका उदय व्यापे नही तथा पुन्य अर पापका भेद नही। अर जहां साधूके २८ द्रव्य गुण अर भाव गुणकी निर्मल धारा वहे है तथा नाना प्रकारे ज्ञानका विस्तार है ॥ ४८ ॥ जिसकी स्वयंसिद्ध ऐसी अवस्था हो रही है तिसके हृदयमें कौनसेही प्रकारकी दुविधा (संशय) नहि रहे है । अर जे मुनि क्षपक श्रेणी चढे उर्द्ध गमन करे है ते मुनि केवली भगवान है ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जे मुनि परिपूर्णताकूं प्राप्त होय अष्ट कर्मरूप वनकूं दग्ध करै है । तिनकी महिमा जे सत्पुरुष जाने है तिनकूं बनारसीदास नमस्कार करे है ॥ ५० ॥

॥ अव मोक्ष होनेका क्रम कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

भयो शुद्ध अंकुर, गयो मिथ्यात्व मूल नसि। क्रम क्रम होत उद्योत, सहज जिम शुक्ल पक्ष ससि। केवल रूप प्रकाश, भासि सुख रासि धरम ध्रुव। करि पूरण थिति आउ, त्यागि गत भाव परम हुव । इह विधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बुंद सागर भयो । अविचल अखंड अनभय अखय, जीवद्रव्य जगमांहि जयो ॥ ५१ ॥

अर्थ—प्रथम जब सत्यार्थ देव शास्त्र अर गुरूके गुणनकी श्रद्धारूप शुद्ध सम्यक्तका अंकूर उपजे है, तब मिथ्यात्व मूलते विनसी जाय है। फेर शुक्ल पक्षके चंद्र समान क्रमे क्रमे आत्मा शुद्ध होय

है। फेर केवल ज्ञानरूप प्रकाश होय है, तब आत्माका निश्चल गुण है सो सुखकी रास भासे है। फेर मनुष्य आयुकी स्थिति पूर्ण करिके, अर मनुष्यगतीका स्वभाव छोडिके परमात्मा (अष्ट कर्मते रहित) होय है। इस प्रकार अनन्य प्रभूता धारण करे है, जैसे बुंदबुंदते सागर होय है। तब अचल अखंड निर्भय अर अक्षय ऐसे मोक्ष स्थानमें जीव जाय वसे है ते जीव जगतमें जयवंत होहु ॥५१॥

॥ अव अष्ट कर्म नाश होते जीवकूं अष्ट गुण प्राप्त होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानावरणीके गये जानिये जु है सु सब, दर्शनावरणके गयेते सब देखिये ॥
वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्र विसेखिये ॥
आयुकर्म गये अवगाहन अटल होय, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये ॥
अगुरु अलघुरूप होय गोत्र कर्म गये, अंतराय गयेते अनंत वल लेखिये ॥ ५२ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणीय कर्मका नाश होते केवलज्ञान प्राप्त होय है तब सब लोककूं अर अलोककूं जाने है ॥ १ ॥ दर्शनावरणीय कर्मका नाश होते केवल दर्शन प्राप्त होय है तब सब लोककूं अर अलोककूं देखे है ॥ २ ॥ वेदनी कर्मका नाश होते अनंत सौख्य प्राप्त होय है ॥ ३ ॥ मोहनी कर्मका नाश होते शुद्ध सम्यक्त (आत्मामें आत्माका स्थिरपणा) होय है ॥ ४ ॥ आयुष्य कर्मका नाश होते अनंत कालकी स्थिति प्राप्त होय है ॥ ५ ॥ नाम कर्मका नाश होते शरीर रहित अमूर्तीकपणा प्राप्त होय है ॥ ६ ॥ गोत्र कर्मका नाश होते अगुरुलघुपणा प्राप्त होय है ॥ ७ ॥ अंतराय कर्मका नाश होते अनंत बल प्राप्त होय है ॥ ८ ॥ ऐसे सिद्धके आठ गुण हैं ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको नवमो मोक्षद्वार बालबोध सहित समास भयो ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारंभः ॥१०॥

इति श्री नाटकग्रंथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार ॥ अब वरनों संक्षेपसों, सर्व विशुद्धी द्वार ॥ १ ॥

अर्थ—ऐसे नाटक ग्रंथमें मोक्ष अधिकार कह्या । अब सर्व विशुद्धिद्वार कहे है ॥ १ ॥

॥ अब प्रथम शुद्ध ज्ञानपुंज आत्माकी स्तुति करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

कर्मनिको करता है भोगनिको भोगता है, जाके प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है ॥
जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥
ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है स्वभाव जाको, लोक व्यापि लोकातीत लोकमें महित है ॥
शुद्ध वंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्‍यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥ १ ॥
जो निश्चै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत । सो चिद्रूप वनारसी, जगत माहिं जैवंत ॥२॥

अर्थ—आत्मा कर्मका कर्त्ता है तथा सुख अर दुःखका भोक्ता है ऐसे लोक व्यवहारमें कहे है, पण ये कहना शुद्ध आत्मस्वरूपके प्रभुतामें अहितकारी है । तथा शुद्ध आत्म स्वरूपमें एक इंद्रियादिक पंच इंद्रियके भेद नही है, आत्मातो सदा निर्दोष है तिसके निश्चय स्वभावमें बंध अर मोक्ष नही है । आत्मा है सो ज्ञानसमूहका पुंज है अर जानते उसिका स्वरूप जान्या जाय है, आत्मा जगमें सर्व स्थानकी व्यास है पण आत्माका स्थान जगते भिन्न है अर जगमें आत्मा एक महिमावंत पूजनीक वस्तु है । जिसका कदापि नाश नहि होय है ताते शुद्ध वंश है अर शुद्ध चेतना (ज्ञान अर दर्शन) के रसते भरपूर भया है, ऐसे शुद्धता सहित है सो परमहंस आत्मा) है ॥ १ ॥

जो निश्चय स्वरूपते सदा निर्मल है, तथा आदि मध्य अर अंत इन तीनूं अवस्थामें एकरूप है। ऐसा जो चिद्रूप (आत्मा) है, सो जगतमें जयवंत प्रवर्तो ऐसे बनारसीदास आत्मगुणरूप स्तुति करे है ॥२॥

॥ अब जीव कर्मका अकर्त्ता तथा अभोक्ता है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

जीव करम करता नहि ऐसे । रस भोक्ता स्वभाव नहि तैसे ॥
मिथ्या मतिसों करता होई । गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ३ ॥

अर्थ—जीवका स्वभाव कर्मका कर्त्ता नही है अर कर्मके फलका भोक्ताहूं नही है । अज्ञानपणासे कर्मका कर्त्ता माने है अर जब अज्ञान जाय है तब जीव कर्मका कर्त्ता नहि दीखे ॥ ३ ॥

॥ अब जीव कर्मका अकर्ता है तथा कर्त्ता है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निहचै निहारत स्वभाव जांहि आतमाको, आतमीक धरम परम परकामना ॥
अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल स्वरूप गुण लोकाऽलोक भासना ॥
सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमको, करतासों दीसे लिये भरम उपासना ॥
यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्याचार, यहै भो विकार यह व्यवहार वासना ॥ ४ ॥

अर्थ—निश्चय स्वरूपसे देखिये तो आत्माका स्वभाव कैवल्य ज्ञानगुण करि सदा प्रकाशमान है। तिस कैवल्य ज्ञानगुणमें अतीत अनागत अर वर्तमानकाल तथा लोक अर अलोक प्रत्यक्ष भासे है ताते कर्मका अकर्त्ता है । अर सोही आत्मा संसार अवस्थामें कर्मका कर्त्ता दीखे है सो अज्ञानका भ्रम है । यही अज्ञानका भ्रम है सो मोहका फैलाव अर मिथ्याचार तथा भवभ्रमणका विकार करावे है सोही व्यवहार वासना (आत्माका अशुद्ध स्वभाव) है ॥ ४ ॥

॥ अब जीव कर्मका भोक्ता तथा अभोक्ता है सो कहे है ॥ चौपई ॥—

यथा जीव कर्त्ता न कहावे । तथा भोगता नाम न पावे ॥
है भोगी मिथ्यामति मांहि । गये मिथ्यात्व भोगता नांही ॥ ५ ॥

अर्थ—जीव कर्मका कर्त्ता नही कहावे अर भोक्ताहू नही कहावे है । पण अज्ञानसे भोक्ता है अर अज्ञान गयेते अभोक्ता कहावे है ॥ ५ ॥

॥ अब भोक्ताका अर अभोक्ता लक्षण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धि, सोतो विषै भोगनिसों भोगता कहावे है ॥
समकीति जीव जोग भोगसों उदासी ताते, सहज अभोगताजु ग्रंथनिमें गायो है ॥
यांहि भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बूध, परभाव त्यागि अपनो स्वभाव आयो है ॥
निरविकलप निरुपाधि आतम आराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है ॥ ६ ॥

अर्थ—जगतमें रहतेवाले जे अज्ञानी जीव है ते सदा देहभोगादिकमें ममत्व करे है, ताते अज्ञानी जीव विषय भोगके भोक्ता कहावे है । अर भेदज्ञानी सम्यक्ती जीव है ते मन वचन कायसे देह भोगते उदासीन रहे है, ताते भेदज्ञानी जीव विषयभोगकूं भोगतेहूं अभोक्ता है ऐसे शास्त्रमें कह्या है । ज्ञानी जीव है सो स्वपरका भेद जाने है, अर देहादिककी ममत्व छोडि आत्मस्वभावमें आवे है । ताते कर्म उपाधिरहित ऐसा जो निर्विकल्पआत्मा तिसआत्माका अनुभव करे है, अर मन वचन तथा कायके योगकूं रोकिके आत्मस्वरूपमें मिले (कर्म रहित होय मुक्त होय) है ॥ ६ ॥

॥ अब ज्ञानीजीव कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता नही होय है ताका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुण, रतन भंडारि आप हारी कर्म रोगको ॥
प्यारो पंडितनको हुस्यारो मोक्ष मारगमें, न्यारो पुदगलसों उजारो उपयोगको ॥
जाने निज पर तत्त रहे जगमें विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोगको ॥
ता कारण ज्ञानी ज्ञानावरणादि करमको, करता न होइ भोगता न होइ भोगको ॥७॥

अर्थ—चिनमुद्रा धारी (ज्ञानी) है सो आतम स्वभाव धारे है, ताते गुणरूप रत्नका भंडारि अर कर्मरूप रोगका वैद्य है। जिसको ज्ञानरूप उजारा हुआ है सो देहादिक पुद्गलकूं न्यारो जाने है, अर मोक्षमार्गमें सावधान रहे है ताते पंडित जनको प्यारो लागे है। ज्ञानी है सो स्व तत्व परतत्वका भेद समझे है अर संसारसे उदास रहे है, तथा मन वचन अर कायके योगका ममत्व नही राखे है। इत्यादि गुण धारे है तिस कारणतें ज्ञानीजीव है सो कर्मबंधका कर्त्ता तथा कर्मबंधके फल जे सुख अर दुःख तिस सुख अर दुःखका भोक्ता नहि होय है ॥ ७ ॥

निर्भिलाष करणी करे, भोग अरुचि घट मांहि। ताते साधक सिद्धसम, कर्त्ता भुक्ता नांहि ॥८॥

अर्थ—ज्ञानी है सो इच्छा रहित संसार करे है अर चित्तमें भोगकी रुचि नहि धरे है। ताते मोक्षका साधक (ज्ञानी) है सो सिद्ध समान कर्मबंधका कर्त्ता तथा भोक्ताहू नही है ॥ ८ ॥

॥ अब अज्ञानी कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता होय है तिसका कारण कहे है ॥ कवित्त ॥—

जो हिय अंध विकल मिथ्यात धर, मृषा सकल विकलप उपजावत ॥
गहि एकांत पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥
त्यों जिनमती द्रव्य चारित्र कर, करनि करि करतार कहावत ॥

वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विन समकित भव पारन पावत ॥ ९ ॥

अर्थ—जो हृदय अंध अज्ञानी है सो अज्ञानके भ्रमते अनेक मिथ्या विकल्प उपजावे है। अर एकांत पक्ष धारण करि आत्माकूं कर्मका कर्त्ता मानि अधो गतिका पात्र होय है । अथवा कोई जिनमती द्रव्यलिंगि मुनि ज्ञान विना बाह्य क्रिया करे है अर आत्माकूं कर्मका कर्त्ता माने है सो मूढ है । यद्यपि मुक्तिकी वांछा करे है तथापि सम्यक्त (भेदज्ञान) विना मोक्ष नहि पावे है ॥ ९ ॥

॥ अव अकर्त्ता स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

चेतन अंक जीव लखि लीना । पुद्गल कर्म अचेतन चीना ॥
वासी एक खेतके दोऊ । जदपि तथापि मिले न कोऊ ॥ १० ॥
निजनिज भाव क्रिया सहित, व्यापक व्याप्य न कोइ। कर्त्ता पुद्गल कर्मका, जीव कहांसे होइ ॥११॥

अर्थ—जीवका लक्षण चेतन है अर पुद्गलका तथा कर्मका लक्षण अचेतन जड है । चेतन अर अचेतन ये दोऊ एक क्षेत्रमें वसे है तथापि कोई कोउसे मिले नही है ॥ १० ॥ पदार्थ है सो अपने अपने स्वभाव माफिक क्रिया करे है, इसिमें व्यापकपणा अर व्याप्यपणा कोई नही है । जो जीवको अर पुद्गलको कोई व्यापक व्याप्यपणाका संबंधही नही है तो, जीव है सो पुद्गल कर्मका कर्त्ता कैसे होयगा ? ॥ ११ ॥

॥ अव कर्त्ता स्वरूप तथा अकर्त्ता स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जीव अर पुद्गल करम रहे एक खेत, यद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है ॥
लक्षण स्वरूप गुण परजै प्रकृति भेद, दूहुमें अनादि हीकी दुविधा व्हे रही है ॥

एतेपर भिन्नता न भासे जीव करमकि, जौलों मिथ्याभाव तौलों ओंधि वाउ वही है॥
ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि भइ, जीव कर्म पिंडको अकरतार सही है ॥१२॥

अर्थ—जीव अर पुद्गलकर्म एक क्षेत्र (आकाश) में वसे है, तथापि जीवकी सत्ता जीवमें है अर पुद्गलकी सत्ता पुद्गलमें है ऐसी दोनूंकी सत्ता न्यारी न्यारी है । जीवके अर पुद्गलके लक्षणमें भेद है तैसे स्वरूपमें पर्यायमें गुणमें अर प्रकृतीमेंहूं भेद है, ताते जीवकी अर पुद्गलकी अनादि कालते दुविधा चली आवे है । ऐसे दुविधा है तोहूं जबतक अज्ञान भाव है तबतक उलटा विचार चले है, जीवकी अर कर्मकी दुविधा नहि दीसे है । अर जब ज्ञानका उदय होय तब सूधी दृष्टी (विचार) होयकै, जीव कर्मका अकर्त्ताही दीसे है ॥ १२ ॥

एक वस्तु जैसेजु है, तासें मिले न आन। जीव अकर्त्ता कर्मको, यह अनुभौ परमान ॥१३॥

अर्थ—जैसे एक गुणके वस्तुमें दूजी अन्य गुणकी वस्तु नहि मिले है । तैसे जीवके चेतन गुणमें कर्मपुद्गलका अचेतन गुण नाहि मिले है तातै जीव कर्मका अकर्त्ता है, यह परिचै प्रमाणहै ॥१३॥

॥ अब अज्ञानी है सो भाव भावित कर्मका अर अशुद्ध परिणामका कर्त्ता होय है सो कहे है॥ चौपई ॥—

जो दुरमति विकल अज्ञानी । जिन्हे स्व रीत पर रीत न जानी ॥
माया मगन भरमके भरता । ते जिय भाव करमके करता ॥ १४ ॥

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव। तेई भावित कर्मको, कर्त्ता होय सदीव ॥१५॥
जे अशुद्ध परणति धरे, करे अहंपर मान। ते अशुद्ध परिणामके, कर्त्ता होय अजान ॥१६॥

अर्थ—जे दुरमती विकल अज्ञानी है अर जे स्वगुण तथा परगुण जाने नही अर जे मायाचारमें

मग्न है महा भ्रमिष्ट है, ते जीव भाव कर्म (राग द्वेष) का कर्त्ता होय है ॥ १४ ॥ जे अज्ञान अंधकारसे जीव अर अजीका भेद नहि देखे है। ते जीव सदा भावित कर्मका कर्त्ता होय है ॥१५॥ जे अशुद्ध (अज्ञान) परिणामते समस्त कार्यमें अहंपणा माने है । ते जीव अशुद्ध परिणामका कर्त्ता होय है ॥ १६ ॥

॥ अव शिष्य गुरुसे प्रश्न पूछे है ॥ दोहा ॥—

शिष्य पूछे प्रभु तुम कह्यो, दुविध कर्मका रूप। द्रव्यकर्म पुद्गलमई, भावकर्म चिद्रूप ॥ १७ ॥
कर्त्ता द्रव्यजु कर्मको, जीव न होइ त्रिकाल।अव यह भावित कर्म तुम, कहो कोनकी चाल ॥१८॥
कर्त्ता याको कोन है, कोन करे फल भोग। के पुद्गल के आतमा, के दुहूको संयोग ॥१९॥

अर्थ—शिष्य गुरूसे पूछे हे प्रभो, आपने कर्मका स्वरूप दोय प्रकारका कह्यो । एक द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादिक) ते पुद्गलमय कह्या, अर भावकर्म (राग द्वेषादिक) ते चेतनाका विकाररूप कह्या ॥ १७ ॥ ताते द्रव्यकर्मका कर्त्ता तो कदापि जीव नही होय है यह मुझे समझा । अव भावित कर्म कैसे होय है सो तुम कहो ॥ १८ ॥ भावित कर्मका कर्त्ता कोन है, अर इस कर्मका फल भोक्ता कोन है। पुद्गल कर्त्ता भोक्ता है की आतमा कर्त्ता भोक्ता है की दुहूंका संयोग कर्ता भोक्ता है सो सबका निर्णय कहो ॥ १९ ॥

॥ अव शिष्यके प्रश्नका गुरु उत्तर कहे है ॥ दोहा॥—

क्रिया एक कर्त्ता जुगल, यो न जिनागम मांहि। अथवा करणी औरकी, और करे यों नांहि ॥२०॥
करे और फल भोगवे, और बने नहि एम । जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥ २१ ॥

भावकर्म कर्त्तव्यता, स्वयंसिद्ध नहि होय । जो जगकी करणी करे, जगवासी जिय सोयं ॥२२॥
जिय कर्त्ता जिय भोगता, भावकर्म जियचाल । पुद्गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्याचाल ॥२३॥
ताते भावित कर्मको, करे मिथ्याती जीव । सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥ २४ ॥

अर्थ—गुरू कहे है हे शिष्य? एक क्रियाके करनेवाले दोय होय अथवा एककी क्रिया दूसरा करे ऐसी वात जिन शास्त्रमें नही कही हैं ॥ २० ॥ क्रिया करे एक अर तिस क्रियाका फल भोगवे दूसरा येहूं नहि बनसके । जो करे सो भोगवे यह न्याय यथायोग्य है ॥ २१ ॥ भावकर्मकी कर्तव्यता स्वयंसिद्ध नहि होय है । जगतमें जे गमनागमन क्रिया करे है सोही भावकर्मका कर्त्ता जगवासी जीव है ॥ २२ ॥ जीवही भावकर्मका कर्त्ता है जीवही भावकर्मके फलका भोक्ता है अर जीवकेही चल विचलतासे भावकर्म उपजे है । भावकर्मकूं पुद्गल करेही नही अर भोगवेही नही है तथा भावकर्मकूं जीव अर पुद्गल दोऊ मिलकेहूं करे है ऐसा कहना मिथ्या है ॥ २३ ॥ ताते भावकर्मकूं मिथ्यात्ती (अज्ञानी) जीव करे है । अर भाव कर्मके फल जे सुख अर दुःख तेहूं अज्ञानी जीव सदाकाल आपही भोगवे है ॥ २४ ॥

॥ अव एकांतवादी कर्मविषें कैसा विचार करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोइ मूढ विकल एकंत पक्ष गहे कहे, आतमा अकरतार पूरण परम है ॥
तिनसो जु कोउ कहे जीव करता है तासे, फेरि कहे करमकों करता करम है ॥
ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जीन्हके हिये अनादि मोहको भरम है ॥
तिनके मिथ्यात्व दूर करवेकूं कहे गुरु, स्यादवाद परमाण आतम धरम है ॥२५॥

अर्थ—कोई मूढ एकांत पक्ष ग्रहण करके कहेकी, आत्मा पूर्ण पवित्र है सो कर्मका कर्त्ता नही है। तिन मूढसे कोऊ कहे कर्मका कर्त्ता जीव है, तो फेर मूढ कहें कर्मका कर्त्ता कर्म है जीव नही है। ऐसे मिथ्यात्वमें मग्न है सो मिथ्यात्वी जीव ब्रह्मघाती है, तिनके हृदयमें अनादिका मोह भ्रम है। तिस अज्ञानीका भ्रम दूर करनेकूं, गुरू आत्माका स्वरूप स्याद्वादप्रमाणते कहे है ॥ २५ ॥

॥ अब स्याद्वाद प्रमाणते आत्मस्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिं करता नहि भोगता, निश्चै सम्यकवान ॥ २६ ॥

अर्थ—जो जीव अज्ञानतासे मिथ्यात्वमें मग्न है, सो कर्मका कर्त्ता तथा भोक्ता है। अर जो भेदज्ञानी सम्यक्ती है सो कर्मका कर्त्ताहूं नही है अर भोक्ताहूं नही है, यह निश्चयते प्रमाण है ॥२६॥

॥ अब एकांत पक्ष त्यागवेकूं स्याद्वादका उपदेश करे है ॥ ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे सांख्यमति कहे अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कवही ॥
तैसे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सूनि, यांहि भांति माने सो एकांत तजो अवही ॥
जोलों दुरमति तोलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सवही ॥
जाके घट ज्ञायक स्वभाव जग्यो जवहीसे, सो तो जगजालसे निरालो भयो तवही ॥२७॥

अर्थ—जैसे सांख्यमती कहे की आत्मा अकरता है, कोइ कालमें कर्मका कर्त्ता नही होय है। तैसे जिनमतीहूं गुरू मुखते निश्चय नयका एक पक्ष सुनिके, जीव कूं सर्वथा अकर्त्ता माने है सो हे भव्य ? अब एकांत पक्षकूं छोडो। जिनेंद्रके स्याद्वाद अनेकांत मतमेंतो ऐसे कह्या है की—जबतक

अज्ञानपणा है तबतक जीव कर्मका कर्त्ता है, अर जब सुमती आवे तब सदा अकर्त्ता है। जिसके हृदयमें भेदज्ञान जग्या है जबसे, सो तो कर्मबंधसे निराला है ॥ २७ ॥

॥ अब बौद्धमतका विचार कहे है ॥ दोहा ॥—

बोद्ध क्षणिकवादी कहें, क्षणभंगुर तनु मांहि। प्रथम समय जो जीव है, द्वितिय समयमें नांहि॥
ताते मेरे मतविषें, करे करम जो कोई। सो न भोगवे सर्वथा, और भोगता होई ॥ २९ ॥

अर्थ—बौद्ध क्षणिकवादी कहेकी, शरीरमें जीव क्षणभर रहे है सदा रहे नहि। शरीरमें प्रथम समयमें जो जीव है सो दुसरे समयमें नहि रहे, दुसरे समयमें दुसरा जीव आवे है ॥ २८ ॥ ताते जो जीव कर्म करे सो सर्वथा उस कर्मका फल भोगवे नही। उसका फल दुसरा जीव भोगवे है मेरे बौद्धमतका विचार है ॥ २९ ॥

॥ अब बौद्धमतका एकांत विचार दूर करनेकूं जिनमती दृष्टांत कहे है ॥ दोहा ॥—

यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनके काज। चिद्विलास अविचल कथा भाषेश्रीजिनराज ॥३०॥
बालपन काहू पुरुष, देखे पुरकइ कोइ। तरुण भये फिरके लखे, कहे नगर यह सोइ ॥३१॥
जो दुहु पनमें एक थो, तो तिहि सुमरण कीय। और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥३२॥
जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध। तव इकांतवादी पुरुष, जैनभयो प्रति बुद्ध ॥३३॥

अर्थ—यह बौद्धमतका एकांत क्षणभंगूर पक्ष दूर करनेके आर्थें। श्रीजिनराज आत्माका स्थिरपणा दृष्टांतते कहे है ॥ ३० ॥ कोईने बालपणमें एक नगर देख्यो। फेर तरुणपणामें वोही नगर देख्यो तब बालपणमें देख्या नगरका स्मरण होवे है ॥ ३१ ॥ जो बाल अर तरुण ये दोनूं अवस्थामें

जीव एक था ताते पूर्वे देख्याथा ताका स्मरण भया। एक जीवका देख्या सो दूसरे जीवकूं स्मरण नहि होयगा ॥ ३२ ॥ जब यह जिनमतका योग्य दृष्टांत सुना, तब बौद्धमतका क्षणिक विचार था सो नष्ट भया अर जिनराजने जो आत्माका स्थिरपणा कह्या सो बौद्धमतीने मान्य कीया ॥ ३३ ॥

॥ अब बौद्धमती एकांत पक्ष करे है तिसका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एक परजाय एक समैमें विनसी जाय, दूजि परजाय दूजे समै उपजति है ॥
ताको छल पकरिके बोध कहे समै समै, नवो जीव उपजे पुरातनकी क्षति है ॥
तातै माने करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिये ऐसी मति है ॥
परजाय प्रमाणको सरवथा द्रव्य जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥३४॥

अर्थ—द्रव्यकी पर्याय क्षणक्षणमें बदले है–प्रथम समयमें जो पर्याय है सो नाश पावे है, अर दूसरे समयमें दूसरी पर्याय उपजे है ऐसे सिद्धांतका वचन है। इस पर्यायके स्वरूपकूं बौद्धमतीने जीव समझा है, अर क्षणक्षणमें नवा जीव उपजे है अर पुराने जीवका नाश पावे है ऐसे कहे है। तिस कारणते कर्मका कर्त्ता एक जीव, अर तिस कर्मके फलका भोक्ता दूसरा जीव होय है ऐसी मति बोद्धके हृदयमें हुई है। अर द्रव्यके पर्यायकूं सर्वथा द्रव्य जाने है, ऐसे अज्ञानीदुर्मती अवश्य मांस आहारादि खोटी क्रिया करके दुर्गतीके पात्र होय है ॥ ३४ ॥

॥ अब दुर्बुद्धीका अर दुर्गतीका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

कहे अनातमकी कथा, चहेन आतम शुद्धि। रहे अध्यातमसे विमुख, दुराराध्य दुर्बुद्धि ॥३५॥
दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्याचाल । गहि एकंत दुर्बुद्धिसे, मुक्त न होई त्रिकाल ॥३६॥

अर्थ—जे सदा देहके महिमाकी कथा कहे है, अर आत्माकी शुद्धता नहि जाने है। तथा आत्मविचारसें परान्मुख रहे है, ते दुर्बुद्धी दुराराध्य (बहुत कष्टसे समझाये तो नहि समझे) है ॥३५॥ मिथ्यात्वी अज्ञानी है तिसकूं दुर्बुद्धी कहिये, अर खोटी क्रिया करे तिसकूं दुर्गति कहिये। दुर्बुद्धी है ते एकांत पक्ष ग्रहण करे है, ताते तिसकूं तीन कालमें मुक्ति नहि होय है ॥ ३६ ॥

॥ अव दुर्बुद्धी भ्रममें कैसे भूले है सो तीन दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कायासे विचारे प्रीति मायाहीमें हारी जीति, लीये हठ रीति जैसे हारीलकी लकरी ॥
चूंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि, त्योंहि पाय गाडे पैं न छोडे टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमकों न ठोर पावे, धावे चहु वोर ज्यों वढावे जाल मकरी ॥
ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूलि फीरे ममता जंजरनीसों जकरी ॥ ३७ ॥

अर्थ—दुर्बुद्धि है सो सदा देहके ममत्वमें तथा कपटके हारी जीतीमें रहे है, अर हठकूं ऐसे धरे है जैसे चील पक्षी पगमें लकडीकूं पकडे अर आकाशमें उडे तोभी छोडे नही। अथवा जैसे चोर गोह जनावरके कंबरकूं रसी बांधिके मेहल ऊपर फेके तहां गोह भूमीकूं पकडे है, तैसे दुर्जनहूं जो खोटी क्रिया पकडे हैं सो जादा करे पर छोडे नही है। अर मोह मदिराके भ्रमसे कहां ठिकाणा नाहि पावे, ऐसे चहुवोर दौडे है, जैसे मकडी जाल वढावती चहुओर दौडे है। ऐसे दुर्बुद्धी है सो भ्रमसे भूलि झूठके मार्गमें झूल रहे है, अर डोले फिरे है पण ममतारूप बेडीते बंध्या है ॥ ३७ ॥

॥ अब दुर्बुद्धीकी रीत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

वात सुनि चौंकि ऊठे वातहिसों भौंकि ऊठे, वातसों नरम होइ वातहिसों अकरी ॥

निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककि, साता माने प्रभूता असाता माने फकरी ॥
मोक्ष न सुहाइ दोष देखे तहां पैठि जाइ, कालसों डराइ जैसे नाहरसों बकरी ॥
ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठसे झरोखे झूलि, फूलि फीरे ममता जंजीरनीसो जकरी ॥३८॥

अर्थ—दुर्बुद्धी है सो आत्मज्ञानकी बात सुनिके गरम होय कुत्ते समान भों भों करि ऊठे है, अर अपने मर्जी माफिक बात करे तो नरम होय है अर मर्जी माफक न करे तो अकड जाय है। मोक्षमार्गके साधककी निंदा करे है अर हिंसककी प्रशंसा करे है, अपने बडाईकूं सुख समझे है अर परके बडाईकूं दुःख माने है। मोक्षकी रीत सुहावे नही अर दुर्गण दृष्टी पडे तो तिसकूं ग्रहण करे है, अर मृत्युकूं ऐसे डरे है की जैसे बाघकूं बकरी डरै है। ऐसे दुर्बुद्धी है सो भ्रममें भूलि झूठके मार्गमें झूल रहे है, अर डोले फिरे है पण ममतारूप बेडीते बंध्या है ॥ ३८ ॥

॥ अब स्याद्वाद (अनेकांत) मतकी प्रशंसा करे है ॥ कवित्त ॥ दोहा ॥—

केई कहे जीव क्षणभंगुर, केई कहे करम करतार। केई कर्म रहित
नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार। जे एकांत गहे ते मूरख, पंडित
अनेकांत पख धार। जैसे भिन्न भिन्न मुकता गण, गुणसों गहत कहावे हार ॥ ३९ ॥
यथा सूत संग्रह विना, मुक्त माल नहि होय। तथा स्याद्वादी विना, मोक्ष न साधे कोय ॥४०॥

अर्थ—केई [बौद्धमती] कहे जीव क्षणभंगुर है, केई [मिमांसकमती] कहे जीव कर्मका कर्त्ता है। केई (सांख्यमती) कहे जीव सदा कर्मरहित है, ऐसे नाना प्रकारके अनंत नय है। जे एक पक्षकूंही अंगीकार करे है ते तो अज्ञानी है, अर जे सर्व अनेकांत पक्षकूं धारण करे है ते ज्ञानी

है। जैसे भिन्न भिन्न मोती है, पण तिस मोतीकूं सूतमें पोयेंसे हार कहावे है ॥ ३९ ॥ जैसे सूतमें पोये विना मोतीकी माल नहि होय है। तैसे स्याद्वादी विना कोई मोक्षमार्ग साधे नहीं है ॥ ४० ॥

॥ अब मत भेदको कारण कहे है ॥ दोहा ॥—

पद स्वभाव पूर्व उदै, निश्चै उद्यम काल। पक्षपात मिथ्यात पथ, सर्वंगी शिव चाल ॥ ४१ ॥

अर्थ—कोई तो आत्माके स्वभावकूं माने है ॥ १ ॥ कोई पूर्व कर्मके उदयकूं माने है ॥ २ ॥ कोई निश्चयकूं माने है ॥ ३ ॥ कोई व्यवहारकूं माने है ॥ ४ ॥ कोई कालकूं माने है ॥ ५ ॥ ऐसे पक्षपात करि एक एककूं माने है सो तो मिथ्यात्वका मार्ग है, अर जो पांचीहूं नयकूं माने है सो मोक्षका मार्ग है ॥ ४१ ॥

॥ अब छहों मतका विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एक जीव वस्तुके अनेक गुण रूप नाम, निज योग शुद्ध पर योगसों अशुद्ध है ॥
वेदपाठी ब्रह्म कहे मीमांसक कर्म कहे, शिवमति शिव कहे बौध कहे बुद्ध है ॥
जैनी कहे जिन न्यायवादी करतार कहे, छहों दरसनमें वचनको विरुद्ध है ॥
वस्तुको स्वरूप पहिचाने सोई परवीण, वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है ॥४२॥

अर्थ—जीव वस्तु एक है पण तिसके गुण रूप अर नाम अनेक है, जीव स्वतः शुद्ध है पण परके संयोगते अशुद्ध होय है। वेदपाठी जीवकूं ब्रह्म कहे है अर मीमासकमती जीवकूं कर्म कहे है, शिवमती जीवकूं शिव कहे है अर बौद्धमती जीवकूं बुद्ध कहे है। जैनमती जीवकूं जिन कहे है अर न्यायवादी जीवकूं कर्त्ता कहे है, ऐसे छहों दर्शन (मत) में वचनके भेदते मात्र विरुद्ध दीसे है।

पण जो जीव वस्तुका स्वरूप पहिचाने है सोही प्रवीण है, अर जो नैगमादि नयते वचनके सर्व भेद माने है सोही शुद्ध है ॥ ४२ ॥

॥ अव छहों मतका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

वेदपाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहत है ॥
बौद्धमति बुद्ध माने सूक्षम स्वभाव साधे, शिवमति शिवरूप कालको कहत है ॥
न्याय ग्रंथके पढैय्या थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनंद लहत है ॥
पांचो दरसनि तेतो पोषे एक एक अंग, जैनि जिनपंथि सरवंगि नै गहत है ॥ ४३ ॥

अर्थ—वेदपाठी जीवकूं ब्रह्म माने है अर कर्म रहित निश्चय स्वरूपसे एक अद्वैत गुण ग्रहण करे है, मीमांसकमती जीवकूं कर्म माने है अर पूर्व कर्मके उदय माफिक प्रवर्तें है। बौद्धमती जीवकूं बुद्ध माने है अर जीवके सूक्ष्म स्वभावकूं साधे है, शिवमती जीवकूं शिव माने है अर शिवकूं कालरूप कहे है। नैयायिकमती जीवकूं कर्त्ता माने है, अर क्रियामें मग्न होय आनंद लहे है। ऐसे पांचूं मतवाले एक एक अंगकूं पुष्टकर धारण करे है, अर जैनमती है ते सर्व नयकूं ग्रहण करे है ॥ ४३ ॥

॥ अव पांचूं मतके एक एक अंगकी अर जैनीके सर्वांगकी सत्यता दिखावे हैं ॥ २१ ॥—

निहचै अभेद अंग उदै गुणकी तरंग, उद्यमकि रीति लीये उद्धता शकति है ॥
परयाय रूपको प्रमाण सूक्षम स्वभाव, कालकीसि ढाल परिणाम चक्र गति है ॥
याहि भांती आतम दरवके अनेक अंग, एक माने एककों न माने सो कुमति है ॥
एक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजि जीवे वादि मरे साचि कहवति है ॥ ४४ ॥

अर्थ—जीवके लक्षणमें भेद नही है सब जीव एक समान है ताते वेदपाठीने माना सो अद्वैत अंग सत्य है अर जीवके उदयमें अनेक गुणके तरंग ऊठे है ताते मीमांसक मतवालेने माना सो उदय अंग सत्य है, जीवमें अनंत शक्ती है सो जहां तहां गतीमें प्रवर्ते है ताते नैयायिकमतने माना उद्धत अंग सत्य है। जीवका पर्याय क्षण क्षणमें बदले है ताते बौद्धमतीने माना क्षणीक अंग सत्य है, जीवके परिणाम सदा चक्र समान फिरे है तिसकूं काल द्रव्य साह्य है ताते शिवमतीने माना काल अंग सत्य है। ऐसे आत्म द्रव्यके अनेक अंग है, तिसमें एक अंगकूं माने अर एक अंगकूं नहि माने सो एकांत पक्ष धरनेवाला कुमती है। अर एकांत पक्षकूं छोडि जीवके सर्वांगकूं खोजे (धूंडे) है सो सुमति है, खोजी जीवे वादी मरे यह कहावत है सो सत्य है॥ ४४॥

॥ अब स्याद्वादका स्वरूप कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सो, एक न अनेक कछु कह्यो न परत है ॥
करता अकरता है भोगता अभोगता है, उपजे न उपजत मरे न मरत है ॥
बोलत विचरत न बोले न विचरे कछु, भेखको न भाजन पै भेखसो धरत है ॥
ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसो, उलट पलट नट बाजीसी करत है ॥ ४५ ॥

अर्थ—एक द्रव्यमें अनेक पर्याय है अर अनेक पर्यायमें एक द्रव्य है, याते हर कोई वस्तु सर्वथा एक है अथवा सर्वथा अनेक है ऐसे कह्या नहि जाय है। (कथंचित एक है अथवा कथंचित अनेक है ऐसे कह्या जाय है) व्यवहारते जीव कर्त्ता है अर निश्चयते अकर्त्ता है तथा व्यवहारते भोक्ता है अर निश्चयते अभोक्ता है, व्यवहारते उपजे है अर निश्चयते नहि उपजे है तथा व्यवहारते

मरे है अर निश्चयते नहि मरे है। व्यवहारते बोले है तथा विचरे है अर निश्चयते बोलेहूं नही तथा चालेहूं नही है, व्यवहारते देह धरे है अर निश्चयते देहका पात्र नही है। ऐसा जो श्रेष्ठ चेतन (आत्मा) है सो पुद्गलकर्म के संगतीसे, व्यवहार अर निश्चयमें उलट पटले हो रह्या है मानू नट जैसा खेल कर रह्या है ॥ ४५ ॥

॥ अब अनुभवका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

नट बाजी विकलप दशा, नांही अनुभौ योग। केवल अनुभौ करनको, निर्विकल्प उपयोग ॥४६॥

अर्थ—जीवका नट सारखा उलट पलट खेल है सो विकल्प दशा है, सो विकल्प दशा आत्मानुभवमें योग्य नही है। आत्मानुभव करनेकूं, केवल एक निर्विकल्पदशा उपयोगी है ॥ ४६ ॥

॥ अब आत्मानुभवमें विकल्प त्यागनेकूं दृष्टांतते कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

जैसे काहु चतुर सवारी है मुकत माल, मालाकि क्रियामें नाना भांतिको विग्यान है ॥
क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वारो, मोतीनकि शोभामें मगन सुखवान है ॥
तैसे न करे न भुंजे अथवा करेसो भुंजे, ओर करे और भुंजे सब नै प्रमान है ॥
यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग योग, नीरविकलप अनुभौ अमृत पान है ॥४७॥

अर्थ—जैसे कोई चतुर मनुष्य मोतीनकी माला नाना प्रकारके कल्पनासे बनावे है। पण माला पहेरनेवाला तिस कल्पनाके विचारकूं नही देखे है, मालाके शोभामें मग्न होके सुखी होय है। तैसे आत्मा कर्म करे नही अर फल भोगवे नही अथवा कर्म करे है अर फल भोगवे है, अथवा कर्म करे एक अर

तिसका फल भोगवै दूसरा ऐसे नाना प्रकारके विकल्प है सो सब नय प्रमाणते सत्य है। परंतु आत्म अनुभवमें विकल्पके प्रकार त्यागने योग्य है, अर निर्विकल्प रहना है सो अमृत पान है ॥ ४७ ॥

॥ अब स्याद्वादी आत्माकूं कर्त्ता कौन नयमे माने है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

द्रव्यकर्म कर्त्ता अलख, यह व्यवहार कहाव। निश्चै जो जैसा दरव, तैसो ताको भाव ॥ ४८ ॥

अर्थ—पुद्गलकर्मका कर्त्ता आत्मा है यह व्यवहारनयते कह्या है। अर निश्चय नयते जो जैसा द्रव्य है तैसा तिसका स्वभाव है [पुद्गलकर्मकूं पुद्गल करे अर भाव कर्मकूं चेतन करे है] ॥ ४८ ॥

॥ अब ज्ञानका अर ज्ञेयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानको सहज ज्ञेयाकार रूप परिणमे, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है ॥
ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिहीकी मरयाद, काहू वस्तु काहूको स्वभाव नहि गह्यो है ॥
एतेपरि कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभासनिसों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है ॥
याहि दुरबुद्धीसों विकलभयो डोलत है, समुझे न धरम यों भर्म मांहि बह्यो है ॥ ४९ ॥

अर्थ—यद्यपि ज्ञानका स्वभाव ज्ञेय (घटपटादि पदार्थ) के आकाररूप परिणमनेका है, तथापि ज्ञान है सो ज्ञानरूपही रहे ज्ञेयरूप नहि होय ऐसा शास्त्रमें कह्या है। अर ज्ञेय है सो ज्ञेयरूप रहे ज्ञानरूप कदापि नहि होय, कोई एक वस्तु अन्य दुसरे वस्तुका स्वभाव नहि धारण करे ऐसे अनादिकालकी मर्याद है। तोभी कोई मिथ्यामती कहे की जबतक ज्ञानमें ज्ञेयको आकार प्रति भासे है, तबतक ज्ञान अशुद्ध होय रहे है। [जब अशुद्धी मिटेगी तब आत्मा मुक्त होयगा] इसही दुर्बुद्धीसे मिथ्यात्वी-मोहकसे विकल होय डोले है, अर वस्तुके स्वभावको नहि समझे ताते भ्रममें फिरे है ॥ ४९ ॥

॥ अव सव वस्तुकी अव्यापकता कहे है ॥ चौपई ॥—

सकल वस्तु जगमें असहाई । वस्तु वस्तुसों मिले न काई ॥
जीव वस्तु जाने जग जेती । सोऊ भिन्न रहे सव सेती ॥ ५० ॥

अर्थ—जगतमें जे जे वस्तु है ते सर्व असहाई है ताते कोई वस्तु काहू वस्तुसे मिले नही । जीव है सो जगतके सर्व वस्तुकूं जाने है [ज्ञानमें जगतकी सर्व वस्तु भासे है] पण वस्तुसे ज्ञान मिले नही सबसे भिन्न रहे है ॥ ५० ॥

॥ अव जीव वस्तुका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्मकरे फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ । यह कथनी व्यवहारकी वस्तु स्वरूप न होइ ॥५१॥

अर्थ—कोई अज्ञानी जीव है ते कर्म करे है अर तिस कर्मका फल भागे है। यह कथनी व्यवहारकी है पण [कर्म करना अर तिस कर्मका फल भोगना] यह जीव वस्तुका स्वरूप नही है ॥ ५१ ॥

॥ अव ज्ञानका अर ज्ञेयका लक्षण कहे है ॥ कवित्त ॥—

ज्ञेयाकार ज्ञानकी परणति, पैं वह ज्ञान ज्ञेय नहि होय ॥
ज्ञेयरूप षट्द्रव्य भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पद सोय ॥
जाने भेद भावसो विचक्षण, गुण लक्षण सम्यक्दृग जोय ॥
मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहि कोय ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसा ज्ञेय (घट पटादिक) का आकार है तिस घटपदादिरूप ज्ञानका परिणमन होय है, पण ते ज्ञान है सो ज्ञेयरूप नहि होय है । अर ते ज्ञेय रूप जे षट्द्रव्य है सो भिन्न भिन्न स्वभावके

है अर ज्ञान है सो आत्म स्वभावका है। ऐसे ज्ञान अर ज्ञेयके भेद स्वभाव गुण अर लक्षण, जो सम्यक्दृष्टी भेदज्ञानी है सो जाने है। अर जो मूढ है सो ज्ञानकूं ज्ञेयके आकार कहे है, ताते ज्ञानकूं प्रत्यक्ष कलंक लगे है सो तो देखेही नही है ॥ ५२ ॥

॥ अब मूढ अपना मत दृढ करके दिखावे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

निराकार जो ब्रह्म कहावे। सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब ताई। पूरण ब्रह्म नांहि तब ताई ॥ ५३ ॥

अर्थ—ब्रह्म (आत्मा) है सो निराकार है, तिस ब्रह्मकूं साकार नाम कैसे पावे है। जबतक ज्ञेयके आकार ज्ञानमें है, तबतक पूर्णब्रह्म नही है ॥ ५३ ॥

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने। नाश करनको उद्यम ठाने ॥
वस्तु स्वभाव मिटे नहि कोही। ताते खेद करे सठ योंही ॥ ५४ ॥

मूढ मरम जाने नही, गहि एकांत कुपक्ष। स्याद्वाद सरवगमें, माने दक्ष प्रत्यक्ष ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्ञानमें जो ज्ञेयके आकार प्रतिभासे है सो ब्रह्मकूं मल माने है, अर तिस मलका नाश करनेकूं उद्यम करे है। परंतु सो मल मिटे नही, ताते मूढ वृथा खेद करे है ॥ ५४ ॥ मूढ है सो गुण अर लक्षणका भेद जाने नही, ताते एकांत कुपक्ष ग्रहण करे है। अर प्रवीण है सो स्याद्वादके आश्रयते साकार तथा निराकारका समस्त अंग प्रत्यक्ष माने है ॥ ५५ ॥

॥ अब स्याद्वादके आश्रय करनारे जे सम्यक्ती है तिनकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

शुद्ध द्रव्य अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि, ताते सम्यक्वंत नर, सहज उछेदक नांहि ॥५६॥

अर्थ—जो शुद्ध आत्मद्रव्यका अनुभव करे है तिसके हृदयमें शुद्ध दृष्टि (जाणपणा) है। ऐसा भेदज्ञानी सम्यक्ती पुरुष है सो वस्तु स्वभावका लोप नहि करे है ॥ ५६ ॥

॥ अब ज्ञान है सो परवस्तुमें अव्यापक है ते ऊपर चंद्रकीर्णका दृष्टांत कहे है ॥ ३१ सा ॥—

जैसे चंद्र कीरण प्रगटि भूमि स्वेत करे, भूमिसी न होत सदा ज्योतिसी रहत है ॥
तैसे ज्ञान शकति प्रकाशे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पैं न ज्ञेयको गहत है ॥
शुद्ध वस्तु शुद्ध परयायरूप परिणमे, सत्ता परमाण मांहि ढाहे न ढहत है ॥
सोतो औररूप कबहू न होय सरवथा, निश्चय अनादि जिनवाणि यों कहत है ॥५७॥

अर्थ—जैसे रात्रीमें चंद्र कीर्णका प्रकाश भूमिकूं स्वेत करे है, परंतु चंद्रका कीर्ण भूमि समान नहि होय है प्रकाशरूपही रहे है। तैसे ज्ञानकी शक्तीहू ऐसे है की समस्त हेय उपादेय वस्तुकूं प्रकाशे है, तब ज्ञान है सो वस्तुके आकाररूप भासे है परंतु वस्तुके स्वभावकूं धारण करे नही। शुद्धवस्तु शुद्ध पर्यायरूप परिणमे है, तथा अपने सत्ता प्रमाणमें रहे है किसीके ढाक्या नहि ढके। अर दुसरे वस्तुके स्वरूप समान कबहूं नहि होय यह निश्चये है, ऐसे अनादि कालकी जिनवाणी कहे है ॥ ५७ ॥

॥ अब आत्मवस्तुका यथार्थ स्वरूप कहे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

राग विरोध उदै जबलों तबलों, यह जीव मृषा मग धावे ॥
ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब, कर्म दशा पर रूप कहावे ॥
कर्म विलक्ष करे अनुभौ तहां, मोह मिथ्यात्व प्रवेश न पावे ॥
मोह गये उपजे सुख केवल, सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ५८ ॥

अर्थ—जबतक यह जीव अज्ञान मार्गमें दोडे है, तबतक राग अर द्वेषके उदय रूप दीखे है। अर जब जीवकूं ज्ञान जाग्रत होय है, तब राग द्वेषके कर्म जनित दशाकूं पुद्गलरूप समझे। अर आत्माकूं जुदा जाणे है जहां ज्ञानका अनुभव है, तहां मोह मिथ्यात्वका प्रवेश नहि होय है। मोह गयेते केवलज्ञान उपजे अर जीव सिद्ध होय है सो फेर जगतमें नहि आवे है ॥ ५८ ॥

॥ अब आत्मासे परमात्मा कैसा होय ताका क्रम कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

जीव कर्म संयोग, सहज मिथ्यात्व धर। राग द्वेष परणति प्रभाव, जाने न आप
पर। तम मिथ्यात्व मिटि गये, भये समकित उद्योत शशि। राग द्वेष कछु
वस्तु नांहि, छिन मांहि गये नशि। अनुभव अभ्यास सुख राशि रमि, भयो
निपुण तारण तरण। पूरण प्रकाश निहचल निरखि, बनारसी बंदत चरण ॥ ५९ ॥

अर्थ—अनादि कालसे जीवकूं कर्मका संयोग है, ताते जीव सहजही मिथ्यात्व (अज्ञान) स्वरूपकूं धरे है। तथा राग अर द्वेषमें परिणमे ताते, आत्माका तथा पुद्गलका भेद नहि जाने। अर मिथ्यात्व अंधकार मिटे है, तब सम्यक्त (भेदज्ञान) रूप चंद्रका प्रकाश होय है। तिस प्रकाशते राग अर द्वेष है सो कछु आत्मा नही ऐसे खबर पडे है, तथा क्षणमें राग द्वेषका नाश होय है। फेर आत्मानुभवके अभ्यासरूप सुखमें रमे है, तब आत्मा है सो पूर्ण परमात्मा तारण तरण होय है। ऐसे पूर्ण परमात्माका निश्चय स्वरूप ज्ञानते अवलोकन करि, बनारसीदास तिनके चरणकों वंदना करे है ॥५९॥

॥ अब शिष्य राग द्वेषके कारण पूछें अर गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शिष्य कहे स्वामी राग द्वेष परिणाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोंन है ॥
पुद्गल करम जोग किंधो इंद्रिनीके भोग, कींधो धन कींधो परिजन कींधो भोंन है ॥

गुरु कहे छहो द्रव्य अपने अपने रूप, सबनिको सदा असहाई परिणोंण है ॥
कोउ द्रव्य काहुकों न प्रेरक कदाचि ताते, राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचोंन है ॥ ६० ॥

अर्थ—कोई शिष्य गुरूकूं पूछे हे स्वामि ? आत्माकूं राग द्वेपरूप जे परिणाम उपजे है, तिस परिणामकूं मूल कारण—पुद्गलकर्मका संयोग है अथवा इंद्रियनिके विषय भोग है अथवा धन है अथवा परिवारजन है अथवा घर है सो तुम कहो। तब गुरू कहे हे शिष्य ? तुने जो राग द्वेषके कारण कहे सो नही है—छहों द्रव्य सदाकाल अपअपने स्वभावरूप परिणमें है, अर सब द्रव्यकूं परस्पर असहाईपणा है। कोई द्रव्य काहू द्रव्यकूं कदाचित् साह्य नही करे है, ताते राग अर द्वेषकूं मूल कारण है सो मोह मिथ्यात्वरूप मदिराका पीवना है ॥ ६० ॥

॥ अब राग अर द्वेपविषें अज्ञानीका विचार कहे है ॥ दोहा ॥—

कोउ मूरख यों कहे, राग द्वेष परिणाम। पुद्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ ६१ ॥
ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरिधरि कर्मजु भेष। राग द्वेपको परिणमन, त्यों त्यों होय विशेष ॥६२॥

अर्थ—कोई अज्ञानी कहे की, रागद्वेषके परिणाम है सो पुद्गलकर्मके जबरीते, आत्मामें है ॥६१॥ जैसे जैसे पुद्गलकर्म, उदयकूं आय बल करे। तैसे तैसे रागद्वेषके परिणाम विशेष होय है ॥ ६२ ॥

॥ अब अज्ञानीकूं सुगुरू समझावे है ॥ दोहा ॥—

इहविधि जो विपरीत पक्ष, गहे सद्दहे कोइ। सो नर राग विरोधसों, कबहूं भिन्न न होइ ॥६३॥
सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल संग सदीव। सहज शुद्ध परिणामको, औसर लहे न जीव ॥६४॥

तातें चिद्भावन विषें, समरथ चेतन राव। राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यक्में शिवभाव॥ ६५ ॥

अर्थ—सुगुरु कहे हे शिष्य ? इस प्रकार जो कोई उलटें पक्षकूं धारे अर श्रद्धा करे है। सो मनुष्य रागद्वेषसे कबहूं छूटे नही है ॥ ६३ ॥ जगमें जीव सदा पुद्गलके संग रहे है। सो स्वयंसिद्ध परिणाम ग्रहण करनेकूं अवसर नहि पावे है ॥ ६४ ॥ जीव जो है सो ज्ञानभावमें समर्थ है। पण मिथ्यात्वमें प्रवर्ते तब रागद्वेषके भाव उपजे अर सम्यक्तमें प्रवर्ते तब मोक्षके भाव उपजे है ॥ ६५ ॥

॥ अब ज्ञानभावकी महिमा कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्यों दीपक रजनी समें, चहु दिशि करे उदोत। प्रगटें घटपट रूपमें, घटपट रूप न होत ॥६६॥
त्यों सुज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म। ज्ञेयाकृति परिणमे पैं, तजे न आतम धर्म ॥ ६७ ॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ। राग विरोध विमोह मय, कबहूं भूलि न होइ ॥६८॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निश्चय है घटमांहि। मूरख मिथ्यादृष्टीसों, सहज विलोके नांहि ॥ ६९ ॥

अर्थ—जैसे दीपक रात्री समयमें, सब ठोर प्रकाश करे है। तिस प्रकाशमें घटपटादि समस्त पदार्थ दीसे है, परंतु दीपकका प्रकाश घटपटादिकके समान होय नही ॥ ६६ ॥ तैसे सुज्ञान है सो ज्ञेय (वस्तु) को मर्म जाने है। अर तिस वस्तुके आकाररूप परिणमे है, परंतु आपना जानपना गुण नाहि तजे है ॥ ६७ ॥ ज्ञानका जाननेका गुण है ते सदाकाल अविचल रहे अर कोऊ प्रकारका विकार (दोष) नहि धारण करे है। तथा राग द्वेष अर मोहमय कबहूं नाहि होय है ॥६८॥ ऐसे ज्ञानकी महिमा निश्चयते आत्मामें है। परंतु अज्ञानी मिथ्यादृष्टी आत्मस्वरूपकूं देखे हू नही है ॥ ६९ ॥

॥ अब अज्ञानी है सो आत्म स्वरूप देखे नही पुद्गलमें मग्न रहे सो कहे है ॥ दोहा ॥—

पर स्वभावमें मगन रहे, ठाने राग विरोध । धरे परिग्रह धारना, करे न आतम शोध ॥७०॥

अर्थ—अज्ञानी है सो पुद्गल स्वभावमें मग्न होय है, राग अर द्वेषमें रहे है । तथा मनमें सदा परिग्रहकी इच्छा धरे है, परंतु आत्म स्वभावका शोध नहि करे ॥ ७० ॥

॥ अब अज्ञानीकूं दुर्मती अर ज्ञानीकूं सुमति उपजे सो कहे है चौपई ॥ दोहा ॥—

मूरखके घट दुरमति भासी । पंडित हिये सुमति परकासी ॥
दुरमति कुबजा करम कमावे । सुमति राधिका राम रमावे ॥७१॥
कुब्जा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद । अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥ ७२ ॥

अर्थ—मुर्खके हृदयमें दुर्मति उपजे है, अर ज्ञानीके हृदयमें सुमतिका प्रकाश होय है । दुर्मती कुब्जा (दासी) है सो नवीन कर्म कमावे है, अर सुमति राधिका (राणी) है सो आत्मारामकूं रमावे है ॥ ७१ ॥ दुर्मती कुब्जा कारी अर कुबडी है, सो जगतमें खेद उपजावे है, अर सुमति राधिका है, सो आत्मारामकूं आराधे है तथा स्व परका भेद ज्ञाने है ॥ ७२ ॥

॥ अब दुर्मतीके गुण कुब्जा (दासी) के समान है सो दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कुटिला कुरूप अंग लगी है पराये संग, अपनो प्रमाण करि आपहि विकाई है ॥
गहे गति अंधकीसि सकती कमंधकीसि, बंधको वढाव करे धंधहीमें धाई है ॥
रांडकीसि रीत लिये मांडकीसि मतवारि, सांड ज्यों स्वछंद डोले भांडकीसि जाई है ॥
घरका न जाने भेद करे पराधीन खेद, याते दुरबुद्धी दासी कुवजा कहाई है ॥७३॥

अर्थ—दुर्बुद्धी है ते कपटी है ताते तिसकूं कुटिला कही अर जगतकूं अप्रिय लागे ताते तिसकूं कुरूपी कही अर देहके साथ प्रीति राखे ताते तिसकूं व्यभिचारी कही है, अपने अशुद्धपणासे विषयके वश हुई ताते तिसकूं वेंचाई है। दुर्बुद्धीकूं हितका मार्ग नहि दीखे ताते तिसकूं अंध कही अर चेतन विना अन्यकी वात करे ताते तिसकूं कमंध (विना मस्तकका देह) कही है, कर्मका बंध बढावे ताते तिसकूं धंधाली कही है। दुर्बुद्धी है सो आत्माका अभाव माने ताते तिसकूं रांड कही अर सबके आगे आगे धावे ताते तिसकूं मांड समान मत्तवारी कही है, स्वछंद डोले ताते तिसकूं सांड कही अर निर्लज वचन बोले ताते तिसकूं भांडकी पुत्री कही है। दुर्बुद्धी है सो अपने घरके ज्ञान धनका भेद नहि जाने ताते तिसकूं पराधीन खेद करनहारी कही है, ऐसे दुर्बुद्धीके गुण है ताते तिसकूं कुब्जा (दासी) कहाई है ॥ ७३ ॥

॥ अब सुबुद्धीके गुण राधिका (राणी) समान है सो कहे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

रूपकी रसीलि भ्रम कुलपकी कीलि शील, सुधाके समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है ॥
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदानकि, सुराचि निरवाची ठोर साची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधा रस पंथनिकें ग्रंथनिमें गाई है ॥
संतनकी मानी निरवानी नूरकी निसाणि, याते सदबुद्धि राणी राधिका कहाई है ॥७४॥

अर्थ—सुबुद्धी है ते आत्मानुभवकी रुची करे है ताते तिसकूं स्वरूपवान कही अर भ्रमकूं खोले ताते तिसकूं कुलूपकी कीली कही है, शीस सुधाके समुझमें उछले ताते तिसकूं शीलवान सुखदाई कही है। सुबुद्धी है सो ज्ञानकी पूर्व दिशा है अर निदानकी अजाची है, वचन गोचर नाहि आवे ऐसे शुद्ध

आत्माके अनुभवमें सदा साचे है अर साची ईश्वरता है। अपने आत्मघरकी खबरदार अर आत्मारामके साथ क्रीडा करनहारी है, अध्यात्म पंथके ग्रंथमें इस सुबुद्धीकी बढाई गाई है। सुबुद्धीकूं संत जनोंने मानी हैं अर क्षोभ रहित स्थानमें रहणारी है तथा शोभाकी निशाणी है, ऐसे सुबुद्धीके गुण है ताते तिसकूं राधिका राणी कहाई है ॥ ७४ ॥

वह कुब्जा वह राधिका, दोउ गति मति मान। वह अधिकारी कर्मकी, वह विवेककी खान ॥७५॥

अर्थ—दुर्मति कुब्जा है अर सुमती राधिका है, सो अप अपने गतीकूं अर मतीकूं भिन्न भिन्न धारे है। दुर्मति कर्म बधावनेकूं अधिकारी है, अर सुमती विवेक बधावनेकूं खानी है ॥ ७५ ॥

॥ अब कर्मचक्र अर विवेक चक्रका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

कर्मचक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिवक्र। जो सुज्ञानको परिणमन, सो विवेक गुणचक्र ॥७६॥

अर्थ—ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्म है ते द्रव्यकर्म चक्र है, अर रागादिक बुद्धीकी वक्रता है ते भावकर्म चक्र है। अर सम्यग्ज्ञानका परिणमने है, ते विवेक गुणचक्र है ॥ ७६ ॥

॥ अब कर्मचक्रके स्वभाव ऊपर चोपटका दृष्टांत कहे हैं ॥ कवित्त ॥—

जैसे नर खिलार चोपरिको, लाभ विचारि करे चितचाव ॥
धरे सवारि सारि बुधि बलसों, पासा जो कुछ परेसु दाव ॥
तैसे जगत जीव स्वारथको, करि करि उद्यम चिंतवे उपाव ॥
लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही स्वभाव ॥ ७७ ॥

अर्थ—जैसे चोपटको खेलनारो कोई मनुष्य होय सो, लाभ समझ खेल खेलनेकूं चित्तमें हौस

राखे है । अर तिस चोपटकूं अपने बुद्धि बलसे जीति होनेके स्थानमें धरे है, परंतु जो पासा पडेगा तिस पासाके आधीन चलनेका दाव है । तैसेही जगतके जीव अपने अपने स्वार्थके अर्थी, उद्यम करे है अर उपाय चिंतवे है । परंतु जैसा कर्म उपार्जन कीया होय, तिसके उदय माफिक फल होय है, ऐसाही कर्मचक्रका स्वभाव है ॥ ७७ ॥

॥ अब विवेक चक्रके स्वभाव ऊपर सतरंजका दृष्टांत कहे है ॥ कवित्त ॥—

जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात ॥
चले चाल निरखे दोउ दल, महुरा गिणे विचारे मात ॥
तैसे साधु निपुण शिव पथमें, लक्षण लखे तजे उतपात ॥
साधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ ७८ ॥

अर्थ—जैसे सतरंजको खेलनारो कोई मनुष्य होय सो, सतरंजके खेल संबधी अपने अर परके रोणेकी समस्त घात समझे है । तथा अपने अर परके दोऊ दल ऊपर नजर राखि चाल चाले है, तथा अपना अर पराया वजीर हाथी घोडा प्यादा इनिका महुरा ध्यानमें राखि जीत होनेका विचार राखे है । तैसे मोक्ष मार्गके साधनारे जे निपुण ज्ञानी है ते मोक्षमार्गमें खेले है, लक्षणसे स्व (आत्म) स्वरूपकू अर परस्वरूपकू देखे है तथा मोक्ष मार्गमें उत्पाद (विघ्न) रूप कार्य होय तिसकूं छोडदेवे है । अर आत्म गुणका साधन करे तथा मोक्षपदका विचार करे है, यह विवेक चक्रका स्वभाव है ॥७८॥

सतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारि । याके निशिदिन जीतवो, वाके निशिदिन हारि ॥७९॥
जाके उर कुब्जा वसे, सोई अलख अजान । जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥ ८० ॥

अर्थ—सुमति राधिका तो सतरंज खेल रही है, अर कुमति कुब्जा चौपट खेल खेले है। पण सुमति राधिका विवेक चक्रते रात्रदिन जीते है अर कुमति कुब्जा कर्मचक्रते रात्रदिन हारे है ॥ ७९ ॥ जिसके हृदयमें कुमति कुब्जा वसे है, सो जीव आत्माका अजान है। अर जिसके हृदयमें सुमति राधिका वसे है, सो ज्ञाता सम्यक्वान है ॥ ८० ॥

॥ अव जहां शुद्धज्ञान है तहांही शुद्ध चारित्र होय है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत दीसे तहां, शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्रको अंस है ॥
ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग्य विलास धर्म वाको सरवंस है ॥
राग द्वेष मोहकी दशासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है ॥
निरूपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरण परम हंस है ॥ ८१ ॥

अर्थ—जहां आत्मामें शुद्ध ज्ञानके कलाका प्रकाश दीसे है, तहां तिस ज्ञानके प्रमाण मुजब चारित्रका अंश पण उपजे है। ज्ञानी होय ते तो सब ज्ञेय (वस्तु) का मर्म हेय अर उपादेह जाने है, ताते ज्ञानीकूं स्वभावतेही सर्वस्वी वैराग्यविलास गुण प्राप्त होय है। अर राग द्वेष तथा मोहके अवस्थासे भिन्न रहे है, ताते ज्ञानीके त्रिकालवर्त्ती कर्मका सर्वस्वी विध्वंस होय है। [पूर्वकृत कर्मकी निर्जरा होय, वर्तमान कालमें नवीन कर्मबंध नहि होय, अर जिस कर्म प्रकृतीकी निर्जरा हुई सो प्रकृती फेर आगामि कालमें बंधे नही) ऐसे कर्म बंधते छूटे है अर आत्मानुभवमें स्थिर रहे है, ताते ज्ञानीकूं प्रत्यक्ष पूर्ण परमहंस कहिये है ॥ ८१ ॥

ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरणकी चाल। ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधे समकाल ॥८२॥

अर्थ—जहां ज्ञान भाव है, तहां शुद्ध चारित्रकी रीत (वैराग) है । ताते ज्ञान होय तबही ज्ञान अर वैराग्य मिलिके, मोक्ष मार्ग साधे है ॥ ८२ ॥

॥ अब ज्ञान अर क्रिया ऊपर अंध अर पंगुका दृष्टांत कहे है ॥ दोहा ॥—

यथा अंधके कंध परि, चढे पंगु नर कोय। याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोय ॥८३॥
जहां ज्ञान क्रिया मिले, तहां मोक्ष मग सोय। वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिर होय ॥८४॥

अर्थ—जैसे अंध मनुष्यके कंध ऊपर पंगु मनुष्य बैठे । जब पांगुला मनुष्य नेत्रते मार्ग दिखावे है, अर अंध मनुष्य पावसे चले है, ऐसे दोऊ मिलिके मार्गकी कार्य सिद्धि होय हे ॥ ८३ ॥ तैसे जहां ज्ञान अर क्रिया (वैराग्य) ये दोनूं मिले है तहां मोक्ष मार्ग है । ज्ञान है सो आत्माका स्वरूप जाने है अर वैराग्य है सो आत्मस्वरूपमें स्थिर है ॥ ८४ ॥

॥ अब ज्ञानका अर कर्मका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकूं भूल। ज्ञान मोक्ष अंकूर है, कर्म जगतको मूल ॥ ८५ ॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम । कर्म चेतनामें वसे, कर्म बंध परिणाम ॥ ८६ ॥

अर्थ—ज्ञान है सो जाग्रत अवस्था है ते जीवकूं जगावे है अर कर्म है सो निद्रा अवस्था है ते जीवकूं भुलावे है। ज्ञान है सो मोक्षका अंकूर (कारण) है अर कर्म है सो भवभ्रमणका मूल है ॥८५॥ ज्ञान चेतनाके जाग्रत होते शुद्ध आत्मस्वरूप प्रगटे है । अर कर्म चेतनामें आत्माकूं कर्मबंध होने योग्य परिणाम उपजे है ॥ ८६ ॥

॥ अब ज्ञानका अर कर्मका भिन्न भिन्न प्रभाव कहे है ॥ चौपई ॥—

जबलग ज्ञान चेतना भारी । तबलग जीव विकल संसारी ॥
जब घट ज्ञान चेतना जागी । तब समकिती सहज वैरागी ॥ ८७ ॥
सिद्ध समान रूप निज जाने । पर संयोग भाव परमाने ॥
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे । त्रिविधि कर्मकी ममता नासे ॥ ८८ ॥

अर्थ—जबतक ज्ञान चेतना कर्मरूप जड हुई है, तबतक संसारीजीव अज्ञानरूप है । अर जब हृदयमें ज्ञान चेतना जाग्रत होय है, तब सहज वैराग्य प्राप्त होय सम्यक्ती कहावे है ॥ ८७ ॥ ज्ञानी है सो अपने आत्माकूं सिद्ध समान कर्म रहित समझे है, अर पुद्गल संयोगसे जे राग तथा द्वेष भाव उपजे है ते पररूप माने है । अर शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है, ताते द्रव्यकर्म भावकर्म अर नोकर्मका नाश होय है ॥ ८८ ॥

॥ अब ज्ञाता कृतकर्मकी आलोचना करे सो कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहे आपसों आप । मैं मिथ्यात दशाविषें, कीने बहुविध पाप ॥८९॥

अर्थ—ज्ञानी अपनी कथा आपसो कहेकी । मै पूर्वी अज्ञानपणामें बहुत प्रकारके पाप कीये है ॥८९॥

हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताइ. ताते हम करुणा न कीनी जीव घातकी ॥
आप पाप कीने औरनिकों उपदेश दीने, हूति अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥
मन वच कायामें मगन व्है कमाये कर्म, धाये भ्रम जालमें कहाये हम पातकी ॥
ज्ञानके उदयते हमारी दशा ऐसी भइ, जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ९० ॥

अर्थ—हमारे हृदयमें महा अज्ञान मोहका भ्रम था ताते हमने जीव घातकी करुणा नहि कीनी। मैने हिंसादिक पाप कीये अर दुसरे लोकनिको पाप करनेका उपदेश दीया तथा कोई पाप करता होय तिसकूं साह्यता करतो हुतो। ऐसे मन वचन अर कायासे उन्मत्त होय पापकर्म कमाये अर अज्ञानरूप भ्रम जालमें दौरत फिर्‍यो ताते हम पापी कहायो। अब ज्ञानका उदय होते हमारी अवस्था ऐसी भई है की जैसे सूर्यका उदय होते प्रातःकालकी अवस्था उद्योतवंत होय अर अंधकार भागे है ॥ ९० ॥

॥ अब ज्ञानका उदै होते अज्ञान अवस्था भागे तिसकूं स्वप्नका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ज्ञान भान भासत प्रमाण ज्ञानवान कहे, करुणा निधान अमलान मेरा रूप है ॥
कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥
मोहको विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतसों शून्य पाप पुन्य अंध कूप है ॥
पाप किने किये कोन करे करि है सो कोन, क्रियाको विचार सुपनेकी दोर धूप है ॥ ९१ ॥

अर्थ—ज्ञानरूप सूर्यका उदय होतेही ज्ञानी ऐसे समझे है की, मेरा स्वरूप करुणा निधान अर निर्दोष है। मृत्युसे अतीत अर कर्मबंधसे भय रहित है, तथा मन वचन अर कायाके योगसे अजीत है ऐसी मेरी महिमा अद्भुत है। इस जगतमें मेरा निवास दीखे है पण सो मोहका विलास है मेरा विलास नहीं, मैं जन्ममरणसे रहित है अर यह पाप तथा पुन्य है सो मेरेकूं अंधकूप समान भासे है। ये पापकर्म पूर्वी किसने किये आगे कोण करेगा अर अब करे है सो कोण है, ऐसे क्रियाका विचार करे तब ज्ञानीकूं स्वप्नके अवस्था समान सब मिथ्या दीसे है ॥ ९१ ॥

॥ अब कर्मका प्रपंच मिथ्या है सो दिखावे है ॥ दोहा ॥—

मैं यौं कीनो यौं करौं, अब यह मेरो काम । मनवचकायामें वसे, ये मिथ्यात परिणाम ॥९२॥
मनवचकाया कर्मफल, कर्मदशा जडअंग । दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित कर्म तरंग ॥९३॥
ताते भावित धर्मसों, कर्म स्वभाव अपूठ । कोन करावे को करे, कोसर लहे सब झूठ ॥९४॥

अर्थ—मैं यौं कीया है अर यौं करूंगा, अब जो करूं सो मैं करूंहूं । ऐसे मन वचन अर कायामें अहंकार रहना, सो मिथ्या परिणाम है ॥ ९२ ॥ मन वचन अर कायाके योग है ते पूर्व कृतकर्मके फल है, अर कर्मकी दशा है ते जडरूप है । तिस द्रव्यकर्म जड पिंडमें राग द्वेष उपजे है, सो भावकर्मके अज्ञान तरंग है ॥ ९३ ॥ आत्माके भावित धर्म (ज्ञानगुण) में, कर्म स्वभाव नहीं है । ताते कर्मकूं करावे कोण, करे कोण अर अनुमोदे कोण, इस कर्मका प्रपंच सब झूठ है ॥ ९४ ॥

॥ अब मोक्षमार्गमें क्रियाका निषेध है सो कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करणी हित हरणी सदा, मुक्ति वितरणी नांहि । गणी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुखमांहि ॥९५॥

अर्थ—क्रिया है सो आत्माका अहित करणारी है, मुक्ति देणारी नही है । ताते क्रियाकी गणना बंध पद्धतीमें करी है, क्रियामें महादुःख वसे है सो आगेके सवैयामें कहे है ॥ ९५ ॥

करणीके धरणीमें महा मोह राजा वसे, करणी अज्ञान भाव राक्षसकी पुरी है ॥
करणी करम काया पुद्गलकी प्रति छाया, करणी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है ॥
करणीके जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करणीकि उट ज्ञानभान दुति दुरी है ॥
आचारज कहे करणीसों व्यवहारी जीव, करणी सदैव निहचै स्वरूप बुरी है ॥९६॥

अर्थ—क्रिया है सो अज्ञानभावरूप राक्षसकी नगरी है, तिस अज्ञान नगरीमें मोह राजा वसे है। अर क्रिया है सो कर्मकी अर काय योगकी पडछाया है, तथा कपटकी जाल है जैसी साखर लगाई छुरी है। इस क्रियारूप जालमें आत्मा मग्न हो रह्यो है, पण क्रियाके बादलसे ज्ञानरूप सूर्यकी ज्योती छपी रहे है। श्रीकुंदकुंदाचार्य कहे है की क्रीया करे सो जीव व्यवहारी (कर्मकर्त्ता) कहावे है, निश्चय स्वरूपसे देखिये तो क्रिया सदा दुखदाई है ॥ ९६ ॥

॥ अब ज्ञाताका विचार कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

मृषा मोहकी परणति फैली । ताते करम चेतना मैली ॥
ज्ञान होत हम समझे येती । जीव सदीव भिन्न परसेती ॥ ९७ ॥
जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निरुपाधि ॥
अविनाशी अशरण सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥ ९८ ॥

अर्थ—हमारेमें पहले राग द्वेष अर मोहका उदय फैला था, ताते कर्मसहित चेतना मलीन हो रहीथी। अब ज्ञान चेतनाका उदय होनेंते हम ऐसे समझे है की, जीव है सो निश्चयसे पर संयोगते सदा भिन्न है ॥ ९७ ॥ अनादि कालते मेरा स्वरूप, कर्मकी उपाधि रहित है। सदा अविनाशी अर अशरण है, तथा सिद्ध समान सुखमय है ॥ ९८ ॥ चौपाई ॥—

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा । चिदविलास पद जगत उज्यारा ॥
राग विरोध मोह मम नांही । मेरो अवलंबन मुझमांही ॥ ९९ ॥

अर्थ—मैं तीन कालमें कर्मसे न्यारा हूं। मेरा स्वरूप ज्ञानविलासमय है सो जगतमें उजाला है।

(ज्ञान दबि जाय तो समस्त जगत अंधेर है) अर राग द्वेष तथा मोहभाव वर्ते है सो मेरा स्वरूप नही है। मेरा स्वरूप मेरेमें है ॥ ९९ ॥

॥ अब सम्यग्दृष्टीका निर्वांछकपणा दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

सम्यकवंत कहे अपने गुण, मैं नित राग विरोधसों रीतो ॥
मैं करतूति करूं निरवंछक, मो ये विषै रस लागत तीतो ॥
शुद्ध स्वचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महा भट जीतो ॥
मोक्ष सन्मूख भयो अब मो कहु, काल अनंत इही विधि वीतो ॥ १०० ॥

अर्थ—सम्यक्दृष्टी अपने गुण कहे है की, मैं सदा राग अर द्वेष रहितहूं। मैं संसार संबंधी जो क्रिया करूंहूं सो निरवंछकपणाते करूंहूं, ताते मुजकूं विषयके रस कडवा लागे है। मैं शुद्ध आत्माका अनुभव करके, जगतका महा मोहरूप सुभट जीत्यो है। अर मोक्षके सन्मूख भयो है, अब मेरेकूं इस प्रकार (सम्यक्तपणामें) अनंत काल वीतो ॥ १०० ॥

कहे विचक्षण मैं रहुं, सदा ज्ञान रस साचि। शुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होहु कदाचि ॥१०१॥
पूर्वकर्मविष तरु भये, उदै भोग फलफूल। मैं इनको नहि भोगता, सहज होहु निर्मूल ॥१०२॥

अर्थ—भेदज्ञानी कहे है की मैं सदा ज्ञान रसमें रमि रहूंहूं। अर शुद्ध आत्मानुभवते कदापि नहि ढलूंहूं ॥१०१॥ पूर्वकृतकर्म है ते विषवृक्ष है अर तिन कर्मका उदयरूप जो भोग उपभोग है सो फल फूल है। मैं इनकूं भोगता नही है, मैं राग अर द्वेष रहितहूं तातै कर्मसे सहज निर्मूल होहूं ॥१०२॥

जो पूर्वकृत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नांहि । मगन रहे आठो पहर, शुद्धातम पद मांहि ॥१०३॥
सो बुध कर्मदशा रहित, पावे मोक्ष तुरंत । भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥१०४॥

अर्थ—जो पूर्वकृत कर्मका फल (भोग अर उपभोग) रुचिसे भोगे नही । अर आठो प्रहर शुद्ध आत्मानुभवमें रहे है ॥ १०३ ॥ सोही पंडित कर्मबंध रहित होय त्वरित मोक्ष पावे है । अर तिस मोक्षमें आगामि अनंतकालपर्यंत परम समाधिका सुख भोगवे है ॥ १०४ ॥

॥ अव ज्ञानीकी क्रमे क्रमे महिमा वधे सो कहे है ॥ छप्पै छंद ॥—

जो पूरव कृतकर्म, विरख विष फल नहि भुंजे । जोग जुगति कारिज करंत,
ममता न प्रयुंजे । राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडे । शुद्धातम
अनुभौ अभ्यास, शिव नाटक मंडे । जो ज्ञानवंत इह मग चलत, पूरण व्है
केवल लहे । सो परम अतींद्रिय सुखविषें, मगन रूप संतत रहे ॥ १०५ ॥

अर्थ—जो विष वृक्षरूप पूर्व कृतकर्मके फल (भोगोपभोग) रुचिसे नहि भोगे है । अर मन वचन तथा काय योगके युक्तिरूप कार्य करे पण तिस कार्यमें ममता धरे नही । राग अर द्वेषका निरोधि करि मनवचनकायके सब विकल्प छोडे हैं । अर शुद्ध आत्म अनुभवका अभ्यासरूप मोक्षका खेल करे है । इस मार्गसे जो ज्ञानवंत चले है सो परमात्मारूप होयके केवल ज्ञान पावे है । अर जन्ममरणते रहित होय मोक्षकूं जाय है तहां अतींद्रिय सुखमें सतत मग्न रहे है ॥ १०५ ॥

॥ अव शुद्ध आत्म द्रव्यका स्वरूप वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

निरभै निराकूल निगम वेद निरभेद, जाके परकाशमें जगत माइयतु है ॥

रूप रस गंध फास पुदगलको विलास, तासों उदवस जाको जस गाइयतु है ॥
विग्रहसों विरत परिग्रहसों न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है ॥
सो है ज्ञान परमाण चेतन निधान तांहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है ॥१०६॥

अर्थ—आत्मा है सो निर्भय अर शाश्वत सुखी है तथा भेद रहित वेद अगम्य (ज्ञानगम्य) है, तिस ज्ञान ज्योतीमें समस्त जगत समावे है। रूप रस गंध अर स्पर्श ये जो देहके विलास है, इनसे उदवस (रहित) आत्मा है ऐसे सब शास्त्रमें कह्या है। शरीरादिकसे विरत (रहित) अर परिग्रहसे सदा न्यारो है, आत्मामें तीन योग रहितपणाका चिन्ह पामिये है। ऐसे आत्मा ज्ञान प्रमाणयुक्त है अर चेतनाका निधान है, तिस आत्माकूं अविनाशी ईश्वर मानि हम मस्तक नमावीये है ॥ १०६ ॥

॥ अव सिद्ध आत्माका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसे निरभेद अब भेद कोन कहेगो ॥
दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निजथान फिर वाहिर न वहगो ॥
कबहु कदाचि अपनो स्वभाव त्यागि करि, राग रस राचिके न पर वस्तु गहेगो ॥
अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगामि अनंत काल रहेगो ॥१०७॥

अर्थ—जैसे अतीत कालमें संसार अवस्थाविषे पण आत्मद्रव्य निश्चय नयसे अभेदरूप मान्यो हुतो, तैसाही केवल ज्ञान प्राप्त होते प्रत्यक्ष अभेदरूप रहे है तिस परमात्माकूं अब भेदरूप कोन कहेगो। अर जो अष्टकर्म रहित होय सुख समाधिरूप अपने स्वस्थान (मोक्ष) पायो है, सो फेरि बाह्य संसारमें नहि आवेगो। मोक्षको गयो सिद्ध जीव है सो कदाचितहूं कोई कालमें अपने केवल ज्ञान स्वभावकूं

त्यागि करिकें, राग अर द्वेषमें राचि देहादिक पर वस्तुकूं नहिं धारण करेगो। जो आत्माकूं अम्लान ज्ञान (केंवल ज्ञान) विद्यमान प्राप्त भये तो, तैसाही आगामि अनंत काल पर्यंत रहेगो ॥ १०७ ॥

॥ अब सिद्ध जीव फेर अवतार लेय नही सो सिद्ध करे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

जबहीते चेतन विभावसों उलटी आप, समे पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है ॥
तबहीते जोजो लेने योग्य सोसो सब लीनो, जो जो त्यागयोग्य सोसो सब छांडि दीनोहै ॥
लेवेको न रही ठोर त्यागवेकों नाहिं और, बाकी कहां उबऱ्योजु कारज नवीनो है ॥
संगत्यागि अंगत्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धित्यागि आपा शुद्ध कीनो है ॥१०८॥

अर्थ—अनादि कालसे आत्मा मिथ्यात्व भावरूप विभावमें रमि रह्यो हुतो सो जबसे उलटे, अर अपना शुद्ध स्वभाव ग्रहण करे हैं । तबसे जो जो लेने योग्य ज्ञान दर्शनादिक भाव है ते ते सब लीये, अर जो जो त्यागने योग्य राग द्वेषादिक भाव है ते ते सब छोड दीये है। लेने योग्य कुछ रहा नही अर छोडने योग्यहूं कूछ रहा नही तो, बाकी नवीन कार्य करनेंकूं क्या रह्या की फेर अवतार लेवापडे है। परिग्रहका संग छोड देहका ममत्व त्याग कीया अर वचनके विकल्प त्याग कीये, मनके तरंग त्यागि इंद्रिय जनित बुद्धीका त्याग कीया इत्यादिक सब पर वस्तुकूं त्याग करिके आत्मा शुद्ध कीया हैं सो शुद्धआत्मा अवतार कैसा धारण करेगा ? ॥ १०८ ॥

॥ अब मोक्षका मूल कारण द्रव्यलिंग (नग्न भेप) नहीं है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

शुद्ध ज्ञानके देह नही, मुद्रा भेष न कोइ । ताते कारण मोक्षको द्रव्यलिंग नहि होइ ॥१०९॥
द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान । अष्ट रिद्धि अष्ट सिद्धि, एहूं होइ न ज्ञान ॥११०॥

अर्थ—आत्मा तो शुद्ध ज्ञानमय है अर शुद्ध ज्ञानकूं देह नही, अर जब देह नहीं तब ज्ञानकूं मुद्रा भेष पण कोई नही। ताते मोक्षका मूल कारण द्रव्यलिंग नही है ॥ १०९ ॥ ज्ञानते द्रव्यलिंग तो प्रत्यक्ष न्यारो है, कला अर वचन ये ज्ञान नहीं है। अर अष्ट महाऋद्धि (आचार, श्रुत, शरीर' वचन, वाचना, बुद्धि, उपयोग, संग्रह संलीनता,) ये ज्ञान नही तथा अष्ट महा सिद्धि (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व,) ये पण ज्ञान नही ॥ ११० ॥

॥ अव ज्ञान है सो आत्मामें है और स्थानमें नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ ॥—

भेषमें न ज्ञान नहि ज्ञान गुरु वर्तनमें, मंत्रजंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है ॥
ग्रंथमें न ज्ञान नहि ज्ञान कवि चातुरीमें, वातनिमें ज्ञान नहि ज्ञान कहा वानी है ॥
ताते भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र वात, इनीते अतीत ज्ञान चेतना निशानी है ॥
ज्ञानहीमें ज्ञान नही ज्ञान और ठोर कहु, जाके घट ज्ञान सोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥

अर्थ—कोई भेषमें ज्ञान नही अर महा चारित्रमें ज्ञान नही, मंत्र जंत्र अर तंत्रमें ज्ञानकी बातही नही है। पुस्तकमें ज्ञान नही अर कविता बनानेके चातुर्यतामें ज्ञान नही, व्याख्यान करनेमें ज्ञान नही अर जे वाणी है ते कछु ज्ञान नही ?। ताते भेष चारित्र मंत्र पुस्तक कविता अर व्याख्यान इन समस्तंनितें ज्ञान न्यारे है, ज्ञान है सो आत्माका लक्षण है। ज्ञानमेंही ज्ञान है और कहाहूं स्थानमें ज्ञान नही, जाके घटमें ज्ञान है सोही ज्ञानका मूल कारण आत्मा है ॥ १११ ॥

॥ अव भेषादिक धारी जे है ते विषयके भिकारी है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

भेष धरि लोकनिको वंचे सो धरम ठग, गुरु सो कहावे गुरुवाई जाके चहिये ॥

मंत्र तंत्र साधक कहावे गुणी जादूगीर, पंडीत कहावें पंडिताइ जामें लहिये ॥
कवित्तकी कलामें प्रवीण सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये ॥
एते सब विषैके भिकारी मायाधारी जीव, इनिकों विलोकिके दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

अर्थ—भेष धरि लोकनिकूं याचना करे सो धर्म ठग कहावे, जाकूं महाचारित्र होय सो गुरू कहावे । मंत्र तंत्रादिक गुणके जे साधक है ते जादूगीर कहावे, अर जामें पंडिताई है ते पंडित कहावे । कवित्त करनेके कलामें जो प्रवीण सो कवि कहावे, अर जो बात करनेमें हुशीयार है सो व्याख्यानकार कहावें । ये जो समस्त है सो विषयके भिकारी अर मायाचारी (कपटी) है, इनकूं देखिके आप दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

॥ अब अनुभवकी योग्यता कहे है ॥ दोहा ॥—

जो दयाल भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग । पै तथापि अनुभौ दशा, वरते विगत तरंग ॥११३॥
दर्शन ज्ञान चरण दशा, करें एक जो कोइ । स्थिर व्है साधे मोक्षमग, सुधी अनुभवी सोई ॥११४॥

अर्थ—यद्यपि जो दया भाव है सो ज्ञानका प्रगट अंग है । तथापि आत्माका अनुभव है सो विकल्पके तरंग रहित वर्ते है ॥ ११३ ॥ जो कोई दर्शन ज्ञान अर चारित्ररूप आत्माकूंही माने है । अर स्थिर होय मोक्ष मार्ग साधे है सोही भेदज्ञानी अनुभवी है ॥ ११४ ॥

॥ अब शुद्ध आत्मानुभवकी महिमा कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोई दृग ज्ञान चरणातममें वैठि ठोर, भयो निरदोर पर वस्तुकों न परसे ॥
शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतासें केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसे ॥

त्यागि तन कष्ट है सपष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसें ॥
सोई विकलप विजई अलप काल मांहि, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसे ॥ ११५ ॥

अर्थ—कोई दर्शन ज्ञान अर चारित्रकूं आत्मस्वरूमें मानि स्थीर रहे है, सोही संशय रहित होय देहादिक पर वस्तुकूं आपनी नहीं माने। शुद्ध आत्मस्वरूपका विचार करे ध्यान धरे अर क्रिडा करे है, अर आत्मामें स्थीर होय महा आनंदरूप अमृत धारा वरसे है। आत्मामें तल्लीन होनेसे शरीरके कष्टकूं नहि गिणे तव निस्पृही होयके अष्ट कर्मकूं खैचि निर्जरा करे, तथा कर्मबंधका क्षय करे। सोही अनुभवी विकल्प रहित होय अल्प कालमें, जन्म मरणते छूटि मोक्षस्थानकूं प्राप्त होय है ॥ ११५ ॥

॥ अव गुरू आत्मानुभवका उपदेश करे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

गुण पर्यायमें दृष्टि न दीजे। निर्विकल्प अनुभव रस पीजे ॥
आप समाइ आपमें लीजे। तनुपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ११६ ॥
तज विभाव हूजे मगन, शुद्धातम पद मांहि। एक मोक्षमारग यहै, और दूसरो नांहि ॥११७॥

अर्थ—आत्माके गुण अर पर्याय अनेक है तिसमें दृष्टि न देके तथा विकल्प रहित होके आत्म अनुभवरूप अमृत रस पीवो। अर आपने आत्मामें आप लय लगावो तथा शरीरका अहंपणा छोडिके आत्मामें स्थिर रहो ॥ ११६ ॥ परके भावकूं छोडि शुद्ध आत्मस्वरूपमें मग्न होना। यह अद्वितीय मोक्ष मार्ग है ऐसा दुसरा मोक्ष मार्ग नहीं ॥ ११७ ॥

॥ अव आत्मानुभव विना जिन (नग्न) दीक्षा पण अव्रती है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

केई मिथ्यादृष्टि जीव धरे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहे कहे हम यती है ॥

अतुल अखंड मल रहित सदा उद्योत, ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमती है ॥
आगम संभाले दोष टाले व्यवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती है ॥
आपको कहावे मोक्ष मारगके अधिकारी, मोक्षसे सदैव रुष्ट दुष्ट दुरगती है ॥११८॥

अर्थ—केई मिथ्यादृष्टी जीव गुरूका उपदेश सुनी जिनमुद्रा (नग्न भेष) धारण करे है, अर आचार क्रियामें मग्न रहे अर लोककूं कहे हम यती है। पण जिसकी तुलना नही अखंड अर निर्मल सदा उद्योतवान, ऐसे आत्मानुभवरूप ज्ञान भावसे परान्मुख है ताते मूढमती है। यद्यपि ते सिद्धांत शास्त्र सुने अर दोष टाळि आहार पान करे तथा बाह्य क्रियामें दृष्टी राखे है, महा व्रत पाले है तथापि अंतरंग मिथ्यात्व परिग्रह है ताते अव्रती है । अर ते आपकूं मोक्षमार्गके अधिकारी कहावे है, परंतु मोक्षमार्गसे सदा रुष्ट (विमुख) है दुःख दुर्गतीमें भ्रमण करनेवाले है ॥ ११८ ॥

॥ अब ज्ञान विना बाह्य क्रिया मूढ कहवाय सो कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥ —

जैसे मुगध धान पहिचाने । तुष तंदुलको भेद न जाने ॥
तैसे मूढमती व्यवहारी । लखे न बंध मोक्ष विधि न्यारी ॥ ११९ ॥

जे व्यवहारी मूढ नर, पर्यय बुद्धी जीव । तिनके बाह्य क्रियाहिको, है अवलंब सदीव ॥१२०॥
कुमति बाहिज दृष्टिसो, बाहिज क्रिया करंत । माने मोक्ष परंपरा, मनमें हरष धरंत ॥१२१॥
शुद्धातम अनुभौ कथा, कहे समकिती कोय । सो सुनिके तासो कहे, यह शिवपंथ न होय ॥१२२॥

अर्थ—जैसे अज्ञानी धान्यकूं पहिचाने पण तुष अर तंदुलको भेद नहि जाने है । तैसे बाह्य क्रियामें मग्न मूढमती है सो कर्मबंधकी अर मोक्षकी क्रिया न्यारी न्यारी नहि समझे ॥ ११९ ॥ जे

अज्ञानी है ते देहको जीव माने है । अर सदा बाह्य क्रिया कांडमें मग्न रहे है ॥ १२० ॥ अर बाह्य क्रियाते कर्मकी निर्जरा समझे है । तैसे अनुक्रमे मोक्ष होना मानि मनमें हर्ष धरे है ॥ १२१ ॥ कोई सम्यक्ती आत्मानुभवकी कथा कहे तो । सो सुनीके तिनसूं कहे ये मोक्षमार्गकी कथा नही है ॥१२२॥

॥ अब अज्ञानीका अर ज्ञानीका लक्षण कहे है ॥ कवित्त ॥—

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रमाणहि ॥
ते हिय अंध बंधके करता, परम तत्वको भेद न जानहि ॥
जिन्हके हिये सुमतिकी कणिका, बाहिज क्रिया भेप परमाणहि ॥
ते समकिती मोक्ष मारग मुख, करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि ॥ १२३ ॥

अर्थ—जिन्हके हृदयमें देहविषे आत्मपणाकी बुद्धि है, अर मुनि मुद्रा धारण करि क्रियातेही मोक्ष होना माने है । ते हृदयके अंध अर कर्मबंधके कर्त्ता है, ऐसे मूढ है ते आत्म तत्वका भेद नाहि जाने है । अर जिन्हके हृदयमें आत्मानुभवका अंश जाग्रत भया है, ते बाह्य क्रियाकूं स्वांग समान समझे है । ते सम्यक्ती मोक्ष मार्गके सन्मुख प्रयाण करि, निश्चयते भव स्थितीका भस्म करे है ॥१२३॥

॥ अब आचार्य मोक्षमार्गका सारांश कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

आचारज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो ॥
बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप्प भलो, बोलीयेसों वचन प्रयोजन है जितनो ॥
नानारूप जलपनसो नाना विकलप ऊठे, ताते जेतो कारिज कथन भलो तितनो ॥
शुद्ध परमातमाको अनुभौ अभ्यास कीजे, येही मोक्ष पंथ परमारथ है इतनो ॥ १२४ ॥

अर्थ—आचार्य कहे है हे शिष्या! जिनेश्वरके वचनका विस्तार है, सो अगम्य अपार है हम कितना कहेंगे। हमारी बोलनेकी ताकद नही ताते चुप्प रहना भला है, अर बोलीये तो प्रयोजन है जितना बचन बोलना। वहुत बोलनेसे नाना प्रकारके विकल्प ऊठे है, ताते जितना कार्य है तितना कथन कहना बस है। शुद्ध आत्माके अनुभवका अभ्यास करना, येही परमार्थ अर मोक्षमार्ग है ॥ १२४ ॥

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दोर। मुक्ति पंथ साधन वहै, वागजाल सब और ॥१२५॥

अर्थ—शुद्ध आत्मानुभव करना सोही शुद्ध दर्शन ज्ञान अर चारित्र है। तथा येही मोक्षमार्गका साधन है और सब वचनाडंबर है ॥ १२५ ॥

॥ अब आत्माका कैसा अनुभव करना सो कहे है ॥ दोहा ॥—

जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास। निर्विकल्प शाश्वत सुथिर, कीजे अनुभौ तास ॥१२६॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरण वीत ममत्व। ज्ञानगम्य वाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥१२७॥

अर्थ—आत्मा है सो जगतमें चक्षु जैसा आनंदमय है अर ज्ञान चेतनारूप प्रकाशमान है। भेदरहित शाश्वत अर स्थीर है ऐसा आत्मानुभव करना ॥ १२६ ॥ अचल अखंडित अर ज्ञानमय है, तथा पूर्ण समाधिवंत अर ममत्वरहित है। ज्ञानगम्य अर कर्मरहित है, सो आत्मतत्व है ॥ १२७ ॥

सर्व विशुद्धि द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ। कुंदकुंद मुनिराजकृत, पूरण भयो जु ग्रंथ ॥१२८॥

अर्थ—जिस द्वारते आत्माकूं सर्व विशुद्धि प्राप्त होय ऐसे अधिकारका यह कथन कीया है, सो प्रत्यक्ष मोक्षका मार्ग कह्या है। श्रीकुंदकुंद मुनिराजकृत समयसार नाटक ग्रंथ संपूर्ण भयो ॥ १२८ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको दशमो सर्व विशुद्धि द्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ १० ॥

॥ अव समयसार नाटक ग्रंथकी अंतिम प्रशस्ती कथन ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

कुंदकुंद मुनिराज प्रवीणा । तिन यह ग्रंथ इहालो कीना ॥
गाथा बद्धसों प्राकृत वाणी । गुरुपरंपरा रीत वखाणी ॥ १ ॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता । सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता ॥
जे नव रस जगमांहि वखाने । ते सव समयसार रस माने ॥ २ ॥
प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होय । नव रस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाने कोय ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीकुंदकुंद मुनिराज अध्यात्म शास्त्रमें प्रवीण भये तिनौमें यह ग्रंथ सर्व विशुद्धि द्वारपर्यंत गाथाबद्ध प्राकृत वाणीमें कीया । जिन वाणीकूं गुरु संप्रदायसे जैसे वर्णन करते आये तैसे व्याख्यान कीया ॥ १ ॥ (श्रीसीमंदरस्वामीकी वाणी सुनिके यह ग्रंथ कीया ऐसी संप्रदायमें बात है) ताते कुंदकुंदाचार्यका ग्रंथ जगतमें विख्यात भया । इस ग्रंथकूं सुनते ज्ञाताजन महा सुख पावे है । जगतमें जे नव रस कह्या है ते सब रस इस समयसार नाटकके रसमें समाई रहे है ॥ २ ॥ संसारमें ये वात प्रसिद्ध है कीं जे नाटक होय है ते नव रस युक्त होय है । नव रसमें शांत रस सवका नायक है शांत रसमें ज्ञान है ताते एक शांत रसमें नव रस गर्भित है पण तिसकूं कोई विरला जाने है ॥ ३ ॥

॥ अव नव रसके नाम कहे है ॥ कवित्त ॥—

प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, तीजो रस करुणा सुख दायक ॥
हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छठम रस बीभत्स विभायक ॥
सप्तम भय अष्टम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनिको नायक ॥

ये नव रस येई नव नाटक, जो जहां मग्न सोही तिहि लायक ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रथम श्रृंगार रस है अर दूजो वीर रस है, तीजो करुणा रस है सो करुणा रस समस्त जीवकूं सुखदायक है। चौथा हास्य रस अर पांचवा रौद्र रस है, छट्ठा बीभत्स रस है सो चित्तकूं अप्रिय लगे। सातवा भय रस अर आठवा अद्भुत रस है, नवमा शांत रस है सो सब रसका नायक है। ऐसे नव रस है ते नाटकरूप है, जो प्राणी जिस रसमें मग्न होय सोही रस प्रीय लागे है ॥ ४ ॥

॥ अव नव भव रसके स्थानक कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शोभामें श्रृंगार वसे वीर पुरुषारथमें, कोमल हियेमें करुणा रस वखानिये ॥
आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये ॥
चिंतामें भयानक अथाहतामें अदभूत, मायाकी अरुचि तामें शांत रस मानिये ॥
येई नव रस भवरूप येई भावरूप, इनिको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये ॥ ५ ॥

अर्थ—शोभामें श्रृंगार रस रहे अर पुरुषार्थमें वीर रस रहें, कोमल हृदयमें करुणा रस रहे ऐसे कह्या है। आनंदमें हास्य रस रहें अर रणसंग्राममें रुद्र रस रहे, मनकूं घाण उपजे तिसमें बीभत्स रस रहे। चिंतामें भय रस है अर आश्चर्यमें अद्भुत रस रहे, वैराग्यमें शांत रस रहे है सो प्रमाण है। ये नव रस है ते भव (संसार) रूप पण है अर येई नव रस भाव (ज्ञान) रूप पण है, भव रसका अर भाव रसका लक्षण जे है ते तो जगतमें सुदृष्टीसे जाने जाय है ॥ ५ ॥

॥ अव नव भाव रसके स्थानक कहे है ॥ छपै छंद ॥—

गुण विचार श्रृंगार, वीर उद्यम उदार रुख। करुणा रस सम रीति, हास्य

हिरदे उच्छाह सुख। अष्ट करम दल मलन, रुद्र वर्त्तें तिहि थानक। तन विलक्ष
बीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक। अदभुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज
वैराग्य ध्रुव। नव रस विलास प्रकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्माकूं ज्ञान गुणते भूषित होनेका विचार करना सो भाव शृंगार रस है ॥ १ ॥ कर्मकी निर्जरा होनेका उद्यम करना सो भाव वीर रस है ॥ २ ॥ अपने जीवके समान पर जीव समजना सो भाव करुणा रस है ॥ ३ ॥ आत्मानुभवका हृदयमें उत्साह होना सो भाव हास्य रस है ॥ ४ ॥ अष्ट कर्मके प्रकृतीका क्षय करनेकूं प्रवर्तना सो भाव रौद्र रस है ॥५॥ देहके अशुचीका विचार करना सो भाव बीभत्स रस है ॥ ६ ॥ जन्म मरणके दुःखका विचार करना सो भाव भय रस है ॥७॥ आत्माके अनंत शक्तीका विचार करना सो भाव अद्भुत रस है ॥ ८ ॥ राग द्वेषकूं निवारिके वैराग्य निश्चल धारण करना सो भाव शांत रस है ॥ ९ ॥ जब हृदयमें सुबुद्धी प्रगट होय तब ही नव भाव रसकके विलासका प्रकाश होय है ॥ ६ ॥

चौ०—जब सुबोध घटमें प्रकाशे। तब रस विरस विषमता नासे ॥
नव रस लखे एक रस मांही। ताते विरस भाव मिटि जांही ॥ ७ ॥

अर्थ—जब हृदयमें सुबुद्धीका प्रकाश होय तब ये रस है अर ये विरस है ऐसी जो विषमता (विपरीतता) है सो नाश पावे। अर नव रस है सो एक शांत रसमे है सो ही दीखे है ताते विरसके भाव सहज मिटे अर एक शांत रसमें आत्माका ठहरना होय ॥ ७ ॥ दोहा ॥—

सब रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ। जाके सुनत प्रमाण जिय, समुझे पंथ कुपंथ ॥८॥

अर्थ—एक शांत रसमें सब रसका गर्भित समावेश हुवा ऐसा यह समयसार नाटक ग्रंथ कुंदकुंदाचार्यजीने कह्यो है। इस ग्रंथके सुनतेही जीवकूं सुपंथ अर कुपंथ समझे है ॥ ८ ॥

चौ॰—बरते ग्रंथ जगत हित काजा। प्रगटे अमृतचंद्र मुनिराजा ॥
तब तिन ग्रंथ जानि अति नीका। रची बनाई संस्कृत टीका ॥ ९ ॥ दो॰ ॥—
सर्व विशुद्धि द्वारलों, आये करत बखान। तब आचार भक्तिसों, करे ग्रंथ गुण गान ॥१०॥

अर्थ—ऐसे जगतके जीवका हितकारक यह ग्रंथ प्रसिद्ध भया। इस ग्रंथको अति श्रेष्ठ जानि अमृतचंद्र मुनिराजने संस्कृत टीका बनाई ॥ ९ ॥ सर्व विशुद्धी द्वारपर्यंत संस्कृत व्याख्यान कीया। अर भक्तिसे इस ग्रंथका गुणानुवाद गाया ॥ १० ॥

॥ इति श्रीकुंदकुंदाचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

अथ श्रीसमयसार नाटकको एकादशमो स्याद्वाद द्वार प्रारंभ ॥११॥

॥ अब श्रीअमृतचंद्र मुनिराज आपना हेतु कहे है ॥ चौपाई ॥—

अद्भुत ग्रंथ अध्यातम वाणी । समुझे कोई विरला प्राणी ॥
यामें स्यादवाद अधिकारा । ताको जो कीजे विसतारा ॥ १ ॥
तोजु ग्रंथ अति शोभा पावे । वह मंदिर यह कलश कहावे ॥
तब चित अमृत वचन गढ खोले । अमृतचंद्र आचारज बोले ॥ २ ॥

अर्थ—समयसार नाटक अध्यात्मवाणी अद्भुत ग्रंथ है इसिका मर्म कोई विरला ज्ञानी समझे । इस ग्रंथमे गर्भित स्याद्वादका कथन है पण तिसकूं विस्तारसे वर्णन करिये तो ॥ १ ॥ ये ग्रंथ विशेष शोभा पावे जैसे वह मंदिर अर यह कलश कहावेगा । ऐसे चित्तमे गंभीर अर अमृत समान वचनका विचार करि अमृतचंद्र आचार्य बोले ॥ २ ॥

कुंदकुंद नाटक विषें, कह्यो द्रव्य अधिकार । स्याद्वाद नै साधि मैं, कहूं अवस्था द्वार ॥ ३ ॥
कहूं मुक्ति पदकी कथा, कहूं मुक्तिको पंथ । जैसे घृत कारिज जहां, तहां कारण दधि मंथ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीकुंदकुंदाचार्यकृत समयसार नाटकमें जीव-अर-अजीव द्रव्यका स्वरूप कह्यो । अब मैं स्याद्वाद नय द्वार अर साध्य साधक-अवस्था द्वार ऐसे दोय द्वार कहूंहूं ॥ ३ ॥ स्याद्वाद द्वारमें चतुर्दश नयका अर साध्य साधक द्वारमें मुक्तिपद (साध्य) का अर मुक्तिपथ (साधक) का कथन कहूंहूं । जैसे घृत कार्य वास्ते दधि मंथनका कारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

॥ अब एकांत वादीका अर स्याद्वादीका लक्षण कहे है चौपाई ॥ दोहा ॥—

अमृतचंद्र बोले मृदुवाणी । स्यादवादकी सुनो कहानी ॥
कोऊ कहे जीव जग मांही । कोऊ कहे जीव है नांही ॥ ५ ॥
एकरूप कोऊ कहे, कोऊ अगणित अंग । क्षणभंगुर कोऊ कहे, कोऊ कहे अभंग ॥ ६ ॥
नय अनंत इहविधि है, मिले न काहूं कोइ । जो सब नय साधन करे, स्याद्वाद है सोइ ॥ ७ ॥

अर्थ—अमृतचंद्र मुनिराज कोमल वचनसे बोले, मैं स्याद्वादका कथन कहूंहूं सो सुनो । कोई अस्तिवादी कहें जगतमें जीव है अर कोई नास्तिवादी कहे जीव जगतमें नही है ॥ ५ ॥ कोई अद्वैतवादी कहे जीव एक ब्रह्मरूप है अर कोई नैयायिकवादी कहे जीवके अगणित स्वरूप हैं । कोई बौद्धमती कहे जीव क्षणभंगुर विनाशिक है अर सांख्यमती कहें जीव सर्वथा शाश्वत है ॥ ६ ॥ अर्थ समजवेके मार्गकूं नय कहते है ते समजवेके मार्ग अनंत हैं ताते नयहूं अनंत हैं, तिस नयमें कोई नय काहूं नयसे मिले नही (विरोधी) है अर जे सब नयकूं साधन करे (सब नयकूं साचा साधिके दिखावे) सो स्याद्वाद है ॥ ७ ॥

॥ अब जैनका मूल स्याद्वादमत है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

स्याद्वाद अधिकार अब, कहूं जैनका मूल । जाके जाने जगत जन, लहे जगत जलकूल ॥ ८ ॥

अर्थ—अब स्याद्वाद अधिकार कहूंहूं सो जिनशास्त्रका मूल है । स्याद्वादका स्वरूप जाननेसे जगतके जन है सो संसार जलधिते पार होय है ॥ ८ ॥

॥ अव नयके जालते शिष्यकूं संदेह उपजे तिसकूं गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकी पराधीन, जीव एक है कीधो अनेक मानि लीजिये ॥
जीव है सदीवकी नांही है जगत मांहि, जीव अविनश्वरकी विनश्वर कहीजिये ॥
सद्गुरु कहे जीव है सदैव निजाधीन, एक अविनश्वर दरव द्रिष्टि दीजिये ॥
जीव पराधीन क्षणभंगुर अनेक रूप, नांहि जहां तहां पर्याय प्रमाण कीजिये ॥ ९ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे हे स्वामी? जीव स्वाधीन है की पराधीन है, जीव एक है की अनेक है। जीव जगतमें सदैव है की नही है, जीव अविनाशिक है कि विनाशिक है। तव सद्गुरु कहे हे शिष्य? जीव है सो द्रव्यदृष्टीते स्वाधीन है, लक्षणते एक है, सदैव है, अविनाशी है। अर पर्याय दृष्टीते कर्मके अपेक्षा पराधीन है, परिणामके अपेक्षा क्षणभंगुर है, गत्यादिकके अपेक्षा अनेक है, शरीरअपेक्षा नाशिवंत है ऐसे द्रव्यदृष्टी अर पर्यायदृष्टी दोनूं नयहूं प्रमाण करना ॥ ९ ॥

॥ अव द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव अपेक्षा अस्ति नास्ति स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारों भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये ॥
परके चतुष्क वस्तु नअस्ति नियत अंग, ताको भेद द्रव्य परयाय मध्य जानिये ॥
दरव जो वस्तु क्षेत्र सत्ता भूमि काल चाल, स्वभाव सहज मूल शकति वखानिये ॥
याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना, व्यवहार दृष्टि अंश भेद परमानिये ॥१०॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ये चतुष्टय (चार भेद) सर्व वस्तुमें रहे है, निश्चय नयते अपने स्वचतुष्टय अपेक्षासे वस्तु अस्तिरूप है जैसे स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल अर स्वभाव इनके अपे-

क्षासें विचार करियें तो सर्व वस्तु अस्तिरूप है। अर परके चतुष्टय अपेक्षासे वस्तुकूं नास्तिरूप निपजे है, जैसे परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अर परभाव अपेक्षासे सर्व वस्तु नास्तिरूप है ये निश्चय नयते अस्ति अर नास्ति कह्या तिनका भेद द्रव्यमें अर पर्यायमें जाना जाय है। द्रव्यकूं वस्तु कहिये अर वस्तुके सत्ताकूं क्षेत्र कहिये अर वस्तुके परिणमनकूं काल कहिये, अर वस्तुके मूल शक्तीकूं स्वभाव कहिये। इस प्रकार बुद्धीसे स्वद्रव्य अर परद्रव्यकूं क्षेत्रादिकको कल्पना करना, सो व्यवहार नय भेद है ॥१०॥

है नांहि नांहिसु है, है है नांहि नांहि। ये सर्वंगी नय धनी, सब माने सब मांहि ॥ ११ ॥

अर्थ—ये वस्तु है ऐसे कहें सो स्वद्रव्यका अस्तिपणा ममजना ॥ १ ॥ ये वस्तु नांही ऐसे कहे सो परद्रव्यका नास्तिपणा समजना ॥ २ ॥ वस्तु है नांहिं ऐसे कहे तो प्रथम अस्ति नंतर नास्ति समजना ॥ ३ ॥ ये वस्तु नांहि है ऐसे कहे तो प्रथम नास्ति नंतर अस्ति समजना ॥ ४ ॥ ये वस्तु है है ऐसे कहे तो स्वद्रव्य अर पर द्रव्य अस्ति समजना ॥ ५ ॥ ये वस्तु नांहि नांहि ऐसे कहे तो स्वद्रव्य अर परद्रव्य नास्ति समजना ॥ ६ ॥ ये वस्तु कथंचित् है नांही ऐसे कहे तो प्रथम कथंचित् अस्ति नंतर कथंचित् नास्ति समजना ॥ ७ ॥ ऐसे सांत भाग होय है सो सांत भाग सर्वांग नयका धनी (स्यांद्वादी) सर्व वस्तुमें मानें है ॥ ११ ॥

॥ अब चतुर्दश (१४) नयके नाम कहे है ॥ सवैया ॥ ३१ सा ॥—

ज्ञानको कारण ज्ञेय आतमा त्रिलोक मय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है ॥
जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व द्रव्यमें विज्ञान, ज्ञेय क्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नांही है॥
देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अंश मांही है॥

जीव क्षण भंगुर अज्ञेयक स्वरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकांत अवस्था मूढ पांही है ॥ १२ ॥

१ ज्ञेय नय—ज्ञान उपजनेका कारण ज्ञेय (वस्तु) है ताते ज्ञेय यह एक नय है.

२ त्रैलोक्यात्म नय—आत्मा त्रैलोक्य प्रमाण है ताते त्रैलोक्यात्म यह एक नय है.

३ वहुज्ञान नय—जैसे वस्तु अनेक है तैसे ज्ञानहूं अनेक है ताते वहुज्ञान यह एक नय है.

४ ज्ञेय प्रतिबिंव नय—ज्ञानमें वस्तु प्रतिबिंबित होय है ताते ज्ञेय प्रतिबिंब यह एक नय है.

५ ज्ञेय काल नय—जबलग ज्ञेय है तवलग ज्ञान है ताते ज्ञेयकाल यह एक नय है.

६ द्रव्यमय ज्ञान नय—सर्वद्रव्यकूं आत्मा जाने है ताते द्रव्यमय ज्ञान यह एक नय है.

७ क्षेत्रयुत ज्ञान नय—ज्ञेयके क्षेत्र प्रमाण ज्ञान है ताते क्षेत्रयुतज्ञान यह एक नय है.

८ नास्तिजीव नय—जीवमें जीव है जगतमें जीव नही ताते नास्ति जीव यह एक नये है.

९ जीवोद्घात नय—देहका नाश होते जीव देहते निकसे ताते जीवोद्घात यह एक नय है.

१० जीवोत्पाद नय—देह उपजे तव देहमें जीव उपजे ताते जीवोत्पादनामे एक नय है.

११ आत्मा अचेतन नय—ज्ञान अचेतन है ताते आत्मा अचेतन यह एक नय है.

१२ सत्तांश नय—सत्तांशमय जीव है ताते सत्तांश यह एक नय है.

१३ क्षणभंगुर नय—जीव क्षणक्षणमें परिणमें है ताते क्षणभंगुर यह एक नय है.

१४ अज्ञायक ज्ञान नय—ज्ञान है सो ज्ञायक स्वरूप नही है ताते अज्ञायक ज्ञान यह एक नय है.

ऐसे नय है इसिमें जो कोई एक नयकूं ग्रहण करे अर वाकीके नयकूं छोडे सो एकांती मूढ है ॥१२॥

॥ अव ज्ञानका कारण ज्ञेय है इस प्रथम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम सवारि भीति, पीछे ताके उपरि सुचित्र आछ्यो लेखिये ॥
तैसे मूल कारण प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञानरूप कारिज विसेखिये ॥
ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसाही स्वभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये ॥
कारण कारिज दोउ एकहीमें निश्चय पै, तेरो मत साचो व्यवहार दृष्टि देखिये ॥ १३ ॥

अर्थ—कोई (मीमांसक) एक नयका ग्राही अज्ञानी कहे कि-प्रथम भीतकूं सुधारिये, पीछे तिस भीत उपर आच्छा चित्र निकले अर खराब भीत उपर खराब चित्र निकले। तैसे ज्ञान उपजनेका मूल कारण ज्ञेय (घट पटादिक वस्तु) है, जैसे जैसे पदार्थ ज्ञानके सन्मुख होय तैसे तैसे ज्ञान जाननेका कार्य करे है। तिस एकांतीकूं स्याद्वादी ज्ञानी कहे जैसी वस्तु होय तिसका तैसाही स्वभाव होय है, ज्ञानका स्वभाव जाननेका है अर ज्ञेयका स्वभाव अज्ञान जड है ताते ज्ञान अर ज्ञेय भिन्न भिन्न पद जानना। निश्चय नयते कारण अर कार्य ये दोउ एकमें है, पण व्यवहार नयते देखिये तो कारण विना कार्य होय नही ताते तेरा मत (अभिप्राय) साचा है ॥ १३ ॥

॥ अव आत्मा त्रैलोक्यमय है इस द्वितीय नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है ॥
याहीते स्वछंद भयो डोले मुखहू न बोले, कहे या जगतमें हमारोहि परव है ॥
तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न है पैं, जगसों विकाशी तोही याहीते गरव है ॥
जो वस्तु सो वस्तु पररूपसों निराली सदा, निहचे प्रमाण स्यादवादमें सरव है ॥ १४ ॥

अर्थ—कोई (नैयायिक) एक नयका ग्राही कहे कि ज्ञान लोकालोक व्याप्य है, अर आत्मद्रव्य त्रैलोक्य प्रमाण है। ऐसे मानि स्वच्छंद क्रिया रहित होय डोले है अर मुखते किसीसे बोलेहूं नहि है, तथा कहे जगतमें हमारीही महिमा है। तिसकूं ज्ञाता कहे—ये जीव है सो जगतसे भिन्न है, पण जीवके ज्ञान स्वभावमें जगतका विस्तार दीखे है इह तुझे गर्व है। निश्चय नयसे जीववस्तु है सो जीव वस्तुमें है अर पर वस्तुसे सदा निराली रहे है, ऐसे सर्वस्वी स्याद्वादका मत प्रमाण है ॥ १४ ॥

॥ अब ज्ञेय अनेक है तैसे ज्ञानहूं अनेक है इस तृतीय नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि, ज्ञेयको आकार नानारूप विसतऱ्यो है ॥
ताहिको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकांत पक्ष लोकनिसो लऱ्यो है ॥
ताको भ्रम भंजिवेकों ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निरावाध रस भऱ्यो है ॥
ज्ञायक स्वभाव परयायसों अनेक भयो, यद्यपि तथापि एकतासों नहिं टऱ्यो है ॥ १५ ॥

अर्थ—कोई अज्ञानी है सो ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि कहे की, जैसे ज्ञेयके आकार नानाप्रकार विस्ताररूप है। तैसा ज्ञानहूं नानाप्रकार विस्ताररूप होय है ताते ज्ञानकी सत्ता अनेक है, ऐसे एकांत पक्ष धारण करि लोकनिस्यो लऱ्यो है। तिसका भ्रम नाश करनेकूं ज्ञानवंत कहे, ज्ञान है सो अगम्य अगाध वस्तु है सो निराबाध गुणते भरी है। यद्यपि ज्ञानका स्वभाव अनेक ज्ञेय (वस्तु) जाननेका होय है, तथापि ज्ञान अर जानपणा एकही हैं अपने एकतासों कदापि नहि टले है ॥१५॥

॥ अब ज्ञानमें ज्ञेयका प्रतिविंब है इस चतुर्थ नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार, प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोइये ॥

जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तव निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइ ये ॥
तासों स्यादवादी कहे ज्ञानको स्वभाव यहै, ज्ञेयको आकार वस्तु मांहि कहां खोइये ॥
जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखे, यद्यपि तथापि आरसी विमल जोइजे ॥१६॥

अर्थ—कोई कुबुद्धिवाला कहे की ? ज्ञानमें जो ज्ञेयके आकार प्रतिबिंबित होय है, सो शुद्ध ज्ञानकूं कलंक है तिस कलंककूं धोइये । अर जब ध्यान जलसे ज्ञानका कलंक धोइके निर्मल कीजे, तब ज्ञान शुद्ध निराकार होय है । तिस कुबुद्धीवालेकूं स्याद्वादी ज्ञानी कहे—ज्ञानको स्वभाव यह है की, तिसमें ज्ञेयके आकार सदा झलकेही है सो ज्ञेयके आकार दूर करनेका क्या मतलब है । जैसे आरसीमें नाना प्रकारकेरूप प्रतिबिंबित होय है, तथापि आरसी निर्मलही दीखे है आरसीकूं कोई प्रकारे प्रतिबिंबका कलंक दीखे नही ॥ १६ ॥

॥ अव जवतक ज्ञेय है तवतक ज्ञान है इस पंचम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिणाम, जोलों विद्यमान तोलों ज्ञान परगट है ॥
ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनाश होय, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अटल है ॥
तासूं समकीतवंत कहे अनुभौ कहानि, पर्याय प्रमाण ज्ञान नानाकार नट है ॥
निरविकलप अविनश्वर दरवरूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है ॥ १७ ॥

अर्थ—कोई अज्ञ कहे—जबतक ज्ञानका परिणमन ज्ञेयके आकार विद्यमान है, तबतक ज्ञान प्रगट रहे है । अर ज्ञेयके विनाश होते ज्ञानकाभी विनाश होय है, ऐसी वाके हृदयमें मिथ्यात्वकी अट है। तिनसूं भेदज्ञानी परिचयका दृष्टांत कहे, जैसे नट बहुत प्रकारका सोंग धरे पण नट एकही है

तैसे ज्ञानहूं पर्याय माफक बहुत रूप धरे तोहूं ज्ञान एकही है। ज्ञान है सो निर्विकल्प अर आत्मद्रव्यके समान अविनाशी है, तथा ज्ञानमें ज्ञेय नाहि व्यापे है ॥ १७ ॥

॥ अव सर्व द्रव्यमय ब्रह्म है इस पष्ठम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ मंद कहे धर्म अधर्म आकाश काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें ॥
जानेन मरम निज माने आपा पर वस्तु, बांधे दृढ करम धरम खोवे डगमें ॥
समकिती जीव शुद्ध अनुभौ अभ्यासे ताते, परको ममत्व त्यागि करे पगपगमें ॥
अपने स्वभावमें मगन रहे आठो जाम, धारावाही पंथिक कहावे मोक्ष मगमें ॥ १८ ॥

अर्थ—कोई (ब्रह्मअद्वैतवादी) कहे— धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल अर जीव ये समस्त जगतमें ब्रह्मरूप है। ऐसे मंदबुद्धी आत्म स्वरूपके मर्मकूं जाने नही अर जड वस्तुकूं आत्मा माने है, ताते दृढ कर्म बांधि अपनो ज्ञान स्वभावकूं क्षणोक्षणीं खोवे है। अर सम्यक्ती जीव है सो शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है ताते, पुद्गलका ममत्व पगपगमें त्यागे है। अर अपने आत्मस्वभावमें आंठो पहर मग्न रहे है, सो मोक्षमार्गका धारावाही पथिक कहावे है ॥ १८ ॥

॥ अव ज्ञेयके क्षेत्र प्रमाण ज्ञान है इस सप्तम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परमाण, तेतो ज्ञान ताते कछु अधिक न और है ॥
तिहुं काल परक्षेत्र व्यापि परणम्यो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्यादृग दोर है ॥
जैनमती कहे जीव सत्ता परमाण ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिरमोर है ॥
ज्ञानके प्रभामें प्रतिबिंबित अनेक ज्ञेय, यद्यपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठोर है॥१९॥

अर्थ—कोई मूढ कहे की वस्तु जितनी छोटि अथवा बडी होय, तिस वस्तुके क्षेत्र प्रमाणही ज्ञान परिणमे है कछु कम अथवा ज्यादा ज्ञान होय नही। ऐसे ज्ञानकूं तीन काल पर क्षेत्रसे व्याप्य अर परद्रव्यसे परिणमे (ज्ञेय अर ज्ञान एकरूप हुवो) माने है, पण ज्ञान आत्मरूप जाने नही ऐसी मिथ्या-दृष्टीकी दौड है। तिसकूं जैनमती स्याद्वादी कहे की जीवकी सत्ता त्रैलोक्य प्रमाण है तितनी ज्ञानकी सत्ता है, सो सत्ता पर द्रव्यसे अव्यापक अर जगतमें श्रेष्ठ है। यद्यपि ज्ञानके प्रभामें अनेक ज्ञेय प्रतिबिंबित होय है, तथापि ज्ञेयमें ज्ञान मिले नही दोनूकी स्थिति न्यारी न्यारी है ॥ १९ ॥

॥ अब जीवमें जीव है जगमें जीव नही इस अष्टम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ शुन्यवादी कहे ज्ञेयके विनाश होत, ज्ञानको विनाश होय कहो कैसे जीजिये ॥
ताते जीवितव्य ताकी थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिणामनिको नाश कीजिये ॥
सत्यवादी कहे भैया हूजे नांहि खेद खिन्न, ज्ञेयसो विरचि ज्ञानभिन्न मानि लीजिये ॥
ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजिये ॥२०॥

अर्थ—कोई शुन्य (नास्तिक) वादी कहे की ज्ञेयका नाश होते ज्ञानका नाश होय, ज्ञान अर जीव एक है सो ज्ञानका नाश होते जीवका पण नाश होय है तो फेर कैसो जगना होयगा। ताते जीव शाश्वत रहनेके अर्थी, ज्ञानमें ज्ञेयके आकार परिणमे है तिसका नाश करिये तो जीवकी स्थिरता होयगी। तिसकूं सत्यवादी कहे हे भाई? तुम खेद खिन्न मत होहूं, तुमने ज्ञान अर ज्ञेय एक माना है सो भिन्न भिन्न मानो। अर ज्ञानकी ज्ञायक शक्ति साधन करिके आत्मानुभवका अभ्यास करो, तथा कर्मका क्षय करिके मोक्षपद पावो तहां अनंत ज्ञानरूप अमृत रस सदा पीवो ॥ २० ॥

॥ अब देहका नाश होते जीवका नाश होय इस नवम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ दोहा ॥—

कोउ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसेगी तबही जीव मरेगो ॥
छाया कोसो छल कीधो माया कोसो परपंच, कायामें समाइ फिरि कायाकों न धरेगो ॥
सुधी कहे देहसों अव्यापक सदैव जीव, समैपाय परको ममत्व परिहरेगो ॥
अपने स्वभाव आइ धारणा धरामें धाइ, आपमें मगन व्हैके आपशुद्ध करेगो ॥२१॥
ज्यों तन कंचुकि त्यागसे, विनसे नांहि भुजंग। त्यों शरीरके नाशते, अलख अखंडित अंग ॥२२॥

अर्थ—कोई क्रूर (चार्वाकमति) कहेकी देह अर जीव एक पिंड है, ताते जब देहका नाश होय तब जीवहूं मरे है। जैसे वृक्षका नाश होते वृक्षके छायाका नाश होय है अथवा इंद्रजालवत् प्रपंच है, जीव मरे जब देहमेंही समाइ जाय अर फेर देह नहीं धरेगा। दीपक समान बुझ जायगा। तिसकूं बुद्धिमान कहे जीव सदा देहसे अव्यापक है, सो जब पुद्गलादिकका ममत्व छोडेगा। तब अपने ज्ञान स्वभावकूं धारण करके, स्थीरतारूप होय आत्मस्वरूपमें मग्न होयके आत्माकूं कर्म रहित करेगा ॥ २१ ॥ जैसे सर्पके शरीर ऊपर कांचली आवे, तिस कांचलीकूं त्यजनेसे सर्पका नाश नहि होय है। तैसे शरीरका नाश होते, जीवका नाश नही होय है जीव अखंडित रहे है ॥ २१ ॥ २२ ॥

॥ अब देहके उपजत जीव उपजे इस दशम नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो है जब आइके ॥
जोलों देह तोलों देह धारी फिर देह नसे, रहेगो अलख ज्योतिमें ज्योति समाइके ॥
सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देहधारि, जब ज्ञानी होयगो कबही काल पाइके ॥
तबहीसों पर तजि अपनो स्वरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसाइके ॥ २३ ॥

अर्थ—कोई दुर्बुद्धीवाला कहे पहिले जीव नही था, सो जब आकाश पृथ्वी जल अग्नि अर वायु इन पंच तत्त्वसे देह ऊपजे तब तिस देहमें ज्ञान शक्तिरूप जीव आय ऊपजे है। अर जबतक देह रहे तबतक देहधारी जीव कहावे है, फेर जब देहका नाश होयगा तब जीव ज्योतिरूपी है सो ज्योतिमें जोत मिल जायगी। तिसकूं सुबुद्धीवाला कहे ये जीव अनादिका देह धारी है नवीन नहि उपज्या है, अर जीवकूं जब शुद्धज्ञान प्राप्त होयगा। तब परका ममत्व त्यागिके अपने आत्मस्वरूपकूं जानेगा, अर अष्ट कर्मका क्षय करिके मोक्षस्थान पावेगा ॥ २३ ॥

॥ अब आत्मा अचेतन है इस ग्यारवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिणयो ज्ञान ताते चेतना असत है ॥
ज्ञेयके नसत चेतनाको नाश ता कारण, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥
पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत है ॥
चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रमाण जीव सत है ॥ २४ ॥

अर्थ—कोई पक्षपाती कहे—ज्ञान है सो ज्ञेयके आकाररूप होय है, ताते ज्ञानचेतना असत है। अर ज्ञेयका नाश होते ज्ञानचेतनाका नाश होय है, ताते आत्मा सदा ज्ञान रहित अचेतन है ऐसे मेरें मत है। तिस एकांत पक्षपातीकूं पंडित कहे ये ज्ञान है सो स्वभावतेही अखंडित है, अर ज्ञेयके आकारकूं धारे है तोहूं ज्ञेयसे भिन्न है। जो ज्ञानचेतनाका नाश मानिये तो जीवके सत्ताका नाश होयगा, ताते ज्ञानचेतना युक्तही जीवतत्त्व प्रमाण है ॥ २४ ॥

॥ अब सत्ताके अंशमें जीव है इस बारवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ महा मूरख कहत एक पिंड मांहे, जहांलों अचित चित्त अंग लह लहे है ॥
जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप, जेते भेद करमके तेते जीव कहे है ॥
मतिमान कहे एक पिंड मांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंश फैलि रहे है ॥
पुद्गलसों भिन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता स्वभाव गहे है ॥२५॥

अर्थ—कोई महा मूढ कहें—एक देहमें, जबतक चेतन अर अचेतन पदार्थके विकल्प (तरंग) ऊठे है। तबतक जोगरूप परिणमे सो जोगी जीव अर भोगरूप परिणमे सो भोगी जीव ऐसे नाना प्रकार ज्ञेयरूप जितने क्रियाके भेद होय है, तितने जीवके भेद एक देहमें उपजे है। तिनकूं मतिमान कहे एक देहमें एकही जीव है, पण तिस जीवके ज्ञान परिणामकरि अनंत भावरूप अंश फैले है। ये जीव देहसों भिन्न है अर कर्मयोगसे रहित है, तिस जीवमें सदा अनंतभाव उपजे है अर अनंत भाव विनसे है परंतु जीव तो सदा स्थीर स्वभावही धारण करे है ॥ २५ ॥

॥ अब जीव क्षणभंगुर है इस तेरवे नयका स्वरूप कहे है ॥ ३१ सा ॥—

कोउ एक क्षणवादी कहे एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसत है ॥
जाही समै अंतर नवीन उतपति होय, ताही समै प्रथम पुरातन वसत है ॥
सरवांगवादी कहे जैसे जल वस्तु एक, सोही जल विविध तरंगण लसत है ॥
तैसे एक आतम दरव गुण पर्यायसे, अनेक भयो पैं एकरूप दरसत है ॥ २६ ॥

अर्थ—कोईयेक क्षणीकवादी कहे—एक देहमें एक जीव उपजे है, अर एक जीव विनसे है। जब देहमें नवीन जीवकी उत्पत्ति होय, तब पहला जीव किनसे है। तिनकूं स्याद्वादी कहे—जैसे जल एकरूप है, पण सोही जल पवनके संयोगते नानाप्रकार तरंगरूप भिन्न भिन्न दीखे है। तैसे एक आत्मद्रव्य है सो गुण अर पर्यायसे, अनेक रूप होय है पण निश्चयसे एक रूपही दीसे है ॥ २६ ॥

॥ अव ज्ञायकशक्ति विना ज्ञान है इस चौदहवे नयका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ बालबुद्धि कहे ज्ञायक शकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्ये जानिये ॥
ज्ञायक शकति कालपाय मिटिजाय जब, तब अविरोध बोध विमल वखानिये ॥
परम प्रवीण कहे ऐसी तो न बने बात, जैसे विन परकाश सूरज न मानिये ॥
तैंसे विन ज्ञायक शकति न कहावे ज्ञान, यह तो न पक्ष परतक्ष परमानिये ॥ २७ ॥

अर्थ—कोई अज्ञान बुद्धिवाला कहे—जबतक ज्ञानमें ज्ञायक (जाणपणा) की शक्ती है, तबतक ते ज्ञान जगतमें अशुद्ध कहवाय है कारण की ज्ञानमें ज्ञायकपणा है सो ज्ञानकूं दोष है। अर जब कालपाय ज्ञायकशक्ति मिटि जाय, तब अविरोध ज्ञान निर्मल कहिये। तिनकूं स्याद्वादी प्रवीण कहे—तुम ज्ञायकपणाकूं अशुद्ध मानोहो ये बात बनेही नही, जैसे प्रकाश विना सूर्य माने न जाय। तैसे ज्ञायकशक्ति विना ज्ञान न कहावे, यह तो पक्षसे कहे नही है प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ २७ ॥

॥ अव जिसने चौदह एकांत नयकूं हटाव्यो तिस स्याद्वादकी प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

इहि विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परमाण। जाके वचन विचारसों, मूरख होय सुजान॥२८॥
स्यादवाद आतम दशा, ता कारण बलवान। शिव साधकबाधा रहित, अखै अखंडित आन ॥२९॥

अर्थ—ऐसे स्याद्वादमत प्रमाणते आत्मज्ञानका हित है। इसिका वचन सुननेसे वा अध्ययन करनेसे अज्ञानी होय तो पण पूर्ण ज्ञानी होय है ॥ २८ ॥ स्याद्वादते आत्मस्वरूपका जाणपणा होय है ताते स्याद्वाद महा बलवान है। मोक्षका साधक है कोई युक्ति प्रयुक्तीसे भागे नही ऐसे बाधा रहित अक्षय है अर सर्व नयमें फैलि रह्या है तातें अखंडित आज्ञा है ॥ २९ ॥

॥ अब साध्य पदका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अभोगी अमूरतीक परदेशवंत है॥
उतपत्तिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतन त्रयादिगुण भेदसों अनंत है॥
सोई जीव दरव प्रमाण सदा एक रूप, ऐसे शुद्ध निश्चय स्वभाव विरतंत है॥
स्यादवाद मांहि साध्यपद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेको साधक सिद्धंत है॥३०॥

अर्थ—जो इह जीव वस्तु है सो अस्ति प्रमेय अगुरुलघु अभोगी अमूर्त्तीक अर प्रदेशवंत है, जिसका नाश नही ताते अस्ति कहिये, प्रमाण है ताते प्रमेय कहिये, देह नही ताते अगुरु लघु कहिये इत्यादि गुणयुक्त है। अर गुणसे ध्रुवरूप है तथा गुणके पर्यायसे उत्पत्तीरूप अर विनाशरूप है, रत्नत्रयादिक गुणके भेदसे अनंतपणा लीये वर्त्ते है। सोई जीवद्रव्य एकरूपज सदा प्रमाण है, ऐसा निश्चय नयसे जीवके स्वभावका वृत्तांत है सो साध्यपद कहिये। इसिका वर्णन स्याद्वाद द्वारमें कह्या ॥३०॥

स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार। अमृतचंद्र मुनिवर कहे, साधक साध्य दुवार॥३१॥

अर्थ—ऐसे स्याद्वाद द्वार कह्यो। अब अमृतचंद्र मुनिराज, साध्य अर साधक द्वार कहे है ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको ग्यारमो स्याद्वाद नयद्वार बालबोध सहित समाप्त भयो ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीसमयसार नाटकको बारमो साध्य साधक द्वार प्रारंभ ॥ १२ ॥

॥ अब साध्य अर साधिवे योग्य साधक पदका सिद्धांत कहे है ॥ दोहा ॥—

साध्य शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत । साधक अविरत आदि बुध, क्षीण मोह परयंत ॥१॥

अर्थ—केवलज्ञानीकूं अथवा सिद्धपरमेष्ठीकूं, साध्यपद कहिये । अर चौथे अविरत गुणस्थानसे बारवे क्षीणमोह गुणस्थान पर्यंत, नव गुणस्थानके धनी जे ज्ञानी हैं तिन सबकूं साधकपद कहिये ॥ १ ॥

॥ अब अविरतादिक साधकपदका सिद्धांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥ सोरठा ॥—

जाको आधो अपूरव अनिवृत्ति करणको, भयो लाभ हुई गुरु वचनकी बोहनी ॥
जाको अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी ॥
सातों परकति क्षपि किंवा उमशमी जाके, जगि उर मांहि समकित कला सोहनी ॥
सोई मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शकति गुण स्थानक आरोहनी ॥२॥

सो०—जाके मुक्ति समीप, भई भवस्थिति घट गई । ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुक्ता वचन ॥३॥

अर्थ—जिस जीवकूं अधो करण अपूर्व करण अर अनिवृत्ति करणका लाभ भया है अर सत्यगुरूका उपदेश मिला है । ताते जिसकूं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अर लोभ, तथा अनादि मिथ्यात्व मोहनी, मिश्रमोहनी, सम्यक् प्रकृति मोहनी, इन सात प्रकृतीका क्षय अथवा उपशम होके, हृदयमें शोभनीक सम्यक्तकी कला जागी है । सोई सम्यक्तीजीव मोक्ष मार्गको साधनारो साधक कहावे है, तिसके अंतर अर बाह्य सर्व अंगमें गुणस्थान चढनेकी शक्ति प्राप्त होय है ॥ २ ॥

जिसके भव भ्रमणकी स्थिति घट गई ताते मुक्ति समीप भई है। तिस जीवके मनरूप सीपमें सुगुरूके वचनरूप मेघके जलसे अमोलीक मोती होय है भावार्थ—तिसही जीवकूं गुरूके वचन रुचे है ॥ ३ ॥

॥ अव सद्गुरूकूं मेघकी उपमा देके प्रशंसा करे है ॥ दोहा ॥—

ज्यों वर्षे वर्षा समें, मेघ अखंडित धार। त्यों सद्गुरु वाणी खिरे, जगत जीव हितकर ॥४॥

अर्थ—जैसे वर्षाऋतुमें मेघ अखंडित धारा वर्षे है । तैसे सद्गुरु होय ते जगतके जीवकूं हित कारक अमृत वाणीका उपदेश करे है ॥ ४ ॥

॥ अव सद्गुरु आक्षेपिणी धर्म कथाका उपदेश करे है ॥ सवैया २३ सा ॥—

चेतनजी तुम जागि विलोकहुं, लागि रहे कहां मायाके तांई ॥
आये कहीसों कही तुम जाहुंगे, माया रहेगि जहाके तहांई ॥
माया तुमारी न जाति न पाति न, वंशकि वेलि न अंशकि झांई ॥
दासि किये विन लातनि मारत, ऐसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ ५ ॥

अर्थ—अहो चेतनजी ? तुम मोहनिद्रा छांडि जाग्रत होके अपना स्वरूप देखो, मायारूप संपदाके पीछे क्यों लगे हो। तुम कहांसे आये हो अर कहां जानेवाले हो ये कुछ विचार करो, इह संपदा जहांकी तहांही रहेगी। इह तुमारे जातीवंशकी अर संवंधी नही है, तथा इसिमें तुमारा अंशहूं नही है। दासी किये (ज्ञान संपादन कीये) विना तिसकूं लात मारते (त्याग करते) हो, सो हे महंत ऐसी अनीति न कीजिये भावार्थ—ज्ञान संपादन करके फेर संपदादिका त्याग करना ॥ ५ ॥

माया छाया एक हैं, घटे बढे छिन मांहि, इनके संगति जे लगे, तिन्हे कहुं सुख नांहि ॥ ६ ॥

अर्थ—माया (लक्ष्मी) अर छाया एक सरखी है, क्षणमें घटे है अर क्षणमें बढे है। जो इनके संगतीकूं लगे है तिनकूं कहांभी सुख नहि ॥ ६ ॥

॥ अव स्त्री पुत्रादिकका अर आत्माका संवध नही सो दिखावे है ॥ सवैया २३ सा ॥ सोरठा ॥—

लोकनिसों कछु नांतो न तेरो न, तोसों कछु इह लोकको नांतो ॥
ये तो रहे रमि स्वारथके रस, तूं परमारथके रस मांतो ॥
ये तनसों तनमै तनसे जड, चेतन तूं तनसों निति हांतो ॥
होहुं सुखी अपनो बल फेरिके, तोरिके राग विरोधको तांतो ॥ ७ ॥
जे दुर्बुद्धी जीव, ते उत्तंग पदवी चहे। जे सम रसी सदीव, तिनकों कछु न चाहिये ॥ ८ ॥

अर्थ—हे चेतन ? स्त्री पुत्रादिकूं तूं अपना जाने है सो इनसे तेरा कछु नाता नही अर इनकाहूं तेरेसे कछु नाता नही। ये अपने स्वार्थके कारण तेरेसाथ रमि रहे है अर तूं परमार्थ (आत्महित)-कूं छोडि बैठा है। ये तेरे शरीरपर मोहित है पण शरीर जड है अर तूं चेतन है सो तूं शरीरते सदा भिन्न है। ताते राग द्वेष अर मोहका संबंध तोडिके अपने आत्मानुभवकूं प्रगट करि सुखी होहुं ॥७॥ जिस जीवकी राग द्वेष अर मोहसे दुर्बुद्धी हुई है ते इंद्रादिक संसार संपदाकी उंच पदवी चहे है। अर जिन्होने राग द्वेषादिककूं छोडिके आत्मानुभव कीया है ते समरसी जीव कदापीहूं संसारसंबंधी उंच पदकी कछु इच्छाही नहि करे है ॥ ८ ॥

॥ अव सुखका ठिकाणा एक समरस भाव है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

हांसीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता ॥

शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता ॥
रोग वसे भोगमें संयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरव वसे सेवा मांहि दीनता ॥
और जग रीत जेति गर्भित असता तेति, साताकी सहेलि है अकेलि उदासीनता ॥ ९ ॥

अर्थ—हे चेतन ? हांसीमें सुख मानोहो पण इसमें विषादका भय वसे है अर विद्यामें सुख मानोहो पण इसमें विवादका भय वसे है, देहमें सुख मानोहो पण इसमें मरणका भय वसे है अर बडाई पणामें सुख मानोहो पण इसमें हीनताका भय वसे है। शरीर शुची करनेमें सुख मानोहो पण इसमें ग्लानिका भय वसे है अर प्राप्तिमें सुख मानोहो पण इसमें हानीका भय वसे है, जयमें सुख मानोहो पण इसमें हारीका भय वसे है अर यौवनपणामें सुख मानोहो पण यामें वृद्धपणाका भय वसे है। भोगमें सुख मानोहो पण इसमें रोगका भय वसे है अर इष्टके संयोगमें सुख मानेहो पण इसमें वियोगका भय वसे है, गुणमें सुख मानोहो पण यामें गर्वका भय वसे है अर सेवामें सुख मानोहो पण इसमें दीनताका भय वसे है। और जगतमें जितने कार्य सुखके दीसे है तिन सबके गर्भित दुखहूं भरा है, ताते सुखका ठिकाणा एक उदासीनता (समरस भाव) ही है ॥ ९ ॥ दोहा ॥—

जो उत्तंग चढि फिर पतन, नहि उत्तंग वह कूप। जो सुख अंतर भय वसे, सो सुख है दुखरूप ॥१०॥
जो विलसे सुख संपदा, गये तहां दुख होय। जो धरती वहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥ ११ ॥
शब्दमांहि सुद्गुरु कहे, प्रगटरूप निजधर्म। सुनत विचक्षण श्रद्दहे, मूढ न जाने मर्म ॥ १२ ॥

अर्थ—जो उंच स्थान चढि फिर पडना होयतो, ते उंच स्थान नही, कूप समान नीच है। तैसे जिस सुखके गर्भित भय वसे है, ते सुख नही, दुखही है ॥ १० ॥ कुटुंबादिक संपदा कोईकाल पण

विनसे है अर तिसका नाश होते दुःख होय । जैसे बहु तृणवाली धर्त्ती होय सोही अग्निसे जली जाय पण विना तृणकी धरती कोई रीतीसे जले नही ॥ ११ ॥ सद्गुरु है सो उपदेशमें प्रत्यक्ष आत्मानुभवका स्वरूप कहे है । तिसकूं सुनिके बुद्धिमान है सो धारण करे है अर मूढ है सो उपदेशके मर्मकूं जानेही नाहि ॥ १२ ॥

॥ अव गुरूका उपदेश कोईकूं रुचे अर कोईकूं न रुचे तिसका कारण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको ॥
दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिककों पूछे पंथ पुरको ॥
सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको ॥
एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥१३॥

अर्थ—जैसे कोई नगरके निवासी दोय मनुष्य रातकूं आपने नगरके पास आय मार्ग भूले, तिसमें एक मनुष्य सुबुद्धीका था अर एक मनुष्य कुबुद्धीका था । ऐसे दोनूं मनुष्य नगरके समीप कुवटमें परे अर कोई पथीककूं नगरका मार्ग पूछने लगे । सो पथिक कहे तुमारो नगर यह समीप पासही है, ऐसे नगरका मार्ग समझायके दिखावे । तब तिस मार्गकूं सुष्ट पहिचाने पण दुष्ट नाहि माने है, तैसे गुरूका उपदेशहूं श्रोतेका जैसे हृदय होयगा तैसे तो प्रमाण करेगा ॥ १३ ॥

जैसे काहू जंगलमें पावसकि समें पाइ, अपने सुभाय महा मेघ वरखत है ॥
आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर क्षार, तैसा रस वाढे जहां जैसा दरखत है ॥
तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको वखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है ॥

वोही धूनि सूनि कोउ गहे कोउ रहे सोइ, काहूकों विषाद होइ कोउ हरखत है ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसे कोई बनमें वर्षा समय पायके, अपने स्वभावतेही महा मेघकी वर्षा होय है। पण तिस बनमें आमली बवूल निंब मिरच मधुर अर क्षार जहां जैसा जैसा वृक्ष वा स्थान है, तहां तैसा तैसा रस वर्षावके संयोगते बढे है। तैसे ज्ञानवंत मनुष्य आत्महितका धर्मोपदेश करे है तब, यह मेरा श्रोता है अर यह मेरा श्रोता नही ऐसा राग अर द्वेष नही धरे है परंतु कोई श्रोता उपदेश सुनि परमार्थकूं ग्रहण करे है अर कोई श्रोता निद्रा लेय रहे है, कोई मिथ्यात्वी श्रोता द्वेष करे है अर कोई सम्यक्ती श्रोता हर्षायमान होय है ॥ १४ ॥

गुरु उपदेश कहां करे, दुराराध्य संसार। वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ १५ ॥

अर्थ—गुरूका उपदेश क्या करेगा? दुराराध्य संसारी जीवकूं आत्माका हित समझना कठीण है। इस संसारमें सदाकाल पांच प्रकारके जीव रहे है तिन्हके नाम कहे हैं ॥ १५ ॥

डुंघां प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूंचक शुद्ध। ऊंघा दुर्बुद्धी विकल, घूंगा घोर अबुद्ध ॥ १६ ॥

अर्थ—डूंघा जीव प्रभु है, चुंघा जीव चतुर है, सूंघा जीव शुद्ध रुचिवंत है, ऊंघा जीव दुर्बुद्धी है, अर घूंघा जीव घोर अज्ञानी है, ॥ १६ ॥

॥ अव डूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ १ ॥ दोहा ॥—

जाके परम दशा विषे, कर्म कलंक न होय। डूंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोय ॥१७॥

अर्थ—जिसके आत्मामें कर्म कलंक नही अर जिसके अगम्य अगाध पद (मोक्ष स्थान) है। तिस मोक्षवासी सिद्ध जीवकूं डूंघा जीव कह्या है सो वचन अगोचर है ॥ १७ ॥

॥ अव चूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ २ ॥ दोहा ॥—

जो उदास व्है जगतसों, गहे परम रस प्रेम। सो चूंघा गुरूके वचन, चूंघे बालक जेम॥१८॥

अर्थ—जो जीव जगतसे उदास होयके आत्मानुभवका प्रेम रस ग्रहण करे है। अर जो गुरूके वचन बालक समान चूखे है सो चूंघा जीव है ॥ १८ ॥

॥ अव सूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ३ ॥ दोहा ॥—

जो सुवचन रुचिसों सुने, हिये दुष्टता नांहि। परमारथ समुझे नही, सो सूंघा जगमांहि ॥१९॥

अर्थ—जिसके हृदयमें दुष्टता नही अर जो शास्त्र उपदेश रुचिसे सुने है। पण परमार्थ (आत्मतत्त्व) समझे नही सो सूंघा जीव है ॥ १९ ॥

॥ अव ऊंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ४ ॥ दोहा ॥—

जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट। सो विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥ २० ॥

अर्थ—जिसको शास्त्रका उपदेश रुचे नही अर कुकथा प्रिय लगे है। ऐसा ऊंघा जीव है सो विषयाभिलाषी द्वेषी क्रोधी अर पापकर्मी है ॥ २० ॥

॥ अव घूंघा जीवका लक्षण कहे है ॥ ५ ॥ दोहा ॥—

जाके वचन श्रवण नही, नहि मन सुरति विराम। जडतासो जडवत भयो, घूंघा ताको नाम ॥२१॥

अर्थ—जिसकूं वचन नाहि ते एक इंद्रिय स्थावर जीव है अर जिसकूं श्रवण नही ते दोय इंद्रिय, तीन इंद्रिय, अर चार इंद्रिय जीव है तथा जिसकूं मनकी स्मृति नही ते असंज्ञी पंचेंद्री जीव है। अर जे विरति नही, अज्ञानरूप जडतासे जडवत भये है तिसका नाम घूंघा जीव है ॥ २१ ॥

॥ अब पांचों जीवका वर्णन कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ । सूंघा ऊंधा मूरख दोऊ ॥
घूंघा घोर विकल संसारी । चूंघा जीव मोक्ष अधिकारी ॥ २२ ॥
चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नाश । लहे पोष संतोषसों, वरनों लक्षण तास ॥ २३ ॥

अर्थ—डूंघा जीवकूं सब कोई सिद्ध कहे है, सूंघा अर ऊंघा ये दोऊ प्रकारके जीव अज्ञानी है । घूंघा जीव विकल घोर संसारी है, अर चूंघा जीव मोक्षका अधिकारी है ॥ २२ ॥ चूंघा जीव मोक्षका साधक है, सो दोष अर दुःखकूं नाश करे है । तथा संतोषसे सुखकी पुष्टता लहे है ॥ २३ ॥

अब चूंघा जीव मोक्षका साधक है तिसका लक्षण कहे है ॥ दोहा ॥—

कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग । ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग॥२४॥

अर्थ—दया, मंद कषाय, धर्मानुराग, इंद्रिय दमन, देव गुरु अर शास्त्रकी श्रद्धा, तथा वैराग्य । इत्यादि लक्षण जिसके हृदयमें है अर सप्त व्यसनका त्याग करे है सो मोक्षका साधक है ॥ २४ ॥

॥ अब सप्त व्यसनके नाम कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

जूवा अमिष मदिरा दारी । आखेटक चोरी परनारी ॥
येई सप्त व्यसन दुखदाई । दुरित मूल दुर्गतिके भाई ॥ २५ ॥
दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुख धाम । भावित अंतर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥२६॥

अर्थ—जूवा, मांस भक्षण, मदिरा पान, वेश्या संग, शिकार, चोरी, परस्त्रीसंग, ये सात व्यसन है। ते महादुख देनेवाले है, पापका मूल अर दुर्गतीका भाई है ॥ २५ ॥ ऐसे सप्त व्यसन देहसे प्रत्यक्ष

करना सो द्रव्य व्यसन है ते दुराचरणका घर है। अर मनमें मोह परिणामका वृथा चिंतवन करते रहना सो भाव व्यसन है ॥ २६ ॥

॥ अब सात भाव व्यसनके स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्युत कर्म, देहकी मगन ताई यहै मांस भखिवो ॥
मोहकी गहलसों अजान यहै सुरा पान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो ॥
निर्दय व्है प्राण घात करवो यहै सिकार, पर नारी संग पर बुद्धिको परखिवो ॥
प्यारसों पराई सोंज गहीवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो ॥२७॥

अर्थ—अशुभ कर्मके उदयकूं हारि अर शुभ कर्मके उदयकूं जीत मानना सो भाव द्युत कर्म है, देह ऊपर मग्न रहना सो भाव मांस भक्षण है। मोहसे मूर्छित होके स्व तथा परका अजाणपणा सो भाव मदिरा प्राशन है, कुबुद्धीका विचार करना सो भाव वेश्यासंग है। निर्दय परिणाम राखना सो भाव सिकार है, देहमें आत्मपणाकी बुद्धी माननी सो भाव परस्त्री संग है। धन संपदादिकमें प्रीति रखके अति मिलनेकी इच्छा करना सो भाव चोरी है, ऐसे भाव सात व्यसन है सो छोडनेसे ब्रह्म (आत्मा) का स्वरूप देख्याजाय है ॥ २७ ॥

॥ अब मोक्षके साधकका पुरुपार्थ कहे है ॥ दोहा ॥—

व्यसन भाव जामें नही; पौरुष अगम अपार। किये प्रगट घट सिंधुमें, चौदह रत्न उदार ॥२८॥

अर्थ—जिसके चित्तमें सातों भाव व्यसन नही अर अगम्य अपार पुरुषार्थ [अनुभव] करे है। सो मोक्षका साधक अपने चित्तरूप समुद्र मथन करिके चौदह अमोल्य भाव रत्न प्रगट करे है ॥२८॥

॥ अब चौदा भाव रत्नका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

लछमी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मणि, वैराग्य कलप वृक्ष शंख सु वचन है ॥
ऐरावति उद्यम प्रतीति रंभा उदै विष; कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥
ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य, शुद्ध भाव चंद्रमा तुरंगरूप मन है ॥
चौदह रतन ये प्रगट होय जहां तहां, ज्ञानके उद्योत घट सिंधुको मथन है ॥ २९॥

अर्थ—सुबुद्धि है ते लक्ष्मी रत्न है, आत्मानुभव है ते कौस्तुभ मणि रत्न है, वैराग्य है ते कल्पवृक्ष रत्न है, सत्य वचन है ते शंख रत्न है, उद्यम है ते ऐरावती रत्न है, श्रद्धा है ते रंभा रत्न है, कर्मोदय है तें विष रत्न है, निर्जरा है ते कामधेनु रत्न है, आनन्द है ते अमृत रत्न है, ध्यान है ते चाप रत्न है, प्रेम है ते मद्य रत्न है, विवेक है ते वैद्य रत्न है, शुद्धभाव है ते चंद्र रत्न है, मन है ते तुरंग रत्न है, ऐसे चौदह भाव रत्न जहां ज्ञानके उद्योतते चित्तरूप समुद्रको मथन है तहां प्रगट होय है ॥ २९ ॥

॥ अब चौदा भाव रत्नका हेय अर उपादेय स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

किये अवस्थामें प्रगट, चौदह रत्न रसाल । कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल॥३०॥
रमा शंक विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय । मणि शंक गज कलप तरु, सुधा सोम आदेय ॥३१॥
इह विधि जो परभाव विष, वमे रमे निजरूप । सो साधक शिव पंथको, चिद्विवेक चिद्रूप॥३२॥

अर्थ—ऐसे साधक अवस्थामें ये चौदह भाव रत्न रसाल उपजे है ते प्रगट कहे । अब तिसमें कछु त्याज्य है अर कछु ग्राह्य है सो विधि निषेधकी रीत कहे है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी, शंख, विष, धनुष्य, मदिरा, वैद्य, धेनु, अर घोडा, ये आठ रत्न अस्थिर है ताते त्यागने योग्य है। अर मणि, रंभा, हत्ती;

कल्पवृक्ष, अमृत, चंद्र, ये छह रत्न स्थिर है ताते ग्रहण करने योग्य है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कर्मादिकके जे भाव है ते विष है तिस भावकूं जो वमन करे है अर आत्म स्वरूपके जे चिद्विवेक-चिद्रूप (ज्ञान अर ज्ञायक) भाव है तिसमें जो रमे है । सोही मोक्ष मार्गका साधक है ॥ ३२ ॥

टीपः—सात भाव व्यसन अर चौदा भाव रत्न कहे सो विचार पं० बनारसीदासकृत है.

॥ अब मोक्षपदका साधक जो ज्ञानदृष्टी है तिनकी व्यवस्था कहे है ॥ कवित्त ॥—

ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ॥
जिन्हके सहज रूप दिनदिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥
जे केवली प्रणित मारग मुख, चित्त चरण राखे ठहराय ॥
ते प्रवीण करि क्षीण मोह मल, अविचल होहि परम पद पाय ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो ज्ञान दृष्टीते अपने चित्तमें द्रव्यके गुणकूं अर पर्यायकूं अवलोकन करे है। अर स्वमेव दिनदिन प्रति स्याद्वादके साधनते द्रव्यका स्वरूप अधिक अधिक जाने है। अर जो केवली प्रणित (उपदेश्या धर्म) मार्ग है तिसकी श्रद्धा करके तिस मुजब आचरण करे है। सो प्रवीण मनुष्य मोह कर्मरूप मलका नाश करि मोक्षपद पाय अविचल होय है ॥ ३३ ॥

॥ अब मोक्षपदका क्रम अर मिथ्यात्वीकी व्यवस्था कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन्हे सम्यक्त मिथ्यात्व नाश करिके ॥
निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनि जिन्हे, कीनि मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिके ॥
सोहि शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनासी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके ॥

मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनंत काल भरिके ॥ ३४ ॥

अर्थ—संसारमें चाक समान फिरता फिरता जिसके संसारका अंत निकट आया है, अर मिथ्यात्वकूं नाश करिके जिसने सम्यक्त पाया है। अर जिसने राग द्वेष छोडिके मन रूप सुभूमि साध लीनी है, तथा विचार करिके अपने आतमस्वरूपकूं पछानि मोक्ष पदके कारणरूप कीनी है। सोही सम्यक्ती शुद्ध आत्मानुभवका अभ्यास करे है ताते तिसका कर्मरूप भ्रम रोग गलि जाय है, अर अविनाशी मोक्षपद प्राप्त होय है। अर मिथ्यात्वी है सो आतम स्वरूप पिछयाने नहि है, ताते अनंतकाल पर्यंत जगत जालमें डोले (जन्म मरण करते) फिरे है ॥ ३४ ॥

॥ अब जिसने आतम स्वरूपका अनुभव पाया है तिसका विलास कहे है॥ सवैया ३१ सा ॥—

जे जीव दरवरूप तथा परयायरूप, दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है ॥
जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा, विषैसों विमुख व्है विरागता वहत है॥
जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भाव दोउ भावनिकों, अनुभौ अभ्यास विषें एकता करत है॥
तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोक्ष, मारगके साधक अबाधक महत है ॥ ३५॥

अर्थ—जे जीव–द्रव्यार्थिक नयते अर पर्यायार्थिक नयते वस्तु (आत्मा) का शुद्ध स्वरूप जाणे है। अर जे अशुद्ध भाव (राग अर द्वेष) कूं सर्वस्वी त्यागे है, अर जे पंचेंद्रीयके विषयसे परान्मुख होय वैराग्यतारूप प्रवर्ते है। अर ग्रहण करवे योग्य तथा त्यागवे योग्य इन दोनूं भावनिकूं अनुभवके अभ्यासमें पररूप जानि आत्मानुभवकी एकता करे है। तेही ज्ञानक्रिया (शुद्ध आत्मानुभव)के आराधक है, ताते स्वभावतेही मोक्षमार्गके साधक है तिनकूं फेरि कर्मबाधा नहि होय ऐसे महिमावंत है ॥ ३५॥

॥ अब ज्ञानके क्रियाका स्वरूप कहे है दोहा ॥—

विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख। ता परणतिकों बुध कहे, ज्ञानक्रियासों मोख ॥३६॥

अर्थ—आत्मामें अनादिकालसे अज्ञानकी अशुद्धता है तिसका जहां नाश होय तहां ज्ञानकी शुद्धता पुष्ट होय। ऐसी आत्माकी शुद्ध परणती होय सो ज्ञानकी क्रिया है। तिस परणतीकूं बुधजन कहे है की इस ज्ञानक्रियासे मोक्ष होय ॥ ३६ ॥

॥ अब सम्यक्तसे क्रमक्रमे ज्ञानकी पूर्णता होय सो कहे है ॥ दोहा ॥—

जगी शुद्ध सम्यक् कला, बगी मोक्ष मग जोय। वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥३७॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम। जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारो धाम ॥३८॥

अर्थ—जिसकूं शुद्ध सम्यक्तकी कला जगी है सो मोक्षमार्गकूं चले है। अर सोही क्रमे क्रमे कर्मका चूर्ण करिके पूर्ण परमात्मा होय है ॥ ३७ ॥ जैसे घरमें जो दीपक धरे तो उजियाला होयही हैं। जिसके हृदयमें ऐसी सम्यक्तदशा भई तिसका नाम साधक है ॥ ३८ ॥

॥ अब सम्यक्तकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको ॥
जाकि मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जाणे निज मरम अवाची भगवानको ॥
जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको ॥
ताहि सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥३९॥

अर्थ—जिसके हृदयमें अनादि कालका मिथ्यात्व अंधकार हुता सो गया है, अर शुद्ध सम्यक्तरूप

सूर्यका प्रकाश भया है। जिसकी मोह निद्रा घट गई है अर ममताकी पलक लगीथी सो खुल गई है, ताते अपने अवाची भगवान (आत्मा) का मर्म जान्या है। अर जिसकूं ज्ञानका प्रकाश हुवा है तिसते श्रेष्ठ उद्यम जाग्रत भया है, अर साम्यभावरसरूप अमृत पानका सुख पुष्ट भया है। तिस सम्यक्ती विचक्षणके संसारका अंत निकट आया है, तथा तिसनेही मोक्षका सुगम मार्ग पाया है॥ ३९ ॥

॥ अब ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमको अनुभौ प्रगट भयो है ॥
जाके संकलप विकलपके विकार मीटि, सदाकाल एक भाव रस परिणयो है ॥
जाते बंध विधि परिहार मोक्ष अंगिकार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दियो है॥
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति, सोहि भवसागर उलंघि पार गयो है ॥४०॥

अर्थ—जिसके हृदयमें स्याद्वाद स्वरूपके अभ्यासते, शुद्ध आत्माका अनुभव प्रगट हुवा है। अर जिसके संकल्प विकल्पके विकार मिटिके, सदाकाल एक ज्ञानभावका रस परिणम्या है। ताते कर्मबंध विधिका परिहार जो संवर तिस संवरकूं धऱ्या है, अर निस्पृह दशाते मोक्षके सुविचारका पक्ष अंगिकार कीया है फेर तिस पक्षकूंही छोडि दीया है। ऐसे जाके ज्ञानकी महिमा दिन दिन प्रती उद्योत हुई है, सोहि भव सागर उलंघी पार पोहोंचो ऐसे जानना ॥ ४० ॥

॥ अब अनुभवमें नयका पक्ष नही सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये ॥
दीसे एक नयकी प्रति पक्षी अपर दूजी, नैको न दीखाय वाद विवादमें रहिये ॥

थिरता न होय विकलपकी तरंगनीमें, चंचलता वढे अनुभौ दशा न लहिये ॥
ताते जीव अचल अवाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥४१॥

अर्थ—जीव है सो एक नयसे आस्तिरूप है, एक नयसे नास्तिरूप है, एक नयसे अनेक रूप है, एक नयसे एकरूप है, एक नयसे स्थिररूप है अर एक नयसे अस्थिररूप है, इत्यादि जीवका नाना-प्रकारका स्वरूप कहे है। एक नयकूं दुसरा नय प्रतिपक्षी (उलटा) दीसे है, तिस ऊपर दूजा नय नही दिखायेतो वादविवाद होजाय । ताते नय भेदते विकल्पके तरंग उठे अर विकल्पमें चेतन (जीव) की स्थीरता न होय, तथा चंचलता बढे है तब अनुभवदशा ग्रहि न जाय । ताते अनुभवमें नयका पक्ष छोडिके, जीवद्रव्य अचल है अबाधित है अखंड है अर एक है, ऐसे स्वरूपकूं साधिके समाधि (अनुभव) सुख ग्रहण करिये ॥ ४१ ॥

॥ अव द्रव्य क्षेत्र काल अर भावते आत्माका अखंडितपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे एक पाको अम्र फल ताके चार अंश, रस जाली गुटलि छीलक जव मानिये ॥
येतो न बने पैं ऐसे बने जैसे वह फल, रूप रस गंध फास अखंड प्रमानिये ॥
तैसे एक जीवको दरव क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये ॥
द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप, चारो रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ४२ ॥

अर्थ—शिष्य कहे—जैसे एक पाके अंबके रस, जाली, गुटली, अर छाल, ये चार अंश है। तैसे जीवके द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ये चार अंश होयगे ? तिसकूं गुरू कहे हे शिष्य तूं अंशकूं खंड समझा सो द्रव्यमें खंड होय नही ताते तेरा दृष्टांततो न बना, पण जैसे एक आंब फलमें रूप रस

गंध अर स्पर्श ये भिन्न भिन्न नही अखंड है। तैसे जीवद्रव्यका द्रव्य क्षेत्र काल अर भावके भेदते भिन्नपणा नही अखंड है। द्रव्यरूपते आत्मा अखंड है, आत्माकी असंख्यात प्रदेश अवगाहना है ताते क्षेत्ररूपते आत्मा अखंड है, आत्मा कालरूपते पण त्रिकालवर्त्ती अखंड है, अर ज्ञायक भावरूपतेहूं आत्मा अखंड है, द्रव्य क्षेत्र काल अर भाव ऐसे चारी रूपसे आत्मा अखंड सत्तायुक्त है ॥४२॥

॥ अब ज्ञानका अर ज्ञेयका व्यवहारसे अर निश्चैसे स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञानतो हमारो रूप, ज्ञेय षट् द्रव्य सो हमारो रूप नांही है ॥
एक नै प्रमाण ऐसे दूजी अब कहूं जैंसे, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥
तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप शकति अनंत मुझ मांही है ॥
ता कारण वचनके भेद भेद कहे कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही है ॥४३॥

अर्थ—कोई ज्ञानवान कहे ज्ञान है सो आत्माका स्वरूप है, अर ज्ञेय (षट् द्रव्य) है सो आत्माका स्वरूप नही। ऐसे एक व्यवहारनयका प्रमाण कह्या अब दूजे निश्चयनयका प्रमाण कहूंहूं, जैसै वचन अक्षर अर अर्थ एक ठीकाणे है। तैसे ज्ञाता है सो आत्माका नाम है अर ज्ञान है सो चेतनाका प्रकार है, अर ते ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमे है सो शक्ती है ऐसे ज्ञेयरूप परिणमनेकी अनंतशक्ती आत्मामें है। ताते वचनके भेदते ज्ञानमें अर ज्ञेयमें भेद है ऐसा कोई भला कहो, परंतु निश्चयतें ज्ञाताके ज्ञानका अर ज्ञेयका विलास एक आत्माके सत्तामेंही है ॥ ४३ ॥

चो०—स्वपर प्रकाशक शकति हमारी। ताते वचन भेद भ्रम भारी ॥
ज्ञेय दशा द्विविधा परकाशी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४४ ॥

निजरूप आतम शक्ति, पर रूप पर वस्त। जिन्ह लखिलीनो पेच यह,तिन्ह लखि लियो समस्त४५

अर्थ—आत्माकी ज्ञानशक्ती ऐसी है की सो आपनेकोहूं जाने अर पर देहादिककोंहूं जाने है, ताते ज्ञान अर ज्ञेय ये वचन भेद है ते भारी भ्रम उपजावे है पण वस्तु एक है। ज्ञेयकी दशा दो प्रकारकी कही, एक निज (आत्म) रूप अर एक पररूप ॥ ४४ ॥ निजरूप आत्मशक्ती है और सब पर वस्तु है। जिसने यह पेच जानलीया तिसने समस्त तत्त्व जान लीया ॥ ४५ ॥

॥ अब स्याद्वादते जीवका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

करम अवस्थामें अशुद्ध सों विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है ॥
उभै नै प्रमाण समकाल शुद्धा शुद्धरूप, ऐसो परयाय धारी जीव नाना रंग है ॥
एकही समैमें त्रिधा रूप पैं तथापि याकि, अखंडित चेतना शकति सरवंग है ॥
यहै स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने, मूरख न माने जाको हियो दृग भंग है ॥ ४६॥

अर्थ—यह जीवकूं कार्माण देह अवस्थासे देखियेतो अशुद्ध दीखे है, अर कार्माण देहकूं छोडि केवल जीवकूं देखियेतो शुद्ध अंग दीखे है। अर येक कालमें इन दोनूं अवस्थासे देखियेतो शुद्ध तथा अशुद्धरूप दीखे है, ऐसे देहधारी जीवकी नाना प्रकार अवस्था है। एकही समयमें जीव त्रिधा रूप (अशुद्धरूप, शुद्धरूप, शुद्ध अशुद्धरूप,) दीखे है, पण तीनौ अवस्थामें जीवकी चेतनाशक्ति अखंडित सर्व अंगमें भरी रही है। यही स्याद्वाद है इसका स्वरूप जे स्याद्वादी ज्ञाता होय तेही जाणे है, अर जिसका हृदय सम्यग्दर्शन रहित है सो अज्ञानी स्याद्वादके स्वरूपकूं नाहि जाणे है ॥ ४६ ॥

निहचे दरव दृष्टि दीजे तव एक रूप, गुण परयाय भेद भावसों वहुत है ॥

असंख्य प्रदेश संयुगत सत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभासों लोकाऽलोकमान जुत है ॥
परजे तरंगनीके अंग छिन भंगुर है, चेतना शकति सों अखंडीत अचुत है ॥
सो है जीव जगत विनायक जगत सार, जाकि मौज महिमा अपार अदभुत है॥४७॥

अर्थ—निश्चय द्रव्यदृष्टीसे देखियें तो जीव एकरूप है, अर गुण परणतीके भेदभावसे देखियेतो जीव अनेक रूप है, प्रदेश प्रमाणसे देखियेतो जीवकी असंख्मात प्रदेश सत्ता है, अर ज्ञानके सत्तासे देखियेतो जीव लोकाऽलोक प्रमाण जाने है । पर्यायके विकल्पसे देखियेतो जीव क्षणक्षणमें पलटे है ताते क्षणभंगुर है, अर चेतनाके शक्तीसे देखियेतो जीव अखंडित अविनाशी है । ऐसा जीव है सो जगतमें मुख्य सार वस्तु है, जिसकी मोज अर महिमा अद्भुत है अर अपार है ॥ ४७ ॥

विभाव शकति परणतिसों विकल दीसे, शुद्ध चेतना विचारते सहज संत है ॥
करम संयोगसों कहावे गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा मुकत महंत है ॥
ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक परकासि, सत्ता परमाण सत्ता परकाशवंत है ॥
सो है जीव जानत जहांन कौतुक महान, जाकि कीरति कहान अनादि अनंत है॥४८॥

अर्थ—राग द्वेषादिक विभाव शक्तीके परणतीसों देखियेतो जीव विकल दीसे है, अर केवल चेतना शक्तीसे विचार करियेतो जीव स्वाभाविकही शांत दीसे है । कर्मके संयोगसे देखियेतो जीव चार गतिका अर चौऱ्यासी लक्ष योनिका निवासी कहावे है, अर निश्चय स्वरूपसे विचार करियेतो जीव सदा कर्मसे रहित मुक्तरूप महंत है । ज्ञायक स्वभावते विचार करियेतो यह जीव लोक अर अलोककूं देखन हारा है, अर सत्ताको विचार करियेतो जीवकी सत्ता प्रकाशवंत है । ऐसा जीव है सो जगतकूं

जाणे है सो महान महिमावंत है, तिसके पुरुषार्थकी कीर्ति अर कथा अनादिकालसे चालती आवे है अर ऐसेही अनंत काल पर्यंत रहेगी ॥ ४८ ॥ इति साधक स्वरूप ॥

॥ अव साध्यका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंच परकार ज्ञानावरणको नाश करि, प्रगटि प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है ॥
ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पैं एकताके रस पगी है ॥
याहि भांति रहेगी अनादिकाल परयंत, अनंत शकति फेरि अनंतसो लगी है ॥
नर देह देवलमें केवल स्वरूप शुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥४९॥

अर्थ—मोक्षका साधक है सो जब पंच प्रकार ज्ञानावरणी कर्मका नाश करें है, तब तिसकूं प्रसिद्ध केवलज्ञान [साध्य अवस्था] प्राप्त होयके तिसके प्रकाशमें जगत झगमगे है। सो ज्ञायक प्रकाश जगतके नाना प्रकार ज्ञेयकी अवस्था धरि अनेक रूप होय है, तथापि जाननेका स्वभाव नहि छोडे है। ऐसेही अनंतकाल पर्यंत रहें है, अर अनंत शक्ति धारण करि अनंत अवस्था पर्यंत रहसे। ऐसे मनुष्यके देहरूप देवलमें शुद्ध केवलज्ञानरूप ज्योतीकी शिखासमाधि प्राप्त होय है ॥४९॥ इति साध्य स्वरूप ॥

॥ अव अमृतचंद्र कलाके तीन अर्थ कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी ॥
अमल अबाधित अलख गुण गावना है, पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥
मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा, जैसे उभै जामलों किरण दीपे रविकी ॥
ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरे। अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ५० ॥

अर्थ—आत्माके अनुभवकी कला, टीकाकी कला, अर कविताकी कला, ये तीनूं कला सदाकाल अक्षर अर अर्थ (मोक्ष पदार्थ) से भरी है, अर काम धेनूके सेवा समान महा सुखदायक है। इसिमें निर्बाध शुद्ध परमात्माके गुणका वर्णन कह्या है, ताते परम पावन है सो भव्य जीवकूं इसिकी स्वाध्याय करना योग्य है। ये तीनूं कला मिथ्यात्वरूप अंधकारका नाश अर सम्यक्तकी वृद्धी करनहारी है, जैसे दोय प्रहर पर्यंत सूर्यका किरण चढता चढता बढे है। ऐसे अमृतचंद्र आचार्यकी कला त्रिधारूप (आत्माका अनुभव, ग्रंथकी टीका, अर काव्य कविता संबंधी वुद्धी,) धरे है ॥ ५० ॥

नाम साध्य साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक । समयसार नाटक सकल पूरण भयो सटीक ॥५१॥

अर्थ—ऐसे साधक अवस्था अर साध्य अवस्थाका बारमा अधिकार कह्या सो श्रीअमृतचंद्र आचार्यकृत समयसार नाटक ग्रंथकी संस्कृत कलशाबंध टीका है तिसके अनुसार भाषा अर वचनिका कही सो समस्त समाप्त भई ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको बारमा साध्य साधक द्वार बालबोध अर्थ सहित समाप्त भयो ॥ १२ ॥

॥ अब ग्रंथके अंतमें श्रीअमृतचंद्रआचार्य आलोचना करे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अब कवि पूरव दशा, कहे आपसों आप । सहज हर्ष मनमें धरे, करे न पश्चात्ताप ॥ १ ॥

अर्थ—अब अमृतचंद्र कवी है ते अपनी पूर्व स्थिति, आपसों आप कहे हैं। अर आपना आत्मस्वरूप जाननेसे स्वाभाविक हर्ष मनमें धरे है, पण पश्चात्ताप करे नही ॥ १ ॥

जो मैं आपा छांडि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न वसेरो तहां जहां मेरा स्थल है ॥
भोगनिको भोगि व्हैं करमको करता भयों, हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥
ऐसे विपरीत चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरे क्रीयाकी ममता ताको फल है ॥
ज्ञानदृष्टि भासी भयो क्रीयासों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनकोसो छल है ॥ २ ॥

अर्थ—जो मैं आतीत कालमें आत्म स्वरूप नाहि जाना अर पर पुद्गलादिककूं अपना मानलिया, तथा आत्मा वसनेका जो अनुभव स्थान है तहां वास कीया नही । पंचेंद्रियोंके विषयोंका भोक्ता होयके कर्मका कर्त्ता भयो, अर हमारे हृदयमें राग द्वेष अर मोहमल सदा हुतो । ऐसे अतीत कालमें विपरीत कर्म कीये, तेतो मेरे कर्मके फल है । अब मेरेको ज्ञानदृष्टी प्रकाशी है ताते कर्मसे उदासी भयो है, अर पूर्व अवस्था ऐसी भासी मानूं वह मोहनिद्रामेंका स्वप्नकासा मिथ्या खेल हुवा ॥ २ ॥

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरण भयो गरंथ । समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ ॥३॥

अर्थ—अमृतचंद्र मुनीराजकृत, समयसार नाटक ग्रंथ परिपूर्ण हुवा । यह समयसार नाटक ग्रंथ है सो, पंचम गती (मोक्ष) का प्रसिद्ध मार्ग है ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीअमृतचंद्राचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

॥ अब पंडित बनारसीदासकृत प्रस्तावना ॥ चौपाई ॥—

जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे । सीस नमाइ बनारसि वंदे ॥
फिरि मन मांहि विचारी ऐसा । नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ १ ॥

॥ अथ चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥

इस अध्यायमें श्रावकके आचारकाभी वर्णन है.

परम तत्व परिचै इस मांही । गुण स्थानककी रचना नांही ॥
यामें गुण स्थानक रस आवे । तो गरंथ अति शोभा पावे ॥ २ ॥

॥ अथ श्रीवनारसीदासकृत चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥

॥ मंगला चरण ॥ जिनप्रतिमाजीको नमस्कार ॥ दोहा ॥—

जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमै वनारसि ताहि । जाके भक्ति प्रभावसो, कीनो ग्रंथ निवाहि ॥१॥

अर्थ—जिन प्रतिमा है सो जिनेश्वर समानहि निर्विकार मुद्रा है, तिस निर्विकार प्रतिमाकूं बनारसीदास नमस्कार करे है । जिनके भक्तिके प्रभावसे ग्रंथका गहनार्थहूं सुलभ हो गया है ॥ १ ॥

॥ अव जिनप्रतिमाके दर्शनका माहात्म्य कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके मुख दरससों भगतके नैन नीकों, थिरताकी वानी वढे चंचलता विनसी ॥
मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां, जाके आगे इंद्रकी विभूति दीसे तिनसी ॥
जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदेमें, सोइ शुद्ध मति होइ हुति जो मलिनसी ॥
कहत वनारसी सुमहिमा प्रगट जाकि, सो है जिनकी छवि सु विद्यमान जिनसी ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीजिनप्रतिमाके मुखका दर्शन करनेसे, भक्तजनके नेत्रकी चंचलता मिटिके स्थिरता बानी बढे है । तथा पद्मासन दिगंबर मुद्राकूं देखते ही केवलीभगवानके स्वरूपकी याद आवे है, अर तिस निर्विकार दिगंबर स्वरूपके आगे इंद्रादिक देवताके शृंगार वैभवादिक शोभा तृणवत् दीसे है । केवली भगवानके गुणानुवाद (चौतीस अतीशय, आठ प्रातिहार्य, अर अनंत चतुष्टय) जपनेसे भक्तके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होय है, अर पूर्वे जो मलीन बुद्धी हुती सो शुद्ध होय है । वनारसीदास कहे है की जिनप्रतिमाकी ऐसी प्रत्यक्ष महिमा है, ताते जिनेंद्रकी प्रतिमा साक्षात जिनेश्वरके समान है ॥ २ ॥

॥ अब जिनप्रतिमाके भक्तका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहर लसि, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी ममारखी ॥
सैलि जिन शासनकी फैलि जाके घट भयो, गरवको त्यागि षट दरवको पारखी ॥
आगमके अक्षर परे है जाके श्रवणमें, हिरदे भंडारमें समानि वाणि आरखी ॥
कहत बनारसी अलप भव थीति जाकि, सोइ जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें सम्यग्दर्शनकी लहेर लगी है, अर मिथ्यात्वमोहरूप निद्राकी मूर्छा विनाश हुई है। अर जिसके हृदयमें जिनशासनकी सैलि (सत्यार्थ देव, शास्त्र अर गुरूकी प्रतीति) फैली है, अर जो अष्ट गर्वको त्यागीके षट् द्रव्यका पारखी हुवा है। अर जिसके श्रवणमें सिद्धांत शास्त्रका उपदेश पडा है, ताते हृदयरूप भंडारमें ऋषेश्वरकी वाणी समाय रही है। अर तैसेही जिसकी भव-स्थिति अल्प रही है, सोही निकट भव्यजीव जिन प्रतिमाकूं साक्षात जिनेश्वरके समान माने है ऐसे बनारसीदास कहे है॥ ३ ॥

अब प्रस्तावनाके दोय चौपाईका अर्थ कहे है ॥—

अर्थ—जिनप्रतिमा है सो मनुष्यजनका मिथ्यात्व नाश करनेकूं कारण है, तिस जिनप्रतिमाकूं बनारसीदास मस्तक नमायके वंदना करे है, । अर फिर मनमें ऐसा विचार करे की, समयसार ग्रंथमें जैसे आत्मतत्व है तैसे कह्या है ॥ ४ ॥ अर इस ग्रंथमें आत्मतत्वका परिचै है, परंतु आत्माके गुण स्थानककी रचना नही है। ताते इसिमें गुण स्थानकका रस आवेतो, ग्रंथ अति शोभा पावेगा ॥ ५ ॥

॥ अब गुणस्थानका स्वरूप वर्णन करे है॥ दोहा ॥—

यह विचारि संक्षेपसों, गुण स्थानक रस चोज। वर्णन करे बनारसी, कारण शिव पथ खोज ॥६॥

नियत एक व्यवहारसों, जीव चतुर्दश भेद । रंग योग बहु विधि भयो, ज्यों पट सहज सुपेद ॥ ७॥

अर्थ—ऐसे विचार करके, संक्षपते गुणस्थानके चीजकूं बनारसीदास वर्णन करे है । ते वर्णन मोक्ष मार्गका कारण अर मोक्ष मार्गकी खोज (पिछान) है ॥ ६ ॥ निश्चयते जीव एकरूप है, अर व्यवहारते जीव चौदा भेदरूप है । जैसे वस्त्र स्वाभाविक सुपेद है परंतु रंगके संयोगते वहुत प्रकारके होय है ॥ ७ ॥

॥ अव जीवके जे चतुर्दश गुणस्थान है तिनके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम मिथ्यांत दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथ अव्रत पंचमो व्रत रंच है ॥
छट्ठो परमत्त सातमो अपरमत्त नाम, आठमो अपूरव करण सुख संच है ॥
नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सूक्षम लोभ, एकादशमो सु उपशांत मोह वंच है ॥
द्वादशमो क्षीण मोह तेरहो संयोगी जिन, चौदमो अयोगी जाकी थीति अंक पंच है॥८॥

अर्थ—प्रथम गुणस्थानका नाम मिथ्यात्व है ॥ १ ॥ दूजे गुणस्थानका नाम सासादन है ॥ २ ॥ तीजे गुणस्थानका नाम मिश्र है ॥ ३ ॥ चौथे गुणस्थानका नाम अविरत है ॥ ४ ॥ पांचवें गुणस्थानका नाम अणुव्रत है ॥ ५ ॥ छट्टे गुणस्थानका नाम प्रमत्त (महाव्रत) है ॥ ६ ॥ सातवे गुणस्थानका नाम अप्रमत है ॥ ७ ॥ आठवे गुणस्थानका नाम अपूर्व करण सुख संचय है ॥ ८ ॥ नववे गुणस्थानका नाम अनिवृत्ति करण भाव है ॥ ९ ॥ दशवे गुणस्थानका नाम सूक्ष्म लोभ है ॥१०॥ ग्यारवे गुणस्थानका नाम उपशांत मोह है ॥ ११ ॥ बारवे गुणस्थानका नाम क्षीण मोह है ॥ १२॥ तेरवे गुणस्थानका नाम सयोगी जिन है ॥ १३ ॥ चौदवे गुणस्थानका नाम अयोगी जिन है ॥१४॥ इस चौदवे गुणस्थानकी स्थिति पंच ह्रस्व स्वर (अ इ उ ऋ ऌ) उच्चारवेकूं जितना समय लागे तितनी है ॥ ८ ॥

॥ अथ प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान प्रारंभ ॥ १ ॥ दोहा ॥—

वरने सब गुणस्थानके, नाम चतुर्दश सार। अब वरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसे चौदह गुणस्थानके, सार्थक नाम वर्णन करे। अब प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें पंच प्रकार (भेद) है तिनका वर्णन कहूंहूं ॥ ९ ॥

॥ अब मिथ्यात्व गुणस्थानमें पंच प्रकार है तिसके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात्व अभि ग्रहीक, दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है ॥
तीजो विनै मिथ्यात्व अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संशै जहां चित्त भोर कोसो पोत है ॥
पांचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप, जाके उदै चेतन अचेतनसा होत है ॥
येई पांचौं मिथ्यात्व जीवको जगमें भ्रमावे, इनको विनाश समकीतको उदोत है ॥१०॥

अर्थ—एकांत पक्षका ग्राही प्रथम मिथ्यात्व है तिसका नाम अभिग्रहिक है, विपरीत पक्षका ग्राही दूजा मिथ्यात्व है तिसका गोत (नाम) अभिनिवेशिक हैं। विनयपक्षका ग्राही तीजा मिथ्यात्व है तिसका नाम अनाभिग्रहिक है, भ्रमरूप चोथो मिथ्यात्व है तिसका नाम संशय मिथ्यात्व है। अज्ञान गहलरूप पांचवा मिथ्यात्व है तिसका नाम अनाभोगिक है, इस अज्ञान पणाते जीव बेशुद्ध होय हैं। ये पांचौं मिथ्यात्व जीवकूं जगतमें भ्रमावे है, इस पांचू मिथ्यात्वका नाश होय तब सम्यक्त प्राप्त होय है ॥१०॥

॥ अब पांचौं मिथ्यात्वका जुदा जुदा स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

जो एकांत नय पक्ष गहि, छके कहावे दक्ष। सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११ ॥
ग्रंथ उकति पथ उथपे, थापे कुमत स्वकीय। सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीति जीय ॥ १२ ॥

कुगुरु, गिने समानजु कोय। नमै भक्तिसु सवनकूं, विनै मिथ्यात्वी सोय ॥१३॥
जो नाना विकल्प गहे, रहे हियें हैरान। थिर व्है तत्व न सद्दहे, सो जिय संशयवान ॥ १४ ॥
जाको तन दुख दहलसें, सुरति होत नहि रंच। गहलरूप वर्ते सदा, सो अज्ञान तिर्यंच ॥ १५ ॥

अर्थ—सात नय है तिसमें कोइ एक नयका पक्ष ग्रहण करके आपके जानपणामें गर्क होय अर आपकूं तत्ववेत्ता कहवाय। सो मनुष्य प्रत्यक्ष एकांत मिथ्यात्वी है ॥ ११ ॥ जो सिद्धांत ग्रंथके वचन उथापन करके आप नवीन कुमतकूं स्थापे। अर अपके सुयश होनेके कारण आपकूं गुरुपणा माने सो विपरीत मिथ्यात्वी है ॥ १२ ॥ सुदेव अर कुदेवकूं तथा सुगुरु अर कुगुरुकूं जो कोई समान समझे है। अर तिन सबकूं नमै है भक्ति करे है सो विनय मिथ्यात्वी है ॥ १३ ॥ जो अनेक संशय ग्रहण करके हैराण होय रहें है। अर अपने चित्तकूं स्थिर करके तत्वकी श्रद्धा नहि करे सो संशय मिथ्यात्वी है ॥ १४ ॥ जो पर शरीरके दुःखकी रंच मात्रभी याद करेनही। अर जो सदा गहल (निर्दय) रूप वर्ते सो अज्ञान मिथ्यात्वी पशू समान है ॥ १५ ॥

॥ अब सादि मिथ्यात्वका अर अनादि मिथ्यात्वका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

पंच भेद मिथ्यात्वके, कहे जिनागम जोय। सादि अनादि स्वरूप अब, कहूं अवस्था दोय ॥१६॥
जो मिथ्यात्व दल उपसमें, ग्रंथि भेदि बुध होय। फिरि आवे मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्यात्वी सोय॥१७॥
जिन्हे ग्रंथि भेदी नही, ममता मगन सदीव। सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुखजीव॥१८॥
कह्या प्रथम गुणस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान। अल्परूप अब वर्णवुं, सासादन गुणस्थान ॥१९॥

अर्थ—ऐसे मिथ्यात्वके पांच भेद जिनशास्त्रानुसार देखिके कहे। अब सादि मिथ्यात्व अर अनादि

मिथ्यात्व इन दोय अवस्थाका स्वरूप कहूंहूं ॥ १६ ॥ जो मिथ्यात्वके दल (मिथ्यात्व, मिश्र मिथ्यात्व अर सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व, इन तीनू प्रकृती) कूं उमशम कराय मिथ्यात्वके ग्रंथीकूं भेदि (स्व अर परका स्वरूप जाननहार भेदज्ञान प्रगट होय)। फेर मिथ्यात्वमें आजाय सो सादि मिथ्यात्वी है ॥ १७ ॥ जिसने मिथ्यात्वकी ग्रंथी भेदी नही (स्व परका भेद जाना नही) सदाकाल देहमें आत्मपणाकी बुद्धि राखे है। ऐसा जो विकल आत्मस्वरूपते बहिर्मुख है सो अनादि मिथ्यात्वी है ॥ १८ ॥ ऐसे प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानका अभिधान (स्वरूप) कह्या सो समाप्त भया ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीय सासादन गुणस्थान प्रारंभ ॥ २ ॥ स० ३१ सा ॥—

जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीर खांड, वोन करे पीछेके लगार स्वाद पावे है ॥
तैसे चढि चौथे पांचे छट्ठे एक गुणस्थान, काहूं उपशमीकूं कषाय उदै आवे है ॥
ताहि समैं तहांसे गीरे प्रधान दशा त्यागि, मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्है धावे है ॥
बीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे, सोइ सासादन गुणस्थानक कहावे है ॥२०॥

अर्थ—जैसे कोई क्षुधावान मनुष्यने खीर शक्कर खाई, अर तिसकूं वमन होजायतो वमनके पीछेसे खीर शक्करका लगार स्वाद आवे है। तैसे कोई जीव उपशम सम्यक्त ग्रहण करके चौथे वा पांचवे वा छट्ठे इनमें कोई एक गुणस्थान चढजाय, अर तहां अनंतानुबंधी कषायका उदय आवेतो। उसही वक्त तिस गुणस्थानते गिरे अर सम्यक्तकूं त्यागिके, अधोमुख होय नीचे मिथ्यात्व गुणस्थानके तरफ धावे है। तब (सम्यक्त त्यागेबाद अर मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होनेतक बीचमें) एक समय काल प्रमाण रहे वा उत्कृष्ट छह आवली काल पर्यंत रहे, सो सासादन गुणस्थान कहावे है ॥ २० ॥

सासादन गुणस्थान यह, भयो समापत बीय। मिश्रनाम गुणस्थान अब, वर्णन करूं त्रितीय ॥२१॥

अर्थ—ऐसे दूजे सासादन नामा गुणस्थानका कथन समाप्त भया ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीय मिश्र गुणस्थान प्रारंभ ॥ ३ ॥ स० ३१ सा ॥—

उपशमि समकीति कैतो सादि मिथ्यामति, दुहूंनको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है ॥
अनंतानुबंधी चोकरीको उदै नांहि जामें, मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहे हैं ॥
जहां सद्दहन सत्यासत्य रूप सम काल, ज्ञानभाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहे है ॥
याकि थीति अंतर मुहूरत उभयरूप, ऐसो मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥ २२ ॥

अर्थ—उपशम सम्यक्तीकूं मिश्र मिथ्यात्व प्रकृतीका उदय आजायतो सम्यक्तते छूटि तिसकूं मिश्र गुणस्थान प्राप्त होय है, अथवा सादि मिथ्यात्वी है सो मिथ्यात्व प्रकृतीका अभाव करे अर फेर जो मिश्रमिथ्यात्व प्रकृतीका उदय आजायतो तिसकूं मिश्र गुणस्थान होय है। इस मिश्र गुणस्थानमें अनंतानुबंधी चोकडीका तथा मिथ्यात्व प्रकृतीका तथा सम्यक् प्रकृती मिथ्यात्वका उदय नही, मात्र मिश्र मिथ्यात्व प्रकृतीका उदय है। यहां समकालमें सत्य अर असत्य दोनूंरूप श्रद्धान रहे है, अर ज्ञानभाव तथा मिथ्यात्वभाव इन दोनूकी भिश्रधारा वहे है। इस गुणस्थानकी जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है, [जघन्य स्थिति एक समयकी है, ऐसा एक प्रतीमें लिखा है.] ऐसे मिश्र गुणस्थानका स्वरूप आचार्यजीने कह्यो है ॥ २२ ॥

मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भाखि। अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहूं जिनागम साखि २३

अर्थ—ऐसे तीजे मिश्र गुणस्थानका कथन यथामति कह्या सो समाप्त भया ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ सम्यक्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ४ ॥ स० ३१ सा ॥—

केई जीव समकीत पाई अर्ध पुदगल, परावर्तकाल तांई चोखे होई चित्तके ॥
केई एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोक्ष वित्तके ॥
ताते अंतर महूरतसों अर्ध पुद्गललों, जेते समै होहि तेते भेद समकितके ॥
जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तवहीसों गुण गहे दोष दहे इतके ॥ २४ ॥

अर्थ—केई जीव सम्यक्त ग्रहण करके अर्द्ध पुद्गल परावर्तन कालपर्यंत चित्तके शुद्ध होय मोक्षकौ जाय है । अर केई जीव मिथ्यात्व गाठीकूं भेदे है अर सम्यक्त ग्रहण करके अंतर्मुहूर्तमें चारौं गतीका मार्ग उलंघी मोक्षरूप वित्तका सुख भोगे है । ताते सम्यक्त ग्रहण करेबाद संसारके भ्रमणकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है, उत्कृष्ट स्थिति अर्ध पुद्गल परावर्तनकी है, अर अर्ध पुद्गल परावर्तनके जितने समय है तितने सम्यक्तके भेद होय है पण मोक्ष जानेके काल अपेक्षेसे होय है सो एक एक समयकी वृद्धी करता जितने भेद होय है सो सब मध्यम स्थितिके भेद है । भावार्थ—जीव जब सम्यक्त ग्रहण करे तबसे आत्मगुण धारण करने लगजाय अर संसारके दोष क्षय करने लगजाय है ॥ २४ ॥

॥ अव सम्यक्त उत्पत्तीकूं अंतरंग कारण आत्माके शुद्ध परिणाम है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

अथ अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय । मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥

अर्थ—अधःकरण (आत्माके शुद्ध परिणाम) अपूर्व करण (पूर्वे नहि हुवे ऐसे शुद्ध परिणाम) अर अनिवृत्ति करण (नहि पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम) इन तीन करणरूप जो कोई परिणाम करे । तब तिसकी मिथ्यात्वरूप गांठ विदारण होयके आत्मानुभव गुण प्रगटे सोही सम्यक्त है ॥ २५ ॥

॥ अव सम्यक्तके अष्ट स्वरूप है तिनंके नाम कहे है॥ दोहा ॥—

समकित उतपति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश। अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणो विवरण तास॥

अर्थ—सम्यक्त, उत्पत्ति, चिन्ह, गुण, भूषख, दोष, नाश, अतिचार, ये आठ स्वरूप है ॥ २६ ॥

॥ अंव सम्यक्त, उत्पत्ति, चिन्ह, अर गुण इनका स्वरूप कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिन दिन रीति गहे समताकी ॥
छिन छिन करे सत्यको साको। समकित नाम कहावे ताको ॥ २७ ॥

कैतो सहज स्वभावके, उपदेशे गुरु कोय। चहुगति सैनी जीवको, सम्यक् दर्शन होय ॥२८॥
आपा परिचै विषें, उपजे नहि संदेह। सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ २९ ॥
करुणा वत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ। समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥३०॥

अर्थ—जिसकूं आत्माकी सत्य प्रतीति उपजे है, अर दिन दिन प्रती ज्यादा ज्यादा समता धारे है। अर जो क्षणक्षणमें न पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम करे है, तिसका नाम सम्यक्त है ॥ २७ ॥ कोईकूं सहज स्वभावसे सम्यक्त उपजे है अर कोईकूं गुरुके उपदेशसे सम्यक्त उपजे है। ऐसे चारौं गतीमें सैनी (मन) है तिस जीवकूं सम्यग्दर्शन होय है ॥ २८ ॥ आत्म अनुभवमें संशय नहि उपजे। अर कपट रहित वैराग्य अवस्था होय ये सम्यक्तके लक्षण है ॥ २९ ॥ करुणा, मैत्री, सज्जनता, स्वलघुता, साम्यभाव, श्रद्धा, उदासीनता, धर्मप्रेम, ये सम्यक्तके आठ गुण है ॥ ३० ॥

॥ अव सम्यक्तके पांच भूषण अर पंचवीस दूषण है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

चित्त प्रभावना भावयुत, हेय उपादे वाणि। धीरज हरष प्रवीणता, भूषण पंच वखाणि ॥ ३१ ॥

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष । तीन मूढता संयुकत, दोष पचीस एष ॥ ३२ ॥

अर्थ—ज्ञानकी वृद्धि करना, ज्ञानवंत होके हेय अर उपादेयरूप उपदेश देना, दुःखमें धैर्य धरना, सदा संतोषी रहना, तत्वमें प्रवीण होना, ये सम्यक्तके पांच भूषण है ॥३१॥ आठ महा मद है, आठ मल है, छह आयतन विशेष है, तीन मूढता है, ऐसे पंचवीस दोष है ॥ ३२ ॥

॥ अव आठ मद अर आठ मल कहे है ॥ दोहा ॥—

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार। इनको गर्वजु कीजिये, यह मद अष्टप्रकार ॥ ३३ ॥

चो०—अशंका अस्थिरता वंछा। ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ॥
वत्सल रहित दोष पर भाखे। चित्त प्रभावना मांहि न राखे ॥ ३४ ॥

अर्थ—जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार, इनका गर्व करना यह आठ महा मद है ॥ ३३ ॥ शास्त्रमें संशय, धर्ममें अस्थिरता, विषयकी वांछा, देहमें ममत्व, अशुभकी ग्लानि, ज्ञानीका द्वेष, परकी निंदा, ज्ञानका निषेध, ये आठ मल है ॥ ३४ ॥

॥ अव षट आयतन अर तीन मूढता कहे है ॥ दोहा ॥—

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म। इनकी करे सराहना, इह षडायतन कर्म ॥ ३५ ॥
देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष। आठ आठ षद् तीन मिलि, ये पचीस सव दोष ॥३६॥

अर्थ—कुगुरु, कुदेव, अर कुधर्म, इन तीनौंकी अर तीनौंके भक्तकी प्रशंसा करना सो छह आयतन है ॥ ३५ ॥ सुदेव कैसा है अर कुदेव कैंसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य देवमूढ है, सुगुरु कैसा है अर कुगुरु कैसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य गुरुमूढ है, धर्म कैसा है अर अधर्म

कैसा है इनका जानपणा नही सो मनुष्य धर्ममूढ है, ये तीन मूढ है सो मिथ्यात्वकूं पुष्ट करनेवाले है। आठ गर्व, आठ मल, छह आयतन, अर तीन मूढ ऐसे सब मिलके पंचवीस दोष है ते सम्यक्तकूं क्षय करनेवाले है तातै इनकूं त्याग करना योग्य है ॥ ३६ ॥

॥ अब सम्यक्तके नाशक पांच दशा अर पांच अतिचार है सो कहे है ॥ दोहा ॥—

ज्ञानगर्व मति मंदता, निठुर वचन उदगार। रुद्रभाव आलस दशा, नाश पंच परकार ॥३७॥
लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव। मिथ्या आगमकी भगती, मृषा दर्शनी सेव॥३८॥

चो०—अतीचार ये पंच प्रकारा। समल करहि समकितकी धारा ॥
दूषण भूषण गति अनुसरनी। दशा आठ समकितकी वरनी॥ ३९ ॥

अर्थ—ज्ञानका गर्व, मतीकी मंदता, निर्दय वचन, क्रोधी परिणाम, अर आळस, इन पांचौं दशासे सम्यक्तका नाश होय है ॥ ३७ ॥ मेरे सम्यक्त प्रवृत्तिकूं लोक हास्य करेंगे ऐसा भय राखना, पंच इंद्रियोंके भोगकी रुचि राखना, आगे कैसे होयगा ऐसी चिंता करना, मिथ्या शास्त्रकी भक्ती करना, अर मिथ्या देवकी सेवा (नमस्कार वा पूजा) करना, ये पांच अतिचार दोष है ॥ ३८ ॥ इन पांच अतिचार दोषोंते सम्यक्तकी उज्जल धारा मलीन होय है। ऐसे सम्यक्तके अष्ट स्वरूपका वर्णन कीया सो जिसकी जैसी गती होनेवाली है तैसा दूषण अथवा भूषण अर गुण अंगीकार करेगा ॥ ३९ ॥

॥ अब मोहनी कर्मके सात प्रकृतीका क्षय वा उपशम होय तब सम्यक्त उपजे है सो कहे है॥दोहा ॥ ३१ सा॥—

प्रकृति सात मोहकी, कहूं जिनागम जोय। जिन्हका उदै निवारिके, सम्यक् दर्शन होय ॥ ४० ॥
चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी ॥

बीजी महा मान रस भीजी मायामयी तीजि, चौथे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी ॥
पांचवी मिथ्यातमति छट्ठी मिश्र परणति, सातवी समै प्रकृति समकित मोहनी ॥
येई षट विंग वनितासी एक कुतियासि, सातो मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ ४१ ॥

अर्थ—अब मोहनीय कर्मकी सात प्रकृति जिनागमकूं देखिके कहूंहूं । जिसका उदय निवारनेसे सम्यग्दर्शन प्रगट होय है ॥ ३९ ॥ चारित्र मोहनीयकी पंचवीस अर दर्शन मोहनीयकी तीन ऐसे मोहनीय कर्मकी अठाईस प्रकृती है परंतु तिसिमें चारित्र मोहनीयकी चार अर दर्शन मोहनीयकी तीन ये सात प्रकृती है सो सम्यक्तका नाश करनेवाली है, तिनमें प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी (सत्यवस्तुके अजानपणा विषयी) महा क्रोध है। दूजी प्रकृती महा मान है तथा तीजी प्रकृती महा माया है। चौथी प्रकृती महा लोभ है सो परिग्रहकूं पुष्ट करनेवाली है । पांचवी प्रकृती मिथ्यात्वबुद्धि करनेवाली है अर छट्ठि प्रकृति सत्य अर असत्य इन दोनूंकी मिश्रबुद्धि करनेवाली है, अर सातवी प्रकृति है सो पहिले छहूं प्रकृतीकूं छोडनेवाली सम्यक्त मोहनीयकी है । इसिमें पहली छह प्रकृती व्याघ्रिणी समान (सम्यक्तकूं भक्षण करे) है अर सातवी प्रकृति कुतिया समान डरावे (सम्यक्तकूं मलीन करे) है इसिका पण भरोसा नही, मोहनीयकी सातूं हूं प्रकृति आत्माके सद्भाव (ज्ञान) कूं रोके है ॥ ४१ ॥

॥ अव मोहके सात प्रकृतीसे सम्यक्तमें भेद होय है सो कहै है ॥ छपै छंद ॥—

सात प्रकृति उपशमहि, जासु सो उपशम मंडित । सात प्रकृति क्षय करन हार,
क्षायिक अखंडित । सात मांहि कछु क्षपे, कछु उपशम करि रक्खे । सो क्षय
उपशमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे । षट्र प्रकृति उपशमे वा क्षपे, अथवा

क्षय उपशम करे। सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरे॥ ४२॥

अर्थ—ऊपरके कवित्तमें कही है तिस मोहनीयके सात प्रकृतीका उपशम जिसके होय सो उपशम सम्यक्त है। अर सात प्रकृतीका क्षय करे सो क्षायक सम्यक्त अक्षय है। अर सात प्रकृतीमें कछु प्रकृतीका क्षय अर कछु प्रकृतीका उपशम कर राखे है। सो क्षयोपशम सम्यक्त है ते मिश्ररूप सम्यक्तके रसकूं आस्वादे है। अर छह प्रकृतीका उपशप करे अथवा क्षय करें अथवा क्षयोपशम करे अर एक प्रकृतीका उदय होय सो वेदक सम्यक्त है॥ ४२॥

॥ अब सम्यक्तके नव भेद है सो कहे है॥ दोहा॥ सोरठा॥—

क्षयोपशम वर्तें त्रिविधि, वेदक चार प्रकार। क्षायक उपशम जुगल युत, नौधा समकित धार॥४३॥
चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय। क्षै पट् उपशम एकयों, क्षयोपशम त्रिक होय॥४४॥
जहां चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम इक वेद। क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥४५॥
पंच क्षपे इक उपशमे, इक वेदे जिह ठोर। सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और॥४६॥
क्षय षट् वेदे इक जो, क्षायक वेदक सोय,। पट् उपशम इकविदे, उपशम वेदक होय॥४७॥

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्तके तीन भेद, वेदक सम्यक्तके चार भेद, क्षायक सम्यक्तका एक भेद अर उपशम सम्यक्तका एक भेद, ऐसे सम्यक्तके नव भेद है॥ ४३॥ अब क्षयोपशमके तीन भेद कहे है—अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति क्षय करे अर दर्शन मोहकी तीन प्रकृती उपशम करे सो प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त है॥१॥ अनंतानुबंधीकी चार अर मिथ्यात्वकी एक ऐसे पांच प्रकृतीका क्षय करे अर दर्शन मोहके दोय प्रकृतीका उपशम करे सो द्वितीय क्षयोपशम सम्यक्त है॥२॥ अनंतानुबंधकी चार

मिथ्यात्वकी एक अर मिश्र मिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका क्षय करे अर दर्शन मोहनीयके एक प्रकृतीका उपशम करे सो तृतीय क्षयोपशम सम्यक्त है ॥३॥४४॥ अब वेदक सम्यक्तके चार भेद कहे है—अनंतानुबंधीकी चार प्रकृती क्षय करे अर मिथ्यात्व तथा मिश्र मिथ्यात्व इन दोय प्रकृतीका उपशम करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो प्रथम क्षयोपशम वेदक सम्यक्त है ॥१॥४५॥ अनंतानुबंधीकी चार अर मिथ्यात्वकी एक ऐसे पांच प्रकृतीका क्षय करे अर मिश्र मिथ्यात्वके एक प्रकृतीका उपशम करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो दुतिय क्षयोपशम वेदके सम्यक्त है॥२॥४६॥ अनंतानुबंधीकी चार मिथ्यात्वकी एक अर मिश्र मिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका क्षय करे अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो क्षायक वेदक सम्यक्त है ॥ ३ ॥ अनंतानुबंधी चार, मिथ्यात्वकी एक अर मिश्रमिथ्यात्वकी एक ऐसे छह प्रकृतीका उपशम अर सम्यक्त मोहनीके एक प्रकृतीका उदय होय सो उपशम वेदक सम्यक्त है ॥ ४ ॥ ४७ ॥

उपशम क्षायककी दशा, पूरव षट् पद मांहि। कहि अब पुन रुक्तिके, कारण वरणी नांहि ॥४८॥

अर्थ—उपशम सम्यक्तका अर क्षायक सम्यक्तका स्वरूप ४२ वे छपैयामें कह्या है ॥ ४८ ॥

क्षयोपशम वेदक क्षै, उपशम समकित चार। तीन चार इक इक मिलत, सब नव भेद विचार॥४९॥
अब निश्चै व्यवहार,सामान्य अर विशेष विधि। कहूं चार परकार, रचना समकित भूमिकी ॥५०॥

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्त, वेदक सम्यक्त, क्षायक सम्यक्त, अर उपशम सम्यक्त, ऐसे मूल सम्यक्तके चार भेद है। अर क्षयोपशम सम्यक्तके तीन भेद, वेदक सम्यक्तके चार भेद, क्षायक सम्यक्तका एक भेद, अर उपशम सम्यक्तका एक भेद, ऐसे सब मिलिके सम्यक्तके उत्तर भेद नव है ॥ ४९ ॥

॥ अब निश्चै, व्यवहार, सामान्य, अर विशेप, ऐसे सम्यक्तके चार प्रकार है सो कहे है ॥ ३१ सा ॥ सोरठा ॥—

मिथ्यामति गंठि भेदिं जगी निरमल ज्योति। जोगसों अतीत सो तो निहचै प्रमानिये ॥
वहै दुंद दशासों कहावे जोग मुद्रा धारि। मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥
चेतना चिहन पंहिचानि आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते सामान्य वखानिये ॥
करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

अर्थ—मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अर अंतराय इन चार घातिया कर्मका क्षय करि जिसकूं निर्मल आत्मज्योति जगी होय, अर मन वचन काय इनिके योगसे रहित होय सो (केवलज्ञानी) निश्चय सम्यक्त है। अर दिगंबर दीक्षा धारण करके जो आत्मध्यानहूं धरे अर आहारादिककी इच्छाभी करे ऐसे द्वंद्व दशाकूं वर्त्ते है, सो मति अर श्रुति ज्ञानका भेद जो पर्यंत है तो पर्यंत व्यवहार सम्यक्त है। अर जो आत्मस्वरूप पहचाने पण पुद्गल है कर्मके सुख अर दुःखकूं वेदे है, अर चारित्र मोहनी कर्मके उदते अल्प पुरुषार्थ (अणुव्रत) धरे वा अविरति रहे सो सामान्य सम्यक्त है। अर आत्मा गुणी है ज्ञान गुण है ऐसे भेदाभेदका जो विस्ताररूप विचार करे, अर त्यागने योग्य वस्तुकू त्यागे तथा ग्रहण करने योग्य वस्तुकूं ग्रहण करे सो विशेष सम्यक्त है ॥५१॥

तिथि सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक वा। अविरत समकित रीत, यह चतुर्थ गुणस्थान इति ॥५२॥

अर्थ—चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है ॥ ५२ ॥ ऐसे चौथे अविरत गुणस्थानका कथन समाप्त भया ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम अणुव्रत गुणस्थान प्रारंभ ॥ ५ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानके प्रारंभमें श्रावकके इकवीस गुण कहे है ॥ दोहा ॥ सवैया ३१ सा ॥—

अब वरनूं इकवीस गुण, अर बावीस अभक्ष। जिन्हके संग्रह त्यागसों, शोभे श्रावक पक्ष ॥५२॥

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत, पर दोषकों ढकैया पर उपकारी है ॥
सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥
विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ॥
सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है ॥५३॥

अर्थ—अब इकवीस गुणका अर बावीस अभक्षका वर्णन करूहूं। ते इकवीस गुण ग्रहण करनेसे अर बावीस अभक्ष त्याग करनेसे श्रावकके पांचवे गुणस्थान शोभे है ॥ ५२ ॥ लज्जावंत, दयावंत, क्षमावंत, श्रद्धावंत, परके दोषकूं ढाकणहार, परोपकारी, सौम्यदृष्टी, गुणग्राही, सज्जन, सबको इष्ट, सत्यपक्षी, मिष्टवचनी, दीर्घ विचारी, विशेष ज्ञानी, शास्त्रका मर्मी, प्रत्युपकारी, तत्वदर्शी, धर्मात्मा, न दीन न अभिमानी, विनयवान, पाप क्रियासे रहित, ऐसा पवित्र इकवीस गुण श्रावक धरे है ॥ ५३ ॥

॥ अब बावीस अभक्षके नाम कहे है ॥ कवित्त छंद ॥—

ओरा घोरवरा निशि भोजन, वहु बीजा वैंगण संधान ॥
पीपर वर उंबर कठुंबर, पाकर जो फल होय अजान ॥
कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान ॥
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस, जिनमत ये बावीस अखान ॥ ५४ ॥

अर्थ—तीन मकार- मांस, दारु, अर मध, पंच उंबरोंके फल—उंबरके फल, बडके फल, पिंपळके फल, कठुंबर (पिपरण) के फल, पाकर (नांद्रुक) के फळ, [ये आठ वस्तु नहि भक्षण करना सो सम्यक्तके आठ मूळ गुण है] कंद मूल, अगालित जल, रात्रि भोजन, बहुबीज, बैंगण, संधाणा, वीष, माटी, सूक्ष्म फल, अजाण फल, पत्र उपरका तुषार, चलित रस, माखण, बिदल, ये बाईस वस्तु खाने योग्य नही ऐसे जिनमतमें कह्या है ॥ ५४ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानमें ग्यारह भेद है तिनके नाम कहे है ॥ दोहा ॥ ३१ सा ॥—

अब पंचम गुणस्थानकी, रचना वरणु अल्प। जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥५५॥

दर्शन विशुद्ध कारी बारह वरत धारि। सामाइक चारी पर्व प्रोषध विधि वहे ॥
सचित्तको परहारी दिवा अपरस नारि, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी व्है रहे ॥
पाप परिग्रह छंडे पापकी न सिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त करेसो वस्तु न गहे ॥
येते देशव्रतके धरैया समकीति जीव, ग्यारह प्रतिमा तिने भगवंतजी कहे ॥ ५६ ॥

अर्थ—पंचम गुणस्थानमें ग्यारह प्रतिमा है सो चारित्रके भेदते है तिनके नाम कहे है ॥ ५५ ॥ दर्शन विशुद्धि प्रतिमा ॥ १ ॥ व्रत प्रतिमा ॥ २ ॥ सामायिक प्रतिमा ॥ ३ ॥ प्रोषध प्रतिमा ॥ ४ ॥ सचित्त त्याग प्रतिमा ॥ ५ ॥ दिवा मैथुन त्याग रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥७॥ आरंभ त्याग प्रतिमा ॥ ८ ॥ पापका परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ९ ॥ पापका उपदेश त्याग प्रतिमा ॥१०॥ अगांतुक भोजन प्रतिमा ॥ ११ ॥ ऐसे देशव्रत (पंचअणुव्रत) के धारक सम्यक्ती जीवकी ग्यारह प्रतिमा (प्रतिज्ञा) भगवंतजीने कही है ॥ ५६ ॥

॥ अब पहिले, दुसरे अर तिसरे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

संयम अंश जगे जहां, भोग अरुचि परिणाम। उदै प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताका नाम ॥५७॥
आठ मूल गुण संग्रहे, कु व्यसन क्रिया नहि होय। दर्शन गुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोय॥५८॥
पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाल। शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥५९॥
द्रव्य भाव विधि संयुकत, हिये प्रतिज्ञा टेक। तजि ममता समता गहे, अंतर्मुहूरत एक ॥६०॥

चौ०—जो अरि मित्र समान विचारे। आरत रौद्र कुध्यान निवारे ॥
संयम संहित भावना भावे। सो सामाइकवंत कहावे ॥ ६१ ॥

अर्थ—जहां संयमका अंश जगे अर भोगमें अरुचिके परिणाम हुवे। तहां कोई प्रतिज्ञा धारण करनेका उदय होय सो तिसका नाम प्रतिमा है ॥ ५७ ॥ जो आठ मूल गुण धारण करे अर सप्त व्यसनकी क्रिया नही होय। ऐसे सम्यक्त गुण निर्मल करे सो पहली दर्शन प्रतिमा है ॥ १ ॥ ५८ ॥ जो पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, अर चार शिक्षा व्रत धारण करे। सो दूजी व्रत प्रतिमा है ॥२॥५९॥ जो चित्तमें प्रतिज्ञा करके अंतर्मुहूर्त पर्यंत द्रव्य (देह अर वचन) स्थिर करे अर भाव (मन)स्थिर करे। तथा ममताकूं त्यागि समता धारण करके ॥ ६० ॥ शत्रू मित्रकूं समान गिणे अर रौद्र ध्यान त्याग करे। तथा संयम सहित बारह भावनाका चिंतवन करे सो तीजी सामायिक प्रतिमा है ॥३॥६१॥

॥ अब चौथे पांचवे अर छठे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥—

सामायिककी दशा, चार पहरलों होय। अथवा आठ पहरलों, पोसह प्रतिमा सोय ॥ ६२ ॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर। सो सचित त्यागि पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥६३ ॥

चो॰—जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तिथि आये निशि दिवस संभाले ॥
गहि नव वाडि करे व्रत रख्या । सो षट् प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो पर्व दिनमें सामायिक समान चार प्रहर अथवा आठ प्रहर पर्यंत समता भाव धारण करे । सो चौथी प्रोषध प्रतिमा है ॥ ४ ॥ ६२ ॥ जो प्रासुक भोजन अर प्रासुक जल लेवे । सो पांचवी सचित्त त्याग प्रतिज्ञा है ॥ ५ ॥ ६३ ॥ जो नित्य दिनमें ब्रह्मचर्य व्रत पाले अर पर्व दिनोंमें रात्रंदिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तथा नव वाडीते शीलकी रक्षा करे सो छठी दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा है ॥६॥६४॥

॥ अब सातवे प्रतिमाका अर नव वाडीका स्वरूप कहे है ॥ चौपई ॥ कवित्त ॥—

जो नव वाडि सहित विधि साधे । निशि दिनि ब्रह्मचर्य आराधे ॥
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता । सील शिरोमणि जगत विख्याता ॥ ६५ ॥
तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीछ भाखे मधु वैन ॥
पूरव भोग केलि रस चिंतन । गरुव आहार लेत चित चैन ॥
करि सुचि तन सिंगार वनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥
मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव वाडि कहे जिन वैन ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो नव वाडिते शीलकी रक्षा करे अर रात्रंदिन ब्रह्मचर्य व्रतकूं पाले है । सो सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी ज्ञानी जगतमें विख्यात शील शिरोमणी है ॥७॥६५॥ स्त्रीकेपास एकांतमें बैठणा, स्त्रीकूं प्रेमसे देखना, स्त्रीकूं काम दृष्टीते देख मधुर वचन बोलना, पीछेके भोग क्रीडाका स्मरण करना, पौष्टीक आहार

लेना, नटवेरूप शृंगार करना, स्त्रीके शय्याउपर सुखसे सोवना, कामरूप मन्मथ गीत सुतना, अती आहार सेवन करना; ए नव प्रकार नहि करना सो शीलकी नव वाडी जैनशास्त्रमें कही है ॥ ६६ ॥

॥ अब आठवे नववे अर दशवे प्रतिमाका स्वरूप कहे है ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ। सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रणथंभ ॥६७॥

जो दशधा परिग्रहको त्यागी। सुख संतोष सहित वैरागी ॥
सम रस संचित किंचित ग्राही। सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६८ ॥

परकों पापारंभको, जो न देइ उपदेश। सो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥६९॥

अर्थ—जो सदा विवेक विचारसे सावधान रहे अर पाप आरंभ (कृषी, वाणिज्य अर सेवादिक) करे नही। सो कुगतीके विजयका रणथंभ आठवे पापारंभ त्याग प्रतिमाका धनी है ॥ ८ ॥ ६७ ॥ जो द्रव्यादिक दश प्रकारकें परिग्रहका त्याग करे अर सुख संतोषसे वैरागी रहे। तथा साम्य भाव धारण करके शरीर रक्षणार्थ किंचित् वस्त्र पात्र राखे सो नववी पाप परिग्रह त्याग प्रतिमाका धारण करणहारा श्रावक है ॥ ९ ॥ ६८ ॥ जो पुत्रादिककों पापारंभ करनेका उपदेश देवे नही। सो दशवे पापोपदेश त्याग प्रतिमाका श्रावक क्लेश (पाप) रहित है ॥ १० ॥ ६९ ॥

॥ अब ग्यारवी प्रतिमा अर प्रतिमाके उत्तम मध्यम जघन्य भेद कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा। मठ मंडपमें करे वसेरा ॥
उचित आहार उदंड विहारी। सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७० ॥

एकादश प्रतिमा दशा, कहीं देशव्रत मांहि। वही अनुक्रम मूलसों, गहीसु छूटे नांहि ॥७१॥

षट प्रतिमा ताईं जघन्य, मध्यम नव पर्यंत। उत्कृष्ट दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥७२॥

अर्थ—जो घर कुटुंबादिककूं छोडके स्वछंद वर्ते अर मठमें वा आरण्यमें वास करे। तथा भिक्षासे योग्य आहार लेय भोजन करे सो क्षुल्लक वा एलक ग्यारवी प्रतिमाधारी है ॥ ७० ॥ ऐसे ग्यारह प्रतिमाके भेद पांचवे देशव्रत गुणस्थानमें कहे। सो मूलसे अनुक्रमे ग्रहण करते करते आगे जाय अर जो ग्रहण करे सो छोडे नही ऐसे इसिकी विधि है ॥ ७१ ॥ छठि प्रतिमा पर्यंत जघन्य प्रतिमा है अर सातवी आठवी तथा नवमी मध्यम प्रतिमा है। दशवी अर ग्यारवी उत्तम प्रतिमा है ॥ ७२ ॥

॥ अब पांचवे गुणस्थानका काल कहे है ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

एक कोटि पूरव गणि लीजे। तामें आठ वरष घटि दीजे ॥
यह उत्कृष्ट काल स्थिति जाकी। अंतर्मुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

सत्तर लाख किरोड मित, छप्पन सहज किरोड। येते वर्ष मिलायके, पूरव संख्या जोड ॥७४॥
अंतर्मुहूरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकिष्ट। एक समय एकावली, अंतर्मुहूर्त कनिष्ट ॥ ७५ ॥
यह पंचम गुणस्थानकी, रचना कही विचित्र। अब छठे गुणस्थानकी, दशा कहुं सुन मित्र ॥७६॥

अर्थ—पांचवे गुणस्थानका उत्कृष्ट स्थितिकाल आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्वका है। अर जघन्य स्थितिकाल अंतर्मुहूर्तका है ॥ ७३ ॥ सत्तर लाख कोटि वर्ष अर छप्पन हजार कोटि वर्ष ७०,५६,०००००००००० । इह दोनूं संख्या मिलाइये तव एक पूर्वकी संख्या होय है ॥ ७४ ॥ दोय घडीमें कछु कमी सो उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है अर एक आवली उपर एक समय सो जघन्य अंतर्मुहूर्त है ॥७५॥ ऐसे पांचवे देशव्रत (अणुव्रतके) गुणस्थानकी विचित्र रचना कही सो समाप्त भई ॥ ७६ ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठ प्रमत्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ६ ॥ दोहा ॥—

पंच प्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुणवान । स्थविर कल्प जिन कल्प युत, है प्रमत्त गुणस्थान ॥७७॥
धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय । पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥७८॥

अर्थ—जो मुनी अट्ठावीस मूल गुण पाले अर पांच प्रमाद अवस्थाकूं धरे । सो छठे प्रमत्त गुणस्थान है । इस गुणस्थानमें स्थविर कल्प अर जिन कल्प ऐसे दोय प्रकारके मुनी रहे है ॥ ७७ ॥ धर्म ऊपर प्रेम राखे, धर्मोपदेश करे, निद्रा लेवे, भोजन करे, कषाय करे, ऐसे पांच प्रमादकी अवस्था सहित है ते प्रमादी मुनीराज है ॥ ७८ ॥

॥ अव मुनीके अठावीस मूल गुण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगि चित चैनको ॥
षट आवश्यक क्रिया दर्वीत भावीत साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको ॥
मंजन न करे केश लुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पैं सुगंध श्वास वैनको ॥
ठाडो करसे आहार लघु भुंजी एक वार, अठाइस मूल गुण धारी जती जैनको ॥ ७९ ॥

अर्थ—पांच महाव्रत पाले, पांच सुमती संभाले, अर पांच इंद्रियोंकूं जीतके इनके विपय सेवनेकूं चित्तमें रुचि नहि राखे । अर छह आवश्यक क्रिया द्रव्यते तथा भावते साधे, [ऐसे इकईस गुण भये] अर प्रासुक भूमीपे बैठे वा शयन करे, स्नान नहि करे, केश हातसे लोच करे, नग्न रहें, दंत नहि धोवे, खडे खडे कर पात्रमें आहार ले, दिनमें एकवार एक ठिकाणें अल्प खाय, ऐसे अठावीस मूल गुण धरे सो जैनका यती है ॥ ७९ ॥

॥ अब पंच महा व्रत, पंच सुमति अर छह आवश्यक इनका स्वरूप कहे है॥ दोहा ॥—

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज । किंचित त्यागी अणुव्रती, सब त्यागी मुनिराज॥८०॥
चले निरखि भाखे उचित, भखे अदोष अहार। लेइ निरखि डारे निरखि, सुमति पंच परकार॥८१॥
समता वंदन स्तुति करन, पडकोनो स्वाध्याय। काउसर्ग मुद्रा धरन, ए षडावश्यक भाय ॥८२॥

अर्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, अर परिग्रह संचय करना, यह पांच पाप है। इनका किंचित् त्याग करे सो अणुव्रती श्रावक है अर सर्वस्वी त्याग करे सो महाव्रती मुनिराज है ॥ ८० ॥ रस्ता देख जीव जंतुका बचाव करि चाले सो इर्या सुमति है, हितरूप योग्य वचन बोले सो भाषा सुमति है, निर्दोष आहार लेय सो एषणा सुमति है, शरीर कमंडलु अर शास्त्रादिक पिंछीसे झाडकर लेय वा रखे सो आदान निक्षेपणा सुमिति है, अर निर्जंतु स्थान देखि मल मूत्र वा श्लेष्मादिक टाके सो प्रतिष्ठावना सुमिति है, ऐसे पंच प्रकारे सुमिति है ॥ ८१ ॥ समता धरना, चौवीस तीर्थंकरोंकों नमस्कार करना चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करना, प्रतिक्रमण (स्वदोषका पश्चात्ताप) करना, सिद्धांत शास्त्रका स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग (शरीरका ममत्व छोडि) ध्यान धरना, ए छह आवश्यक क्रिया है ॥ ८२ ॥

॥ अब स्थविरकल्प अर जिनकल्प मुनीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

थविर कलपि जिन कलपि दुवीध मुनि, दोउ वनवासि दोउ नगन रहत है ॥
दोउ अठावीस मूल गुणके धरैया दोउ, सरवस्वि त्यागि व्है विरागता गहत है ॥
थविर कलपि ते जिन्हके शिष्य शाखा संग, बैठिके सभामें धर्म देशना कहत है ॥
एकाकी सहज जिन कलपि तपस्वी घोर, उदैकी मरोरसों परिसह सहत है ॥ ८३ ॥

अर्थ—स्थविर कल्पि अर जिनकल्पी ऐसे दोय प्रकारके मुनी है, ते दोहूं नग्न अर वनमें रहें है। दोऊंहूं अठावीस मूलगुण पाले है, तथा दोऊंहूं सर्व परिग्रहका त्यागी होय वैराग्यता धरे है। परंतु जे स्थविर कल्पी मुनि है ते शिष्य शाखा संगमे रखकर, सभामें बैठिके धर्मोपदेश करे है। अर जे जिनकल्पी मुनी है ते शिष्पशाखा छोडि निर्भय सहज एकटे फिरे है अर महातपश्चरण करे है, तथा कर्मके उदयते आये घोर २२ परीसह सहन करे है ॥ ८३ ॥

॥ अब वेदनी कर्मके उदैते ग्यारा परीसह आवे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

ग्रीषममें धूपथित सीतमें अकंप चित्त, भूख धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ॥
डंस मसकादिसों न डरे भूमि सैन करे, वध बंध विथामें अडोल व्है रहत है ॥
चर्या दुख भरे तिण फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलानि न गहत है ॥
रोगनिको करें न इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ये परिसह सहत है ॥८४॥

अर्थ—उष्ण कालमें धूपमें खडे रहे, शीत कालमें शीत सहे डरे नही, भूख लगेतो धीर धरे, तृषा लगे तो जल चाहे नही, डांस मच्छरादिक काटे तो भय नहि करे, भूमी उपर सयन करे, वध बंधादिकमें अडोल स्थीर रहे है, चलनेका दुःख सहे, चलनेमें तृण कंटकसे डरे नही, शरीर उपरके मलकी ग्लानी करे नहि, रोगकूं विलाज नहि करे, ऐसें ग्यारह परिसह वेदनीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८४ ॥

॥ अब चारित्र कर्मके उदयते सात परिसह आवे है सो कहे है ॥ कुंडली छंद ॥—

येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत । लज्जा संकुच दुख धरे,
नगन दिगंबर होत । गगन दिगंबर होत, श्रोत्र रति स्वाद न सेवे ।
त्रिय सनमुख दृग रोक, मान अपमान न वेवे । थिर व्है निर्भय रहे,
सहे कुवचन जग जेते । भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट येते ॥ ८५ ॥

अर्थ—दिगंबर होय तब नग्नकी लज्जाका दुःख उपजे सो सहन करे, कर्ण इंद्रियके विषयका स्वाद नाहि सेवे, स्त्रीके हावभावकूं मन भूले नही, मान अपमान देखे नही, कोई भय आवेतो ध्यानासनछोडि भागे नही, जगतके कुवचन सहे, अर भिक्षा याचनाका दुःख माने नही, ऐसे सात परिसह (संकट) चारित्र मोहनीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८५ ॥

॥ अब ज्ञानावर्णीयके २ दर्शनमोहनीयका १ अर अंतराय का १ ऐसे ४ परिसह कहे है ॥ दोहा ॥—

अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उत्कर्ष विलोय । ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ॥ ८६ ॥
सहे अदर्शन दुर्दशा, दर्शन मोह उदोत । रोके उमंग अलाभकी, अंतरायके होत ॥ ८७ ॥

अर्थ—अल्प ज्ञान होयतो लघुता सहन करे, अर बहु ज्ञान होयतो गर्व नाहि करे । ऐसे अज्ञान अर प्रज्ञा (गर्व) ये दोय परिसह ज्ञानावर्णीय कर्मके उदयते आवे है सो मुनिराज सहन करे है ॥ ८६ ॥ दर्शन मोहनीय कर्मके उदयते सम्यग्दर्शनकूं संकट आवेतो सम्यग्दर्शन छोडे नही, अर अंतराय कर्मके उदयते अलाभ होयतो लाभकी इच्छा करे नही, ऐसे दर्शन मोहनीय कर्मका एक अर अंतराय कर्मका एक ये दोय परिसह मुनिराज सहन करे है ॥ ८७ ॥

॥ अब बावीस परिसहका विवरण कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरणीकी दोय एक अंतरायकी ॥
दर्शन मोहकी एक द्वाविंशति बाधा सब, केई मनसाकि केई वाक्य केई कायकी ॥
काहुकों अलप काहु बहूत उनीस ताइ, एकहि समैमें उदै आवे असहायकी ॥
चर्या थिति सज्या मांहि एक शीत उष्ण मांहि, एक दोय होहि तीन नांहि समुदायकी ॥८८॥

अर्थ—वेदनीय कर्मके ग्यारा परिसह है अर चारित्र मोहनीय कर्मके सात परिसह है, ज्ञानावरण कर्मके दोय परिसह है अर अंतरायकर्मका एक परिसह है। तथा दर्शन मोहनीय कर्मका एक परिसह है ऐसे सब बावीस परिसह हैं, तिस बाईस परिसहमें कित्येक परिसह मनके अर कित्येक परिसह वचनके तथा कित्येक परिसह शरीरके होय है। कोई मुनीकूं एक परिसह होय है, अर कोई मुनीकूं बहूत होयतो एक समैमें उगणीस परिसह पर्यंत होय है। गमन, बैठना, अर शयन, इन तीन परिसहमें कोई एक परिसह उदयकूं आवे अर दोय परिसह उदयकूं नहि आवे, तैसेही सीत अर उष्ण इन दोय परिसहमें कोई एक परिसह उदयकूं आवे अर एक परिसह उदयकूं नहि आवे, ऐसे पांच परिसहमें दोय परिसह उदयकूं आवे अर तीन परिसह उदयकूं नही आवे, बाकीके उगणीस परिसह उदयकूं आवे है ॥ इति परिसह वर्णन ॥-८८ ॥

॥ अब थविर कल्पकी अर जिन कल्पकी समानता दिखावे है ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

नाना विधि संकट दशा, सहि साधे शिव पंथ। थविर कल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ॥८९॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविर कल्प सो जान। एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प वखान॥९०॥

थविर कल्प धर कछुक सरागी । जिन कल्पी महान वैरागी ॥
इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी । पूरण भई जथारथ वरनी ॥ ९१ ॥

अर्थ—ऐसे नाना प्रकारके परिषह सहन करके मोक्ष मार्ग साधे है ताते स्थविर कल्पी अर जिन-कल्पी दोऊ प्रकारके निग्रंथ मुनीकी समानता है ॥ ८९ ॥ जो मुनी शिष्य शाखामें रहे सो स्थविर कल्पी किंचित् सरागी है । अर जो मुनी येकल विहारी होय विछरे है सो जिनकल्पी महान वैरागी है ॥ ९० ॥ ऐसे छठे प्रमत्त गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थान प्रारंभ ॥ ७ ॥ चौपाई ॥ दोहा ॥—

अब वरणो सप्तम विसरामा । अपरमत्त गुणस्थानक नामा ॥
जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे । धरम ध्यान स्थिरता परकासे ॥ ९२ ॥
प्रथम करण चारित्रको, जासु अंत पद होय । जहां आहार विहार नही, अप्रमत्त है सोय ॥९३॥

अर्थ—सातवा अप्रमत्त गुणस्थान है सो विश्राम (स्थिरता)का स्थान है तिसका अब वर्णन करूंहूं—जो मुनी छठे गुणस्थानके अंतमे पंच प्रमादकी क्रियाकूं छोडे है अर स्थिरतासे धर्मध्यानका प्रकाश करे है ॥ ९२ ॥ सो मुनी प्रमत्त गुणस्थानके अंतमें चारित्र मोहनी कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा चारित्रका प्रथम करण जो अधःकरण (परिणामकी अत्यंत शुद्धि) करे है । तब आहार विहारादि रहित होय धर्म ध्यानमें स्थिर होय है सो सातवा अप्रमत्त गुणस्थान है ॥ ९३ ॥ ऐसे सातवे अप्रमत्त गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम अपूर्व करण गुणस्थान प्रारंभ ॥ ८ ॥ चौपई ॥—

अब वरणूं अष्टम गुणस्थाना । नाम अपूरव करण वखाना ॥
कछुक मोह उपशम करि राखे । अथवा किंचित क्षय करि नाखे ॥ ९३ ॥
जे परिणाम भये नहि कबही । तिनको उदै देखिये जबही ॥
तव अष्टम गुणस्थानक होई । चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो चारित्र मोहनीय कर्मका कछुक उपशम करे सो उपशम श्रेणी चढे अर कछुक क्षय करे सो क्षायक श्रेणी चढे ऐसे सातवे गुणस्थानके अंतमें दोय मार्ग है ॥ ९३ ॥ जिस मुनीका सातवे अप्रमत्त गुणस्थानके अंतमें चारित्र मोहनीय कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा चारित्रका जो द्वितीय अपूर्व करण (कबही शुद्ध परिणाम नाहि भये ऐसे शुद्ध परिणाम) का उदय होवे तब आठवा अपूर्व करण गुणस्थान होय ॥ ९४ ॥ ऐसे आठवे अपूर्व करण गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम अनिवृत्ति करण गुणस्थान प्रारंभ ॥ ९ ॥ चौपई ॥—

अब अनिवृत्ति करण सुनि भाई । जहां भाव स्थिरता अधिकाई ॥
पूरव भाव चलाचल जे ते । सहज अडोल भये सब ते ते ॥ ९५ ॥
जहां न भाव उलट अधि आवे । सो नवमो गुणस्थान कहावे ॥
चारित्र मोह जहां बहु छीजा । सो है चरण करण पद तीजा ॥ ९६ ॥

अर्थ—जब परिणाम अधिकाधिक शुद्ध करे । तब पूर्वें जे कषायके उदयते परिणाम चलाचल होते थे ते सब सहज स्थिर हो जाय है ॥ ९५ ॥ जो मुनी आठवे अपूर्व करण गुणस्थानके अंतमें

चारित्र मोहनीय कर्मकूं क्षय करनेका कारण ऐसा जो चारित्रका तृतीय अनिवृत्ति करण (शुद्ध परिणामकी स्थिरता) करे जब चारित्र मोहनीय कर्मका बहुत क्षय होय, तब परिणामते चढे पण उलट नीचेके गुणस्थान नहि आवे सो नवमो अनिवृत्ति करण गुणस्थान है ॥ ९६ ॥ ऐसे नववें अनिवृत्ति करण गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान प्रारंभ ॥ १० ॥ चौपई ॥—

कहूं दशम गुणस्थान दु शाखा । जहां सूक्षम शिवकी अभिलाखा ॥
सूक्षम लोभ दशा जहां लहिये । सूक्षम सांपराय सो कहिये ॥ ९७ ॥

अर्थ—आठवे गुणस्थानमें जैसी उपशम अर क्षपक श्रेणी है तैशी नववे अर दशवे गुणस्थानमेंहूं दोय दोय श्रेणी हे । जिस मुनीका चारित्र मोहनीय कर्मका बहुतसा क्षय हुवा है अर सूक्ष्म लोभ (मोक्ष पदकी इच्छा) है सो दशवा सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान है ॥ ९७ ॥ ऐसे दशवे सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ १० ॥

॥ अथ एकादशम उपशांत मोह गुणस्थान प्रारंभ ॥ ११ ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

अब उपशांत मोह गुणठाना । कहों तासु प्रभुता परमाना ॥
जहां मोह उपसममें न भासे । यथाख्यात चारित परकासे ॥ ९८ ॥
जहां स्पर्शके जीव गिर, परे करे गुण रद्द । सो एकादशमी दशा, उपसमकी सरहद्द ॥ ९९ ॥

अर्थ—अब ग्यारवे उपशांत मोह गुणस्थानका पराक्रम कहूंहूं । जो मुनी यथाख्यात चारित्र धारे है ताते सर्व मोहनी कर्म उपशमी जाय अर उदयमें नहि दीसे है ॥ ९८ ॥ सो मुनी उपशमश्रेणी

चढे परंतु उपशमश्रेणीका स्पर्श होतेही जीव तहांसे अवश्य गिर पडे अर जे गुण प्रगटेथे ते सर्व रद्द करे। सो ग्यारवा उपशांत मोह गुणस्थान है इहां पर्यंत उपशमकी सरहद्द है ॥ ९९ ॥ ऐसे एकादशवे उपशांत मोह गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशम क्षीणमोह गुणस्थान प्रारंभ ॥ १२ ॥ चौपई ॥—

केवलज्ञान निकट जहां आवे। तहां जीव सब मोह क्षपावे ॥
प्रगटे यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम क्षीण गुण ठाना ॥ १०० ॥

अर्थ—जो मुनी सर्व मोहनीय कर्मका क्षय करे। अर जहां यथाख्यात चारित्र प्रगटे है तथा केवलज्ञान अंतर्मुहूर्तमें होनेवाला है सो बारवा क्षीणमोह गुणस्थान है ॥ १०० ॥

॥ अव छठेते वारवे गुणस्थान पर्यंत उपशमकी तथा क्षायककी स्थिति कहे है ॥ दोहा ॥—

षट साते आठे नवे, दश एकादश थान। अंतर्मुहूरत एकवा, एक समै थिति जान ॥ १०१ ॥
क्षपक श्रेणी आठे नवे, दश अर वलि बार। थिति उत्कृष्ट जघन्यभी, अंतर्मुहूरत काल ॥१०२॥
क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चित चाल। अब संयोग गुणस्थानकी, वरणूं दशा रसाल॥१०३॥

अर्थ—छठे, सातवे, आठवे, नववे, दशवे, अर ग्यारवे, इन ६ गुणस्थानकी उपसमश्रेणीके अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है। अर जघन्य स्थिती एक समयकी है ॥ १०१ ॥ आठवे, नववे, दशवे, ग्यारवे, अर बारवे, इन ५ गुणस्थानकी क्षायक श्रेणीके अपेक्षा उत्कृष्ट अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है ॥ १०२ ॥ ऐसे मोहमय जे चित्तकी चाल (वृत्ती) है तिस चित्त वृत्तीका चूर्ण करके बारवे क्षीणमोह गुणस्थानका वर्णन संपूर्ण भया ॥ १२ ॥

॥ अथ त्रयोदशम सयोग केवली गुणस्थान प्रारंभ ॥ १३ ॥ ३१ ॥ सा ॥—

जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनश गई, चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है ॥
प्रगटे तब अनंत दर्शन अनंत ज्ञान, वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है ॥
जाके आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति ऐसि, इक्यासि चौऱ्यासि वा पच्यासि परमान है ॥
सोहै जिन केवली जगतवासी भगवान, ताकि ज्यो अवस्था सो सयोग गुणथान है ॥१०४॥

अर्थ—जिस मुनीने आत्माके गुणका घात करनेवाले दुःखदाता चार घातिया (मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अर अंतराय,) कर्मका क्षय कीया है, अर आत्माके गुणका न घात करनेवाले चार अघातिया (आयु, नाम, गोत्र, अर वेदनी,) कर्म रह्या है सोहूं जरी जेवरी समान रह्या है। मोहनीय कर्मका नाश होनेसे अनंत सुखसत्ता समाधानी (सम्यक्त) प्रगटे है, ज्ञानावरणीय कर्मका नाश होनेसे अनंत ज्ञान प्रगटे है, दर्शनावरणीय कर्मका नाश होनेसे अनंत दर्शन प्रगटे है, अर अंतराय कर्मका नाश होनेसे अनंत शक्ती प्रगटे है। कोई केवलज्ञानी मुनीकूं चार अघातिया कर्मकी ८५ प्रकृती रहे है, कोई केवलज्ञानी मुनीकूं आहारक चतुष्क (आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघात, आहारक बंधन,) अर जिननाम, इन ५ प्रकृती विना ८० प्रकृती रहे, कोई केवलज्ञानी मुनीकूं आहारक चतुष्क विना ८१ प्रकृती रहे है, अर कोई केवलज्ञानी मुनीकूं १ जिननाम प्रकृती विना ८४ प्रकृती रहे है, ऐसे गुणका जो है सो जिन है, केवली है, वा जगतका भगवान् है, तिसकी जो अवस्था सो तेरवा सयोग केवली गुणस्थान है ॥ १०४ ॥

॥ अब केवलज्ञानीकी मुद्रा अर स्थिति कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु काउसर्ग मुद्रा थिर पाल है ॥
क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृतीके उदे आये, विना डग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल है ॥
जाकी थिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि, अंतर मुहूरत जघन्य जग जाल है ॥
सोहै देव अठारह दूषण रहित ताकों, बनारसि कहे मेरी बंदना त्रिकाल है ॥१०५॥

अर्थ—केवलज्ञानीभगवान् अडोलपणे सर्व प्रकारें पर्यंकमुद्रा (अर्धपद्मासन) बैठे है अथवा कायोत्सर्गमुद्रा स्थीरपणे पाले है । अर नामकर्मके क्षेत्रस्पर्श प्रकृतीका उदय आवे तब केवलज्ञानी विहार (गमन) करे है सो अन्य पुरुषके समान चाले नही, डग भरे विना अर अंतरिक्ष (अधर) गमन करे है । इस सयोगी गुणस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष न्यून पूर्वकोटी वर्षकी है, [जन्मसे आठ वर्षकी उमरतक केवलज्ञान उपजे नही] अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकीहै, केवलज्ञानी जगतमें इतना काल रहते है फेर मुक्त होते है । ऐसे केवली भगवान् देवाधिदेव अठारा दूषण रहित है, बनारसीदास कहे है की तिनकौ मेरी त्रिकाल बंदना है ॥ १०५ ॥

॥ अब केवली भगवानकूं अठारा दोष न होय तिनके नाम कहे है ॥ कुंडली छंद ॥—

दूषण अठारह रहित, सो केवली संयोग । जनम मरण जाके नही,
नहि निद्रा भय रोग । नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति ।
जरा खेद पर स्वेद, नांहि मद वैर विषै रति । चिंता नांहि सनेह नांहि,
जहां प्यास न भूख न । थिर समाधि सुख, रहित अठारह दूषण ॥ १०६ ॥

अर्थ—जे मुनी अठारह दूषण रहित है ते सयोग केवली कहिए। जिन्हकूं जन्म नही, मरण नहीं, निद्रा नही, भय नही, रोग नही, शोक नही, विस्मय नही, मोहमति नही, जरा नही, खेद नही, पसेव नही, मद नही, वैर नही, विषयप्रीति नही, चिंता नही, स्नेह नही, तृषा लागे नही, भूख लागे नही, ऐसे अठारह दूषण रहित है ताते समाधि सुख सहित स्थिररूप होय है ॥ १०६ ॥

॥ अब केवलज्ञानीके परम औदारिक देहके अतिशय गुण कहे है ॥ कुंडली ॥ दोहा ॥—

वानी जहां निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि। केश रोम नख नहि बढे,
परम औदारिक मांहि, परम औदारिक मांहि, जहां इंद्रिय विकार नसि।
यथाख्यात चारित्र प्रधान, थिर शुकल ध्यान ससि। लोकाऽलोक प्रकाश,
करन केवल रजधानी। सो तेरम गुणस्थान, जहां अतिशयमय वानी ॥ १०७ ॥
यह सयोग गुणथानकी, रचना कही अनूप। अब अयोग केवल दशा, कहूं यथारथरूप ॥१०८॥

अर्थ—केवलज्ञानीकी वाणी मस्तकमेंसे ॐकार ध्वनीरूप निरक्षरी निकले है, अर केवलीके परम-औदारिक शरीरमें सप्त धातु नही तथा मल अर मूत्र होय नही। अर केश, नखकी वृद्धि होय नही, अर जहां इंद्रियोंका विकार (विषय) क्षय हूवा है। अर उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट भया है, तथा जहां शुक्ल ध्यानरूप चंद्रमा स्थिररूप हुवा है। अर जहां लोकालोकका प्रकाश करनहारी केवलज्ञानरूप राजधानी विराजमान रही है। सो तेरवा सयोग गुणस्थान कहिए, तहां अतिशययुक्त वानी है ॥ १०७ ॥ ऐसे तेरवे सयोग गुणस्थानका अनुपम्य वर्णन कह्या सो समाप्त भया ॥ १३ ॥

टीपः—केवलीकूं मन वचन अर कायके योग है ताते इनकूं सयोग केवली कहिए.

॥ अथ चतुर्दशम अयोग केवली गुणस्थान प्रारंभ ॥ १४ ॥ ३१ सा ॥—

जहां काहूं जीवकों असाता उदै साता नांहि, काहूंकों असाता नांहि साता उदै पाईये ॥
मन वच कायासों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाईये ॥
जामें कर्म प्रकृतीकि सत्ता जोगि जिनकीसि, अंतकाल द्वै समैमें सकल खपाईये ॥
जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रमाण सोइ, चौदहो अयोगी गुणठाना ठहराईये ॥१०९॥

अर्थ—कोई केवलज्ञानी मुनीकूं असाता वेदनी कर्मका उदय रहे अर साता वेदनी कर्मका उदय नही रहे पण सत्तामें तिष्ठे है, तथा कोई केवलज्ञानी मुनीकूं साता वेदनी कर्मका उदय रहे अर असाता वेदनी कर्मका उदय नही रहे पण सत्तामें तिष्ठे है। अर जीव जहां मनयोग, वचन योग, अर कायायोगसे रहित भया है, ताते इनकूं अयोग केवली कहिए, जिसके जसका वर्णन जगतके जीतवेरूप गाइये है। अर जिसमें सयोग केवलीवत् अघातिया कर्मके प्रकृतीकी सत्ता रही है सो अंतकालके दोय समयमें ८५ (पहिले समयमें ७२ अर दुसरे समयमें १३) प्रकृतीका नाश करके मोक्ष पधारे है। सोही चौदहवो अयोग केवली गुणस्थान है, इस गुणस्थानकी स्थिती लघु पंच स्वर (अ इ उ ऋ ऌ) के उच्चारवेकूं जितना काल लागे तितनी है ॥ १०९ ॥

॥ ऐसे चौदहवे अयोग केवली गुणस्थानका वर्णन समाप्त भया ॥ १४ ॥

॥ अव वंधका मूल आश्रव है अर मोक्षका मूल संवर है सो कहै है ॥ दोहा ॥—

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल। आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥११०॥

अर्थ—जगतवासी जीव अशुद्धता (अज्ञानता) से भूलमें पड्यो है तिसकी ए चौदह गुणस्थानकी चौदह दशा होय है, यहां तत्व दृष्टींसे देखेतो आश्रव है सो बंधका मुल है अर संवर है सो मोक्षका मूल है ॥ ११० ॥

॥ अव आश्रवकी अर संवरकी जुदी जुदी व्यवस्था कहे है ॥ चौपई ॥—

आश्रव संवर परणति जोलों। जगवासी चेतन तोलों ॥
आश्रव संवर विधि व्यवहारा। दोउ भवपथ शिवपथ धारा ॥ १११ ॥
आश्रवरूप बंध उतपाता। संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता ॥
जा संवरसों आश्रव छीजे। ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११२ ॥

अर्थ—जबतक आश्रवके अर संवरके परिणाम परिणमे है तबतक चेतनरूप ईश्वर जगत निवासी होय रहे है। यहां आश्रवका विधि है सो व्यवहारमें है अर संवरका विधि है सो पण व्यवहारमें है, ये दोय व्यवहार मार्ग है — आश्रव विधि है सो संसारमार्गकी धारा है अर संवरविधि है सो मोक्षमार्गकी धारा है ॥ १११ ॥ संसारमें जे आश्रवरूप अज्ञान है सो कर्मबंधकों उत्पाद (उपजावे) है, अर संवररूप ज्ञान है सो मोक्षपदका दाता है । जिस संवररूप ज्ञानसे आश्रवरूप अज्ञानका क्षय होय है, तिस संवररूप ज्ञानकूं अब नमस्कार करे है ॥ ११२ ॥

॥ अब ग्रंथके अंतमें संवररूप ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जगतके प्राणि जीति व्है रह्यो गुमानि ऐसो, आश्रव असुर दुखदानि महाभीम है ॥
ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है ॥
जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम है ॥
संवरको रूप धरे साधे शिव राह ऐसो, ज्ञान पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ११२ ॥

अर्थ—जगतके सब प्राणींकूं जींतिके गुमानी हो रह्या है, ऐसा आश्रव (अज्ञानरूप) राक्षस है सो महा भयानक दुख देनेवाला है। तिसका प्रताप खंडण करनेकूं अर धर्म धारण करनेकूं प्रत्यक्ष संवररूप ज्ञानअधिपति है, सो कर्मरूप महा रोगका नाश करनेकूं बडा हकीम है । तिस संवररूप ज्ञानके प्रभाव आगे समस्त काम क्रोधादिकके अर राग द्वेषादिक कर्मके प्रभाव भागे है, अर नागर (चतुर) तथा अनादि कालसे न पायो ऐसो वे सुखरूप समुद्रकी सीमा है । संवररूपको धरनहार अर मोक्षमार्गको साधनहार, ऐसा जो ज्ञानरूप बादशाह है तिसकूं मेरी तसलीम (बंदना) है ॥ ११२ ॥

॥ इति श्रीबनारसीदासकृत चतुर्दश गुणस्थानाधिकार समाप्त ॥

॥ अत्र ग्रंथ समाप्तीकी अंतिम प्रशस्ती ॥ चौपई ॥ दोहा ॥—

भयो ग्रंथ संपूरण भाखा । वरणी गुणस्थानककी शाखा ॥
वरणन और कहांलों कहिये । जथा शक्ति कही चुप व्है रहिये ॥ १ ॥
लहिए पार न ग्रंथ उदधिका । ज्योंज्यों कहिये त्योंत्यों अधिका ॥
ताते नाटक अगम अपारा । अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ २ ॥
समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होय । ताते कहत बनारसी, पूरण कथै न कोय ॥३॥

॥ अत्र कवी अपनी लघुता कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केहि भांति चक्री कटकसों लरनो ॥
जैसे कोउ परवीण तारू भुज भारू नर, तिरे कैसे स्वयंभू रमण सिंधु तरनो ॥
जैसे कोउ उद्यमी उछाह मन मांहि धरे, करे कैसे कारिज विधाता कोसो करनो ॥
तैसे तुच्छ मति मेरी तामें कविकला थोरि, नाटक अपार मैं कहांलों यांहि वरनो ॥ ४ ॥

॥ अब जीव नटकी महिमा कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे वट वृक्ष एक तामें फल है अनेक, फल फल वहु वीज वीज वीज वट है ॥
वट मांहि फल फल मांहि वीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥
तैसे एक सत्तामें अनंत गुण परयाय, पर्यामें अनंत नृत्य तामेंऽनंत ठट है ॥
ठटमें अनंत कला कलामें अनंत रूप, रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५ ॥
ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उडे सुमति खग होय । यथा शक्ति उद्यम करे, पार न पावे कोय ॥ ६ ॥

चौ०—ब्रह्मज्ञान नभ अंत न पावे । सुमति परोक्ष कहांलों धावे ॥
जिहि विधि समयसार जिनि कीनो । तिनके नाम कहूं अब तीनो ॥ ७ ॥

॥ अब त्रय कवीके नाम कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

प्रथम श्रीकुंदकुंदाऽचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥
ताहीके परंपरा अमृतचंद्र भये तिन्हे, संसकृत कलसा समारि सुख लयो है ॥
प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोयो है ॥
शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहीको भयो है ॥ ८ ॥

॥ अब सुकविका लक्षण कहे है ॥ चौपई ॥ दोहा ॥ —

अब कछुं कहूं जथारथ बानी । सुकवि कुकवि कथा कहानी ॥
प्रथमहि सुकवि कहावे सोई । परमारथ रस वरणे जोई ॥ ९ ॥
कलपित बात हीए नहि आने । गुरु परंपरा रीत वखाने ॥
सत्यारथ सैली नहि छंडे । मृषा वादसों प्रीत न मंडे ॥ १० ॥
छंद शब्द अक्षर अर्थ, कहे सिद्धांत प्रमान । जो इहविधि रचना रचे, सो है कविसु जान ॥ ११ ॥

॥ अब कुकविका लक्षण कहे है ॥ चौपई ॥—

अब सुनु कुकवि कहों है जैसा । अपराधि हिय अंध अनेसा ॥
मृषा भाव रस वरणे हितसों । नई उकति जे उपजे चितसों ॥ १२ ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आने । परमारथ पथ भेद न जाने ॥

वानी जीव एक करि बूझे । जाको चित जड ग्रंथ न सूझे ॥ १३ ॥
वानी लीन भयो जग डोले । वानी ममता त्यागि न वोले ॥
है अनादि वानी जगमांही । कुकवि वात यह समुझे नांही ॥ १४ ॥

॥ अव वाणीकी व्याख्या कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

जैसे काहू देशमें सलील धारा कारंजकि, नदीसों निकसि फिर नदीमें समानी है ॥
नगरमें ठोर ठोर फैली रहि चहुं ओर । जाके ढिग वहे सोई कहे मेरा पानी है ॥
त्योंहि घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी है ॥
करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनि ऐसो मूढ प्राणी है ॥ १५ ॥
ऐसे कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर । रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और ॥ १६ ॥
वस्तु स्वरूप लखे नही, वाहिज दृष्टि प्रमान । मृषा विलास विलोकिके, करे मृषा गुण गान ॥ १७ ॥

॥ अव मृषा गुण गान कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥—

मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहे, कहे मुख चंद जो सलेषमाको घरु है ॥
हाडके सदन यांहि हीरा मोती कहे तांहि, मांसके अधर ऊठ कहे विंव फरु है ॥
हाड दंड भुजा कहे कोल नाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ॥
योंहि झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, येते पर कहे हमे शारदाको वरु है ॥ १८ ॥
चौ०—मिथ्यामति कुकवि जे प्राणी । मिथ्या तिनकी भाषित वाणी ॥
मिथ्यामति सुकवि जो होई । वचन प्रमाण करे सव कोई ॥ १९ ॥

वचन प्रमाण करे सुकवि, पुरुष हिये परमान । दोऊ अंग प्रमाण जो, सोहे सहज सुजान ॥२०॥

॥ अब समयसार नाटककी व्यवस्था कहे है ॥ चौंपई ॥ दोहा ॥—

अब यह बात कहूंहूं जैसे । नाटक भाषा भयो सु ऐसे ॥
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता । अमृतचंद्र टीकाके करता ॥ २१ ॥
समैसार नाटक सुखदानी । टीका सहित संस्कृत वानी ॥
पंडित पढे अरु दिढमति बूझे । अलप मतीको अरथ न सूझे ॥ २२ ॥
पांडे राजमल्ल जिनधर्मी । समयसार नाटकके मर्मी ॥
तिन्हे गरंथकी टीका कीनी । बालवोध सुगम करि दीनी ॥ २३ ॥
इहविधि बोध वचनिका फैली । समै पाइ अध्यातम सैली ॥
प्रगटी जगमांहि जिनवानी । घरघर नाटक कथा वखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरे मांहि विख्याता । कारण पाइ भये बहुज्ञाता ॥
पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने । निसिदिन ज्ञान कथा रस भीने ॥ २५ ॥

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम । तृतिय भगोतिदास नर, कोरपाल गुण धाम ॥२६॥
धर्मदास ये पंच जन, मिलि बैठहि इक ठोर । परमारथ चरचा करे, इनके कथा न और ॥२७॥
कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धंत । कबहूं बिंग बनायके, कहे बोध विरतंत ॥२८॥

॥ अब बिंग विगत कथन ॥ दोहा ॥ चौपाई ॥—

चिंतचकोर अर धर्म[२] धुर, सुमति[३] भगौतीदास । चतुर भाव थिरता भये, रूपचंद परकास ॥२९॥

इहविधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे माहि। देस देसमें विस्तरे, मृपा देशमें नाहि ॥ ३० ॥
जहां तहां जिनवाणी फैली। लखे न सो जाकी मति मैली ॥
जाके सहज बोध उतपाता। सो ततकाल लखे यह वाता ॥ ३१ ॥
घटघट अंतर जिन वसे, घटघट अंतर जैन। मत मदिराके पानसो, मतमाला समुझै न ॥३२॥
बहुत बढाइ कहांलों कीजे। कारिज रूप वात कहिलीजे ॥
नगर आगरे मांहि विख्याता। वनारसी नामे लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥
तामें कवित कला चतुराई। कृपा करे ये पांचौं भाई ॥
ये प्रपंच रहित हिय खोले। ते वनारसीसों हसि वोले ॥ ३४ ॥
नाटक समैसार हित जीका। सुगम रूप राजमल टीका ॥
कवित बद्ध रचना जो होई। भाखा ग्रंथ पढै सव कोई ॥ ३५ ॥
तव वनारसी मनमें आनी। कीजे तो प्रगटे जिनवानी ॥
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी। कवित वंधकी रचना कीनी ॥ ३६ ॥
सोरहसे[१६] तिराणवे[९३] वीते। आसु मास सित पक्ष वितीते ॥
तेरसी रविवार प्रवीणा। ता दिन ग्रंथ समापत कीना ॥ ३७ ॥
सुख निधान शक वंधनर, साहिव साह किराण। सहस साहि सिर मुकुट मणि, साह जहां सुलतान।
जाके राजसु चैनसों, कीनों आगम सार। इति भीति व्यापे नही, यह उनको उपकार ॥३९॥
समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत। सोहै आगम नाममें, परमारथ विरतंत ॥ ४० ॥

॥ अव इस ग्रंथके सब कवित्तोंकी जोड संख्या कहे है ॥ सवैया ३१ सा ॥—

तीनसे दसोत्तर सोरठा[३१०] दोहा[२४५]छंद दोऊ, जुगलसे पैतालीस ईकतीसा[८६] आने हैं ॥
छ्यासी सु चौपईये[३८६] सेंतीस तेईस सवैये[२३], वीस छंप्पै[२०] अठारह कवित्त[१८] वखाने हैं ॥
सात फुनिही अडिल्ल[७] चार कुंडलीये[४] मीले, सकल[७२७] सातसे सत्ताईस ठीक ठाने हैं ॥
बत्तीस अक्षरके सलोक[१७०७] कीने ताके ग्रंथ, सव संख्या सत्रहसे सात अधिकाने हैं ॥ १ ॥



यह पुस्तक नाना रामचंद्र नाग फलटणवालेने मुंबई "निर्णयसागर" यंत्रमें छपायके प्रसिद्ध कीया.

वीरनिर्वाण संवत् २४४० । सन १९१४ शके १८३६ जेष्ठ शुद्ध ५

Published by Nana Ramachandra Naga, Kumbhoja, Dt. Kolhapur.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
23 Kolbhat Lane,—BOMBAY.

पं० वनारसीदासविरचित हिंदी कवितका.

॥ इति समयसारनाटक समाप्त ॥

नाना रामचंद्र नागकृत हिंदी वचनिके सहीत.